निवेदन

भारतीय साहित्य क्षेत्र में जैन साहित्य का स्थान सर्वोपरि है। जैन साहित्य में विविधता है, मधुरता है और अनेक दृष्टियों से महत्त्व पूर्ण है। अपूर्णता इस बात की है कि जैन साहित्य चाहिए वैसे अच्छे ढंगसे बहुत ही कम प्रकाशित हुआ है। आज के इस परिवर्त्तन-शील युग में यह बात बताने की आवश्यता नहीं है कि मानव जीवन में साहित्य का स्थान कितना ऊंचा है। धार्मिक इत्यादि उन्नति एक मात्र साहित्य पर निर्भर है। साहित्य मानव जीवन के महत्त्वपूर्ण अंगों में से है।

जैनधर्म के विधि-विधान के प्राचीन ग्रंथों में विधि-मार्ग प्रपा का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह जान कर बड़ी प्रसन्नता होगी कि श्रीखरतरगच्छालंकार अनेक ग्रंथ निर्माताश्री जिनप्रभ सूरि जी जैसे अद्वितीय विद्वान् महापुरुष की प्रस्तुत कृति पुज्यगुरुवर्य्य उ० सुखसागरजी मा० की शुभेच्छानुसार भारतीय इतिहास के मर्मज्ञ विद्वान्, विविधवाङ्मयोपासक एवं विविध ग्रंथमालाओं के सम्पादक, साक्षरवर्य श्रीमान् जिनविजयजी द्वारा सुसम्पादित हो कर प्रकाशित हो रही है जो सचमुच प्रत्येक साहित्यप्रेमि के लिये हर्षका विषय है। साथ ही में बीकानेर निवासी श्रीयुत अगरचंदजी और भंवरलालजी नाहटा लिखित प्रस्तुत कृति के निर्माता का जीवनवृत्त संयोजित होनेसे ग्रंथ की महत्ता और भी बढ़ गई है। उक्त तीनों महाशयों को हृदय पूर्वक धन्यवाद देते हैं और इस कृति के प्रकाशन में जिनजिन महानुभावोंने द्रव्य विषयक सहायता पंहुचा कर जो प्रशंसनीय कार्य किया है वह आदरणीय नहीं अनुकरणीय है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में से हंसक्षीर न्यायानुसार सार ग्रहण कर सम्पादक महाशय के महान् परिश्रम को सफल करेंगे यही शुभेच्छा।

वि. सं. १९९८, अक्षय तृतीया
सिवनी (सी. पी.)

शुभेच्छक,
मुनि मंगल सागर.

विधिप्रपाके द्रव्यसाहाय्यक महाशयोंकी शुभ नामावली–

३५१) रायबहादुर, दिवानबहादुर, केशरीसिंहजी-बुद्धिसिंहजी, रतलाम.
२५१) सेठ जेठाभाई कसलचन्द, जामनगर. (काठियावाड)
२०१) सेठ हरजीवन गोपालजी, जामनगर. (काठियावाड)
१००) सेठ लखुरामजी आसकरण, लोहावट. (मारवाड)
६१) सेठ हजारीमल कॅवरलाल, लोहावट. (मारवाड)
६१) सेठ जीवराज अगरचन्द, फलोधी (,,)
५१) सेठ लक्ष्मीचंद संखलेचा, जावद. (मालवा)

*

Published by Jaweri Mulchand Hirachand Bhagat,
Mahavir Swami's Temple, Pydhuni Bombay.

Printed by Ramchandra Yesu Shedge, at the Nirnaya-sagar Press, 26-28 Kolbhat street, Bombay.

*

पुस्तक मिलनेका पता–

श्रीजिनदत्तसूरिज्ञानभण्डार

ठि० ओसवाल मोहल्ला, गोपीपुरा

सुरत (द० गुजरात)

विधिप्रपागतविषयानुक्रमणिका।

खरतरगच्छालङ्कार स० आ० श्रीमज्जिनकृपाचन्द्रसूरि

श्रीमज्जिनप्रभसूरिमूर्तिप्रतिकृति

संपादकीय प्रस्तावना ।

सिंघी जैन ग्रन्थ मालामें प्रकाशित श्रीजिनप्रभसूरिकृत विविधतीर्थकल्प नामक अद्वितीय ग्रन्थका संपादन करते समय ही हमारे मनमें इनके बनाये हुए ऐसे ही महत्त्वके इस विधिप्रपा नामक ग्रन्थका संपादन करनेका भी संकल्प हुआ था और इसके लिये हमने इस ग्रन्थकी हस्तलिखित प्रतियां भी इकट्ठी करनेका प्रयत्न करना प्रारंभ किया था। इतनेमें, संवत् १९९५ में, बंबईके महावीर स्वामीके मन्दिरमें चातुर्मासार्थ रहे हुए सौम्यमूर्ति उपाध्यायवर्य श्रीसुखसागरजी महाराज व उनके साहित्यप्रकाशनप्रेमी शिष्यवर श्रीमुनि मंगलसागरजीसे साक्षात्कार हुआ, और प्रासङ्गिक वार्तालाप करते हुए हमने इनके पास विधिप्रपाकी कोई अच्छी प्रतिके होनेकी पृच्छा की। इस पर उपाध्यायजी महाराजने इच्छा प्रकट की कि-"इस ग्रन्थको प्रकाशित करनेकी तो हमारी भी बहुत समयसे प्रबल इच्छा हो रही है और यदि आप इस कामको हाथमें लें तो हमारे लिये बहुत ही आनन्द और अभिमानकी बात होगी; और हम श्रीजिनदत्तसूरि-प्राचीन-पुस्तकोद्धार फण्ड की ओरसे इसके प्रकाशित करनेका बडे प्रमोदसे प्रबन्ध करेंगे"-इत्यादि। चूं कि यह ग्रन्थ खरतर गच्छके एक बहुत बडे प्रभाविक आचार्यकी प्रमाणभूत कृति है और इसमें खास करके इस गच्छकी सामाचारीके सम्मत विधि-विधानोंका ही गुम्फन किया हुआ है इसलिये यदि यह श्रीजिनदत्तसूरि-प्राचीन-पुस्तकोद्धार-ग्रन्थावलिमें गुम्फित हो कर प्रकाशित हो तो और भी विशेष उचित और प्रशस्त होगा-ऐसा सोच कर हमने उपाध्यायजी महाराजकी आदरणीय इच्छाका सहर्ष स्वीकार कर लिया और इनके सौजन्यपूर्ण सौहार्दभावके वशीभूत हो कर हमने, इस ग्रन्थका यह प्रस्तुत संपादन कर, इनकी स्नेहाङ्कित आज्ञाका, इस प्रकार यथाशक्ति सादर पालन किया।

उपाध्यायजीकी यह प्रबल उत्कंठा थी कि इनके बंबईके वर्षानिवास दरम्यान ही इस ग्रन्थका प्रकाशन हो जाय तो बहुत ही अच्छा हो, पर हम इसको इतना शीघ्र पूरा न कर सके। क्यों कि हमारे हाथमें सिंघी जैन ग्रन्थमालाके अनेकानेक ग्रन्थोंका समकालीन संपादनकार्य भरपूर होनेके अतिरिक्त, बम्बईमें नवीन प्रस्थापित भारतीय विद्या भवनकी ग्रन्थावलि और 'भारतीय विद्या' नामक संशोधन विषयक प्रतिष्ठित त्रैमासिक पत्रिकाका विशिष्ट संपादन-कार्य भी हमारे ऊपर निर्भर है, इसलिये प्रस्तुत ग्रन्थके संपादनमें कुछ विलंब होना अनिवार्य था।

*

ग्रन्थका नामाभिधान ।

इस ग्रन्थका संपूर्ण नाम, जैसा कि ग्रन्थकी सबसे अन्तकी गाथामें सूचित किया गया है, विधिमार्गप्रपा नाम सामाचारी (विहिमग्गपवा नामं सामायारी, देखो पृ० १२०, गाथा १६) ऐसा है। पर इसकी पुरानी सब प्रतियोंमें तथा अन्यान्य उल्लेखोंमें भी संक्षेपमें इसका नाम 'विधिप्रपा' ऐसा ही प्रायः लिखा हुआ मिलता है; इसलिये हमने भी मूल ग्रन्थमें इसका यही नाम सर्वत्र मुद्रित किया है; पर वास्तवमें ग्रन्थकारका निजका किया हुआ पूर्ण नामाभिधान अधिक अन्वर्थक और संगत मालूम देता है, इसलिये पुस्तकके मुखपृष्ठ पर यह नाम मुद्रित करना अधिक उचित समझा है। इस 'विधिमार्ग' शब्दसे ग्रन्थकारका खास विशिष्ट अभिप्राय उद्दिष्ट है। सामान्य अर्थमें तो 'विधिमार्ग' का 'क्रियामार्ग' ऐसा ही अर्थ विवक्षित होता है, पर यहांपर विशेष अर्थमें खरतरगच्छीय विधि-क्रिया-मार्ग ऐसा भी अर्थ अभिप्रेत है। क्यों कि खरतर गच्छका दूसरा नाम विधिमार्ग है और इस सामाचारीमें जो विधि-विधान प्रतिपादित किये गये हैं वे प्रधानतया खरतर गच्छके पूर्व आचार्यों द्वारा स्वीकृत और सम्मत हैं। इन विधि-विधानोंकी प्रक्रियामें और और गच्छके आचार्योंका कहीं कुछ मतभेद हो सकता है और है भी सही। अतएव ग्रन्थकारने स्पष्ट रूपसे इसके नाममें किसीको कुछ भ्रान्ति न हो इसलिये इसका 'विधिमार्गप्रपा' ऐसा अन्वर्थक नामकरण किया है। तदुपरान्त, ग्रन्थकारने, ग्रन्थकी प्रशस्तिकी प्रथम गाथामें, यह भी सूचित किया है कि-'भिन्न भिन्न गच्छोंमें प्रवर्तित अनेकविध सामाचारियोंको देख कर शिष्योंको किसी प्रकारका मतिभ्रम न हो इसलिये अपने गच्छकी प्रतिबद्ध ऐसी यह सामाचारी हमने लिखी है।' इसलिये इसका यह 'विधिमार्ग प्रपा' नाम सर्वथा सुन्दर, सुसंगत और वस्तुसूचक है ऐसा कहनेमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

*

क्रियाका वर्णन करनेवाले भिन्न भिन्न विधान-प्रकरण हैं; और ३४ वें 'आलोयणविही' संज्ञक प्रकरणमें ज्ञानातिचार, दर्शनातिचार आदि आलोचना विषयक अनेक भिन्न भिन्न अन्तर्गत प्रकरण हैं। इसी तरह ३५ वें 'पइट्ठाविही' नामक प्रकरणमें जलानयनविधि, कलशारोपणविधि, ध्वजारोपणविधि – आदि कई एक आनुषंगिक विधियोंके स्वतंत्र प्रकरण सन्निविष्ट हैं।

इन ४१ द्वारों – प्रकरणोंमेंसे प्रथमके १२ द्वारोंका विषय, मुख्य करके श्रावक जीवनके साथ संबंध रखनेवाली क्रिया-विधियोंका विधायक है; १३ वें द्वारसे ले कर २९ वें द्वार तकमें विहित क्रिया-विधियां प्रायः करके साधु जीवनके साथ संबंध रखतीं हैं और आगेके ३० वें द्वारसे लेकर अन्तके ४१ वें द्वार तकमें वर्णित क्रिया-विधान, साधु और श्रावक दोनोंके जीवनके साथ संबंध रखनेवालीं कर्तव्यरूप विधियोंके संग्राहक हैं।

यहां पर संक्षेपमें इन ४१ ही द्वारोंका कुछ परिचय देना उपयुक्त होगा।

१ पहले द्वारमें, सबसे प्रथम, श्रावकको किस तरह सम्यक्त्वव्रत ग्रहण करना चाहिये – इसकी विधि बतलाई गई है। इस सम्यक्त्वव्रतग्रहणके समय श्रावकके लिये जीवनमें किन किन नित्य और नैमित्तिक धर्मकृत्योंका करना आवश्यक हैं और किन किन धर्मप्रतिकूल कृत्योंका निषेध करना उचित है, यह संक्षेपमें अच्छी तरह बतलाया गया है।

२ दूसरे द्वारमें, सम्यक्त्वव्रतका ग्रहण किये बाद, जब श्रावकको देशविरति व्रतके अर्थात् श्रावकधर्मके परिचायक ऐसे १२ व्रतोंके ग्रहण करनेकी इच्छा हो, तब उनका ग्रहण कैसे किया जाय – इसकी क्रिया-विधि बतलाई है। इसका नाम 'परिग्रहपरिमाणविधि' है – क्यों कि इसमें मुख्य करके श्रावकको अपने परिग्रह यानि स्थावर और जंगम ऐसी संपत्तिकी मर्यादाका विशेषरूपसे नियम लेना आवश्यक होता है और इसीलिये इसका दूसरा प्रधान नाम परिग्रहपरिमाणविधि रखा गया है। इसमें यह भी कहा गया है कि इस प्रकारका परिग्रहपरिमाणव्रत लेनेवाले श्रावक या श्राविकाको अपने नियमकी सूचिवाली एक टिप्पणी (यादी – सूचि) बना लेनी चाहिये और उसमें नियमोंकी सूचिके साथ यह लिखा रहना चाहिये कि यह व्रत मैंने अमुक आचार्यके पास अमुक संवत्के अमुक मास और तिथिके दिन ग्रहण किया है – इत्यादि।

३ तीसरे द्वारमें, इस प्रकार देशविरति यानि श्रावकधर्मव्रत लेनेके बाद श्रावकको कमी छ महिनेका सामायिक व्रत भी लेना चाहिये, यह कहा गया है और इसकी ग्रहणविधि बतलाई गई है।

४ चौथे द्वारमें, सामायिकव्रतके ग्रहण और पारणकी विधि कही गई है। यह विधि प्रायः सबको सुज्ञात ही है।

५ पांचवें द्वारमें, उपधान विषयक क्रियाका विस्तृत वर्णन और विधान है। इसके प्रारंभमें कहा गया है कि – कोई कोई आचार्य इस प्रसंगमें, श्रावककी जो १२ प्रतिमायें शास्त्रोंमें प्रतिपादित की हुई हैं, उनमेंसे प्रथमकी ४ प्रतिमाओंका ग्रहण करना भी विधान करते हैं; परंतु, यह हमारे गुरुओंको सम्मत नहीं है। क्यों कि शास्त्रकारोंने ऐसा कहा है कि वर्तमान कालमें प्रतिमाग्रहणरूप श्रावकधर्म व्युच्छिन्नप्राय हो गया है, इसलिये इसका विधान करना उचित नहीं है।

६ उक्त उपधान विधिमें, मुख्य रूपसे पंचमंगलका उपधान वर्णित किया गया है, इसलिये ६ ठे द्वारमें उसकी सामाचारी बतलाई गई है।

७ उपधान तपकी समाप्तिके उद्यापनरूपमें मालारोपणकी क्रिया होनी चाहिये, इसलिये ७ वें द्वारमें, विस्तारके साथ मालारोपणकी विधि बतलाई गई है। इस विधिमें मानदेवसूरिरचित ५४ गाथाका 'उवहाणविही' नामका पूरा प्राकृत प्रकरण, जो महानिशीथ नामक आगमभूत सिद्धान्तके आधार परसे रचा गया है, उद्धृत किया गया है।

८ इस महानिशीथ सिद्धान्तकी प्रामाणिकताके विषयमें प्राचीन कालसे कुछ आचार्योंका विशिष्ट मतभेद चला आ रहा है, और वे इस उपधानविधिको अनागमिक कहा करते हैं, इसलिये ८ वें द्वारमें, इस विधिके समर्थनरूप 'उवहाणपइट्ठापंचासय' (उपधानप्रतिष्ठापंचाशक) नामका ५१ गाथाका एक संपूर्ण प्रकरण, जो किसी पूर्वाचार्यका बनाया हुआ है, उद्धृत कर दिया है। इस प्रकरणमें महानिशीथ सूत्रकी प्रामाणिकताका यथेष्ट प्रतिपादन किया गया है।

इस ग्रन्थकी विशिष्टता।

यों तो श्रीजिनप्रभ सूरिकी – जैसा कि इसके साथमें दिये हुए उनके चरित्रात्मक निबन्धसे ज्ञात होता है – साहित्यिक कृतियां बहुत अधिक संख्यामें उपलब्ध होती हैं; पर उन सबमें, इनकी ये दो कृतियां सबसे अधिक महत्त्वकी और मौलिक हैं – एक तो 'विविध तीर्थ कल्प'; और दूसरी यह 'विधिमार्गप्रपा सामाचारी'। 'विविधतीर्थ कल्प' नामक ग्रन्थके महत्त्वके विषयमें, संक्षेपमें पर सारभूत रूपसे, हमने अपनी संपादित आवृत्तिकी प्रस्तावनामें लिखा है, इसलिये उसकी यहांपर पुनरुक्ति करनेकी कोई आवश्यकता नहीं। यह विधिप्रपा ग्रन्थ कैसा महत्त्वका शास्त्र है इसका परिचय तो जो इस विषयके जिज्ञासु और मर्मज्ञ हैं उनको इसका अवलोकन और अध्ययन करनेहीसे ठीक ज्ञात हो सकता है। स्व० जर्मन विद्वान् प्रो० वेबरने जो 'सेक्रेड बुक्स् ऑफ दी जैनस्' इस नामका सुप्रसिद्ध और सुघटित ऐसा जैनागमोंका परिचायक मौलिक निबन्ध लिखा है उसमें मुख्य आधार इसी ग्रन्थका लिया है।

*

ग्रन्थका रचना-समय।

जिनप्रभ सूरिने इस ग्रन्थकी रचना समाप्ति वि. सं. १३६३ के विजयादशमीके दिन, कोशला अर्थात् अयोध्या नगरीमें की है। इसकी प्रथम प्रति उनके प्रधान शिष्य वाचनाचार्य उदयाकर गणिने अपने हाथसे लिखी थी।

यह कृति उनकी प्रौढावस्थामें बनी हुई प्रतीत होती है। जैसा कि उनके जीवनचरित्रविषयक उल्लेखोंसे ज्ञात होता है, उन्होंने वि. सं. १३२६ में दीक्षा ली थी; अतः इस ग्रन्थके बनानेके समय उनका दीक्षापर्याय प्रायः ३७ वर्ष जितना हो चुका था। इस दीर्घ दीक्षाकालमें उन्होंने अनेक प्रकारके विधि – विधान स्वयं अनुष्ठित किये होंगे और सेंकडों ही साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकाओंको कराये होंगे, इसलिये उनका यह ग्रन्थसन्दर्भ, स्वयं अनुभूत एवं शास्त्र और संप्रदायगत विशिष्ट परंपरासे परिज्ञात ऐसे विधानोंका एक प्रमाणभूत प्रणयन है। इसमें उन्होंने जगह जगह पर कई पूर्वाचार्योंके कथनोंको उल्लिखित किया है और प्रसङ्गवश कुछ तो पूरे के पूरे पूर्वरचित प्रकरण ही उद्धृत कर दिये हैं। उदाहरणके लिये – उपधानविधिमें, मानदेवसूरिकृत पूरा 'उवहाणविही' नामक प्रकरण, जिसकी ५४ गाथायें हैं, उद्धृत किया गया है। उपधानप्रतिष्ठा प्रकरणमें, किसी पूर्वाचार्यका बनाया हुआ 'उवहाणपइट्ठापंचासय' नामक प्रकरण अवतारित है, जिसकी ५१ गाथायें हैं। पौषधविधि प्रकरणमें, जिनवल्लभसूरिकृत विस्तृत 'पोसहविहिपयरण'का, १५ गाथाओंमें पूरा सार दे दिया है। नन्दिरचनाविधिमें, ३६ गाथाका 'अरिहाणादिथुत्त' उद्धृत किया है। योगविधिमें, उत्तराध्ययनसूत्रका 'असंखयं' नाम १३ पद्योंवाला ४ था अध्ययन उद्धृत कर दिया है। प्रतिष्ठाविधिमें, चन्द्रसूरिकृत ७ प्रतिष्ठा संग्रहकाव्य, तथा कथारत्नकोश नामक ग्रन्थमेंसे ५० गाथावाला 'ध्वजारोपणविधि' नामक प्रकरण उद्धृत किया गया है। और ग्रन्थके अन्तमें जो अंगविद्यासिद्धिविधि नामक प्रकरण है वह सैद्धान्तिक विनयचन्द्रसूरिके उपदेशसे लिखा गया है। इस प्रकार, इस ग्रन्थमें जो विधि-विधान प्रतिपादित किये गये हैं वे पूर्वाचार्योंके संप्रदायानुसार ही लिखे गये हैं, न कि केवल स्वमतिकल्पनानुसार – ऐसा ग्रन्थकारका इसमें स्पष्ट सूचन है। जिनको जैन संप्रदायगत गण – गच्छादिके भेदोपभेदोंके इतिहासका अच्छा ज्ञान है उनको ज्ञात है कि, जैन मतमें जो इतने गच्छ और संप्रदाय उत्पन्न हुए हैं और जिनमें परस्पर बडा तीव्र विरोधभाव व्याप्त हुआ ज्ञात होता है, उसमें मुख्य कारण ऐसे विधि-विधानोंकी प्रक्रियामें मतभेद का होना ही है। केवल सैद्धान्तिक या तात्त्विक मतभेदके कारण वैसा बहुत ही कम हुआ है।

*

ग्रन्थगत विषयोंका संक्षिप्त परिचय।

जैसा कि इसके नामसे ही सूचित होता है – यह ग्रन्थ, साधु और श्रावक जीवनमें कर्तव्य ऐसी नित्य और नैमित्तिक दोनों ही प्रकारकी क्रिया-विधियोंके मार्गमें संचरण करनेवाले मोक्षार्थी जनोंकी जिज्ञासारूप तृष्णाकी तृप्तिके लिये एक सुन्दर 'प्रपा' समान है। इसमें सब मिला कर मुख्य ४१ द्वार यानि प्रकरण हैं। इन द्वारोंके नाम, ग्रन्थके अन्तमें, स्वयं शास्त्रकारने १ से ६ तककी गाथाओंमें सूचित किये हैं। इन मुख्य द्वारोंमें कहीं कहीं कितनेक अवान्तर द्वार भी सम्मिलित हैं जो यथास्थान उल्लिखित किये गये हैं। इन अवान्तर द्वारोंका नामनिर्देश, हमने विषयानुक्रमणिकामें कर दिया है। उदाहरणके तौर पर, २४ वें 'जोगविही' नामक प्रकरणमें, दशवैकालिक आदि सब सूत्रोंकी योगोद्वहन-

२० यह योगोद्वहन 'कप्पतिप्प' सामाचारीकी क्रियापूर्वक किया जाता है, इसलिये २० वें द्वारमें, यह 'कप्पतिप्प' सामाचारी बतलाई गई है।

२१ इस प्रकार कप्पतिप्पविधिपूर्वक योगोद्वहन किये बाद, साधुको मूल ग्रन्थ, नन्दी, अनुयोगद्वार, उत्तराध्ययन, ऋषिभाषित, अंग, उपांग, प्रकीर्णक और छेद ग्रन्थ आदि आगम शास्त्रोंकी वाचना करनी चाहिये, इसलिये २१ वें द्वारमें, इस आगमवाचनाकी विधि बतलाई गई है।

२२-२६ इस तरह आगमादिका पूर्ण ज्ञाता हो कर शिष्य जब यथायोग्य गुणवान् बन जाता है, तो उसे फिर वाचनाचार्य, उपाध्याय एवं आचार्य आदिकी योग्य पदवी प्रदान करनी चाहिये, और साध्वीको प्रवर्तिनी अथवा महत्तराकी पदवी देनी चाहिये। इसलिये अनन्तरके द्वारोंमेंसे क्रमशः—२२वें द्वारमें वाचनाचार्य, २३ वेंमें उपाध्याय, २४ वेंमें आचार्य, २५ वेंमें महत्तरा और २६ वेंमें प्रवर्तिनी पदके देनेकी क्रियाविधि बतलाई गई है। इस विधिके प्रारंभमें यह भी स्पष्ट रूपसे कह दिया गया है कि किस योग्यतावाले साधुको वाचनाचार्य अथवा उपाध्याय एवं आचार्य आदिका पद देना उचित है। वाचनाचार्य अथवा उपाध्याय उसीको बनाना चाहिये, जो समग्र सूत्रार्थके ग्रहण, धारण और व्याख्यान करनेमें समर्थ हो; सूत्रवाचनामें जो पूरा परिश्रमी हो; प्रशान्त हो और आचार्य स्थानके योग्य हो। इस पदके धारकको, एक मात्र आचार्यके सिवाय अन्य सब साधु साध्वी—चाहे वे दीक्षापर्यायमें छोटे हों या बडे—वन्दन करें।

इस आचार्य पदके योग्य व्यक्तिका विधान करते हुए कहा है कि—जो साधु आचार, श्रुत, शरीर, वचन, वाचना, मतिप्रयोग, मतिसंग्रह और परिज्ञा रूप इन आठ गणिपदसे युक्त हो; देश, कुल, जाति और रूप आदि गुणोंसे अलंकृत हो; बारह वर्षतक जिसने सूत्रोंका अध्ययन किया हो; बारह वर्षतक जिसने शास्त्रोंके अर्थका सार प्राप्त किया हो और बारह वर्षतक अपनी शक्तिकी परीक्षाके निमित्त जिसने देशपर्यटन किया हो—वह आचार्य बनने योग्य है और ऐसे योग्य व्यक्तिको आचार्यपद देना चाहिये। नन्दीरचना आदि विहित क्रियाविधिके साथ, निर्णीत लग्नमें, मूलाचार्य इस नव्य आचार्यको सूरिमन्त्र प्रदान करें। यह सूरिमन्त्र मूलमें भगवान् महावीर स्वामीने २१०० अक्षरप्रमाण ऐसा गौतमस्वामीको दिया था और उन्होंने उसे ३२ श्लोकके परिमाणमें गुम्फित किया था। इसका कालक्रमके प्रभावसे ह्रास हो रहा है और अन्तिम आचार्य दुःप्रसहके समयमें यह २॥ श्लोक परिमित रह जायगा। यह गुरुमुखसे ही पढा जाता है—पुस्तकमें नहीं लिखा जाता। ग्रन्थकार कहते हैं कि इस सूरिमन्त्रकी साधनाविधि देखना हो उसे हमारा बनाया हुआ 'सूरिमन्त्रकल्प' नामक प्रकरण देखना चाहिये।

यह आचार्यपद-प्रदानविधि बडा भावपूर्ण है। इसमें कहा गया है, कि जब इस प्रकार शिष्यको आचार्य पद देनेकी विधि समाप्तपर होती है तब खुद मूल आचार्य अपने आसन परसे उठ कर शिष्यकी जगह बैठें और शिष्य—नवीन पद धारक आचार्य—अपने गुरुके आसन पर जा कर बैठे। फिर गुरु अपने शिष्य—आचार्यको, द्वादशावर्तविधिसे वन्दन करें—यह बतलानेके लिये कि तुम भी मेरे ही समान आचार्यपदके धारक हो गये हो और इसलिये अन्य सभीके साथ मेरे भी तुम वन्दनीय हो। ऐसा कह कर गुरु उससे कहे कि, कुछ व्याख्यान करो—जिसके उत्तरमें नवीन आचार्य परिषद्के योग्य कुछ व्याख्यान करे और उसकी समाप्तिमें फिर सब साधु उसे वन्दन करें। फिर वह शिष्य उस गुरुके आसन परसे उठ कर अपने आसन पर जा कर बैठे, और गुरु अपने मूल आसन पर। बादमें गुरु, नवीन आचार्यको शिक्षारूप कुछ उपदेशवचन सुनावे जिसको 'अनुशिष्टि' कहते हैं। इस अनुशिष्टिमें, गुरु नवीन आचार्यको किन किन बातोंकी शिक्षा देता है, इसका प्रतिपादन करनेके लिये जिनप्रभ सूरिने ५५ गाथाका एक स्वतंत्र प्रकरण दिया है जो बहुत ही भाववाही और सारगर्भित है। आचार्यको अपने समुदायके साथ कैसा व्यवहार रखना चाहिये और किस तरह गच्छकी प्रतिपालना करनी चाहिये—इसका बडा मार्मिक उपदेश इसमें दिया गया है। आचार्यको अपने चारित्रमें सदैव सावधान रहना चाहिये और अपने अनुवर्त्तियोंकी चारित्ररक्षाका भी पूरा खयाल रखना चाहिये। सब को समदृष्टिसे देखना चाहिये। किसी पर किसी प्रकारका पक्षपात न करना चाहिये। अपने और दूसरेके पक्षमें किसी प्रकारका विरोधभाव पैदा करे वैसा वचन कभी न बोलना चाहिये। असमाधिकारक कोई व्यवहार नहीं करना चाहिये। स्वयं कषायोंसे मुक्त होनेके लिये सतत प्रयत्नवान् रहना चाहिये—इत्यादि प्रकारके बहुत ही सुन्दर उपदेश-वचन कहे गये हैं जो वर्तमानके नामधारी आचार्योंके मनन करने योग्य हैं।

९ वें द्वारमें, श्रावकको पर्वादिके दिन पौषध व्रत लेना चाहिये, इसका विधान है और इस व्रतके ग्रहण-पारणकी विधि बतलाई गई है। इसके अन्तकी गाथामें कहा है कि श्रीजिनवल्लभसूरिने जो पौषधविधि-प्रकरण बनाया है उसीके आधार पर यहांपर यह विधि लिखी गई है। जिनको विशेष कुछ जाननेकी इच्छा हो वे उक्त प्रकरण देखें।

१० वें प्रकरणमें, प्रतिक्रमणसामाचारीका वर्णन दिया गया है, जिसमें दैवसिक, रात्रिक और पाक्षिक (इसीमें चातुर्मासिक और सांवत्सरिक भी सम्मिलित है) इन तीनों प्रतिक्रमणोंकी विधियोंका यथाक्रम वर्णन ग्रथित है।

११ वें द्वारमें, तपोविधिका विधान है। इसमें कल्याणक तप, सर्वांगसुन्दर तप, परमभूषण, आयतिजनक, सौभाग्यकल्पवृक्ष, इन्द्रियजय, कषायमथन, योगशुद्धि, अष्टकर्मसूदन, रोहिणी, अंबा, ज्ञानपंचमी, नन्दीश्वर, सत्यसुखसंपत्ति, पुण्डरीक, मातृ, समवसरण, अक्षयनिधि, वर्द्धमान, दवदन्ती, चन्द्रायण, भद्र, महाभद्र, भद्रोत्तर, सर्वतोभद्र, एकादशांग–द्वादशांग आराधन, अष्टापद, वीशस्थानक, सांवत्सरिक, अष्टमासिक, षाण्मासिक–इत्यादि अनेक प्रकारके तपोंकी विधिका विस्तृत वर्णन दिया गया है। इसके अन्तमें कहा गया है कि इन तपोंके अतिरिक्त कई लोक, माणिक्यप्रस्तारिका, मुकुटसप्तमी, अमृताष्टमी, अविधवादशमी, गोयमपडिग्गह, मोक्षदण्डक, अदुक्ख-दिक्खिया, अखण्डदशमी–इत्यादि नामके तपोंका भी आचरण करते दिखाई देते हैं; परंतु वे तप आगमविहित न होनेसे हमने उनका यहांपर वर्णन नहीं दिया है। इसी तरह एकावली, कनकावली, रत्नावली, मुक्तावली, गुणरत्न-संवत्सर, क्षुल्लमहल्ल सिंहनिष्क्रीडित आदि जो तप हैं उनका आचरण करना, अभी इस कालमें, दुष्कर होनेसे उनका भी कोई वर्णन नहीं किया गया है।

१२ तप आदिकी उक्त सब क्रियायें नन्दीरचनापूर्वक की जाती हैं, इसलिये १२ वें द्वारमें, बहुत विस्तारके साथ नन्दीरचनाविधि वर्णित की गई है। इसमें अनेक स्तुति स्तोत्र आदि भी दिये गये हैं।

१३ वें द्वारमें, प्रव्रज्याविधि अर्थात् साधुधर्मकी दीक्षाविधिका विशिष्ट विधान बताया गया है।

१४ प्रव्रज्या लिये बाद साधुको यथासमय लोच (केशोत्पाटन) करना चाहिये, इसलिये १४ वें द्वारमें, लोचक-रणकी विधि बतलाई गई है।

१५ प्रव्रजितको 'उपयोगविधि' पूर्वक ही शास्त्रोंमें भक्त-पानका ग्रहण करना विहित है, इसलिये १५ वें द्वारमें यह 'उपयोगविधि' बतलाई गई है।

१६ इस तरह उपयोगविधि करनेके बाद, नवदीक्षित साधुको, सबसे प्रथम भिक्षा ग्रहण करनेके लिये जाना हो, तब कैसे और किस शुभ दिनको जाना चाहिये इसकी विधिके लिये, १६ वें द्वारमें, 'आदिम-अटन-विधि'का वर्णन दिया गया है।

१७–१८ नवदीक्षित साधुको आवश्यक तप और दशवैकालिक तप करा कर फिर उसे उपस्थापना (बडी दीक्षा) दी जाती है, और उसे मण्डलीमें स्थान दिया जाता है, इसलिये, इसके बादके दो प्रकरणोंमें, इस मंडली तप और उपस्थापना विधिका विधान बतलाया गया है।

१९ उपस्थापना होनेके बाद, साधुको सूत्रोंका अध्ययन करना चाहिये; और यह सूत्राध्ययन विना योगोद्वहनके नहीं किया जाता, इसलिये १९ वें द्वारमें, योगोद्वहन विधिका सविस्तर वर्णन दिया गया है। यह योगविधि द्वार बहुत बड़ा है। इसमें पहले स्वाध्याय करनेकी विधि बतलाई गई है; और यह स्वाध्याय कालग्रहणपूर्वक करना विहित है, अतः उसके साथ कालग्रहण करनेकी विधि भी कही गई है। इसके बाद, आवश्यकादि प्रत्येक सूत्रका पृथक् पृथक् तपोविधान बतलाया गया है। इस विधानमें प्रायः सब ही सूत्रोंका संक्षेपमें अध्ययनादिका निर्देश कर दिया गया है। इसके अन्तमें, इस समग्र योगविधिका सूत्ररूपसे विवेचन करनेवाला ६८ गाथाका पूरा 'जोगविहाण' नामका प्रकरण दिया गया है, जो शायद ग्रन्थकारकी निजकी ही एक स्वतंत्र रचना है।

संपादकीय प्रस्तावना

२० यह योगोद्वहन 'कप्पतिप्प' सामाचारीकी क्रियापूर्वक किया जाता है, इसलिये २० वें द्वारमें, यह 'कप्पतिप्प' सामाचारी बतलाई गई है।

२१ इस प्रकार कप्पतिप्पविधिपूर्वक योगोद्वहन किये बाद, साधुको मूल ग्रन्थ, नन्दी, अनुयोगद्वार, उत्तराध्ययन, ऋषिभाषित, अंग, उपांग, प्रकीर्णक और छेद ग्रन्थ आदि आगम शास्त्रोंकी वाचना करनी चाहिये, इसलिये २१ वें द्वारमें, इस आगमवाचनाकी विधि बतलाई गई है।

२२-२६ इस तरह आगमादिका पूर्ण ज्ञाता हो कर शिष्य जब यथायोग्य गुणवान् बन जाता है, तो उसे फिर वाचनाचार्य, उपाध्याय एवं आचार्य आदिकी योग्य पदवी प्रदान करनी चाहिये, और साध्वीको प्रवर्तिनी अथवा महत्तराकी पदवी देनी चाहिये। इसलिये अनन्तरके द्वारोंमेंसे क्रमशः-२२वें द्वारमें वाचनाचार्य, २३ वेंमें उपाध्याय, २४ वेंमें आचार्य, २५ वेंमें महत्तरा और २६ वेंमें प्रवर्तिनी पदके देनेकी क्रियाविधि बतलाई गई है। इस विधिके प्रारंभमें यह भी स्पष्ट रूपसे कह दिया गया है कि किस योग्यतावाले साधुको वाचनाचार्य अथवा उपाध्याय एवं आचार्य आदिका पद देना उचित है। वाचनाचार्य अथवा उपाध्याय उसीको बनाना चाहिये, जो समग्र सूत्रार्थके ग्रहण, धारण और व्याख्यान करनेमें समर्थ हो; सूत्रवाचनामें जो पूरा परिश्रमी हो; प्रशान्त हो और आचार्य स्थानके योग्य हो। इस पदके धारकको, एक मात्र आचार्यके सिवाय अन्य सब साधु साध्वी-चाहे वे दीक्षापर्यायमें छोटे हों या बड़े-वन्दन करें।

इस आचार्य पदके योग्य व्यक्तिका विधान करते हुए कहा है कि-जो साधु आचार, श्रुत, शरीर, वचन, वाचना, मतिप्रयोग, मतिसंग्रह और परिज्ञा रूप इन आठ गणिपदसे युक्त हो; देश, कुल, जाति और रूप आदि गुणोंसे अलंकृत हो; बारह वर्षतक जिसने सूत्रोंका अध्ययन किया हो; बारह वर्षतक जिसने शास्त्रोंके अर्थका सार प्राप्त किया हो और बारह वर्षतक अपनी शक्तिकी परीक्षाके निमित्त जिसने देशपर्यटन किया हो-वह आचार्य बनने योग्य है और ऐसे योग्य व्यक्तिको आचार्यपद देना चाहिये। नन्दीरचना आदि विहित क्रियाविधिके साथ, निर्णीत लग्नमें, मूलाचार्य इस नव्य आचार्यको सूरिमन्त्र प्रदान करें। यह सूरिमन्त्र मूलमें भगवान् महावीर स्वामीने २१०० अक्षरप्रमाण ऐसा गौतमस्वामीको दिया था और उन्होंने उसे ३२ श्लोकके परिमाणमें गुम्फित किया था। इसका कालक्रमके प्रभावसे ह्रास हो रहा है और अन्तिम आचार्य दुःप्रसहके समयमें यह २॥ श्लोक परिमित रह जायगा। यह गुरुमुखसे ही प्राप्त होता है-पुस्तकमें नहीं लिखा जाता। ग्रन्थकार कहते हैं कि इस सूरिमन्त्रकी साधनाविधि देखना हो उसे हमारा बनाया हुआ 'सूरिमन्त्रकल्प' नामक प्रकरण देखना चाहिये।

यह आचार्यपद-प्रदानविधि बड़ा भावपूर्ण है। इसमें कहा गया है, कि जब इस प्रकार शिष्यको आचार्य पद देनेकी विधि समाप्त होती है तब खुद मूल आचार्य अपने आसन परसे उठ कर शिष्यकी जगह बैठें और शिष्य-नवीन पद धारक आचार्य-अपने गुरुके आसन पर जा कर बैठे। फिर गुरु अपने शिष्य-आचार्यको, द्वादशावर्तविधिसे वन्दन करें-यह बतलानेके लिये कि तुम भी मेरे ही समान आचार्यपदके धारक हो गये हो और इसलिये अन्य सभीके साथ मेरे भी तुम वन्दनीय हो। ऐसा कह कर गुरु उससे कहे कि, कुछ व्याख्यान करो-जिसके उत्तरमें नवीन आचार्य पर्षदाके योग्य कुछ व्याख्यान करे और उसकी समाप्तिमें फिर सब साधु उसे वन्दन करें। फिर वह शिष्य उस गुरुके आसन परसे उठ कर अपने आसन पर आ कर बैठे, और गुरु अपने मूल आसन पर। बादमें गुरु, नवीन आचार्यको लिखाकर कुछ उपदेशवचन सुनावे जिसको 'अनुशिष्टि' कहते हैं। इस अनुशिष्टिमें, गुरु नवीन आचार्यको किन किन बातोंकी शिक्षा देता है, इसका प्रतिपादन करनेके लिये जिनप्रभ सूरिने ५५ गाथाका एक स्वतंत्र प्रकरण दिया है जो बहुत ही भाववाही और सारगर्भित है। आचार्यको अपने समुदायके साथ कैसा व्यवहार रखना चाहिये और किस तरह गच्छकी प्रतिपालना करनी चाहिये-इसका बड़ा मार्मिक उपदेश इसमें दिया गया है। आचार्यको अपने कर्तव्यमें सदैव सावधान रहना चाहिये और अपने अनुवर्तियोंकी चारित्ररक्षाका भी पूरा खयाल रखना चाहिये। सब को समदृष्टिसे देखना चाहिये। किसी पर किसी प्रकारका पक्षपात न करना चाहिये। किसी प्रकारका विशेषभाव पैदा करें वैसा वचन कभी न बोलना चाहिये। अपने और दूसरेके पक्षमें शान्त रहना चाहिये। असमाधिकारक कोई व्यवहार नहीं करना चाहिये। अपने कषायोंसे मुक्त होनेके लिये सतत प्रयत्नवान् रहना चाहिये-इत्यादि प्रकारके बहुत ही सुन्दर उपदेश-वचन कहे गये हैं जो वर्तमानके नामधारी आचार्योंके मनन करने योग्य हैं।

९ वें द्वारमें, श्रावकको पर्वादिके दिन पौषध व्रत लेना चाहिये, इसका विधान है और इस व्रतके ग्रहण-पारणकी विधि बतलाई गई है। इसके अन्तकी गाथामें कहा है कि श्रीजिनवल्लभसूरिने जो पौषधविधि-प्रकरण बनाया है उसीके आधार पर यहांपर यह विधि लिखी गई है। जिनको विशेष कुछ जाननेकी इच्छा हो वे उक्त प्रकरण देखें।

१० वें प्रकरणमें, प्रतिक्रमणसामाचारीका वर्णन दिया गया है, जिसमें दैवसिक, रात्रिक और पाक्षिक (इसीमें चातुर्मासिक और सांवत्सरिक भी सम्मिलित है) इन तीनों प्रतिक्रमणोंकी विधियोंका यथाक्रम वर्णन ग्रथित है।

११ वें द्वारमें, तपोविधिका विधान है। इसमें कल्याणक तप, सर्वांगसुन्दर तप, परमभूषण, आयतिजनक, सौभाग्यकल्पवृक्ष, इन्द्रियजय, कषायमथन, योगशुद्धि, अष्टकर्मसूदन, रोहिणी, अंबा, ज्ञानपंचमी, नन्दीश्वर, सत्यसुखसंपत्ति, पुण्डरीक, मातृ, समवसरण, अक्षयनिधि, वर्द्धमान, दवदन्ती, चन्द्रायण, भद्र, महाभद्र, भद्रोत्तर, सर्वतोभद्र, एकादशांग–द्वादशांग आराधन, अष्टापद, वीशस्थानक, सांवत्सरिक, अष्टमासिक, षाण्मासिक–इत्यादि अनेक प्रकारके तपोंकी विधिका विस्तृत वर्णन दिया गया है। इसके अन्तमें कहा गया है कि इन तपोंके अतिरिक्त कई लोक, माणिक्यप्रस्तारिका, मुकुटसप्तमी, अमृताष्टमी, अविधवादशमी, गोयमपडिग्गह, मोक्षदण्डक, अदुक्ख-दिक्खिया, अखण्डदशमी–इत्यादि नामके तपोंका भी आचरण करते दिखाई देते हैं; परंतु वे तप आगमविहित न होनेसे हमने उनका यहांपर वर्णन नहीं दिया है। इसी तरह एकावली, कनकावली, रत्नावली, मुक्तावली, गुणरत्न-संवत्सर, खुड्डमहल्ल सिंहनिःक्रीडित आदि जो तप हैं उनका आचरण करना, अभी इस कालमें, दुष्कर होनेसे उनका भी कोई वर्णन नहीं किया गया है।

१२ तप आदिकी उक्त सब क्रियायें नन्दीरचनापूर्वक की जाती हैं, इसलिये १२ वें द्वारमें, बहुत विस्तारके साथ नन्दीरचनाविधि वर्णित की गई है। इसमें अनेक स्तुति स्तोत्र आदि भी दिये गये हैं।

१३ वें द्वारमें, प्रव्रज्याविधि अर्थात् साधुधर्मकी दीक्षाविधिका विशिष्ट विधान बताया गया है।

१४ प्रव्रज्या लिये बाद साधुको यथासमय लोच (केशोत्पाटन) करना चाहिये, इसलिये १४ वें द्वारमें, लोचकरणकी विधि बतलाई गई है।

१५ प्रव्रजितको 'उपयोगविधि' पूर्वक ही शास्त्रोंमें भक्त-पानका ग्रहण करना विहित है, इसलिये १५ वें द्वारमें यह 'उपयोगविधि' बतलाई गई है।

१६ इस तरह उपयोगविधि करनेके बाद, नवदीक्षित साधुको, सबसे प्रथम भिक्षा ग्रहण करनेके लिये जाना हो, तब कैसे और किस शुभ दिनको जाना चाहिये इसकी विधिके लिये, १६ वें द्वारमें, 'आदिम-अटन-विधि'का वर्णन दिया गया है।

१७–१८ नवदीक्षित साधुको आवश्यक तप और दशवैकालिक तप करा कर फिर उसे उपस्थापना (बडी दीक्षा) दी जाती है, और उसे मण्डलीमें स्थान दिया जाता है, इसलिये, इसके बादके दो प्रकरणोंमें, इस मंडली तप और उपस्थापना विधिका विधान बतलाया गया है।

१९ उपस्थापना होनेके बाद, साधुको सूत्रोंका अध्ययन करना चाहिये; और यह सूत्राध्ययन विना योगोद्वहनके नहीं किया जाता, इसलिये १९ वें द्वारमें, योगोद्वहन विधिका सविस्तर वर्णन दिया गया है। यह योगविधि द्वार बहुत बडा है। इसमें पहले स्वाध्याय करनेकी विधि बतलाई गई है; और यह स्वाध्याय कालग्रहणपूर्वक करना विहित है, अतः उसके साथ कालग्रहण करनेकी विधि भी कही गई है। इसके बाद, आवश्यकादि प्रत्येक सूत्रका पृथक् पृथक् तपोविधान बतलाया गया है। इस विधानमें प्रायः सब ही सूत्रोंका संक्षेपमें अध्ययनादिका निर्देश कर दिया गया है। इसके अन्तमें, इस समग्र योगविधिका सूत्ररूपसे विवेचन करनेवाला ६८ गाथाका पूरा 'जोगविहाण' नामका प्रकरण दिया गया है, जो शायद ग्रन्थकारकी निजकी ही एक स्वतंत्र रचना है।

३९ वें द्वारमें, 'तीर्थयात्रा' करने वालेको किस तरह यात्राविधि करना चाहिये और जो यात्रानिमित्त संघ नीकालना चाहे उसे किस विधिसे प्रस्थानादि कृत्य करने चाहिये—इस विषयका उपयुक्त विधान किया गया है। इसमें संघ नीकालने वालेको किस किस प्रकारकी सामग्रीका संग्रह करना चाहिये और यात्रार्थियोंको किस किस प्रकारकी सहायता पहुंचाना चाहिये—इत्यादि वातोंका भी संक्षेपमें पर सारभूत रूपमें ज्ञातव्य उल्लेख किया गया है।

४० वें द्वारमें, पर्वादि तिथियोंका पालन किस नियमसे करना चाहिये, इसका विधान, ग्रन्थकारने अपनी सामाचारीके अनुसार, प्रतिपादित किया है। इस तिथिव्यवहारके विषयमें, जुदा जुदा गच्छके अनुयायियोंकी जुदी जुदी मान्यता है। कोई उदय तिथिको प्रमाण मानता है, तो कोई बहुभुक्त तिथिको ग्राह्य कहता है। पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सरिक पर्वके पालनके विषयमें भी इसी तरहका गच्छवासियोंका पारस्परिक बढा मतभेद है। इस मतभेदको ले कर प्राचीन कालसे जैन संप्रदायोंमें परस्पर कितनाक विरोधभावपूर्ण व्यवहार चला आता दिखाई देता है। श्रीजिनप्रभ सूरिने अपने इस ग्रन्थमें, उसी सामाचारीका प्रतिपादन किया है जो खरतर गच्छमें सामान्यतया मान्य है।

४१ वें द्वारमें, अंगविद्यासिद्धिकी विधि कही गई है। यह 'अंगविद्या' नामक एक शास्त्र है जो आगममें नहीं गिना जाता, पर इसका स्थान आगमके जितना ही प्रधान माना जाता है। इसलिये इसकी साधनाविधि यहांपर स्वतंत्र रूपसे बतलाई गई है। यह विधि ग्रन्थकारने, सैद्धान्तिक विनयचन्द्रसूरिके उपदेशसे ग्रथित की है, ऐसा इसके अंतिम उल्लेखमें कहा है।

इस प्रकार, विधिप्रपामें प्रतिपादित मुख्य ४१ द्वारोंका, यह संक्षिप्त विषयनिर्देश है। इस निर्देशके वाचनसे, जिज्ञासु जनोंको कुछ कल्पना आ सकेगी कि यह ग्रन्थ कितने महत्त्वका और अलभ्य सामग्रीपूर्ण है। इस प्रकारके अन्य अन्य आचार्योंके बनाये हुए और भी कितनेक विधि-विधानके ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, पर वे इस ग्रन्थके जैसे क्रमबद्ध और विशद रूपसे बनाये हुए नहीं ज्ञात होते। इस प्रकारके ग्रन्थोंमें यह 'शिरोमणि' जैसा है ऐसा कहनेमें कोई अत्युक्ति नहीं होती।

*

ग्रन्थकार जिनप्रभ सूरि कैसे बडे भारी विद्वान् और अपने समयमें एक अद्वितीय प्रभावशाली पुरुष हो गये हैं इसका पूरा परिचय तो इसके साथ दिये हुए उनके जीवनचरित्रके पढनेसे होगा, जो हमारे स्नेहास्पद धर्मबन्धु बीकानेरनिवासी इतिहासप्रेमी श्रीयुत अगरचन्दजी और भंवरलालजी नाहटाका लिखा हुआ है। इसलिये इस विषयमें और कुछ अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।

*

संपादनमें उपयुक्त प्रतियोंका परिचय।

इस ग्रन्थका संपादन करनेमें हमें तीन हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त हुई थीं—जिनमें मुख्य प्रति पूनाके भाण्डारकर प्राच्यविद्यासंशोधन मन्दिरमें संरक्षित राजकीय ग्रन्थसंग्रहकी थी। यह प्रति बहुत प्राचीन और शुद्धप्राय है। इसके अन्तमें लिखनेवालेका नामनिर्देश और संवतादि नहीं दिया गया, इसलिये यह ठीक ठीक तो नहीं कहा जा सकता कि यह कबकी लिखी हुई है; पर पत्रादिकी स्थिति देखते हुए प्रायः संवत् १५०० के आसपासकी यह लिखी हुई होगी ऐसा संभवित अनुमान किया जा सकता है। इस प्रतिका पीछेसे किसी वज्ञ विद्वान् यतिजनने एव अच्छी तरह संशोधन भी किया है और इसलिये यह प्रति शुद्धप्रायः है, ऐसा कहना चाहिये।

दूसरी प्रति श्रीमान् उपाध्यायवर्य श्रीसुखसागरजी महाराजके निजी संग्रहकी मिली थी। पर यह नई ही लिखी हुई है और शुद्धिकी दृष्टिसे कुछ विशेष उल्लेखयोग्य नहीं है।

इसी तरहका सुन्दर शिक्षावचनपूर्ण उपदेश महत्तरा और प्रवर्तिनी पद प्राप्त करनेवाली साध्वीके लिये भी कहा गया है। प्रवर्तिनीको अनुशिष्टि देते हुए आचार्य कहते हैं कि – तुमने जो यह महत्तर पद ग्रहण किया है इसकी सार्थकता तभी होगी जब तुम अपनी शिष्याओंको और अनुगामिनी साध्वियोंको ज्ञानादि सद्गुणोंमें प्रवर्तन करा कर, उनके कल्याण पथकी मार्गदर्शिका बनोगी। तुम्हें न केवल उन्हीं साध्वियोंके हितकी प्रवृत्ति करनेमें प्रवर्तित होना चाहिये जो विदुषियां हैं, जिनका बडा खानदान है, जिनका बहुत बडा स्वजनवर्ग है, एवं जो सेठ, साहुकार आदि धनिकोंकी पुत्रियां हैं; पर तुम्हें उन साध्वियोंकी हित-प्रवृत्तिमें भी वैसे ही प्रवर्तित होना कर्तव्य है जो दीन और दुःखित दशामें हों, जो अज्ञान हों, शक्तिहीन हों, शरीरसे विकल हों, निःसहाय हों, बन्धुवर्गरहित हों, वृद्धावस्थासे जर्जरित हों और दुरवस्थामें पड जानेके कारण भ्रष्ट और पतित भी हों। इन सबकी तुम्हें गुरुकी तरह, अंगप्रतिचारिकाकी तरह, धायकी तरह, प्रियसखीकी तरह, भगिनी–जननी–मातामही एवं पितामही आदिकी तरह, वत्सलभाव हो कर प्रतिपालना करनी होगी।

२७ इसके बाद, २७ वें द्वारमें, गणानुज्ञाविधि बतलाई गई है। गणानुज्ञाका अर्थ है गणको अर्थात् समुदायको अनुज्ञा यानि निजकी आज्ञामें प्रवर्तन करानेका संपूर्ण अधिकार प्राप्त करना। यह अधिकार, मुख्याचार्यके कालप्राप्त होने पर अथवा अन्य किसी तरह असमर्थ हो जाने पर प्राप्त किया जाता है। इस विधिमें भी प्रायः वैसा ही भाव और उपदेशादि गर्भित है। इस गणानुज्ञापदकी प्राप्ति होने पर, फीर वही नवीन आचार्य गच्छका संपूर्ण अधिनायक बनता है और उसीकी आज्ञामें सारे संघको विचरण करना पडता है।

२८ इसके बादके २८ वें द्वारमें, वृद्ध होने पर और जीवितका अन्त समीप दिखाई देने पर, साधुको पर्यन्ताराधना कैसे करनी चाहिये और अन्तमें कैसे अनशन व्रत लेना चाहिये, इसका विधान बतलाया गया है। इसी विधिके अन्तमें, श्रावकको भी यह अन्तिम आराधना करनी बतलाई गई है।

२९ इस प्रकारकी अन्तिम आराधनाके बाद, जब साधु कालधर्म प्राप्त हो जाय तब फिर उसके शरीरका अन्तिम संस्कार कैसे किया जाय, इसकी विधिका वर्णन २९ वें महापारिट्ठावणिया नामक प्रकरणमें दिया गया है।

३० तदनन्तर, ३० वें द्वारमें, साधु और श्रावक दोनोंके व्रतोंमें लगनेवाले प्रायश्चित्तोंका बहुत विस्तृत वर्णन दिया गया है। इस प्रायश्चित्तविधानमें एक तरहसे प्रायः यति और श्राद्ध दोनों प्रकारके जीतकल्प ग्रन्थोंका पूरा सार आ गया है। इसमें श्रावकके सम्यक्त्व-मूल १२ व्रतोंका प्रायश्चित्त-विधान पूर्ण रूपसे दिया गया है और इसी तरह साधुके मूल गुण और उत्तर गुण आदि आचारोंमें लगनेवाले छोटे बडे सभी प्रायश्चित्तोंका यथेष्ट वर्णन किया गया है। साधुके भिक्षाविषयक दोषोंका विधान करनेवाला 'पिंडालोयणविहाण' नामक ७१ गाथाका एक बडा स्वतंत्र प्रकरण भी, नया बना कर, ग्रन्थकारने इसमें सन्निविष्ट कर दिया है, और इसी तरह एक दूसरा २४ गाथाका 'आलोयणविही' नामका भी स्वतंत्र प्रकरण इस द्वारके अन्तभागमें ग्रथित किया है।

३१–३६ इसके बाद 'प्रतिष्ठाविधि' नामक बडा प्रकरण आता है जिसमें जिनबिम्बप्रतिष्ठा, कलशप्रतिष्ठा, ध्वजारोप, कूर्मप्रतिष्ठा, यन्त्रप्रतिष्ठा और स्थापनाचार्यप्रतिष्ठा – इस प्रकार ३१ से ले कर ३६ तकके ६ द्वारोंका समावेश होता है। इसीके अन्तर्गत अधिवासना अधिकार, नन्द्यावर्तस्थापना, जलानयनविधि – आदि भी प्रसंगोचित कई विधि-विधानोंका समावेश किया गया है। इसमें प्रतिष्ठोपयोगी सामग्रीका भी प्रमाणभूत निर्देश है और मन्त्र तथा स्तुति आदि वचनोंका भी उत्तम संग्रह है। प्रतिष्ठाविधिके लिये यह प्रकरण बहुत ही आधारभूत और सुविहित समझा जाने योग्य है।

३७ प्रतिष्ठा और अन्य बहुतसी क्रियाओंमें 'मुद्राकरण आवश्यक' होता है, इसलिये ३७ वें द्वारमें, भिन्न भिन्न प्रकारकी मुद्राओंका वर्णन किया गया है।

३८ नन्दीरचना और प्रतिष्ठाविषयक क्रियाओंमें ६४ योगिनियोंके पट्टादिका आलेखन किया जाता है, इसलिये ३८ वें द्वारमें, इन योगिनियोंके नाम बतलाये गये हैं।

३९ वें द्वारमें, 'तीर्थयात्रा' करने वालेको किस तरह यात्राविधि करना चाहिये और जो यात्रानिमित्त संघ नीकालना चाहे उसे किस विधिसे प्रस्थानादि कृत्य करने चाहिये—इस विषयका उपयुक्त विधान किया गया है। इसमें संघ नीकालने वालेको किस किस प्रकारकी सामग्रीका संग्रह करना चाहिये और यात्रार्थियोंको किस किस प्रकारकी सहायता पहुंचाना चाहिये—इत्यादि बातोंका भी संक्षेपमें पर सारभूत रूपमें ज्ञातव्य उल्लेख किया गया है।

४० वें द्वारमें, पर्वादि तिथियोंका पालन किस नियमसे करना चाहिये, इसका विधान, ग्रन्थकारने अपनी सामाचारीके अनुसार, प्रतिपादित किया है। इस तिथिव्यवहारके विषयमें, जुदा जुदा गच्छके अनुयायियोंकी जुदी जुदी मान्यता है। कोई उदय तिथिको प्रमाण मानता है, तो कोई बहुभुक्त तिथिको ग्राह्य कहता है। पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सरिक पर्वके पालनके विषयमें भी इसी तरहका गच्छवासियोंका पारस्परिक बडा मतभेद है। इस मतभेदको ले कर प्राचीन कालसे जैन संप्रदायोंमें परस्पर कितनाक विरोधभावपूर्ण व्यवहार चला आता दिखाई देता है। श्रीजिनप्रभ सूरिने अपने इस ग्रन्थमें, उसी सामाचारीका प्रतिपादन किया है जो खरतर गच्छमें सामान्यतया मान्य है।

४१ वें द्वारमें, अंगविद्यासिद्धिकी विधि कही गई है। यह 'अंगविद्या' नामक एक शास्त्र है जो आगममें नहीं गिना जाता, पर इसका स्थान आगमके जितना ही प्रधान माना जाता है। इसलिये इसकी साधनाविधि यहांपर स्वतंत्र रूपसे बतलाई गई है। यह विधि ग्रन्थकारने, सैद्धान्तिक विनयचन्द्रसूरिके उपदेशसे ग्रथित की है, ऐसा इसके अंतिम उल्लेखमें कहा है।

इस प्रकार, विधिप्रपामें प्रतिपादित मुख्य ४१ द्वारोंका, यह संक्षिप्त विषयनिर्देश है। इस निर्देशके वाचनसे, जिज्ञासु जनोंको कुछ कल्पना आ सकेगी कि यह ग्रन्थ कितने महत्त्वका और अलभ्य सामग्रीपूर्ण है। इस प्रकारके अन्य अन्य आचार्योंके बनाये हुए और भी कितनेक विधि-विधानके ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, पर वे इस ग्रन्थके जैसे क्रमबद्ध और विशद रूपसे बनाये हुए नहीं ज्ञात होते। इस प्रकारके ग्रन्थोंमें यह 'शिरोमणि' जैसा है ऐसा कहनेमें कोई अत्युक्ति नहीं होती।

*

ग्रन्थकार जिनप्रभ सूरि कैसे बडे भारी विद्वान् और अपने समयमें एक अद्वितीय प्रभावशाली पुरुष हो गये हैं इसका पूरा परिचय तो इसके साथ दिये हुए उनके जीवनचरित्रके पढनेसे होगा, जो हमारे स्नेहास्पद धर्मबन्धु बीकानेरनिवासी इतिहासप्रेमी श्रीयुत अगरचन्दजी और भंवरलालजी नाहटाका लिखा हुआ है। इसलिये इस विषयमें और कुछ अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।

*

संपादनमें उपयुक्त प्रतियोंका परिचय।

इस ग्रन्थका संपादन करनेमें हमें तीन हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त हुई थीं—जिनमें मुख्य प्रति पूनाके भाण्डारकर प्राच्यविद्यासंशोधन मन्दिरमें संरक्षित राजकीय ग्रन्थसंग्रहकी थी। यह प्रति बहुत प्राचीन और शुद्धप्राय है। इसके अन्तमें लिखनेवालेका नामनिर्देश और संवतादि नहीं दिया गया, इसलिये यह ठीक ठीक तो नहीं कहा जा सकता कि यह कबकी लिखी हुई है; पर पत्रादिकी स्थिति देखते हुए प्रायः संवत् १५०० के आसपासकी यह लिखी हुई होगी ऐसा संभवित अनुमान किया जा सकता है। इस प्रतिका पीछेसे किसी तज्ज्ञ विद्वान् यतिजनने खूब अच्छी तरह संशोधन भी किया है और इसलिये यह प्रति शुद्धप्रायः है, ऐसा कहना चाहिये।

दूसरी प्रति श्रीमान् उपाध्यायवर्य श्रीसुखसागरजी महाराजके निजी संग्रहकी मिली थी। पर यह नई ही लिखी हुई है और शुद्धिकी दृष्टिसे कुछ विशेष उल्लेखयोग्य नहीं है।

इसी तरहका सुन्दर शिक्षावचनपूर्ण उपदेश महत्तरा और प्रवर्तिनी पद प्राप्त करनेवाली साध्वीके लिये भी कहा गया है। प्रवर्तिनीको अनुशिष्टि देते हुए आचार्य कहते हैं कि – तुमने जो यह महत्तर पद ग्रहण किया है इसकी सार्थकता तभी होगी जब तुम अपनी शिष्याओंको और अनुगामिनी साध्वियोंको ज्ञानादि सद्गुणोंमें प्रवर्तन करा कर, उनके कल्याण पथकी मार्गदर्शिका बनोगी। तुम्हें न केवल उन्हीं साध्वियोंके हितकी प्रवृत्ति करनेमें प्रवर्तित होना चाहिये जो विदुषियां हैं, जिनका बडा खानदान है, जिनका बहुत बडा स्वजनवर्ग है, एवं जो सेठ, साहुकार आदि धनिकोंकी पुत्रियां हैं; पर तुम्हें उन साध्वियोंकी हित-प्रवृत्तिमें भी वैसे ही प्रवर्तित होना कर्तव्य है जो दीन और दुःस्थित दशामें हों, जो अज्ञान हों, शक्तिहीन हों, शरीरसे विकल हों, निःसहाय हों, बन्धुवर्गरहित हों, वृद्धावस्थासे जर्जरित हों और दुरवस्थामें पड जानेके कारण भ्रष्ट और पतित भी हों। इन सबकी तुम्हें गुरुकी तरह, अंगप्रतिचारिकाकी तरह, धायकी तरह, प्रियसखीकी तरह, भगिनी–जननी–मातामही एवं पितामही आदिकी तरह, वात्सल्य-भाव हो कर प्रतिपालना करनी होगी।

२७ इसके बाद, २७ वें द्वारमें, गणानुज्ञाविधि बतलाई गई है। गणानुज्ञाका अर्थ है गणको अर्थात् समुदायको अनुज्ञा यानि निजकी आज्ञामें प्रवर्तन करानेका संपूर्ण अधिकार प्राप्त करना। यह अधिकार, मुख्याचार्यके कालप्राप्त होने पर अथवा अन्य किसी तरह असमर्थ हो जाने पर प्राप्त किया जाता है। इस विधिमें भी प्रायः वैसा ही भाव और उपदेशादि गर्भित है। इस गणानुज्ञापदकी प्राप्ति होने पर, फीर वही नवीन आचार्य गच्छका संपूर्ण अभिभावक बनता है और उसीकी आज्ञामें सारे संघको विचरण करना पडता है।

२८ इसके बादके २८ वें द्वारमें, वृद्ध होने पर और जीवितका अन्त समीप दिखाई देने पर, साधुको पर्यन्ताराधना कैसे करनी चाहिये और अन्तमें कैसे अनशन व्रत लेना चाहिये, इसका विधान बतलाया गया है। इसी विधिके अन्तमें, श्रावकको भी यह अन्तिम आराधना करनी बतलाई गई है।

२९ इस प्रकारकी अन्तिम आराधनाके बाद, जब साधु कालधर्म प्राप्त हो जाय तब फिर उसके शरीरका अन्तिम संस्कार कैसे किया जाय, इसकी विधिका वर्णन २९ वें महापारिट्ठावणिया नामक प्रकरणमें दिया गया है।

३० तदनन्तर, ३० वें द्वारमें, साधु और श्रावक दोनोंके व्रतोंमें लगनेवाले प्रायश्चित्तोंका बहुत विस्तृत वर्णन दिया गया है। इस प्रायश्चित्तविधानमें एक तरहसे प्रायः यति और श्राद्ध दोनों प्रकारके जीतकल्प ग्रन्थोंका पूरा सार आ गया है। इसमें श्रावकके सम्यक्त्व-मूल १२ व्रतोंका प्रायश्चित्त विधान पूर्ण रूपसे दिया गया है और इसी तरह साधुके मूल गुण और उत्तर गुण आदि आचारोंमें लगनेवाले छोटे बडे सभी प्रायश्चित्तोंका यथेष्ट वर्णन किया गया है। साधुके भिक्षाविषयक दोषोंका विधान करनेवाला 'पिंडालोयणाविहाण' नामक ७१ गाथाका एक बडा स्वतंत्र प्रकरण भी, बना बना कर, ग्रन्थकारने इसमें सन्निविष्ट कर दिया है; और इसी तरह एक दूसरा १७ गाथाका 'आलोयणाविही' नामका भी स्वतंत्र प्रकरण इस द्वारके अन्तभागमें ग्रथित किया है।

३१–३६ इसके बाद 'प्रतिष्ठाविधि' नामक बडा प्रकरण आता है जिसमें जिनबिम्बप्रतिष्ठा, कलशप्रतिष्ठा, ध्वजारोप, कूर्मप्रतिष्ठा, यन्त्रप्रतिष्ठा और स्थापनाचार्यप्रतिष्ठा – इस प्रकार ३१ से ले कर ३६ तकके ६ द्वारोंका समावेश होता है। इसीके अन्तर्गत अधिवासना अधिकार, नन्द्यावर्तस्थापना, कङ्कणबन्धविधि – आदि भी प्रसंगोचित कई विधि-विधानोंका समावेश किया गया है। इसमें प्रतिष्ठोपयोगी सामग्रीका भी प्रमाणभूत निर्देश है और मन्त्र तथा स्तुति आदि वचनोंका भी उत्तम संग्रह है। प्रतिष्ठाविधिके लिये यह प्रकरण बहुत ही आधारभूत और सुविहित समझा जाने योग्य है।

३७ प्रतिष्ठा और अन्य बहुतसी क्रियाओंमें 'मुद्राकरण आवश्यक' होता है, इसलिये ३७ वें द्वारमें, भिन्न भिन्न प्रकारकी मुद्राओंका वर्णन किया गया है।

३८ [illegible] और [illegible] क्रियाओंमें ६४ योगिनियोंके यथाविधि आह्वान किया जाता है, इसलिये ३८ वें द्वारमें, इन योगिनियोंके नाम बतलाये गये हैं।

शासनप्रभावक श्रीजिनप्रभसूरि ।

[संक्षिप्त जीवन चरित्र]

लेखक—श्रीयुत अगरचन्दजी और भँवरलालजी नाहटा, बीकानेर ।

जैनशासनमें प्रभावक आचार्योंका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्यों कि धर्मकी व्यावहारिक उन्नति उन्हीं पर निर्भर है । आत्मार्थी साधु केवल स्व-कल्याण ही कर सकता है; किन्तु प्रभावक आचार्य स्व-कल्याणके साथ साथ पर-कल्याण भी विशेष रूपसे करते हैं, इसी दृष्टिसे उनका महत्त्व बढ जाना स्वाभाविक है । प्रभावक आचार्य प्रधानतया आठ प्रकारके बतलाये हैं यथा—

पावयणी धम्मकही वाई नेमित्तिओ तवस्सी य ।
विज्जासिद्धा य कवी अट्ठ य पभावगा भणिया ॥

अर्थात्—प्रावचनिक, धर्मकथाप्ररूपक, वादी, नैमित्तिक, तपस्वी, विद्याधारक, सिद्ध और कवि ये आठ प्रकार के प्रभावक होते हैं ।

समय समय पर ऐसे अनेक प्रभावकोंने जैन शासनकी सुरक्षा की है, उसे लाञ्छित और अपमानित होनेसे बचाया है, अपने असाधारण प्रभावद्वारा लोकमानस एवं राजा, बादशाह, मंत्री, सेनापति आदि प्रधान पुरुषोंको प्रभावित किया है । उन सब आचार्योंके प्रति बहुत आदरभाव व्यक्त किया गया है और उनकी जीवनियां अनेक विद्वानोंने लिख कर उनके यशको अमर बनाया है । प्रभावक चरित्रादि ग्रन्थोंमें ऐसे ही आचार्योंका जीवन वर्णन किया गया है ।

प्रस्तुत ग्रन्थ—

इस विविधतीर्थकल्पके कर्ता श्रीजिनप्रभ सूरि अपने समयके एक बडे भारी प्रभावक आचार्य थे । उन्होंने दिल्लीके सुलतान महमद बादशाह पर जो प्रभाव डाला वह अद्वितीय और असाधारण है । उसके कारण मुसलमानोंसे होने वाले उपद्रवोंसे संघ एवं तीर्थोंकी विशेष रक्षा हुई और जैन शासनका प्रभाव बढा । उन्होंने विद्वत्तापूर्ण और विविध दृष्टियोंसे अत्यन्त उपयोगी, अनेक कृतियां रच कर साहित्य भंडारको समृद्ध बनाया । पं० लालचंद भगवानदास गांधीने उनके सम्बन्धमें "जिनप्रभसूरि अने सुलतान महम्मद" नामक गुजराती भाषामें एक अच्छी पुस्तक लिखी है । पर उसमें ज्यों ज्यों सामग्री उपलब्ध होती रही त्यों त्यों वे जोडते गये अतः शृंखला नहीं रही ? हम उस पुस्तकके मुख्य आधारसे, पर स्वतंत्र शैलीसे, नवीन अन्वेषणमें उपलब्ध ग्रन्थोंके साथ सूरिजीका जीवन चरित्र इस निबन्ध में संकलित करते हैं ।

जिनप्रभ सूरिकी गुरु परम्परा—

खरतर गच्छके सुप्रसिद्ध वादी-प्रभावक श्रीजिनपति सूरिजीके शिष्य श्रीजिनेश्वर सूरिजीके शिष्य श्रीजिनप्रबोध सूरि हुए । इनके गुरुभ्राता श्रीमाल्लगोत्रीय श्रीजिनसिंह सूरिजीसे खरतरगच्छकी लघु शाखा प्रसिद्ध हुई । इसका मुख्य कारण प्राकृत प्रबन्धावलीमें[1] यह बतलाया गया है कि—एक बार श्रीजिनेश्वर सूरि जी पल्हूपुर (पालणपुर) के उपाश्रयमें विराजते थे, उस समय उनके दण्डके अकस्मात् तडतड शब्द करते हुए दो टुकडे हो गए । सूरिजीने शिष्योंसे पूछा कि—'यह तडतडाट कैसे हुआ ?' शिष्योंने कहा—'भगवन् ! आपके दण्डेके दो टुकडे हो गए' । यह सुन कर सूरिजीने उसके फलका विचार करते हुए निश्चय किया कि मेरे पश्चात् मेरी शिष्य-सन्ततिमेंसे दो शाखाएं निकलेंगीं । अतः [illegible], यदि मैं

तीसरी प्रति बीकानेरके भंडारकी थी जो श्रीयुत अगरचंदजी नाहटा द्वारा प्राप्त हुई थी। यह प्रति भी नई ही लिखी हुई है पर कुछ शुद्ध है* । इसके अन्त भागमें, जिनप्रभसूरिकृत 'देवपूजाविधि' नामक स्वतंत्र प्रकरण लिखा हुआ मिला,जिसे उपयोगी समझ कर हमने इस ग्रन्थके परिशिष्टके रूपमें मुद्रित कर दिया है । असलमें यह पूजाविधि भी इसी ग्रन्थका एक अवान्तर प्रकरण होना चाहिये । परंतु न मालूम क्यौं ग्रन्थकारने इसको इस ग्रन्थमें सन्निविष्ट न कर जुदा ही प्रकरण रूपसे ग्रथित किया है । संभव है कि यह देवपूजाविधि प्रत्येक गृहस्थ जैनके लिये अवश्य और नित्य कर्तव्य होनेसे इसकी रचना स्वतंत्र रूपसे करना आवश्यक प्रतीत हुआ हो, ता कि सब कोई इसका अध्ययन और लेखन आदि सुलभताके साथ कर सके । इस देवपूजाविधिमें गृहप्रतिमापूजाविधि, चैत्यवन्दनविधि, स्नपनविधि, छत्रभ्रमणविधि, पञ्चामृतस्नात्रविधि और शान्तिपर्वविधि आदि और भी आनुषङ्गिक कई विधियोंका समावेश कर इस विषयको संपूर्णतया प्रतिपादित किया गया है ।

*

उक्त प्रकारसे, प्रस्तुत ग्रन्थके संपादनकी प्रेरणा कर, उपाध्याय श्रीसुखसागरजी महाराजने इस प्रकार क्रिया-विधिके अमूल्य निधिरूप प्रस्तुत ग्रन्थराजके विशिष्ट स्वाध्यायका जो प्रशस्त प्रसंग हमारे लिये उपस्थित किया, तदर्थ हम, अन्तमें, आपके प्रति अपना कृतज्ञभाव प्रदर्शित कर; और जो कोई जिज्ञासु जन, इस ग्रन्थके पठन-पाठनसे अपनी ज्ञानवृद्धि करके विधिमार्गके प्रवासमें प्रगतिगामी बनेंगे, तो हम अपना यह परिश्रम सफल समझेंगे-ऐसी आशा प्रकट कर, इस प्रस्तावनाकी यहांपर पूर्णता की जाती है । इत्यलम् ।

फाल्गुन पूर्णिमा
विक्रम संवत् १९९७
बंबई

जिन विजय

* यह प्रति बीकानेरके श्रीपूज्यजीके भंडारकी है और इसके अन्तमें लिखनेवालेने अपना समय और स्थानादि बतानेवाली इस प्रकारकी पुष्पिका लिखी है –

"संवत् १८९२ वर्षे मिती ज्येष्ठ शुक्ल ५ तिथ्यां बुधवारे श्रीहमीरगढ नगरे चतुर्मासी स्थिता पं० रिधविजय लिखितं । श्रीमद्बृहत् खरतर गच्छे श्रीकीर्तिरत्नसूरि संतानीय । श्रीरूपवर्धनेन लिखितं ॥"

महाधर सेठने आचार्यश्रीकी आज्ञाको सहर्ष स्वीकार की और अच्छे मुहूर्तमें सुमटपालको समारोह पूर्वक सं० १३२६ (?) में दीक्षा दिलाई। आचार्यश्रीने नवदीक्षित मुनिको खूब तत्परतासे शास्त्रोंका अध्ययन कराया एवं साम्नाय पद्मावती मंत्र समर्पित किया-जिससे थोडे समयमें मुनिवर्य प्रतिभाशाली गीतार्थ हो गये। सं० १३४१ में किढिवाणा नगरमें श्रीजिनसिंह सूरिजीने उन्हें सर्वथा योग्य जान कर अपने पट्टपर स्थापित कर **श्रीजिनप्रभसूरि** नामसे प्रसिद्ध किया। इसके कुछ समय पश्चात् श्रीजिनसिंह सूरिजी स्वर्गवासी हुए।

श्रीजिनप्रभ सूरिजीके पुण्यप्रभाव और गुरुकृपासे पद्मावती देवी प्रत्यक्ष हुई। एक बार इन्होंने देवीसे पूछा कि-'हमारी किस नगरमें उन्नति होगी?' पद्मावतीने कहा-'आप योगिनी-पीठ दिल्लीकी ओर विहार कीजिये। उधर आपको पूर्ण सफलता मिलेगी'। सूरिजी देवीके सङ्केतानुसार दिल्ली प्रान्तमें विचरने लगे[1]।

ग्रन्थ रचना-

सं० १३५२ में योगिनीपुर (दिल्ली) में माथुरवंशीय ठक्कुर खेतल कायस्थकी अभ्यर्थनासे 'कातन्त्र विभ्रम' पर २६१ श्लोक प्रमाणकी वृत्ति बनाई। सूरिजी के उपलब्ध ग्रन्थोंमें यह सर्वप्रथम कृति है।

सं० १३५६ में श्रेणिकचरित्र-द्व्याश्रय काव्यकी रचना की।

सं० १३६३ का चातुर्मास अयोध्यामें किया। वहां साधु और श्रावकोंके आचारोंका विशदसंग्रह रूप इसी **विधिप्रपा** ग्रन्थको विजयादशमीके दिन रच कर पूर्ण किया। सं० १३६४ में वैभारगिरिकी यात्रा करके वैभारगिरिकल्प निर्माण किया और कल्पसूत्र पर 'सन्देह विषौषधि' नामक वृत्ति बनाई।

सं० १३६५ के पौषमें अयोध्यामें (१) अजितशान्तिकी बोधदीपिका वृत्ति, (२) पौष कृष्णा ९ को उपसर्गहरकी अर्थकल्पलता वृत्ति, (३) पोष सुदि ९ के दिन भयहर स्तोत्रकी अभिप्रायचन्द्रिका वृत्ति बनाई। इन कुछ वर्षोंमें सूरिजीने पूर्व देशके प्रायः समस्त तीर्थोंकी यात्रा कर, कई कल्प, स्तोत्र इत्यादि रचे।

संवत् १३६९ में मारवाड देशकी ओर विचरते हुए फलौधी तीर्थकी यात्रा कर वहांका स्तोत्र बनाया। कहा जाता है कि सूरिमहाराज प्रतिदिन एकाध नवीन स्तोत्रकी रचना करनेके पश्चात् आहार ग्रहण करते थे। इसके फल स्वरूप आपने ७०० स्तोत्र[2] जितने विशाल स्तोत्र-साहित्यकी रचना कर जैन मुनियोंके सामने एक उत्तम आदर्श उपस्थित किया। आपके निर्माण किये हुए स्तोत्रोंकी सूची पीछे दी गई है।

इस विशाल स्तोत्र-साहित्यमेंसे अब केवल ७५ के लगभग ही उपलब्ध हैं। इनमें कई यमकमय, चित्रकाव्य, आदि अनेक वैशिष्ट्यको लिये हुए हैं, जिससे सूरिजीके असाधारण पाण्डित्यका परिचय मिलता है।

सूरिजीने संस्कृत, प्राकृत और देश्य भाषामें इस प्रकार सैंकडों ही स्तोत्रोंकी रचना की, और उसके साथ फारशी भाषामें भी उन्होंने कई स्तोत्र बनाये जो जैन साहित्यमें एकदम नवीन और अपूर्व वस्तु है।

---

१ यहां तकका यह वृत्तान्त 'प्राकृत प्रबन्धावली' अन्तर्गत श्रीजिनप्रभसूरि प्रबन्धसे लिया गया है।

२ उपदेशसप्तति (सं० १५०३ सोमधर्मगणिकृत) एवं सिद्धान्तस्तवावचूरि। अवचूरिकारने इन स्तोत्रोंको, तपागच्छीय सोमतिलकसूरिको, श्रीजिनप्रभसूरिने पद्मावतीके सङ्केतसे तपागच्छका भावी उदय ज्ञात कर, भेंट करना लिखा है

स्वयं ही ऐसी व्यवस्था कर दूं ताकि भविष्यमें संघमें किसी प्रकारका कलह न हो और धर्म-प्रचारका कार्य सुचारु रूपसे चलता रहे।

इसी अवसर पर (दिल्लीकी ओरके) श्रीमाल संघने आ कर आचार्यश्रीसे विज्ञप्ति की—'भगवन्! हमारी तरफ आजकल मुनियोंका विहार बहुत कम हो रहा है, अतः हमारे धर्मसाधनके लिये आप किसी योग्य मुनिको भेजें'। सूरिजीने पूर्वोक्त निमित्तका विचार कर श्रीमाल कुलोत्पन्न जिनसिंह गणिको सं० १२८० में (?) आचार्य पद और पद्मावती मंत्र दे कर कहा—'यह श्रीमाल संघ तुम्हारे सुपुर्द है; संघके साथ जाओ और उनके प्रान्तोंमें विहार कर अधिकाधिक धर्मप्रचार करो'। गुरुदेवकी आज्ञाको शिरोधार्य कर श्रीजिनसिंह सूरि श्रावकोंके साथ श्रीमाल ज्ञातीय लोगोंके निवास स्थलोंमें विहार करने लगे। उपकारीके नाते समस्त श्रीमाल संघने श्रीजिनसिंह सूरिजीको अपने प्रमुख धर्माचार्य रूपमें माना।

जिनप्रभ सूरिकी दीक्षा—

श्रीजिनसिंह सूरिजीने गुरुप्रदत्त पद्मावती मंत्रकी, छः मासके आयंबिल तप द्वारा साधना प्रारम्भ की। तत्परताके साथ नित्य ध्यान करने लगे। देवीने प्रगट हो कर कहा—'आपकी अब आयु बहुत थोड़ी रही है, अतः विशेष लाभकी संभावना कम है'। आचार्यश्रीने कहा—'अच्छा, यदि ऐसा है तो मेरे पट्टयोग्य शिष्य कौन होगा सो बतलावें, और उसे ही शासनप्रभावनामें प्रत्यक्ष व परोक्ष रूपसे सहायता दें'। पद्मावती देवीने कहा—'सोहिलवाड़ी नगरीमें श्रीमाल जातिके तांबी गोत्रीय महर्द्धिक श्रावक महाधर रहता है। उसके पुत्र रत्नपालकी भार्या खेतलदेवीकी कुक्षिसे उत्पन्न सुभटपाल नामक सर्वलक्षणसम्पन्न पुत्र है, वही आपके पट्टका प्रभावक सूरि[1] होगा'। देवीके इन वचनोंको सुन कर आचार्यश्री सोहिलवाड़ी नगरीमें पधारे। श्रावकोंने समारोह पूर्वक उनका स्वागत किया। एक वार आचार्यश्री श्रेष्टिवर्य्य महाधरके यहां पधारे। श्रेष्टिवर्य्यने भक्ति-गद्-गद् हो कर कहा—'भगवन्! आपने मुझ पर बड़ी कृपा की, आपके शुभागमनसे मैं और मेरा गृह पावन हो गया, मेरे योग्य सेवा फरमावें!' आचार्यश्रीने कहा—'महानुभाव! तुम्हारा धर्मप्रेम प्रशंसनीय है, भावी शासन-प्रभावनाके निमित्त तुम्हारे बालकोंमेंसे सुभटपालकी भिक्षा चाहता हूं। संसारमें अनेक प्राणी अनेक वार मनुष्य जन्म धारण करते हैं लेकिन साधनाभावसे अपनी प्रतिभाको विकशित करनेके पूर्व ही परलोकवासी हो जाते हैं। मानव जन्मकी सफलताके लिये त्याग ही सर्वोत्तम साधन है जिसके द्वारा धर्मका अधिकाधिक प्रचार और आत्माका कल्याण हो सकता है। आशा है तुम्हें मेरी याचना स्वीकृत होगी। इससे तुम्हारा यह बालक केवल तुम्हारे वंशको ही नहीं बल्कि सारे देश और धर्मको दीपाने वाला उज्वल रत्न होगा।

---

१ इस प्रबन्धावलीकी एक पुरानी प्रति श्रीजिनविजयजीके पास है, उससे नकल करके जिनप्रभसूरि प्रबंधको हमने 'जैन सत्यप्रकाश' मासिकमें प्रकाशित किया। जिसका गुजराती अनुवाद पं० लालचंद भगवानदासने अपने '**जिनप्रभसूरि अने सुलतान महमद**' नामक पुस्तकमें प्रकाशित किया है। प्रबन्धावलीकी एक और प्रति श्रीहरिसागरसूरिजीके पास भी देखी थी। वह प्रति सं० १६२२ आश्विन सुदि १५ को लिखी हुई थी। श्रीजिनविजयजी वाली प्रति भी लगभग इसके समकालीन लिखित प्रतीत होती है।

२ 'खरतर गच्छ पट्टावली संग्रह'में प्रकाशित १७ वीं शताब्दीकी पट्टावली नं० ३ में लिखा है कि—इनका जन्म झुंझनूके तांबी श्रीमालके यहां हुआ था। ये उनके पांच पुत्रोंमेंसे तृतीय पुत्र थे। बीकानेरके जयचंदजीके भंडारकी पट्टावलीमें लिखा है कि बागड़ देशके वडौदा ग्रामके किसी श्रावकके छोटे पुत्र थे। इन्हें ११ वर्षकी छोटी उम्रमें आचार्य पद मिला।

श्रीजिनप्रभ सूरिजीके जन्म संवत्का उल्लेख कहीं देखने में नहीं आया; पर सं० १३५२ में इन्होंने कातन्त्र विभ्रमवृत्तिकी रचना की थी। उस समय इनकी आयु २०-२५ वर्षकी आवश्य होगी, अतः जन्म सं० १३२५ के लगभग होना संभव है। प्रबन्धावलीमें दीक्षा का समय सं० १३२६ लिखा है पर वह शंकित मालूम देता है।

करते हुए पण्डितोंसे पूछा कि–'इस समय सर्वोत्तम विद्वान कौन है?' इसके उत्तरमें ज्योतिषी धाराधरने श्रीजिनप्रभ सूरिजीके गुणोंकी प्रशंसा करते हुए उन्हें सर्वश्रेष्ठ विद्वान् बतलाया। बादशाह एक विद्याव्यसनी सम्राट् था, वह विद्वानोंका खूब आदर करता था। उसकी सभामें सदैव बहुतसे चुने हुए पण्डित विद्वद्गोष्ठी किया करते थे, जिसमें सम्राट् स्वयं रस लिया करता था। अतः पं० धाराधरसे श्रीजिनप्रभ सूरिजीका नाम श्रवण कर उन्हींके द्वारा आचार्य श्रीको अपनी राजसभामें बहुमान पूर्वक बुलाया।

बादशाहसे मिलन व सत्कार–

सम्राट्का आमन्त्रण पा कर मिती पोषशुक्ला २ को संध्याके समय सूरिजी उससे मिले। सम्राट्ने अपने अत्यन्त निकट सूरिजीको बैठा कर भक्तिके साथ उनसे कुशलप्रश्न पूछा। सूरिजीने प्रत्युत्तर देते हुए नवीन काव्य रच कर आशीर्वाद दिया जिसे सुन कर सम्राट् अत्यन्त प्रमुदित हुआ। लगभग अर्धरात्रि तक सूरिजीके साथ सम्राट्की एकान्त गोष्ठी होती रही। रात्रि अधिक हो जानेके कारण सूरिजी वहीं रहे। प्रातःकाल पुनः सम्राट्ने सूरिजीको अपने पास बुलाया; और सन्तुष्ट हो कर १००० गाय, द्रव्यसमूह, श्रेष्ठ उद्यान, १०० वस्त्र, १०० कम्बल, एवं अगर, चंदन, कर्पूरादि सुगन्धित द्रव्य उन्हें अर्पण करने लगा। परन्तु–'जैन साधुओंको यह सब अकल्पनीय हैं'–इत्यादि समझाते हुए सूरिजीने उन सबका लेना अस्वीकार किया। किन्तु सम्राट्को अप्रीति न हो इसलिये राजाभियोग वश उनमेंसे केवल कम्बल वस्त्रादि अल्प वस्तुयें कुछ ग्रहण कीं।

सम्राट्ने विविध देशान्तरोंसे आये हुए पण्डितोंके साथ सूरिजीकी वाद-गोष्ठी करवा कर दो श्रेष्ठ हाथी मंगवाये। उनमेंसे एक पर श्रीजिनप्रभ सूरिजीको और दूसरे पर उनके शिष्य श्रीजिनदेव सूरिजीको चढा[1] कर, अनेक प्रकारके शाही वाजित्रोंके समारोह पूर्वक, पौषध शालामें पहुंचाया। उस समय भट्टादि लोग विरुदावली गा रहे थे, राज्यधिकारी प्रधान-वर्ग भी, चारों वर्णकी प्रजाके सहित, उनके साथ थे। संघमें अपार आनंद छा रहा था; आचार्य महाराजकी जयध्वनिसे आकाश गूंज रहा था। श्रावकोंने इस सुअवसर पर आडंबरके साथ प्रवेश-महोत्सव किया और याचकोंको प्रचुर दान दे कर सन्तुष्ट किया।

संघरक्षा और तीर्थरक्षाके फरमान–

सम्राट्का सूरिजीसे परिचय दिनों-दिन बढने लगा जिससे उनके विद्वत्तादि गुणोंकी उसके चित्त पर जबरदस्त छाप पड़ी। उस समय जैनों पर आये दिन नाना प्रकारके उपद्रव हुआ करते थे।

बाहर हो जाता था। वह चाहता था कि लोग उसके सुधारोंका शीघ्र स्वीकार कर लें। जब उसकी आज्ञाके पालनमें आनाकानी होती अथवा विलम्ब होता था तो वह निर्दय हो कर कठोर-से-कठोर दण्ड देता था। विद्वान् होनेके साथ ही साथ महम्मद एक वीर सिपाही और कुशल सेनापति भी था। सुदूर प्रान्तोंमें कई बार उसने युद्धमें महत्त्वपूर्ण विजय प्राप्त की थी।...... वह कठोर हृदय होते हुए भी उदार था। अपने धर्मका पाबन्द होते हुए भी कट्टरता और पक्षपातसे दूर रहता था। और अभिमानी होते हुए भी उसका विनय प्रशंसनीय था।.........

महम्मद स्वेच्छाचारी था–परंतु उसकी चित्तवृत्ति उदार थी। शासन-प्रबन्धके संबन्धमें वह धर्माधिकारियोंको जरा भी हस्तक्षेप नहीं करने देता था और हिन्दुओंके प्रति उसका व्यवहार अन्य सुलतानोंकी अपेक्षा अधिक निष्पक्ष और सौजन्यपूर्ण था। वह बडा न्यायप्रिय था। शासनके छोटे बडे सभी कामोंकी स्वयं देख भाल करता था और फकीर तथा गृहस्थ सभीको न्यायकी दृष्टिसे समान समझता था।"

[1] यद्यपि हाथी पर आरोहण करना मुनियोंका आचार नहीं है, परन्तु शासन-प्रभावनाका महान् लाभ एवं सम्राट्के विशेष आग्रहके कारण यह प्रवृत्ति अपवाद रूपसे हुई ज्ञात होती है। सं० १३३४ में रचित प्रभावकचरित्रमें भी, सूराचार्यके गजरूढ होनेका उल्लेख मिलता है।

शायद ये ही सबसे पहले जैनाचार्य थे जिन्होंने यावनी भाषाका अध्ययन किया और उसमें स्तोत्र जैसी कृतियां भी कीं। दिल्लीमें अधिक रहने और मुसल्मान बादशाहोंके दरबारमें आने-जानेके विशेष प्रसंगोंके कारण इनको उस भाषाके अध्ययनकी परम आवश्यकता मालूम दी होगी। शायद बादशाहको, जैन देवकी स्तुति कैसे की जाती है इसका परिचय करानेके निमित्त ही इन्होंने उस भाषामें इन स्तोत्रोंकी रचना की हो।

सं० १३७६ में दिल्लीके सा० देवराजने शत्रुंजय, गिरनार आदि तीर्थोंका संघ निकाला। उस संघमें सूरिजी भी साथ थे। मिती ज्येष्ठ कृष्ण १ को शत्रुंजय तीर्थकी यात्रा की और मिती ज्येष्ठ शुक्ल ५ को श्री गिरनार तीर्थकी यात्रा की। देवराजके संघ एवं इन तीर्थद्वयकी यात्राका उल्लेख सूरजीने स्वयं अपने तीर्थयात्रा स्तवन एवं त्रोटकमें किया है।

सं० १३८० में पादलिप्तसूरि कृत वीरस्तोत्रकी वृत्ति और सं० १३८१ में राजादिरुचादिगणवृत्ति, साधुप्रतिक्रमण-वृत्ति, सूरिमंत्राम्नाय आदि ग्रन्थोंकी रचना की।

सं० १३८२ के वैशाख शुद्ध १० को श्रीफलवर्द्धि तीर्थकी यात्रा कर स्तोत्र बनाया।

सुलतान कुतुबुद्दीन मिलन–

हमारी ओरसे प्रकाशित ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रहके 'जिनप्रभसूरि गीत' में लिखा है कि सूरिजीने सुलतान कुतुबुद्दीनको रञ्जित किया था। अठाही, आठम, चौथको सम्राट् कुतुबुद्दीन उन्हें अपनी सभामें बुलाता था और एकान्तमें बैठ कर उनसे अपना संशय निवारण किया करता था। सुप्रसन्न हो कर सुलतानने गांव, हाथी आदि सूरिजीको लेनेके लिये कहा पर निस्पृह गुरुजीने उनमेंसे कुछ भी ग्रहण नहीं किया।

सं० १३९३ में रचित 'नाभिनन्दनोद्धार प्रबन्ध'[1] में लिखा है कि–शत्रुञ्जयोद्धारक समरसिंहने शाही फरमान ले कर संघ और श्रीजिनप्रभ सूरिजीके साथ मथुरा और हस्तिनापुरकी यात्रा की थी।

महमद तुगलक प्रतिबोध[2]।

बादशाहका आमन्त्रण–

सूरिजीके अद्भुत पाण्डित्यकी ख्याति सर्वत्र फैल चुकी थी। एक बार सं० १३८५ में जब आप दिल्लीके शाहपुरामें विराजमान थे तब दिल्लीपति सम्राट् महमद तुगलकने अपनी सभामें विद्वद्गोष्ठी

---

१ यह ग्रन्थ गुजराती अनुवाद सहित अहमदाबादसे छप चुका है।

२ डॉ. ईश्वरीप्रसादके भारतवर्षके इतिहास (पृ० २२३–३२) में सुलतान महम्मद तुगलकके संबन्धमें अच्छा प्रकाश डाला गया है। उस ग्रन्थसे कुछ आवश्यक अंश नीचे दिया जाता है, इससे उसके स्वभाव चरित्रादिके विषयमें पाठकोंको अच्छी जानकारी हो सकेगी। "**महम्मद तुगलक**–(सन् १३२५–१३५१ ई.)–अपने पिता गयासुद्दीनकी मृत्युके बाद शाहजादा जूना महम्मद तुगलकके नामसे दिल्लीकी गद्दी पर बैठा। दिल्लीके सुलतानोंमें वह सबसे अधिक विद्वान और योग्य पुरुष था। उसकी स्मरण शक्ति और बुद्धि अलौकिक थी और मस्तिष्क बड़ा परिष्कृत था। अपने समयकी कला तथा विज्ञानका वह ज्ञाता था, और बड़ी आसानी तथा खूबीके साथ फारसी भाषा बोल और लिख सकता था। उसकी मौलिकता, वक्तृत्व और विद्वत्ता देख कर लोग दंग रह जाते थे और उसे सृष्टिकी एक अद्भुत चीज समझते थे। तर्कशास्त्रका वह बड़ा पंडित था और उस विषयके प्रकाण्ड विद्वान भी उससे शास्त्रार्थ करनेका साहस नहीं करते थे।

वह अपने धर्मका पाबन्द था परंतु विधर्मियों पर अत्याचार नहीं करता था। वह मुल्लाओं और मौलवियोंकी रायकी परवाह नहीं करता था और प्राचीन सिद्धान्तों और परिपाटियोंको आंख बंध कर नहीं मानता था। उसने हिन्दुओंके साथ धार्मिक अत्याचार नहीं किया; और सती प्रथाको रोकनेका प्रयत्न किया। वह न्याय करनेमें किसीकी रियायत नहीं करता था और छोटे बडे सबके साथ एकसा बर्ताव करता था। विदेशियोंके प्रति वह बडा औदार्य्य दिखलाता था …… उसमें ठीक निश्चय तक पहुंचनेकी शक्तिकी कमी थी। उसे क्रोध जल्दी आता था और जरासी देरमें वह आपेसे

सं० १३११ के दारुण दुर्भिक्षमें जीवन निर्वाहके लिये जाजओ नामक सूत्रधार कन्नाणयसे सुभिक्ष देशकी ओर चला। प्रथम प्रयाण थोड़ा ही करना चाहिये यह विचार कर उसने रात्रिनिवास 'कयंवास स्थल'में किया। अर्द्धरात्रिके समय उससे स्वप्नमें देवताने कहा—'तुम जहां सोये हो उसके कितनेक हाथ नीचे प्रभु महावीरकी प्रतिमा है। तुम उसे प्रकट करो ता कि तुम्हें देशान्तर न जाना पड़े और यहीं निर्वाह हो जाय।' संभ्रम पूर्वक जग कर देवकथित स्थानको अपने पुत्रादिसे खुदवाने पर प्रतिमा प्रकट हुई। यह शुभ सूचना उसने श्रावकोंको दी। उन्होंने महोत्सवके साथ मन्दिरजीमें प्रतिमाको स्थापित की और सूत्रधारकी आजीविका बांध दी।

एक बार न्हवणकरानेके पश्चात् प्रभुबिंब पर पसीना आता दिखाई दिया। बार-बार पोंछने पर भी अविरल गतिसे पसीना आता रहा। इससे श्रावकोंने भावी अमंगल जाना। इतने ही में प्रभातके समय जेठुय लोगोंकी धाड़ आई। उन्होंने नगरको चारों तरफसे नष्ट किया। इस प्रकार प्रकट प्रभाव वाले महावीर भगवान, सं० १३८५ तक 'कयंवास स्थल' में श्रावकों द्वारा पूजे गये। इसके बादका वृत्तान्त ऊपर आ ही चुका है।

कन्यानयन स्थान निर्णय—

पं० लालचंद भगवानदासका मत है कि उपर्युक्त कन्नाणय या कन्यानयन वर्त्तमान कानानूर है। पर हमारे विचारसे यह ठीक नहीं है। क्यों कि उपर्युक्त वर्णनमें, सं० १२४८ में उधर तुर्कोंका राज्य होना लिखा है; किन्तु उस समय दक्षिण देशके कानानूरमें तुर्कोंका राज्य होना अप्रमाणित है। 'युगप्रधानाचार्यगुर्वावली' में (जो कि श्री जिनविजयजी द्वारा सम्पादित हो कर 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' में प्रकाशित होने वाली है) कन्यानयनका कई स्थलोंमें उल्लेख आता है। उससे भी कन्नाणय, आसी नगर (हांसी) के निकट, वागड़ देशमें होना सिद्ध है। जिस कन्यानयनीय महावीर प्रतिमाके सम्बन्ध में ऊपर उल्लेख आया है उसकी प्रतिष्ठाके विषयमें भी गुर्वावलीमें लिखा है कि—सं० १२३३ के ज्येष्ठ सुदि ३ को, आशिकामें बहुतसे उत्सव समारोह होनेके पश्चात्, आषाढ महीनेमें कन्यानयनके जिनालयमें श्रीजिनपति सूरिजीने अपने पितृव्य सा० मानदेव कारित महावीर बिंबकी प्रतिष्ठा की और व्याघ्रपुरमें पार्श्वदेवगणिको दीक्षा दी। कन्यानयनके सम्बन्धमें गुर्वावलीके अन्य उल्लेख इस प्रकार हैं—

संवत् १३३४ में श्रीजिनचन्द्र सूरिजीकी अध्यक्षतामें कन्यानयन निवासी श्रीमाल ज्ञातीय सा० काजलने नागौरसे श्रीफलौधी पार्श्वनाथजीका संघ निकाला, जिसमें कन्यानयनादि समग्र वागड़ देश व सपादलक्ष देशका संघ सम्मिलित हुआ था।

संवत् १३७५ माघ सुदि १२ के दिन, नागौरमें अनेक उत्सवोंके साथ श्रीजिनकुशल सूरिजीके वाचनाचार्य-पदके अवसर पर, संघके एकत्र होनेका जहां वर्णन आता है वहां 'श्रीकन्यानयन, श्रीआशिका, श्रीनरभट प्रमुख नाना नगर ग्राम वास्तव्य सकल वागड़ देश समुदाय' लिखा है।

संवत् १३७५ वैशाख वदि ८ को, मन्त्रिदलीय ठकुर अचलसिंहने सुल्तान कुतुबुद्दीनके फरमान से हस्तिनापुर और मथुराके लिये नागौरसे संघ निकाला। उस समय, श्रीनागपुर, रुणा, कोसवाणा, मेड़ता, कडुयारी, नवहा, झुंझणु, नरभट, कन्यानयन, आसिकाउर, रोहद, योगिनीपुर, धामइना, जमुनापार आदि नाना स्थानोंका संघ सम्मिलित हुआ लिखा है। संघने क्रमशः चलते हुए नरभटमें श्रीजिनदत्तसूरि-प्रतिष्ठित श्रीपार्श्वनाथ महातीर्थकी वन्दना की। फिर समस्त वागड़ देशके मनोरथ पूर्ण करते हुए कन्यानयनमें श्रीमहावीर भगवानकी यात्रा की।

अतः समस्त श्वेताम्बर दर्शनकी उपद्रवसे रक्षा करनेके लिये सम्राट्ने एक फरमान पत्र सूरिजीको समर्पण किया। गुरुश्रीने चारों दिशाओंमें उस फरमानकी नकलें भेज दीं जिससे शासनकी बड़ी भारी उन्नति हुई। इसी प्रकार एक दिन सूरिजीने तीर्थोंकी रक्षाके लिये सम्राट्का ध्यान आकर्षित किया। सम्राट्ने तत्काल शत्रुञ्जय, गिरनार, फलौधी आदि तीर्थोंकी रक्षाके लिये फरमान पत्र लिखवा कर दे दिये। उन फरमान पत्रोंकी नकलें भी तीर्थोंमें भेज दीं गईं। अन्य समय एक बार सूरिजीके उपदेशसे सम्राट्ने बहुत बन्दियोंको कैदसे मुक्त कर दिया।

सं० १३८५ की माघ शुद्धि ७ को दिल्लीमें सूरिजीने 'राजप्रासाद'[1] नामक शत्रुंजय कल्प बनाया।

कन्यानयनकी चमत्कारी प्रतिमाका उद्धार—

संवत् १३८५ में आसीनगर (हांसी) के अलविय वंशके किसी क्रूर व्यक्तिने श्रावकों एवं साधुओंको बंदी बना कर उनकी विडम्बना की। उसने कन्यानयनके श्रीपार्श्वनाथ स्वामीकी पाषाण मय प्रतिमाको खण्डित कर दी, और सं० १२३३ आषाढ़ सुद्धि १० गुरुवारको, श्रीजिनपति सूरिजी द्वारा प्रतिष्ठित एवं उनके चाचा विक्रमपुर निवासी सा० मानदेव कारित, २३ अंगुल प्रमाण वाली श्रीमहावीर भगवानकी चमत्कारी प्रतिमाको अखण्डित रूपसे ही गाड़ीमें रख कर दिल्ली ले आया। सम्राट् उस समय देवगिरिमें था। अतः उसके आने पर उसकी आज्ञानुसार व्यवस्था करनेके विचारसे उस जिनबिम्बको तुगुल्काबादके शाही खजानेमें रख दिया। इससे वह प्रतिमा पंद्रह मास पर्यन्त तुर्कोंके आधिकारमें रही।

महावीर प्रभुकी इस प्रतिमाका यह वृत्तान्त ज्ञात कर सूरि महाराज सोमवारके दिन राजसभामें पधारे। उस समय वृष्टि हो रही थी जिससे उनके पैर कीचड़से भर गये थे। सम्राट्ने यह देख कर मल्लिक काफूर द्वारा अच्छे वस्त्रखंडसे उनके पैर पुंछवाये। सूरिजीने बहुत ही भाव-गर्भित काव्य द्वारा सम्राट्को आशीर्वाद दिया। उस काव्यकी व्याख्या करने पर सम्राट्के हृदयमें अत्यन्त चमत्कृति पैदा हुई। अवसर जान कर सूरि महाराजने उपर्युक्त महावीर प्रतिमाका वृत्तान्त बतला कर सम्राट्से, उसे जैनसंघको समर्पण कर देनेके लिये निवेदन किया। सम्राट्ने सूरिजीकी आज्ञाको सहर्ष स्वीकार की। तुगुल्काबादके खजानेसे अमूअग मल्लिकोंके कन्धे पर विराजमान करा कर प्रभुप्रतिमाको राजसभामें मंगवाई और सम्राट्ने दर्शन करके सूरि महाराजको समर्पण कर दी। उस चमत्कारी प्रतिमाकी प्राप्तिसे संघको अपार हर्ष हुआ। समस्त संघने एकत्र हो कर बड़े समारोहके साथ सुखासनमें विराजमान कर 'मल्लिकताजदीन सराय' के जिनमन्दिरमें उसे स्थापित की। सूरिजीने वासक्षेप किया, और श्रावकलोग प्रतिदिन पूजन करने लगे।

कन्यानयकी प्रतिमाका पूर्व इतिहास—

इस प्रतिमाके पूर्व इतिहासके विषयमें सूरिजीने 'कन्यानयन' तीर्थकल्पमें लिखा है कि—सं० १२४८ में पृथ्वीराज चोहानके, सहाबुद्दीन गोरी द्वारा मारे जाने पर, राज्यप्रधान परम श्रावक सेठ रामदेवने स्थानीय श्रावक संघको लिखा कि—तुर्कोंका राज्य हो गया है, अतः महावीर प्रभुके बिंबको कहीं प्रच्छन्नरूपसे रखना आवश्यक है। इस सूचनासे वहांके श्रावकोंने दाहिमाज्ञातीय मंडलेश्वर कैमासके नामसे बने हुए 'कयंबास स्थल' में बालूके नीचे प्रतिमाको गाड़ दी।

सं० १३८६ में सूरिजीने ढिंपुरी तीर्थ स्तोत्रकी रचना की।

---

[1] इस ग्रन्थ का नाम 'राजप्रासाद' होनेका कारण सूरिजीने ही बताया है कि इसके रचना-प्रारंभके समय राजाधिराज (महम्मद तुगुल्क) संघ पर प्रसन्न हुए थे। उपर्युक्त फरमान इसकी प्राप्तिसे भी इसका समर्थन होता है।

'जैन स्तोत्र संदोह' भा० २ की प्रस्तावना, पृ० ४० में, इस विक्रमपुरको बीकानेर बतलाया है, पर वह भूल ही है। बीकानेर तो उस समय बसा भी नहीं था, उसे तो राव बीकाने, सं० १५४५ में बसाया है। पूर्वका विक्रमपुर जेसलमेर निकटवर्ती वर्तमान वीक्रमपुर ही है।

देवगिरिकी ओर विहार और प्रतिष्ठानपुर यात्रा–

श्री जिनप्रभ सूरिने दिल्लीमें इस प्रकारकी धर्म-प्रभावना करके महाराष्ट्र (दक्षिण)की ओर विहार किया। सम्राट्ने सूरिजीके विहारमें सब प्रकारकी अनुकूलतायें प्रस्तुत कर दीं। सूरिजीने सम्राट् एवं स्थानीय संघके संतोषके निमित्त श्री जिनदेव सूरिजीको, १४ साधुओंके साथ, दिल्लीमें ठहरनेकी आज्ञा दी। सूरिजी विहार-मार्गके अनेक नगरोंमें धर्म-प्रभावना करते हुए देवगिरि (दौलतावाद) पहुंचे। स्थानीय संघने प्रवेशोत्सव किया[1]। वहांसे संघपति जगसिंह, साहण, मल्लदेव आदि संघ-मुख्योंके सहित प्रतिष्ठानपुर पधारे और वहां जीवंत मुनिसुव्रत स्वामीकी प्रतिमाके दर्शन किये। यात्रा करके संघ सहित सूरिमहाराज पुनः देवगिरि पधारे। सं० १३८७ भा० शु० १२ के दिन 'दीवाली ल्कप' की यहां पर रचना की।

देवगिरिके जैन मन्दिरोंकी रक्षा–

एक वार, पेयड़, सहजा और ठ० अचलके करवाए हुए जिनमन्दिरोंको तुर्क लोग तोड़नेके लिये उद्यत हुए,[2] तब सूरजीने शाही फरमान दिखला कर उन मन्दिरोंकी रक्षा की। इस प्रकार और भी अनेक तरहसे शासन-प्रभावना करते हुए, शिष्योंको सिद्धान्त-वाचना और तपोद्वहन कराते हुए, तीन वर्ष यहीं व्यतीत किये। इसी बीच सूरजीने उद्भट ऐसे बहुतसे वादियोंको शास्त्रार्थमें परास्त किया। अपने शिष्यों एवं अन्य गच्छके मुनियोंको काव्य, नाटक, अलङ्कार, न्याय, व्याकरण आदि शास्त्र पढाए[3]।

दिल्लीमें जिनदेव सूरिद्वारा धर्म-प्रभावना–

इधर दिल्लीमें विराजित श्री जिनदेव सूरिजी, विजयकटक (शाही छावणीमें) में सम्राट्से मिले। सम्राट्ने बहुत सन्मानके साथ एक सराय (मुहल्ला) जैन संघके निवास करनेके लिये दी। इस सराय का नाम 'सुलतान सराय' रखा गया। वहां सम्राट्ने पौषधशाला और जैनमन्दिर बनवा दिया, एवं ४०० श्रावकोंको सकुटुम्ब निवास करनेका आदेश दिया। पूर्वोक्त कन्यानयनके महावीर बिम्बको, इस सरायमें सम्राट्के बनवाये हुए मन्दिरमें विराजमान किया गया। श्वेताम्बर, दिगम्बर एवं अन्य धर्मावलम्बी जन भी भक्तिभावसे इस प्रतिमाकी पूजा करने लगे। इस शासनोन्नतिके कार्यसे सम्राट् महम्मद तुगुलकका सुयश सर्वत्र फैल गया।

---

१. 'संस्कृत जिनप्रभसूरि प्रबन्ध' और शुभशीलगणिके कथाकोशमें लिखा है कि–जिनप्रभ सूरिजी सर्वत्र चैत्य परिपाटी करते हुए सुलतान महमद शाहके साथ देवगिरि पहुंचे। तब सा० जगसिंहने ३२००० मुद्रा व्यय कर प्रवेशोत्सव किया। स्थानीय चैत्योंकी वन्दना करते हुए, जब सूरिजी जगसिंहके गृहमन्दिर पर पहुंचे तो वहां के रत्नमय जिनबिम्बोंको देखकर सूरिजीने सिर धुनाया। जगसिंहके कारण पूछने पर कहा–'हमने बहुत स्थानोंमें जिनमन्दिरोंका वंदन किया पर एक तो आज तुम्हारे गृहमन्दिरको स्थावर तीर्थरूप और दूसरे जंगम तीर्थरूप जंघरालपुरमें तपागच्छीय सोमतिलकसूरि को देखा।

२. विशेष जाननेके लिये **'जिनप्रभसूरि अने सुलतान महमद'** पृ० ७९ से १०१ तक देखना चाहिए।

३. हर्षपुरीय गच्छके मलधारि श्री राजशेखरसूरिने अपने बनाये हुए न्यायकन्दली विवरणमें, सूरिजीका अपने अध्यापक रूपसे स्मरण किया है। उन्होंने सूरिजीसे न्यायकंदली० ग्रन्थका अध्ययन किया था। रुद्रपल्लीय गच्छके संघतिलकसूरिने सम्यक्त्वसप्ततिकावृत्तिमें सूरिजीको अपना विद्यागुरु बतलाया है। इसी तरह, सं० १३४९ में नागेन्द्र गच्छके श्री मल्लीषेण सूरिने अपनी स्याद्वादमञ्जरीमें जिनप्रभ सूरिजी द्वारा प्राप्त सहायताका उल्लेख किया है।

श्रीजिनचन्द्र सूरिजीने 'खण्डासराय (दिल्ली) चातुर्मास करके मेडताके राणा मालदेवकी वीनतिसे विहार कर मार्ग में धामइना, रोहद आदि नाना स्थानोंसे हो कर, कन्यानयन पधार कर महावीर प्रभुको नमस्कार किया।

संवत् १३८० में सुल्तान गयासुदीनके फरमान ले कर दिल्लीसे शत्रुंजयका संघ निकला। वह सर्व-प्रथम कन्यानयन आया, वहां वीर प्रभुकी यात्रा कर फिर आशिका, नरभट, खाटू, नवहा, झुंझणू आदि स्थानोंमें होते हुए, फलौधी पार्श्वनाथजीकी यात्रा कर, शत्रुंजय गया।

उपर्युक्त इन सारे अवतरणोंसे कन्यानयनका, आशिकाके निकट वागड़ देशमें होना सिद्ध होता है। श्रीजिनप्रभ सूरिजीने कन्यानयनके पास 'कयंवासस्थल' का जो कि मंडलेश्वर कैमासके नामसे प्रसिद्ध था, उल्लेख किया है। मंडलेश्वर कैमासका संवन्ध भी कानानूरसे न हो कर हांसीके आसपासके प्रदेशसे ही हो सकता है। गुर्वावलीके अवतरणोंसे नागौरसे दिल्लीके रास्तेमें नरभट और आशिकाके बीचमें कन्यानयन होना प्रामाणित है। अनुसन्धान करने पर इन स्थानोंका इस प्रकार पता लगा है–

नरभट–पिलानी से ३ मील।

कन्यानयन–वर्तमान कन्नाणा दादरी से ४ मील जिंद रिसायतमें है।

आशिका–सुप्रसिद्ध हांसी।

पं० भगवानदासजी जैनने ठ० फेरु विरचित 'वस्तुसार' ग्रन्थकी प्रस्तावनामें कन्यानयनको वर्त्तमान करनाल बतलाया है, परन्तु हमें वह ठीक नहीं प्रतीत होता। गुर्वावलीके उल्लेखानुसार करनाल कन्यानयन नहीं हो सकता।

इसमें अब एक यह आपत्ति रह जाती है कि श्रीजिनप्रभ सूरिजीने स्वयं 'कन्याननीय–महावीरकल्प' में कन्यानयनको चोल देशमें लिखा है। हमारे विचारसे यह चोल देश, जिस स्थानको हम बतला रहे हैं, पूर्वकालमें उसे भी चोल देश कहते हों। इस विषयमें विशेष प्रमाण न मिलनेसे विशेष रूपसे नहीं कह सकते; पर गुर्वावलीमें महावीर प्रतिमाकी प्रतिष्टाके संबन्धमें जब यह उल्लेख है कि–सं० १२३३ के ज्येष्ठ सुदि ३ को, आशिकामें धार्मिक उत्सव होनेके पश्चात्, आषाढमें ही कन्यानयनमें महावीर बिंबकी प्रतिष्टा श्रीजिनपति सूरिजी द्वारा हुई; और वहांसे फिर व्याघ्रपुर आ कर पार्श्वदेवको दीक्षित किया। श्रीजिनप्रभ सूरिजीने भी प्रतिमाको 'सा० मानदेव कारित, सं० १२३३ आषाढ सुदि १० को प्रतिष्टित, मानदेवको श्रीजिनपति सूरिजीका चाचा होना, और प्रतिष्टा भी श्रीजिनपति सूरिजी द्वारा होना' लिखा है। उसी प्रकार ये सारी बातें प्राचीन गुर्वावलीसे भी सिद्ध और समर्थित हैं। पिछले उल्लेखोंमें भी, जो कि कन्यानयनके महावीर भगवानकी यात्राके प्रसङ्गमें हैं, कन्यानयनको वागड़ देशमें आशिकाके पास ही बतलाया है। इन सब बातों पर विचार करते हुए हमारी तो निश्चित राय है कि कन्यानयन कानानूर न हो कर वर्त्तमान कन्नाणा ही है। जिस प्रकार वागड़ देश ४ हैं, इसी प्रकार चोल देश भी दो हो सकते हैं।

विक्रमपुर स्थल निर्णय–

सा० मानदेव के निवास स्थान विक्रमपुरको पं० लालचंद भगवानदासने दक्षिणके कानानूर के पासका बतलाया है; पर यह विक्रमपुर तो निश्चिततया जेसलमेरके निकटवर्ती वर्तमान बीकमपुर है। श्रीजिनपति सूरिजीके रास में 'अत्थि मरुमंडले नयर विक्रमपुरे' शब्दोंसे विक्रमपुरको मरुस्थलमें सूचित किया है। संभव है सा० मानदेव व्यापारादिके प्रसङ्गसे वागड़ देशके कन्यानयनमें रहते हों और वहीं श्रीजिनपति सूरिजीके जाने पर महावीर भगवानकी प्रतिष्टा कराई हो।

लाखों रुपयोंके दण्डसे मुक्त कराया; एवं अन्य लोगोंको भी करुणावान् पूज्यश्रीने कैदसे छुड़ाया। जो लोग अवकृपा प्राप्त हो गए थे वे भी सूरिजीके प्रभावसे पुनः प्रतिष्ठाप्राप्त हुए। सूरिजी निरन्तर राजसभामें जाते थे। उन्होंने अनेक वादियों पर विजय प्राप्त कर जिन शासनकी शोभा बढाई थी। सं० १३८९ के ज्येष्ठ सुदि ५ को 'वीरगणधर' कल्प और मिती भादवा सुदि १० को दिल्लीमें ही **विविधतीर्थकल्प** नामक अद्वितीय ग्रन्थरत्नकी पूर्णाहुती की।

फाल्गुन मासमें, दौलताबादसे सम्राट्की जननी मगदूमई जहांके आने पर, चतुरङ्ग सेनाके साथ बादशाह उसकी अभ्यर्थनामें सन्मुख गया। उस समय सूरि महाराज भी साथ थे। वडथूण स्थानमें मातासे मिल कर सम्राट्ने सबको प्रचुर दान दिया। प्रधानादि अधिकारियोंको वस्त्रादि देकर सत्कृत दिया। वहांसे दिल्ली आकर सूरिजीको वस्त्रादि देकर सन्मानित किया।

दीक्षा और बिम्बप्रतिष्ठादि उत्सव–

चैत सुदि १२ के दिन, राजयोगमें, सम्राट्की अनुमतिसे उसके दिये हुए साईवाणकी छायामें नन्दी स्थापना की। सूरिजीने वहां ५ शिष्योंको दीक्षित किया। मालारोपण, सम्यक्त्व ग्रहण आदि धर्मकृत्य हुए। स्थिरदेवके पुत्र ठ० मदनने इस प्रसङ्ग पर बहुतसा द्रव्य व्यय किया।

मिती आषाढ सुदि १० को नवीन बनवाये हुए १३ अर्हंत बिंबोंकी सूरिजीने महोत्सव पूर्वक प्रतिष्ठा की। बिम्बनिर्माता एवं सा० पहराजके पुत्र अजयदेवने प्रतिष्ठा-महोत्सवमें पुष्कळ द्रव्य व्यय किया।

सम्राट् समर्पित भट्टारक-सरायमें प्रवेश–

सुल्तान सराय राजसभासे काफी दूर थी; अतः सूरिजीको हमेशा आनेमें कष्ट होता है ऐसा विचार कर सम्राट्ने अपने महलके निकटवर्ती सुन्दर भवनों वाली नवीन सराय समर्पण की। श्रावक-संघको वहां पर रहनेकी आज्ञा देकर बादशाहने उसका नाम 'भट्टारक सराय' प्रसिद्ध किया। वहां पर वीरप्रभुका मन्दिर व पौषधशाला बनवाई। सं० १३८९ मिती आषाढ़ कृष्णा ७ को, उत्सव पूर्वक सूरि महाराजने पौषधशालामें प्रवेश किया। इस प्रसङ्ग पर विद्वानों एवं दीन अनाथोंको यथेष्ट दान दिया गया।

मथुरा तीर्थका उद्धार–

मार्गशिर महिनेमें सम्राट्ने पूर्व देशकी ओर विजय प्राप्त करनेके हेतु ससैन्य प्रस्थान किया। उस समय उन्होंने सूरिजीको भी वीनति करके अपने साथमें लिये। स्थान स्थान पर बन्दीमोचनादि द्वारा शासन-प्रभावना करते हुए सूरि महाराजने मथुरा तीर्थका उद्धार कराया।

हस्तिनापुरकी यात्रा और प्रतिष्ठा–

शाही सेनाके साथ पैदल विहार करते हुए सूरिजीको कष्ट होता है, यह विचार कर सम्राट्ने खोजे जहां मल्लिकके साथ उन्हें आगरेसे दिल्ली लौटा दिया। हस्तिनापुरकी यात्राका फरमान लेकर आचार्य श्री दिल्ली पहुंचे। चतुर्विध संघ हस्तिनापुरकी यात्राके निमित्त एकत्र हुआ। शुभ मुहूर्तमें बोहित्य (चाहड पुत्र) को संघपतिका तिलक कर वहांसे प्रस्थान किया। संघपति बोहित्यने स्थान स्थान पर महोत्सव किये।

तीर्थभूमिमें पहुंच कर तीर्थको वधाया। नवनिर्मित शान्तिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ आदि तीर्थकरों-के बिम्बोंकी सूरिजीसे प्रतिष्ठा करवाई। अंबिकादेवीकी प्रतिमा स्थापित की। संघपतिने संघवात्सल्यादि किये। संघने वस्त्र, भोजन आदि द्वारा याचकोंको सन्तुष्ट किया। संवत् १३८९ वैशाख सुदि ६ के दिन रचित,

सम्राट्का स्मरण और आमंत्रण—

एक बार दिल्लीमें बादशाह महम्मद तुगुलक अपनी सभामें विद्वानोंके साथ विद्वद्गोष्ठी करता था। उसको किसी शास्त्रीय विचारमें सन्देह उत्पन्न हो जाने पर उपस्थित पण्डितों द्वारा समाधान न होनेसे एकाएक श्रीजिनप्रभ सूरिजीकी स्मृति हो आई। उसने कहा—'यदि इस समय राजसभामें वे सूरि विद्यमान होते तो अवश्य हमारे संशय का निराकरण हो जाता। सचमुच उनकी विद्वत्ता अगाध है।' इस प्रकार सम्राट्के मुखसे सूरिजीकी प्रशंसा सुन कर दौलताबादसे आए हुए ताजुलमल्लिकने शिर झुका कर निवेदन किया—'स्वामिन्! वे महात्मा अभी दौलताबादमें हैं, परंतु वहांका जलवायु अनुकूल न होनेसे वे बहुत कृश हो गये हैं।' यह सुन कर प्रसन्नता पूर्वक सूरिजीके गुणोंका स्मरण करते हुए उस मल्लिकको आज्ञा दी कि तुम शीघ्र दुबीरखाने जाकर फरमान लिखा कर सामग्री सहित भेजो, जिससे वे आचार्य देवगिरिसे यहां शीघ्र पहुंच सकें। सम्राट्की आज्ञासे मल्लिकने वैसा ही किया। यथा समय शाही फरमान दौलताबादके दीवानके पास पहुंचा। सूबेदार कुतुहल्लखानने सूरिजीको दिल्ली पधारनेके लिये सविनय प्रार्थना करते हुए शाही फरमान बतलाया। सूरि महाराजने सप्ताह भरमें (१० दिन बाद) तैयार होकर ज्येष्ठ सुदि १२ को राजयोगमें संघके साथ वहांसे प्रास्थान किया।

अल्लावपुरमें उपद्रव निवारण—

स्थान स्थानमें धर्म-प्रभावना करते हुए सूरि महाराज अल्लावपुर दुर्ग पधारे। असहिष्णु म्लेच्छोंको एक जैनाचार्यकी इस प्रकारकी महिमा सह्य नहीं हुई। उन लोगोंने सघवाडेके लोगोंकी बहुतसी वस्तुएं छीन लीं एवं इसी प्रकार कितने ही उपद्रव करने प्रारम्भ कर दिये। जब दिल्लीमें विराजमान श्रीजिनदेव सूरजीको यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ तो उन्होंने तत्काल सम्राट्को सारा हाल कह सुनाया। सम्राट्ने बहुमान पूर्वक फरमान भेज कर वहांके मल्लिक द्वारा लोगोंकी सारी वस्तुएं वापिस दिला दीं। इससे सूरिजीका अद्भुत प्रभाव पड़ा, उन्होंने १॥ मास रह कर वहांसे प्रस्थान कर दिया। क्रमशः विचरते हुए जब आप सिरोह पहुंचे तो सम्राट्ने उन्हें देवदूष्यकी भाँति सुकोमल १० वस्त्र भेज कर सत्कृत किया। वहांसे विहार करके दिल्ली पहुंचे।

दिल्लीमें सम्राट्से पुनर्मिलन—

जैनसंघ और सम्राट् उनके दर्शनोंके लिये चिर कालसे उत्कण्ठित था ही। पूज्य श्रीके शुभागमनसे उनका हृदय अत्यन्त प्रफुल्लित हो गया। मिती भादवा सुदि २ के दिन मुनिमण्डल एवं श्रावकसंघके साथ युगप्रधान गुरुजी राजसभामें पधारे। सम्राट्ने मृदु वचनोंसे वन्दन पूर्वक कुशल प्रश्न पूछा और अत्यन्त स्नेहवश सूरजीके हाथको चुम्बन कर अपने हृदय पर रखा। सूरि महाराजने तत्काल ही नवीन निर्मित पद्यों द्वारा आशीर्वाद दिया। जिसे श्रवण कर सम्राट्का चित्त अत्यन्त चमत्कृत हुआ। सूरिजीके साथ वार्तालाप होनेके अनन्तर विशाल महोत्सव पूर्वक अपने हिन्दु राजाओं और प्रधान पुरुषोंके साथ वादित्रादि बजते हुए सम्मान पूर्वक सम्राट्ने सुल्तान सरायकी पौषधशालामें उन्हें पहुंचा दिया। उनका प्रवेशोत्सव अपूर्व आनंददायक और दर्शनीय था।

पर्युषणमें धर्म-प्रभावना—

मिती भादवा सुदी ४ के दिन संघने महोत्सव पूर्वक पर्युषणाकल्प सूरिजीसे भक्ति पूर्वक श्रवण किया। सूरिजीके आगमन और प्रभावनाके पत्र पा कर देशान्तरीय संघ हर्षित हुआ। सूरिजीने राजबन्दी श्रावकोंको

कहा—'उलटा चोर कोतवालको दण्डे!' वाली उक्ति चरितार्थ हो रही है; मुद्रिका तो इसके मस्तक पर पडी है और यह हमारे पास बतलाता है। जब सम्राट्ने उसकी तलाशी ली तो वह अपनी करणीका फल पा कर म्लानमुख हो गया—"खाड खणे जो और को ता को कूप तैयार"।

कलंदर मुल्ला मानमर्दन—

इसी प्रकार फिर कभी राजसभामें खुरासानसे एक कलन्दर मुल्ला आया। उसने अपना प्रभाव जमाने और सूरिजीका प्रभाव घटानेके लिए अपनी टोपीको आकाशमें फैंक कर अधर रखी और गर्वपूर्वक सम्राट्से कहने लगा—'क्या कोई आपकी सभामें ऐसा है जो इस टोपीको नीचे उतार सकता है!' सम्राट्ने सूरिजीकी ओर देखा। उन्होंने तत्काल रजोहरण फैंक कर उसके द्वारा टोपीको ताडित करते हुए फकीरके मस्तक पर गिरा दी'[1]। इस कौशलसे हताश होकर कलन्दरने एक पनिहारीके मस्तक पर रहे हुए घडेको अधर स्तम्भित कर दिया। सूरिजीने कहा—'घडेको स्तंभित करनेमें क्या है, बिना घडे पानीको स्तंभित करे वही श्रेष्ठ कला है'। सम्राट्ने मुल्लासे वैसा करनेको कहा परन्तु वह न कर सका। तब सूरिजीने तत्काल घडेको कंकरसे फोड कर पानीको अधर स्तंभित दिखला दिया।

अद्भुत भविष्य-वाणी—

एक समय सम्राट्ने शाही सभामें बैठे हुए समस्त पण्डितोंसे पूछा—'कहिये! आज मैं किस मार्गसे राजवाटिकामें जाऊंगा?' सभी पण्डितोंने अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार लिख कर सम्राट्को दे दिया। सम्राट्ने सूरिजीसे कहा तो उन्होंने भी अपना मन्तव्य लिख दिया। सब चिट्ठीयोंको अपने दुप्पट्टेमें बांध कर सम्राट्ने विचार किया, कि आज किसी ऐसे मार्गसे जाना चाहिए जिससे ये सब असत्यवादी सिद्ध हो जावें। विचारानुसार वह किलेके बुर्जको तुडवा कर नवीन मार्गसे राजवाटिकामें पहुंचा और एक वट वृक्षकी छायामें बैठ कर सब पण्डितों और सूरिजीको बुलाया। सबके लेख पढे गये और वे असत्य प्रमाणित हुए। अन्तमें सूरिजीका लेख पढा गया। उसमें लिखा था—'किलेके बुर्जको तोड कर राजवाटिकामें जा कर सुलतान वट वृक्षके नीचे विश्राम करेंगे।' इस अद्भुत निमित्तको श्रवण कर सभी विद्वान और विशेषतः सम्राट् अत्यन्त विस्मित हुए और सम्राट्ने स्पष्ट रूपसे सबके समक्ष सूरिजीकी इन शब्दोंमें स्तुति की कि—'सचमुच यह बात मनुष्यकी कल्पनासे भी अगम्य है। ये गुरु मनुष्य रूपमें साक्षात् परमेश्वर हैं।' इसी प्रकार अन्यदा सम्राट्के यह पूछने पर कि—'मैं आज क्या खाऊंगा?' सूरिजीने निमित्त बलसे एक पुर्जेमें अपना मन्तव्य लिख दिया और भोजनानन्तर खोलनेको कहा। सुलतानने "खीच" खाया और जब सूरिजीका लिखा हुआ पुर्जा देखा गया तो उसमें भी वही लिखा पाया।

वट वृक्षको साथ चलाना—

एक बार सम्राट्ने देशान्तर जानेके लिये प्रस्थान कर एक शीतल छायावाले वृक्षके नीचे विश्राम किया। सम्राट्ने आराम पा कर उस वृक्षकी बहुत प्रशंसा की और कहा कि—'यदि यह वृक्ष अपने साथ रहे तो क्या ही अच्छा हो!' सूरिजीने अपने लोकोत्तर विद्या-प्रभावसे वृक्षको भी सम्राट्का सहगामी बना दिया। पांच कोस तक वृक्ष साथ चला; फिर सूरिजीने सम्राट्के कहनेसे उस वृक्षको वापिस स्वस्थान

---

[1] सम्राट्के समक्ष मुल्लाकी टोपीको रजोहरण द्वारा आकाशसे गिरानेका उल्लेख युगप्रधान श्रीजिनचंद्रसूरिजीके संबन्धमें भी आता है। इसी प्रकार अमावास्याके दिन पूर्णचंद्रका उदय करनेका प्रसङ्ग भी यु० जिनचन्द्रसूरि और सम्राट् अकबरके चरित्रोंमें आता है। हमारे विचारसे ये दोनों बातें श्रीजिनप्रभसूरिजीके सम्बन्धकी होंगी।

हस्तिनापुर तीर्थकल्पमें, संघ सहित यात्रा करनेका सूरिजीने स्वयं उल्लेख किया है। तीर्थयात्रासे लौट कर सूरिजीने वैशाख सुदि १० के दिन श्रीकन्यानयनके महावीर बिम्बको सम्राट्के बनवाये हुए जैन मन्दिरमें महोत्सव पूर्वक स्थापित किया।

इधर सम्राट् भी दिग्विजय करके दिल्ली लौटा। जैनमन्दिर और उपाश्रयोंमें उत्सव होने लगे। सम्राट् एवं सूरिजीका सम्बन्ध उत्तरोत्तर घनिष्ठता प्राप्त करने लगा। अतः सूरिजी और सम्राट् दोनोंके द्वारा जिनशासनकी बड़ी प्रभावना होने लगी। सूरिजीके प्रभावसे दिगम्बर श्वेताम्बर समस्त जैन संघ व तीर्थोंका उपद्रव शाही फरमानों द्वारा सर्वथा दूर हो गया।

ग्रन्थान्तरोंके चमत्कारिक उल्लेख—

सुलतान प्रतिबोधका उपर्युक्त वृत्तान्त, विविधतीर्थकल्प ग्रन्थान्तर्गत **'श्रीकन्यानयन-महावीर प्रतिमाकल्प'** और रुद्रपल्लीय गच्छके श्रीसोमतिलक सूरि कृत **'कन्यानयन-श्रीमहावीर-तीर्थकल्प परिशेष'** से लिखा गया है जो कि प्रथम स्वयं सूरि महाराजकी और दूसरी समकालीन रचना है। अब प्राकृत जिनप्रभसूरिप्रबन्धादि ग्रन्थान्तरोंसे सूरिजी एवं सम्राट् सम्बन्धी विशेष बातें संक्षेपमें दी जाती हैं।

पद्मावती सांनिध्य—

पद्मावती देवीकी सूचनानुसार सूरिजी दिल्लीके शाहपुरामें आकर ठहरे। एक बार शौचभूमि जाते समय अनार्योंने लेष्टु (ढेला-पत्थर) आदि द्वारा उन्हें अपमानित किया। पद्मावती देवीने उन अनार्योंको उचित शिक्षा दी। इससे उन्होंने भाग कर सुलतान महमदशाहसे सारा वृत्तान्त कहा। उसने चमत्कृत हो कर सूरिजीको अपने यहां बुलाया। सूरिजीके कुम्भकासनादि द्वारा सम्राट्का चित्त अत्यन्त प्रभावित हुआ।

व्यन्तरोपद्रव निवारण—

एक बार सम्राट्ने सूरिजीसे कहा—'मेरी प्रिया बालादेको किसी व्यन्तरकी बाधा है जिससे वह वस्त्र-ग्रहणादि शरीर शुश्रूषा नहीं करती। आपका प्रभाव असाधारण है अतः कृपया किसी प्रकारसे इस व्यन्तरोपद्रवका निवारण करें'। सूरिजीने कहा,—'अच्छा! उसके पास जाकर कहो कि जिनप्रभ सूरि आते हैं।' सम्राट्ने वैसा ही किया। सूरिजीके आगमनकी बात सुन कर बालादेने सहसा उठ कर दासीसे वस्त्र मंगा कर पहन लिये। सूरि महाराजके नाममें ही कैसा अद्भुत प्रभाव है इसका प्रत्यक्ष फल देख कर सम्राट् अत्यन्त प्रसन्न हुआ, और सूरिजीको महलमें पधारनेकी वीनति की। सूरिजीने आते ही बालादेके देहमें प्रविष्ट व्यन्तरको कहा—'दुष्ट! तूं यहां कहांसे आया, चला जा'। उसने जब जानेकी आनाकानी की तो गुरुदेवने मेघनाद क्षेत्रपालके द्वारा उसे भगा दिया। रानी स्वस्थ हो गई और सूरिजीके प्रति अत्यन्त भक्तिभाव रखने लगी।

ईर्ष्यालु राघव चेतनको शिक्षा—

एक बार सम्राट्की सेवामें काशीसे चतुर्दशविद्यानिपुण मंत्र-तंत्रज्ञ राघवचेतन नामका ब्राह्मण आया। उसने अपनी चातुरीसे सम्राट्को रञ्जित कर लिया। सम्राट् पर जैनाचार्य श्रीजिनप्रभ सूरिजीका प्रभाव उसे बहुत अखरता था। अतः उन्हें दोषी ठहरा कर, उनका सम्राट् पर प्रभाव कम करनेके लिये सम्राट्की मुद्रिका अपहरण कर सूरिजीके रजोहरणमें प्रच्छन्न रूपसे डाल दी। पद्मावती देवीसे वृत्तान्त ज्ञात कर सूरिजीने धीरेसे उस मुद्रिकाको राघव चेतनकी पगडी पर लटका दी। सम्राट् मुद्रिका न पा कर इधर उधर देखने लगा तो राघव चेतनने कहा—'आपकी मुद्रिका सूरिजीके पास है!' सम्राट्ने जब सूरिजीकी ओर देखा तो उन्होंने

न हो कर उससे अग्निकी चिनगारियां निकलने लगीं । तब सम्राट्ने प्रतिमाके समक्ष क्षमा याचना कर उसे स्वर्णमुद्राओंसे वधाई ।

विजय-यन्त्र-महिमा–

एक वार मन्त्र-यन्त्रके माहात्म्यके सम्बन्धमें सूरिजी और सम्राट्में वार्तालाप हो रहा था । सम्राट्ने प्रसङ्गवश विजय-यन्त्रकी महिमा सुन कर उसके प्रभावको प्रत्यक्ष देखना चाहा । सूरिजीने विजय-यन्त्र देते हुए सम्राट्से कहा–'जिसके पास यह यंत्र होता है उसे देवताओंके अस्त्र भी नहीं लगते और कुपित शत्रु भी अनिष्ट नहीं कर सकते ।' सम्राट्ने उस यन्त्रको एक बकरेके गलेमें बांध कर उस पर खड्गके कई प्रहार किये परन्तु यन्त्रके प्रभावसे बकरेके तनिक भी घाव नहीं हुआ । तब फिर उस यंत्रको छत्रदण्ड पर बांध कर उसके नीचे एक चूहेको रखा गया और सामनेसे बिल्ली छोड़ी गई । चूहेको पकड़नेके लिए बिल्ली दौड़ी अवश्य, परन्तु यन्त्रके प्रभावसे छत्रके नीचे न आ सकी, जिससे वह चूहा बाल बाल बच गया । यंत्रका यह अक्षुण्ण प्रभाव देख कर सम्राट्ने ताम्रमय दो यन्त्र बनवा कर एक स्वयं रखा और एक सूरिजीको दे दिया ।

इसी प्रकारके चमत्कारी प्रवादोंमें अमावसको पूनम बना देना, शीतज्वरको झोलीमें बांधके रख देना, भैंसेके मुखसे वाद कराना, आदि जनश्रुतियां भी पाई जाती हैं ।

बुद्धिशाली कथन–

पं० श्रीशुभशीलगणिके कथाकोशमें उपर्युक्त प्रवादोंके साथ सम्राट्के पूछे हुए दो प्रश्नोंके सूरिजी द्वारा दिये गये युक्तिपूर्ण उत्तरोंके उल्लेख इस प्रकार हैं–

एक वार सम्राट्ने राजसभामें पूछा, कहो–'शक्कर किस चीजमें डालनेसे मीठी लगती है ?' पण्डितोंमेंसे किसीने कुछ और किसीने कुछ ही उत्तर दिया । उससे सम्राट्को सन्तोष न होने पर सूरिजीसे पूछा । उन्होंने कहा–'शक्कर मुँहमें डालनेसे मीठी लगती है ।'

इसी तरह एक वार, सम्राट् क्रीडाके हेतु उद्यानमें गया था, वहां जलसे भरे हुए विशाल सरोवरको देख कर सबसे पूछा–'यह सरोवर धूलि आदि द्वारा भरे विना ही छोटा कैसे हो सकता है ?' कोई भी इस प्रश्नका युक्तिपूर्ण उत्तर न दे सका; तब सूरिजीने कहा–'यदि इस सरोवरके पास अन्य कोई बड़ा सरोवर बनाया जाय तो उसके आगे यह सरोवर स्वयमेव छोटा कहलाने लग जायगा ।'

एक समय सुलतानने सूरिजीसे पूछा कि–'पृथ्वी पर कौनसा फल बड़ा है ?' उन्होंने कहा–'मनुष्योंकी लज्जा रखने वाली वउणी (कपास)का फल बड़ा है ।'

सोमप्रभसूरि मिलन और अपराधी चूहेको शिक्षा–

सं० १५०३ में विरचित श्रीसोमधर्मकृत उपदेशसप्तति और संस्कृत जिनप्रभसूरि-प्रबन्धमें लिखा है कि–एक वार श्रीजिनप्रभ सूरिजी पाटणके निकटवर्ती जंघराल नगरमें पधारे तो वहां तपागच्छीय श्रीसोमप्रभ सूरिजीसे मिलनेके लिये गये । सोमप्रभ सूरिजीने खड़े हो कर बहुमान पूर्वक आसनादि द्वारा उनका सन्मान करते हुए कहा–'भगवन् ! आपके प्रभावसे आज जैनधर्म जयवन्त वर्त रहा है । आपकी शासन-सेवा परम स्तुत्य है ।' प्रत्युत्तरमें श्रीजिनप्रभ सूरिजीने कहा–'सम्राट्की सेनाके साथ एवं सभामें रहनेके कारण हम चारित्रका यथावत् पालन नहीं कर सकते । आपका चरित्रगुण श्लाघनीय है ।' इस प्रकार दोनों आचार्योंका शिष्ट संभाषण हो रहा था, इतने-हीमें एक मुनिने प्रतिलेखन करते समय, अपनी सिक्किका

जानेकी आज्ञा दी। तब वृक्ष भी सम्राट्को नमस्कार करके स्वस्थान चला गया। इस अनोखे चमत्कारसे सूरिजीके प्रति सम्राट्की श्रद्धा अत्यधिक दृढ हो गई।

बादशाह महमद तुगुलक क्रमशः प्रयाण करते हुए मारवाड़ पहुंचा। वहांके लोग सम्राट्के दर्शनार्थ आये। उन्हें उत्तम वस्त्राभरणोंसे रहित देख कर सम्राट्ने सूरिजीसे कहा—'ये लोग लुटे हुएसे क्यों मांद्दम होते हैं?' सूरिजीने कहा—'राजन्! यह मरुस्थली है; जलाभावके कारण धान्यादिकी उपज अत्यल्प होती है, अतएव निर्धनतावश इनकी ऐसी स्थिति है।' सम्राट्ने करुणार्द्र होकर प्रत्येक मनुष्यको पाँच पाँच दिव्य वस्त्र और प्रत्येक स्त्रीको दो दो स्वर्णमुद्राएं एवं साड़ी प्रदान कीं।

महावीर प्रतिमाका बोलना—

कन्यानयनकी श्री महावीर प्रतिमाको सूरिजीने सम्राट्से प्राप्त की थी, जिसका उल्लेख ऊपर आ ही चुका है। प्राकृत प्रबन्धमें लिखा है कि—जिस समय सम्राट्ने उस प्रतिमाका दर्शन किया और सूरिजीने प्रतिमाको जैन संघके सुपुर्द करनेका उपदेश दिया, तब सम्राट्ने कहा—'यदि यह प्रतिमा मुंहसे बोले तो मैं आपको दे सकता हूं।' इस पर सूरिजीने कहा—'प्रतिमाकी विधिवत् पूजा करनेसे वह अवश्य बोलेगी।' सम्राट्ने कौतुकसे उनके कथनानुसार पूजन किया और दोनों हाथ जोड़ कर विनीत भावसे प्रतिमाको बोलनेके लिए प्रार्थना की। तत्काल ही देवप्रभावसे अपना दाहिना हाथ लम्बा करके वह इस प्रकार बोली—

विजयतां जिनशासनमुज्ज्वलं विजयतां भूभुजाधिपवल्लभा।
विजयतां भुवि साहि महम्मदो विजयतां गुरुसूरिजिनप्रभः।

अपने पूछे हुए प्रश्नोंका प्रभुप्रतिमासे सन्तोषजनक उत्तर पा कर सम्राट्के चित्तमें अत्यन्त चमत्कृति उत्पन्न हुई और उस प्रतिमाकी पूजाके निमित्त खरह और मार्तंड नामक दो ग्राम दिये और मन्दिर बनवा दिया।

सम्राट्की शत्रुंजय यात्रा और रायणकी दूधवर्षा—

एक बार सुल्तानने गुरुजीसे पूछा—'जिस प्रकार यह कान्हड़ महावीरका चमत्कारी तीर्थ है, क्या वैसा ही और कोई तीर्थ है?' सूरिजीने तीर्थाधिराज शत्रुंजयका नाम बतलाया। तब संघके साथ सम्राट् सूरिजीको लेकर शत्रुंजय गया। रायण रुंखकी यात्रा करते समय सूरिजीने कहा—'यदि इस रायणको मोतियोंसे वधाया जाय तो इसमेंसे दूधकी वर्षा होती है।' सम्राट्ने ऐसा ही किया, जिससे रायण रुंखसे दूध झरने लगा। इससे चमत्कृत हो कर सम्राट्ने वहां पर ऐसा लेख लिखवाया कि इस तीर्थकी जो अवज्ञा करेगा उसे सम्राट्की अवज्ञाका महान् दण्ड मिलेगा। शत्रुंजयकी तलहट्टीमें सर्व दर्शनोंके मान्य देवताओंकी मूर्तियां एकत्र कर मध्य भागमें जिनप्रतिमाको रखा और स्वयं सशस्त्र मुसाहिबोंके बीचमें बैठ कर लोगोंसे पूछा—'बड़ा कौन है?' लोग बोले—'आप ही बड़े हैं।' तो सुल्तानने कहा जिस प्रकार हथियार वाले सब सेवक और मैं उनका मालिक हूं वैसे ही अस्त्र शस्त्र धारण करने वाले सब देवता सेवक हैं और जैन तीर्थङ्कर सब देवोंमें बड़े हैं।

गिरनारकी अच्छेद्य प्रतिमा—

वहांसे सूरिजी एवं संघके साथ सम्राट्ने गिरनार पर्वतकी यात्रा की। वहांके श्रीनेमिनाथ प्रभुके बिम्बको अच्छेद्य और अभेद्य सुन कर परीक्षाके निमित्त उस पर कई प्रहार करवाये, पर प्रहारोंसे प्रभु-प्रतिमा खण्डित

५ अजितशान्तिवृत्ति (बोधदीपिका) सं० १३६५ पोष, ग्रं० ७४०, दाशरथिपुर (प्र०)

६ उपसर्गहरस्तोत्रवृत्ति (अर्थकल्पलता), ग्रं० २७१, सं० १३६४ पो० व० ९, साकेतपुर (प्र०)

७ भयहरस्तोत्रवृत्ति (अभिप्रायचन्द्रिका), सं० १३६४, पो० सु० ९, साकेतपुर।

८ पादलिप्तकृत वीरस्तोत्रवृत्ति, सं० १३८०, (चतुर्विंशतिप्रबन्ध अनुवादके परिशिष्टमें प्र०)

९ राजादि-रुचादिगणवृत्ति, सं० १३८१।

१० विविधतीर्थकल्प, सं० १३९० तकमें पूर्ण (सिंघी जैन ग्रन्थ मालामें प्रकाशित)

११ विदग्धमुखमण्डनवृत्ति (इसकी एक मात्र प्रति बीकानेरके श्रीजिनचारित्रसूरि-भंडारमें है)।

१२ साधुप्रतिक्रमणवृत्ति, जैनस्तोत्रसंदोह, भा० २, प्रस्तावना पृ० ५१ में इसका रचना काल सं० १३६४ लिखा है।

१३ हैमव्याकरणानेकार्थकोष, श्लो० २००, (पुरातत्त्व, वर्ष २, पृ० ४२४ में उल्लिखित)

१४ प्रत्याख्यानस्थानविवरण
१५ प्रव्रज्याभिधानवृत्ति
१६ वन्दनेस्थानविवरण
१७ विषमकाव्यवृत्ति
१८ पूजाविधि

} इनका उल्लेख, हीरालाल कापड़ियाकी 'चतुर्विंशति जिनानन्द-स्तुति'की प्रस्तावना, पृ० ४० में है।

१९ तपोटमतकुट्टन

२० परमसुखद्वात्रिंशिका, गा० ३२

२१ सूरिमन्त्राम्नाय (सूरिविद्याकल्प).

२२ वर्द्धमानविद्या, प्रा० गा० १७

२३ पद्मावती चतुष्पदिका, गा० ३७

२४ अनुयोगचतुष्टयव्याख्या (प्र०)

२५ रहस्यकल्पद्रुम, अलभ्य, उल्लेख ग्रं० नं० २४ में।

२६ आवश्यकसूत्रावचूरि (षडावश्यक टीका) उल्लेख 'जैन साहित्यनो सं० इतिहास' तथा जैनस्तोत्र-संदोह भाग २.

२७ देवपूजाविधि – विधिप्रपा परिशिष्टमें प्रकाशित.

जै० सा० सं० इ० ४२०, और जैनस्तोत्रसं० भा० २, प्रस्तावनामें इनके रचित ग्रन्थोंमें, चतुर्विधभावनाकुलक आदि कई अन्य कृतियोंका उल्लेख है पर हमें वे आगमगच्छीय जिनप्रभसूरिरचित प्रतीत होती हैं (देखो, जै० गु० क० भा० १, प्रस्तावना पृ० ८०–८१)

(झोली)को चूहों द्वारा काटी हुई देख कर सोमप्रभ सूरिजीको दिखलाई। श्रीजिनप्रभ सूरिजी भी पासमें बैठे थे, उन्होंने आकर्षणी विद्यासे उपाश्रयके समस्त चूहोंको रजोहरण द्वारा आकर्षित कर लिया और उनसे कहा कि–'तुममेंसे जिसने इस सिक्किकाको काटी हो वह यहां ठहरे, बाकी सब चले जाँय'। तब केवल अपराधी चूहा वहां रह गया, और बाकी सब चले गये। उसे भविष्यमें ऐसा न करनेको कह कर उपाश्रयका प्रदेश छोड़ देनेकी आज्ञा दे दी। इससे श्रीसोमप्रभ सूरि और मुनिमण्डली बड़ी विस्मित हुई।

योगिनी प्रतिबोध–

प्राकृत प्रबन्धमें लिखा है कि–एक बार चौसठ योगिनी श्राविकाके रूपमें सूरिजीको छलनेके लिये आईं और सामायक ले कर व्याख्यान श्रवणार्थ बैठीं। पद्मावती देवीने योगिनीयोंकी भावनाको सूरिजीसे विदित कर दी। तब सूरिजीने उन्हें व्याख्यान श्रवणमें निमग्न देख कर वहां खील करके स्तम्भित कर दीं। व्याख्यान समाप्तिके अनन्तर जब वे उठनेको प्रस्तुत हुईं तो अपनेको आसनों पर चिपकी हुई पाईं। यह देख कर सूरिजीने मृदु हास्यपूर्वक उनसे कहा–'मुनियोंके गोचरीका समय हो गया है, अतः शीघ्र वन्दना व्यवहार करके अवसर देखो!' मन-ही-मन लज्जित होती हुईं योगिनियोंने कहा–'भगवन्! हम तो आपको छलनेके लिये आईं थीं पर आपने तो हमें ही छल लिया। अब कृपा कर मुक्त करें।' सूरिजीने कहा–'हमारे गच्छके अधिपति जब योगिनीपीठ (उज्जैनी, दिल्ली, अजमेर, भरौंच) में जाँय तो उन्हें किसी प्रकारका उपद्रव नहीं करनेकी प्रतिज्ञा करो तो छोड़ सकता हूं।' योगिनियां इस बातका स्वीकार कर स्वस्थान चली गईं। इसके बाद खरतर गच्छके आचार्य सर्वत्र निर्विघ्नतया विहार करते रहे।

शैवोंको जैन बनाना–

सं० १३४४ (? ७४)में खंडेलपुरमें जंगल गोत्रके बहुतसे शिवभक्तोंको प्रतिबोध दे कर जैन बनाए।

देवीउपद्रव निवारण–

शुभशीलगणिके कथाकोशमें लिखा है कि–एक नगरमें श्रावक लोगोंको दो दुष्ट देवियां रोगोपद्रवादि किया करती थीं, सूरिजीको ज्ञात होने पर उन्होंने उन देवियोंको आकर्षित कीं। उसी समय उस नगरके संघने दो श्रावकोंको इसी कार्यके लिये सूरिजीके पास भेजा था। उन्होंने, उपद्रवकारी देवियोंको सूरिजी समझा रहे हैं, यह अपनी आँखोंसे देखा तो उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। उनके प्रार्थना करनेके पूर्व ही सूरिजीने उस उपद्रवको दूर करवा दिया। श्रावकोंने लौट कर संघके समक्ष सब वृत्तान्त कह कर सूरिजीकी भूरि भूरि प्रशंसा की।

श्रीजिनप्रभ सूरिजीकी साहित्य सम्पत्ति–

श्रीजिनप्रभ सूरिजीने साहित्यकी अनुपम सेवा की है। उनकी कृतियां जैन समाजके लिये अत्यन्त गौरवपूर्ण है। इन कृतियोंमेंसे रचना समयके उल्लेख वाली कृतियोंका निर्देश तो यथास्थान किया जा चुका है। पर बहुतसी कृतियोंमें रचना समयका उल्लेख नहीं है। अतः यहां उनकी सभी कृतियोंकी यथा ज्ञात सूची दी जाती है।

१ कातन्त्र विभ्रमटीका, ग्रं० २६१, सं० १३५२, योगिनीपुर, कायस्थ खेतलकी अभ्यर्थनासे।
२ श्रेणिक चरित्र (द्व्याश्रयकाव्य), सं० १३५६ (कुछ भाग प्रकाशित)
३ विधिप्रपा, ग्रं० ३५७४, सं० १३६३ विजयदशमी, कोशलानगर।
४ कल्पसूत्रवृत्ति–सन्देहविषौषधि, ग्रं० २२६९, सं० १३६४, अयोध्या, (प्रकाशित)

क्रमाङ्क	नाम	पद्य प्रारम्भ	भाषा	पद्यसंख्या	विशेष
२७	,, ,,	श्रीवर्द्धमानः सुखवृद्धयेऽस्तु	सं०	९	पद्यके आद्यान्ताक्षरोंमें नामोल्लेख
२८	,, (निर्वाणकल्याणकं)	श्रीसिद्धार्थनरेन्द्रवंश०	सं०	१९	
२९	,, ,,	सिरिवीयराय देवाहिदेव	प्रा०	३५	प्राकृत
३०	,, ,,	स्वःश्रेयससरसीरुह—	सं०	२६	पंचवर्गपरिहार
३१	,, (चतुर्विंशतिजिनस्तव)	आनन्दसुन्दरपुरन्दरनम्रः	सं०	२९	
३२	,, ,,	आनम्रनाकिपति०	सं०	२५	
३३	चतुर्विंशतिजिनस्तोत्र	ऋषभदेवमनन्तमहोदयं	सं०		त्र्यक्षर यमक
३४	चतुर्विंशतिजिनस्तोत्र	ऋषभ! नम्रसुरासुर०	सं०	२९	त्र्यक्षर यमक
३५	,,	ऋषभनायमनायनिभानन!	सं०	२९	,,
३६	,,	कनककान्तिधनुःशत०	सं०	२९	,,
३७	,,	जिनर्षभ! प्रीणितभव्यसार्थ!	सं०	७	
३८	,,	तत्त्वानि तत्त्वानि भृतेषु सिद्धं	सं०	२८	द्व्यक्षर यमक
३९	,,	पात्वादिदेवो दशकल्पवृक्षः	सं०	२९	श्लेष
४०	,,	प्रणम्यादि जिनं प्राणी	सं०	२८	
४१	,,	यं सततमक्षमाटोप०	सं०	३०	
४२	श्रीवीतरागस्तोत्र	जयन्ति पादा जिननायकस्य	सं०	१६	
४३	श्रीअर्हदादिस्तोत्र	मानेनोर्वी व्यहृत परितो	सं०	८	
४४	श्रीपंचनमस्कृतिस्तोत्र	प्रतिष्ठितं तमःपारे	सं०	३३	
४५	श्रीमन्त्रस्तोत्र	स्वःश्रियं श्रीमदर्हन्तः	सं०	५	
४६	पंचकल्याणकस्तोत्र	निलिम्पलोकाधितभूतलं	सं०	८	
४७	श्रीगौतमस्वामिस्तोत्र	जम्मपवित्तियसिरिमगह	प्रा०	२५	प्राकृत
४८	,,	श्रीमन्तं मगधेषु गोर्वर इति	सं०	२१	
४९	,,	ॐ नमस्त्रिजगन्नेतु	सं०	९	महामंत्रगर्भित
५०	श्रीशारदास्तोत्र	वाग्देवते! भक्तिमतां	सं०	१३	चरणसमानता
५१	श्रीशारदाष्टक	ॐ नमस्त्रिजगद्वन्दितक्रमे!	सं०	९	
५२	श्रीवर्द्धमानविद्या	इय वद्धमाण विज्जा	प्रा०	१७	
५३	सिद्धान्तागमस्तोत्र	नत्वा गुरुभ्यः	सं०	४६	
५४	आज्ञास्तोत्र (ऋषभ०)	नयगमभंगपहाणा	प्रा०	११	प्राकृत
५५	श्रीजिनसिंहसूरिस्तोत्र	प्रभुः प्रदद्यान्मुनिपक्षिपक्षे	सं०	१३	चरणसाम्य
५६	मङ्गलाष्टक	नतसुरेन्द्र! जिनेन्द्र!	सं०	९	चौबीस जिननामगर्भित
५७	नन्दीश्वरकल्पस्तव	आराध्य श्रीजिनाधीशान्	सं०	४९	

इनके अतिरिक्त हमारे अन्वेषणमें निम्नोक्त स्तोत्र और मिले हैं—

स्तुति-स्तोत्रादिकी सूची†

क्रमाङ्क	नाम	पद्य प्रारम्भ	भाषा	पद्यसंख्या	विशेष
१	श्रीजिनस्तोत्र (१० दिग्पाल- स्तुतिगर्भ)	अस्तु श्रीनाभिभूर्देवो	सं०	११	श्लेषमय
२	श्रीऋषभजिनस्तोत्र	अल्लाल्लाहि ! तुराहं		११	पारसी भाषा
३	श्रीऋषभजिनस्तोत्र	निरवधिरुचिरज्ञानं		४०	अष्टभाषामय
४	श्रीअजितजिनस्तोत्र	विश्वेश्वरं मथितमन्मथ०		२१	महायमक
५	श्रीचन्द्रप्रभजिनस्तुति	देवैर्यस्तुष्टुवे तुष्टैः	सं०	४	समचरण-साम्य
६	,, ,,	नमो महासेननरेन्द्रतनुज !		१३	षड्भाषामय
७	श्रीशान्तिजिनस्तवन	श्रीशान्तिनाथो भगवान्	सं०	२०	
८	श्रीमुनिसुव्रतजिनस्तोत्र	निर्माय निर्माय गुणर्द्धि	सं०		त्र्यक्षर यमक
९	श्रीनेमिजिनस्तोत्र	श्रीहरिकुलहीराकर०	सं०	२०	क्रियागुप्त
१०	श्रीपार्श्वजिनस्तोत्र	अधियदुपनमन्तो	सं०	१२	सं० १३६९
११	,, ,,	कामे वामेय ! शक्तिर्भवतु	सं०	१७	
१२	,, ,, (जीरापल्ली)	जीरिकापुरपतिं सदैव तं	सं०	१५	त्र्यक्षर यमक
१३	,, ,, (प्रातिहार्य)	त्वां विनुत्य महिमश्रिया महं	सं०	१०	समचरण-साम्य
१४	,, ,, (नवग्रहग०)	दोसावहारदक्खो	प्रा०	१०	प्राकृत
१५	,, ,,	पार्श्वनाथमनघं	सं०	९	
१६	,, ,,	पार्श्वं प्रभु शश्वदकोपमानम्	सं०	८	पादान्तयमक
१७	,, ,,	श्रीपार्श्व ! पादानतनागराज	सं०	८	,,
१८	,, ,,	श्रीपार्श्व भावतः स्तौमि	सं०	९	समचरण-साम्य
१९	,, ,,	श्रीपार्श्वः श्रेयसे भूयाद्	सं०	४४	
२०	,, (फलवर्द्धि)	सयलाहियाहिजलहर०	प्रा०	१२	प्राकृत
२१	श्रीवीरजिनस्तोत्र	असमशमनिवासं	सं०	२५	विविधछंद जाति
२२	श्रीवीरजिनस्तोत्र	कंसारिक्रमनिर्यदापगा०	सं०	२५	छंदनाममय
२३	,, ,,	चित्रैः स्तोष्ये जिनं वीरं	सं०	२७	चित्रमय
२४	,, ,,	निस्तीर्णविस्तीर्णभवार्णवं	सं०	१७	लक्षणप्रयोग
२५	,, (पंचकल्याणक)	पराक्रमेणेव पराजितोऽयं	सं०	३६	
२६	,, ,,	श्रीवर्द्धमानपरिपूरित०	सं०	१३	

† इनमेंसे नं० ८, १५, २१, २२ अप्रकाशित हैं, अवशेष सब प्रकरण रत्नाकर, जैनस्तोत्रसमुच्चय, जैनस्तोत्रसन्दोह, प्राचीनजैनस्तोत्रसंग्रह आदिमें प्रकाशित हो गये हैं। नं० २ सावचूरि जैन साहित्यसंशोधकमें प्रकाशित हो चुका है। नं० १४, २१ की अवचूरि, टिप्पण उपलब्ध है। पं० लालचंद भगवानदासने इस सूचीके अतिरिक्त "[illegible] कल्पतरु" आदि बड़े [illegible] भी नाम लिखा है। हीरालाल रसिकदास कापड़िया सूरिजीके सभी स्तोत्रोंका संग्रहग्रन्थ सम्पादित करके दे० ला० पु० फंडसे प्रकाशित करने वाले हैं। यह शीघ्र ही प्रगट हो, [illegible]मारी मनोकामना है।

८ श्रीजिनराज सूरि—इनकी प्रतिष्ठित प्रतिमाका लेख सं० १५६२ वै० सु० १० का प्रकाशित है।

९ श्रीजिनचन्द्र सूरि—इनकी प्रतिष्ठित प्रतिमाका लेख सं० १५६६ ज्येष्ठ सुदि २ और सं० १५६७ मा० सु० ५ के उपलब्ध हैं।

१०A श्रीजिनभद्र सूरि—इनकी प्रतिष्ठित प्रतिमाओंके लेख सं० १५७३ वै० सु० ५ और सं० १५६८ मि० सु० ७ के प्रकाशित हैं।

१०B श्रीजिनमेरु सूरि।

११ श्रीजिनभानु सूरि—आप श्रीजिनभद्र सूरिजीके शिष्य थे (सं० १६४१)। इसके पश्चात् आचार्य परम्पराके नाम उपलब्ध नहीं है। सं० १७२६ के नयचक्र वचनिकासे—जो कि श्रीजिनप्रभ सूरिजीकी परम्पराके पं० नारायणदासकी प्रेरणासे कवि हेमराजने बनाई थी—श्रीजिनप्रभ सूरिजीकी परम्परा १८ वीं शताब्दीतक चली आ रही थी, ऐसा प्रमाणित होता है।

श्रीजिनप्रभ सूरिजीकी परम्परामें चारित्रवर्द्धन अच्छे विद्वान् हुए हैं जिनके रचित **'सिन्दूर प्रकर टीका' (सं० १५०५), नैषधमहाकाव्य टीका, रघुवंश टीका**—आदि ग्रन्थ उपलब्ध हैं। श्रीजिनप्रभ सूरिजीके शिष्य वाचनाचार्य उदयाकरगणि, जिन्होंने विधिप्रपाका प्रथमादर्श लिखा था, रचित श्रीपार्श्वनाथकलश, गा० २४ हमारे संग्रहके गुटकेमें उपलब्ध है। दि० जैन विद्वान्, पं० बनारसीदासजी, जिनप्रभ सूरिजीके शाखाके विद्वान् भानुचन्द्रके पास प्रतिक्रमणादि पढे थे, ऐसा वे स्वयं अपनी जीवनीमें लिखते हैं।

उपसंहार—

उपर्युक्त वृत्तान्तसे, श्रीजिनप्रभ सूरिजीका जैन साहित्यमें बहुत ऊँचा स्थान है यह स्वतः प्रमाणित हो जाता है। उन्होंने सुल्तान महम्मदको अपने प्रभावसे प्रभावित कर जैन समाजको निरुपद्रव बनाया, जैन तीर्थों व मन्दिरोंकी सुरक्षा की। सम्राट्को समय समय पर सत्परामर्श दे कर दीन दुःखियोंका कष्ट निवारण किया। उसकी रुचिको धार्मिक बना कर जनता पर होने वाले अत्याचारोंको रोका। जैन शासनकी तो इन सब कार्योंसे शोभा बढी ही, पर साथ साथ जन साधारणका भी बहुत कुछ उपकार हुआ।

सूरिजीने साहित्यकी जो महान् सेवा की उससे जैनसाहित्य गौरवान्वित है। उनका **विविध तीर्थकल्प** ग्रन्थ भारतीय साहित्यमें अपनी सानी नहीं रखता। इस ग्रन्थसे सूरिजीका विहार कितना सार्वत्रिक था, और पुरातन स्थानोंका इतिवृत्त संचय करनेकी उनमें कितनी बडी लगन थी,—यह बात इस ग्रन्थके पढने वालोंसे छिपी नहीं है। इसी प्रकार द्वयाश्रयकाव्यसे सूरिजीकी अप्रतिम प्रतिभाका अच्छा परिचय मिलता है। विधिप्रपा ग्रन्थ भी आपके श्रुतसाहित्यके गम्भीर अध्ययन और गुरुपरम्परासे प्राप्त ज्ञानका प्रतीक है। आपके निर्माण किये हुए स्तुतिस्तोत्र, स्तोत्रसाहित्यमें महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। एक ही व्यक्ति द्वारा इतने सुन्दर और वैशिष्ट्यपूर्ण अनेक स्तोत्रोंका निर्माण होना अन्यत्र नहीं पाया जाता। तपागच्छीय सोमतिलक सूरिसे मिलने पर सूरिजीने जो शब्द कहे, अपने रचित स्तोत्रोंको उन्हें समर्पित किया एवं अन्य गच्छीय विद्वानोंको शास्त्रीय अध्ययन कराया, उन्हें ग्रन्थ रचनेमें साहाय्य प्रदान किया—इन सब बातोंसे सूरिजीकी उदार प्रकृतिकी अच्छी झांकी मिलती है।

इस प्रकार विविध सत्प्रवृत्तियों द्वारा श्रीजिनप्रभ सूरिने जैन शासनकी महान् प्रभावना करके एक विशिष्ट आदर्श उपस्थित किया। मुसलमान बादशाहों पर **इतना अधिक प्रभाव डालने वालोंमें आप सर्वप्रथम हैं।** जैन धर्मकी महत्ताका और जैन विद्वानोंकी विशिष्ट प्रतिभाका सुन्दर प्रभाव डालनेका काम सबसे पहले इन्होंने ही किया। सचमुच ही जैनधर्मके ये एक महाप्रभावक आचार्य हो गये।

क्रमाङ्क	नाम	पद्य प्रारम्भ	भाषा	पद्यसंख्या	विशेष
५८	श्रीफलवर्धिपार्श्वस्तोत्र	श्रीफलवर्धिपार्श्वप्रभो कारं	सं०	९	सं० १३८२ चै० सु० १०
५९	फलवर्द्धिपार्श्वस्तोत्र	जयामहा श्रीफलवर्धिपार्श्व	सं०	२१	
६०	पार्श्वनाथस्तवन	असमसरर्णाय जउ निरंतर	प्रा०	७	ऋतुवर्णन
६१	परमेष्टिस्तव (मंगलाष्टक)	जितभावद्विषं सर्वविदाम्	सं०	८	
६२	चन्द्रप्रभचरित्रस्तोत्र	चंदप्पह २ पणमिय च२०	प्रा०	३२	
६३	मथुरायात्रास्तोत्र	सुराचलश्रीजितदेवनिर्मिता	सं०	१०	
६४	शत्रुञ्जययात्रास्तोत्र	श्रीशत्तुंजयतित्थे	प्रा०	९	सं० १३७६यात्रा
६५	मथुरास्तूपस्तुतयः	श्रीदेवनिर्मितस्तूपश्रृंगारति०	सं०	४	
६६	पंचकल्याणकस्तुतयः	पद्मप्रभप्रभोर्जन्मगर्भा०	सं०	१५	
६७	त्रोटक	निय जम्मु सुफल	प्रा०	५	
६८	पहाड़िया राग	अकल्ल अमल्लअ जोणि संभवु	प्रा०	४	
६९	प्रभातिक नामावलि	सौभाग्याभाजनमभंगुर	(विधिप्रपाके परिशिष्टमें प्रकाशित)		
७०	प्राकृतसिद्धान्तस्तव	सिरि वीरजिणं सुयरयण	(समाचारी शतक पृ० ७६ में प्र०)		
७१	उवसग्गहरपादपूर्ति पार्श्वस्तवन		गा०	२२	
७२	मायाबीजकल्प		प्रा०गा०	३०	
७३	शान्तिनाथाष्टक	अजिकुह काफु जुनू०	पारसीभाषाचित्रक		

श्रीजिनप्रभसूरिकी शिष्यपरम्परा ।

१ श्रीजिनदेव सूरि—आप सा० कुलधरकी पत्नी वीरिणीकी कुक्षिसे उत्पन्न हुए थे। आपने श्रीजिन-सिंह सूरिजीके पास दीक्षा ग्रहण की थी। जिनप्रभ सूरिजीने इन्हें अपने पद पर स्थापित किये थे। सुल्तान महमदसे जब सूरिजी मिले तब आप भी साथ ही थे। सम्राट्ने सूरिजीके साथ इनका भी बड़ा सन्मान किया था। सूरिजीके विहार करने पर आप सम्राट्के पास बहुत समय तक रहे थे और इनका सम्राट् पर अच्छा प्रभाव था। इनका उल्लेख आगे आ चुका है। आपकी रचित **कालकाचार्यकथा** प्रकाशित हो चुकी है।

२ श्रीजिनमेरु सूरि—आप श्री जिनदेव सूरिजीके शिष्य थे। इनके गुरुभाई श्रीजिनचंद्र सूरि थे।

३ श्रीजिनहित सूरि—इनका रचा हुआ एक वीरस्तवन गा० ९ (हमारे संग्रहके गुटकेमें) है। इनके प्रतिष्ठित १ पार्श्वनाथ पंचतीर्थीका लेख सं० १४४७ फा० व० ८ सोम श्रीमाल ठो० धिरीयाराम कर्मसिंह कारित, बुद्धिसागरसूरिके धातुप्रतिमा लेखसंग्रह, भा० २, लेखांक ६१७ में प्रकाशित हो चुका है।

४ श्रीजिनसर्व सूरि

५ श्रीजिनचन्द्र सूरि—इनके प्रतिष्ठित प्रतिमा लेख, सं० १४६९, १४९१, १५०६ के उप-लब्ध होते हैं।

६ श्रीजिनसमुद्र सूरि—इनकी रचित कुमारसंभव टीका, डेकन कालेजवाले संग्रहमें उपलब्ध है।

७ श्रीजिनतिलक सूरि—इनकी प्रतिष्ठित प्रतिमाओंके लेख सं० १५०८ से [illegible] तक के उपलब्ध हैं। इनके शिष्य राजहंसकी की हुई वाग्भटालङ्कारवृत्ति सं० १४८[illegible] में उपलब्ध है।

तेर पंचासियइ पोससुदि आठमि सणिहिं वारे । मेटिउ असपते महमदो सुगुरु ढीलियनयरे ॥ २ ॥
आपुणु पास वइसारए नमिवि आदरि नरिंदो । अभिनव कवितु वखाणिवि राय रंजइ मुणिंदो ॥ ३ ॥
हरखितु देइ राय गय तुरय धण कणय देस गाम । भणइ अनेवि जे चाहहो ते तुह दिउ इमा(म?) ॥ ४ ॥
लेइ णहु किंपि जिणप्रभुसुरि मुणिवरो अति निरीहो । श्रीमुखि सलहिउ पातसाहि विविहपरि मुणिसीहो ॥ ५ ॥
पूजिवि सुगुरु वखादिकिहिं करिवि सहिथि निसाणु । देइ फुरुमाणु अनु कारवइ नव वसति राय सुजाणु ॥६॥
पाटहथि चाडिवि जुगपवरु जिणदेवसुरि समेतो । मोकलइ राउ पोसालहं वहु मलिक परिकरीतो ॥ ७ ॥
वाजहि पंच सबुद गहिरसरि नाचहि तरुण नारि । इंदु जम गइंद सठितु गुरु आवइ वसतिहिं मझारि ॥८॥
धंमधुरधवल संघवइ सयल जाचक जन दिंति दानु । संघ संजूत वहु भगतिं भरि नमहिं गुरु गुणनिधानु ॥९॥
सानिधि पउमिणि देवि इम जगि जुग जयवंतो । नंदउ जिणप्रभसूरि गुरु संजमसिरि तणउ कंतो ॥१०॥

॥ जिनप्रभसूरीणां गीतं ॥

[४]

के सलहउ ढीली नयरु हे, के वरनउ वखाणू ए ।
जिणप्रभुसुरि जगि सलहीजइ, जिणि रंजिउ सुरताणू ए ॥ १ ॥
चलु सखि वंदण जाह, गुण गरुवउ जिणप्रभुसुरि ।
रलियइ तसु गुणगाह, रायरंजणु पंडियतिलओ ॥ आंचली ॥
आगमु सिद्धंतु पुराणु वखाणिइ, पडिबोहइ सब लोई ए ।
जिणप्रभसुरि गुरु सारिखउ, हो विरलउ दीसइ कोई ए ॥ २ ॥
आठाही आठमिहिं चउथी, तेडावइ सुरिताणू ए ।
प्रहसितु मुख जिणप्रभुसुरि चलियउ, जिम ससि इंदु विमाणू ए ॥ ३ ॥
असपति कुदुबुदीनु मनि रंजिउ, दीठलि जिणप्रभसूरी ए ।
एकंतिहि मन सासउ पूछइ, रायमणोरह पुरी ए ॥ ४ ॥
गामन्तरिय पटोला गजवल, रूढउ देइ सुरिताणू ए ।
जिणप्रभसुरि गुरु कंपि न ईछइ, तिहुयणि अमलिय माणू ए ॥ ५ ॥
ढोल दमामा अरु नीसाणा, गहिरा वाजइ तूरा ए ।
इणपरि जिणप्रभसुरि गुरु आवइ, संघमणोरह पूरा ए ॥ ६ ॥

---

[५] मंगलु सीधिहि मंगलु साहू मंगलु आयरिय मंगलु च[उ]विहसंघ पर देवाधिदेवा ।
मंगलु राणिय तिसलादेविहि वीरजिणिंदहं जा जणणि ।
मंगलु सब्बसिधंतपरा मंगलु वहु लपमीइ मंगलु चविह संघ पर देवाधिदेवा ॥ आंचली ।
मंगलु रायहं कुमरहपालहं जेणि पलाविय जीव दया ॥
मंगलु सूरिहि जिणप्रभसूरिहि वाव्र(च ?)गजी मडिया ॥

॥ मंगल गीतं ॥

[६] **श्रीजिनदेवसूरि गीत–**

निरुपम गुणगणमणि निधानु संजमि प्रधानु, सुगुरु जिणप्रभसुरि पट उदयगिरि उदयले नवल भाणु ॥१॥
वंदहु भविय हो सुगुरु जिणदेवसुरि ।
ढिलिय वर नयरि देसण अमिय रसि वरिसए मुणिवरु जणु घणु ऊनविउ ॥ आचली ॥
जेहि कन्नाणापुर मंडणु सामिउं वीरजिणु । महमद राइ समप्पिउ थापिउ सुभ लगनि सुभदिवसि ॥ २ ॥
नागि विनागि फलाकुसले विद्यावलि अजेओ । लखण छंद नाटक प्रमाण वखाणए आगमि गुणि अमेओ ॥३॥

जिनप्रभ सूरिकी परम्पराके प्रशंसात्मक कुछ गीत और पद

[इस शीर्षकके नीचे जो कुछ प्राचीन गीत, पद और गाथादि दिये जाते हैं वे बीकानेरके भंडारकी एक प्राचीन प्रकीर्ण पोथीमें उपलब्ध हुए हैं। यह पोथी प्रायः इन्हीं जिनप्रभ सूरिकी शिष्यपरंपरामेंके किसी यतिकी हाथकी लिखी हुई प्रतीत होती है। इसमें जो 'गुर्वावलि गाथा कुलक' लिखा हुआ मिलता है उसमें जिनहित सूरि तकका नामनिर्देश है उसके बादके किसी आचार्यका नाम नहीं है। अतः यह जिनहित सूरिके समयमें—वि० सं० १४२५–५० के अरसेमें—लिखी गई होनी चाहिए। इस पोथीमें प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश और तत्कालीन देश्य भाषामें बनी हुई अनेक प्रकीर्ण रचनाओंका संग्रह है। इसी संग्रहमेंसे ये निम्नोद्धृत कृतियां, जो श्रीजिनप्रभ सूरिकी परंपराके गुरु और शिष्य रूप आचार्योंके गुणगानात्मक रूप हैं—उपयोगी समझ कर यहां पर प्रकाशित की जाती हैं। इनमें जिनप्रभ सूरिके गुणवर्णनपरक जो गीत हैं वे उसी समयके बने हुए होनेसे भाषा और इतिहास दोनोंकी दृष्टिसे उल्लेखनीय हैं। — **जिनविजय**]

[१] जिनेश्वरसूरिवधावणा गीत—

जलाउर नयरि वधावणउं।
चलु न चलु हलि सखे देखण जाहिं। गणधरु गोतमसामि समोसरिउ ॥ १ ॥
वीरजिणभवणि देवलोकु अवतरियले। सुगुरु जिणसरसुरि मुनिरयणु ॥ आंचली ॥
चउविधि रयली समोसरणु।
चतुर्विध वइठले संघसमुदाओं। जिणसरसूरि सूध देसण करए ॥ २ ॥
दिढ पहरि ग्या[रि]सि दिण सोधियले।
सुभ लगनि सुभ मुहु[र]ति महतरि पढ्ढ थापियलि। चउदह मुणिवर दिख दिनले ॥ ३ ॥
तवसिरि विवेसिरि संजमसिरि।
नाणि दरिसणि दुद्धरु संजमु भरु लइयले। जिणसरसुरि फुड वचन समुधरिउं ॥ ४ ॥

॥ वधावणागीतं ॥

---

[२] श्रीजिनसिंहसूरि गीत—

हियडइ लाछि परी वसए चलणइ ए आंबिकदेवि। उठि गोरा उठि पातलए।
उठि सहिय परगलओं विहाणउ, लइ चादणु करि वादणओं ॥ १ ॥
वादणओं करि रिसभ जिणेसर, जेणइ धरमु प्रकासियओं ॥ २ ॥
वंदणडउ करि संतिजिणेसर, जिणि सरणागत राखियओं ॥ ३ ॥
वादणडउ मुणि सुव्रतसामिय, जीणइ मीतु प्रतिबोधियओं ॥ ४ ॥
वादणडउ करि नेमिजिणेसर, जेणइ जीव रखावियए ॥ ५ ॥
वादणडउ करि पासजिणेसर, जेणइ कमठु हरावियओं ॥ ६ ॥
वांदणउ करि वीरजिणेसर, जेणइ मेरु कंपावियओं ॥ ७ ॥
वांदणडउ गुरु वडउ सोहइ, जिणसिंघसूरि चारिति नीमलओं ॥ ८ ॥

॥ गीतपदानि ॥

---

[३] श्रीजिनप्रभसूरि गीत—

उदयले खरतरगच्छगयणि अभिनवउ सहसकरो। सिरि जिणप्रभसूरि गणहरओ जंगमकल्पतरो ॥ १ ॥
वंदह भविक जना जिणसासणवयणवधर्मनो। छत्तीस गुण संजुतो धायमयगलदलणसीह... [illegible] ...वाणी ॥

अर्हम्

खरतरगच्छालङ्कारश्रीजिनप्रभसूरिकृता

विधि प्रपा

नाम

सुविहितसामाचारी ।
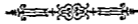
नमिय महावीरजिणं[1], सम्मं सरिउं गुरूवएसं च[2] ।
सावय-मुणिकिच्चाणं सामायारिं लिहामि अहं ॥ [१]

§ १. सम्मत्तमूलत्तेण गिहिधम्मकप्पतरुणो पढमं सम्मत्तारोहणविही भण्णइ – तत्थ जिणभवणे समोसरणे वा सुहेसु तिहि-मुहुत्ताइएसु उवसमाइगुणगणासयस्स[3] उवासयस्स विसिट्ठकयनेवत्थस्स चंदणरसरइय-भालयलतिलयस्स जहासत्ति निवत्तियजिणनाहपूओवयारस्स अखंडअक्खयाणं वड्ढंतियाहिं तिहिं मुट्ठीहिं गुरू अंजलिं भरेइ । सन्निहियसावओ साविया वा तदुवरि पसत्थफलं नालिकेराइ धारेइ । तओ नवकार-पुव्वं समोसरणं तिपयाहिणी काउं सावओ इरियावहियं पडिक्कमिय खमासमणं दाउं भणइ – 'इच्छा-कारेण तुब्भे अम्हं सम्मत्तसामाइय-सुयसामाइयआरोवणत्थं चेइयाइं वंदावेह ।' गुरू भणइ – 'वंदावेमो ।' पुणो खमासमणं दाउं – 'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं सम्मत्तसामाइय-सुयसामाइयआरोवणत्थं वासनिक्खेवं करेह'त्ति भणइ । तओ 'करेमो'त्ति भणित्ता निसिज्जासीणो कयसकलीकरणो सूरिमंतेण इयरो वद्धमाण-विज्जाए वासे अभिमंतिय तस्स सिरे देइ; चंदणक्खए य रक्खं च करेइ । तओ तं वामपासे ठवित्ता वड्ढंति[4]-याहिं थुईहिं संघसहिओ गुरू देवे वंदइ । चउत्थथुईअणंतरं सिरिसंतिनाह–संतिदेवया–सुयदेवया–[5]भवणदेवया–खेत्तदेवया–अंबा–पउमावई–चक्केसरी–अच्छुत्ता–कुबेर–बंभसंति–गोत्तसुरा–सक्काइवेयावच्चगराणं नवकारचिंतणपुव्वं[6] थुईओ । इत्थ य अंबाथुइं जाव थुईओ अवस्सदायव्वाओ । सेसाणं न नियमु त्ति गुरूवएसो । अम्हाणं पुण पउमावई गच्छदेवय त्ति तीसे थुई अवस्सदायव्वा । तओ सासणदेवयाकाउ-स्सग्गे चउरो उज्जोयगरा पणुवीसुस्सा चिंतिज्जंति । तओ गुरू पारित्ता थुइं देइ । सेसा काउस्सग्गट्ठिया सुणंति । तओ सव्वे पारित्ता उज्जोयगरं पढित्ता नवकारतिगं भणित्ता जाणूसु भविय सक्कत्थयं भणंति । 'अरिहाणा'दि थुत्तं गुरू भणइ । तओ 'जयवीयराय' इच्चाइ पणिहाणगाहादुगं सव्वे भणंति । इच्चेसा पक्रिया सव्वनंदीसु तुल्ला; णवरं तेण तेण अभिलावेणं । तओ खमासमणं दाउं सड्ढो भणइ – 'इच्छाकारेणं तुब्भे अम्हं सम्मत्तसामाइय-सुयसामाइयआरोवणत्थं काउस्सग्गं करावेह ।' गुरू भणइ – 'करावेमो' । पुणो खमासमणं दाउं भणइ – 'सम्मत्तसामाइय-सुयसामाइयआरोवणत्थं करेमि काउस्सग्गं'ति । तओ काउस्सग्गे सत्तावीसु-स्सासं उज्जोयगरं चिंतिय पारित्ता मुहेण भणइ सव्वं । गुरू वि काउस्सग्गं करेइ त्ति अन्ने । तओ खमासमणं

---

1 B वीरजिनं । 2 B वा । 3 B °गणायरस्स । 4 B वड्ढंतयाहिं । 5 B भुवण° । 6 A चिंतणपुव्विं ।

धनु कुलघरु जसु कुलि उपंनु इहु मुणिरयणु । धनु वीरिणि, रमणि चूडामणि जिणि गुरु उरि धरिउ ॥४॥
धनु जिणसिंघसूरि दिखियाओं धनु चंद्रगच्छु । धनु जिणप्रभसुरि निजगुरु जिणि निजपाटिहि थापियाओं ॥५
हलि सखे । घणउ सोहावणिय रलियावणिय । देसण जिणदेवसुरि मुणिरायहं जाणउं नितु सुणउं ॥ ६॥
महिमंडलि धरमु समुधरए जिणसासणिहिं । अणुदिण प्रभावन करइ गणधरो अवयरिउ वयरसामि ॥ ७ ॥
वादिय मयगल दलणसीहो विमल सील धरु । छत्रीस गणधर गुण कलिउ चिरु जयउ जिणदेवसुरि गुरु ॥८॥

॥ श्री आचार्याणां गीतपदानि ॥

[७] सुगुरु परंपरा गीत–

खरतर गच्छि वर्द्धमानसुरि जिणेसरसूरि गुरो ।
अभयदेवसूरि जिणवल्लहसुरि जिणदत्तु जुगपवरो ।
सुगुरु परंपर थुणहु तुम्हि भवियहु भत्तिभरि ।
सिद्धिरमणि जिम वरइ सयंवर नवियपरि ॥ आचली ॥
जिणचंदसूरि जिणपतिसुरि जिणेसरु गुणनिधानु ।
तदणुक्रमि उपनले सुगुरु जिणसिंघसूरि जुगप्रधानु ॥ २ ॥
तासु पटि उदयगिरि उदयले जिणप्रभसूरि भाणु ।
भवियकमलपडिबोहणु मिच्छततिमिरहरणु ॥ ३ ॥
राउ महंमदसाहि जिणि नियगुणिरंजियाओं ।
मेदमंडलि ढिल्लियपुरि जिणधरमु प्रकटु किओं ॥ ४ ॥
तसु गछ धुरधरणु भयलि जिणदेवसुरि सूरिराओं ।
तिणि थापिउ जिणमेरुसूरि नमहु जसु मनइ राओं ॥ ५ ॥
गीतु पवीतु जो गायए सुगुरुपरंपरह । सयल समीहि सिझहिं पुहविहिं तसु नरहं ॥ ६ ॥

॥ सुगुरु परंपरा गीतं ॥

[८] गुर्वावली गाथा कुलक–

वंदे सुहंमसामि जंबूसामि च पभवसूरिं च । सिज्जंभव-जसभद्दं अज्जसंभूयं तहा वंदे ॥ १ ॥
तह भद्दबाहुसामि च थूलभद्दं जईजि(ज)णवरिट्ठं । अज्ज महा[गि]रिसूरिं अज्जसुहत्थि च वंदामि ॥ २ ॥
तह संतिसूरि-हरिभद्दसूरिं मं(सं)डिल्लसूरिजुगपवरं । अज्जसमुद्दं तह अज्जमंगु अज्जधम्मं अहं वंदे ॥ ३ ॥
भद्दगुत्तं च वइरं च अज्जरक्खियमुणिवरं । अज्जनंदिं च वंदामि अज्जनागहत्थि तहा ॥ ४ ॥
रेवइ-खंडिल्ल-हिमवंत-नाग-उज्जोयसूरिणो वंदे । गोविंद-भूइदिन्ने लोहिच्चिय-दूससूरिओं ॥ ५ ॥
उमासाइवायगे वंदे वंदे जिणभद्दसूरिणो । हरिभद्दसूरिणो वंदे वंदे हं देवसूरिं पि ॥ ६ ॥
तह नेमिचंदसूरिं उज्जोयणसूरिपभिइणो वंदे । तह वद्धमाणसूरिं सूरिसिरिजिणेसरं वंदे ॥ ७ ॥
जिणचंदं अभयसूरिं सूरिंजिणवल्लहं तहावंदे । जिणदत्तं जिणचंदं जिणवइ य जिणेसरं वंदे ॥ ८ ॥
संजमसरयनिउयं सुमुणीण तिलयभरधरणं । सुगुरुं गणहररयणं वंदे जिणसिंहसूरिमहं ॥ ९ ॥
जिणपहसूरिमुणिंदो पयडियनाणेसरनिहुयणाणंदो । संपइ जिणवरसिरियवद्धमाणतित्थं पभावेइ ॥ १० ॥
सिरिजिणपहसूरीणं पट्टंमि पइट्ठिओ गुणगरिट्ठो । जयइ जिणदेवसूरी, निययपभाविजयसुरसूरी ॥ ११ ॥
जिणदेवसूरिसीसोदयगिरिचूडाविभूसणे भाणू । जिणमेरुसूरिसुगुरू जयउ जए सयलविज्जनिही ॥ १२ ॥
जिणहिलसूरिमुणिंदो तस्सं भवियकुमुयवणचंदो । भयणकरिकुंभविद्दलणदुद्दरपंचाणणो जयउ ॥ १३ ॥
सुगुरुपरंपरगाहाकुलयमिणं जे पढेइ पच्चूसे । सो लहइ मणोवंछियसिद्धिं सयं पि भवजणे ॥ १४ ॥

॥ इति गुर्वावलीगाथाकुलकं समाप्तं ॥ ८ ॥

होइ वले विय जीयं, जीए वि पहाणयं तु विन्नाणं ।
विन्नाणे सम्मत्तं, सम्मत्ते सीलसंपत्ती ॥ [६]
सीले खाइयभावो, खाइयभावेण केवलं नाणं ।
केवलिए पडिपुन्ने, पत्ते परमक्खरे मोक्खे ॥ [७]
पन्नरसंगो एसो समासओ मोक्खसाहणोवाओ ।
इत्थं वहू पत्तं ते थेवं संपावियव्वं ति ॥ [८]
तो तह कायव्वं ते जह तं पावेसि थोवकालेणं ।
सीलस्स नऽत्थऽसज्झं जयंमि तं पावियं तुमए–त्ति ॥ [९]

पुरिसो जाणुट्ठिओ इत्थियाओ उद्धट्ठियाओ सुणंति । जिणपूयणाइ[1] अभिग्गहे य गुरू देइ । जिणपूया कायव्वा । दव्वभावभिन्ने लोइय-लोउत्तरिए अणाययणे न गंतव्वं । परतित्थे तव-न्हाण-होमाइ धम्मत्थं न कायव्वं । लोइयपव्वाइं गहण–संकंति–उत्तरायण–दुवट्ठमी–असोयट्ठमी–करगचउत्थी–चित्तट्ठमी–महानवमी–विहिसत्तमी–नागपंचमी–सिवरत्ति–वच्छवारसि–दुद्धवारसि–ओघवारसि–नवरत्तपूआ–होलियपयाहिणा–वुहअट्ठमी–कज्जलतइया–गोमयतइया–हलिद्दुव[2] चउद्दसी–अणंतचउद्दसी–सावणचंदण[3] छट्ठी–अक्कछट्ठी–गोरीभत्त–रविरहनिक्खमणपमुहाइं न कायव्वाइं । तहा कज्जारंभे विणायगाइनामग्गहणं, ससिरोहिणिगेयं, वीवाहे विणायगठवणं, छट्ठीपूयणं, माऊणं ठावणा, वीयाचंदस्स दसियादाणं, दुग्गाईणं ओवाइयं, पिंडपाडणं, थावरे पूया, माऊणं मल्लगाइं, रवि-ससि-मंगलवारेसु तवो, रेवंत-पंथदेवयाणं पूया, खेत्ते सीयाइअच्चणं, सुन्निणि–रुप्पिणि–रंगिणिपूया, माहे घयकंबलदाणं तिलदब्भदाणेण[4] जलंजली, गोपुच्छे करुस्सेहो, सवत्ति-पियरपडिमाओ, भूयमल्लगं, सद्ध-मासिय-वरिसिय[5] करणं, पव्व[6] दाणं, कन्नाहलग्गहो, जलघडदाणं, मिच्छदिट्ठीणं लाहणयदाणं, धम्मत्थं कुमारियाभत्तं, संडविवाहो, पियरहं नईकूवाइ-खणणपइट्ठोवएसो, वायस-विरालाइपिंडदाणं, तरुरोवण-वीवाहो, तालायरकहासवणं, गोधणाइपूया, धम्मग्गिठयकरणं, इंदयाल-नडपिच्छण-पाइक्क-महिस-मेसाइ-जुज्झ-भूयखिल्लणाइदरिसणं, मूल-असिलेसाजाए बाले बंभणाहवण-तव्वयणकरणं,–एमाइ मिच्छत्तठाणाइं परिहरियव्वाइं । सक्कत्थएण वि तिकालं चीवंदणं कायव्वं । छम्मासं जाव दोवाराओ संपुण्णा चीवंदणा कायव्वा । नवकाराणं च अट्ठुत्तरं सयं गुणेयव्वं । बीया-पंचमी-अट्ठमी-एगारसीए चउदसीए उदिट्ठपुन्निमासु दोक्कासणाइतवं । जा जीवं चउवीसं नवकारा गुणेयव्वा । पंचुंबरी–मज्ज–मंस–महु–मक्खण–मट्टिया–हिम–करग–विस–राईभत्त–बहुबीय–अणंतकाय–अत्थाणय–घोलवडय–वाइंगण–अमुणियनामपुप्फ–फल–तुच्छ–फल–चलियरस–दिणदुगातीयदहिमाईणि वज्जेयव्वाइं । संगरफल्यिा–मुग्ग–मउट्ठ–मास–मसूर–कलाय–चणय–चवलय–वल्ल–कुलत्थ–मेरिथया–कंडुय–गोयारमाइ विदलाइं आमगोरसेण सह न जिमेयव्वाइं । एएसिं रायत्तयं न कायव्वं । निसिन्हाणं, अच्छाणियजलेण य दहाइसु ण्हाणं, अंदोलणं, जीवाणं जुज्झावणं, साहम्मिएहिं सद्धिं धरणगाइविरोहो, तेसुं च सीयंतेसुं सइविरिएऽभोयणं, चेइयहरे अणुचियगीयनट्टं निट्ठीवणाइआसायणाओ, देवनिमित्तं थावरपाडगकूवारामकरणाणि य वज्जणिज्जाइं । उस्सुत्तभासगलिंगीणं कुतित्थियाणं च वयणं न सद्दहेयव्वं । एमाइ अभिग्गहा गुरुणा दायव्वा । सो वि तम्मि दिणे साहम्मियवच्छल्लं सुविहियाणं च वत्थाइपडिलाहणं करेइ त्ति ॥

॥ सम्मत्तारोवणविही समत्तो ॥ १ ॥

1 B पूयणाय । 2 B हलिद्दुव° । 3 B वंदिण° । 4 B °दब्भदाणं दाणे जलं° । 5 B °वीरसिय° ।
6 A पवाराणं ।

दाउं भणइ—'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं सम्मत्तसामाइय-सुयसामाइयसुत्तं उच्चारावेह' त्ति। गुरू भणइ—'उच्चारावेमो'। तओ नवकारतिगं भणित्तु वारतिगं दंडगं भणावेइ। जहा—'अहं णं भंते तुम्हाणं समीवे मिच्छत्ताओ पडिक्कमामि; सम्मत्तं उवसंपज्जामि। नो मे कप्पइ अज्जप्पभिइ अन्नतित्थिए वा, अन्नतित्थिय-देवयाणि वा, अन्नतित्थियपरिग्गहियाणि अरहंतचेइयाणि वा; वंदित्तए वा, नमंसित्तए वा, पुव्विं अणालत्तएणं आलवित्तए वा, संलवित्तए वा; तेसिं असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, दाउं वा अणुप्पयाउं वा, तेसिं गंधमल्लाइं पेसेउं वा, नन्नत्थ रायाभिओगेणं, गणाभिओगेणं, बलाभिओगेणं, देवयाभिओगेणं, गुरुनिग्गहेणं, वित्तीकंतारेणं;—तं च चउव्विहं, तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ। तत्थ दव्वओ—दंसणदव्वाइं अहिगिच्च; खित्तओ जाव भरहम्मि मज्झिमखंडे; कालओ जाव जीवाए; भावओ जाव छलेणं न छलिज्जामि, जाव सन्निवाएणं न भुज्जामि, जाव केणइ उम्मायवसेण एसो मे दंसणपालण-परिणामो न परिवडइ; ताव मे एसो दंसणाभिग्गहो त्ति'॥ तओ सीसस्स सिरे वासे खिवेइ। तओ निसिज्जोवविट्ठो गुरू सकलीकरणरक्खामुद्दापुव्वयं अक्खए अभिमंतिय उवरिं पणव(ॐ)—भुवणेसर(ह्रीँ)—लच्छी-(श्रीँ)—अरहंतबीयाइं* हत्थेण लिहित्ता, लोगुत्तमाण पाए सुगंधे खिवित्ता, संघस्स देइ।

पंचपरमिट्ठिमुद्दा, सुरही-सोहग्ग-गरुडवज्जा य।
मुग्गरकरा य सत्तओ एया अक्खयपयाणं मि॥ [२]

§२. तओ खमासमणं दाउं सावओ भणइ—'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं सम्मत्तसामाइय-सुयसामाइयं आरोवेह'। गुरू भणइ—'आरोवेमो'। पुणो वंदिऊण सीसो भणइ—संदिसह किं भणामो?'। गुरू भणइ 'वंदित्ता पवेयह'। पुणो वंदिऊण सीसो भणइ†—'इच्छाकारेण तुब्भेहिं अम्हं सम्मत्तसामाइय-सुयसामाइयं आरोवियं?'। एवं पण्हे कए गुरू भणइ—'आरोवियं'। ३ खमासमणाणं; हत्थेणं, सुत्तेणं, अत्थेणं, तदुभएणं सम्मं धारणीयं चिरं पालणीयं। सीसो भणइ—'इच्छामो अणुसट्ठिं'। पुणो वंदिय भणइ—'तुम्हाणं पवेइयं; संदिसह साहूणं पवेएमि'। गुरू भणइ—'पवेयह'। तओ खमासमणं दाउं नमोक्कारं पढंतो पयाहिणं करेइ। 'गुरुगुणेहिं वड्ढाहि; नित्थारपारगा होहि'—त्ति भणंतो गुरू संघो य वासक्खए खिवेइ। एवं जाव तिन्नि वारा। तओ वंदित्ता भणइ—'तुम्हाणं पवेइयं, साहूणं पवेइयं;' संदिसह काउस्सग्गं करेमि'। गुरू आह—'करेह'। तओ खमासमणपुव्वं 'सम्मत्तसामाइय-सुयसामाइयथिरीकरणत्थं करेमि काउस्सग्गं'त्ति। सत्तावीसुस्सासं काउस्सग्गं काउं चउवीसत्थयं च भणिय गुरुं तिपयाहिणी करेइ। तओ गुरू लग्गवेलाए—

इय मिच्छाओ विरमिय सम्मं उवगम्म भणइ गुरुपुरओ।
अरहंतो¹ निस्संगो मम देवो दक्खिणा ‡साहू²॥ [३]

इइ पारतियं भणावेइ। विणेओ वि तत्थ दिणे एगासणगाइ जहसत्ति तवं करेइ। तओ खमासमणं दाउं भणइ—'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं धम्मोवएसं देह'। तओ गुरू देसणं करेइ।

भूएसु जंगमत्तं, तत्तो पंचिंदियत्तमुक्कोसं।
तेसु वि य माणुसत्तं, मणुसत्ते आरिओ देसो॥ [४]
देसे कुलं पहाणं, कुले पहाणे य जाइमुक्कोसा।
तीए वि रूवसमिद्धी, रूवे य बलं पहाणयरं॥ [५]

---

* 'बीजानि पदानि ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं नम. इत्यादीनि।' इति टिप्पणी A आदर्शे। † द्विताराङ्कान्तर्गतः पाठो नोपलभ्यते B आदर्शे। 1 नास्ति B आदर्शे। 2 B अरिहंतो। ‡ 'सरल निष्कपटा इत्यर्थः।' इति A आदर्शे टिप्पणी।

धरिमं, चोप्पड-जीराइमेज्जं, रयण-वत्थाइपरिछिज्जं । एवं चउव्विहं पि धणं गहणक्खणे सव्वया वा इत्तिय-पमाणं, इत्तिओ धण्णसंगहो, इत्तियाइं हलाइं खेत्ताइं चरी वा, किसिनियमो वा । इत्तियाइं हट्टघराइं । रुप्प-कणगेसु टंकयपमाणं तोलयपमाणं गद्दियाणगपमाणं वा । चउप्पय-तिरियाणं पमाणं जहाजोग्गं नियमो वा । दुपए दासरूवाणं, सगडाईणं च पमाणं । कुवियं इत्तियमोल्लं उवक्खर-थालाइ; भणियपमाणाओ अहियं धम्मवए दाहं[1] । एसो नियमो मह सपरिग्गहावेक्खाए । भाइ-सयणाईणं तु रक्खण-ववहरणं मुक्कलयं अड्डाणगाइ य । तहा, अमुगनगराओ चउद्दिसिं जोयणसयाइं, उड्ढं जोयणदुगाइ, अहोदिसिं पुरिसपमाणं धणुहमाणं वा । दुविहतिविहेणं मंसं, एगविहं मज्ज-मक्खणं, अन्नत्थ ओसहाइकज्जेण महुं च वज्जेमि । सामन्नेणं वा मंसाइ नियमेमि । अप्पउलिय-दुप्पउलिय-तुच्छफलेसु जयणा । एवं मंचुबरि–वाइंगण–पुंपुट्टय–अन्नायफल–सगोरसविदल–पुप्फिओयणाई । वडिय-तीमणाइनिक्खित्तअद्दयाइ मुत्तुं अणंतकायं च । असण-खाइमे निसि न जिमे, पाण-साइमेसु जयणा । अत्थाणयाणं नियमो परिमाणं वा । असणे सेइया-सेराइपमाणं । भोयणे न्हाणे य नेहकरिस*दुगाइ । सच्चित्तदव्व-विगई-ओगाहिम-पाणगभेय-सालणयउक्कडदव्वाणं परिमाणं । पाणे एगाइघडा, उच्छुलयाणं, चिब्भडाइ-गणियफलाणं च घोराइ-मेज्जफलाणं, दक्खाइ-तोलिमफलाणं संखा–मण–माणगाइपरिमाणं जहासंखं कायव्वं । संपत्ति गुच्छाणं पण्णाणं पुप्फ-फलाणं च संखा । कपूर-पलाइसु रूवयपरिमाणं । तियड्डय-तिहलाइसु पलाइ-परिमाणं । धोवत्तिय-सीओढणवज्जं इत्तियमुल्लाओ इत्तियाओ तियलीओ† । फुल्लाणं तुड्डर-चउसराइ-संखा नियमो वा । आभरणे संखा सुवण्ण-रुप्प-पलमाणं वा । कुंकुम-चंदणविलेवणे पलाइसंखा । जलघड-दुगाइणा मासे इत्थिया सिरिन्हाणा, दिणे य अंगोहलीओ । आसण-सिज्जाणं संखा । ओहेण वा भोग-परिभोगाणं इंगालगाइकम्मादाणाणं नियमो, भाडगाइसु परिमाणं वा । मणुयाणं कयविक्कयनियमो । चउप्पयविक्कयसंखा । तलाराइखरकम्मनियमो । विचित्तोवरिं लाहाइलोमेणं तिले न धारइस्सं । चुल्लीसंधु-क्खण-जलघडाणयणसंखा, खंडण-पीसण-दलणाइसु मण-कलसियाइपरिमाणं ।

> चउहा अणत्थदंडं, अवज्झाणं, वेरितप्पुरवहाई ।
> वज्जे वद्धाचणयं, मुत्तु महं गीयनट्टाइं ॥ [१२]
>
> जूयजलकीलणाई चएमि दक्खिन्नअवसए[3] देमि ।
> नो सत्थग्गिहलाई पाओवएसं च कइयावि ॥ [१३]

मासे वरिसे वा सामाइयसंखा । दुव्मासियाइसु मिच्छादुक्कडदाणं । अहोरत्तंते गमणे जल-थलपहेसु जोयण-संखा । पोसहे वरिसंतो संखा जहासंभवं वा । अट्ठमि–चउद्दसि–चउमासिय[4]–पज्जुसणेसु जहासत्ति एगास-णाइ तवं, बंभचेरं, अन्हाणाइयं च । काले नियगेहागयसुविहियाणं संविभागपुव्वं भोयणं । दिणंतो नवकार-गुणणसंखा य । इत्तियं धम्मवयं वरिसंतो काहं । इत्तिओ य सज्झाओ मासे । एए य मह अभिग्गहा ओसह–परवसत्त–देहअसामत्थ–वित्तिच्छेय–रोग–मग्गकंतार–देवया–गुरु–गण–रायाभिओग–अणाभोग–सहसागार–महत्तर–सव्वसमाहिवत्तियागारे मोत्तुं । मज्झिमखंडाओ बाहिं सव्वासवदाराणं तिविहं तिविहेण नियमो, चिरकयसव्वाहिगरणाणं च । इत्थ य पमाएण नियमभंगे सज्झायसहस्सं, आंबिलं च पच्छित्तं ।"

---

1 B दाणं । * 'पंचभिर्गुंजाभिर्मापकः, तैः षोडशभिः कर्षः ।' इति A टिप्पणी । 2 B चिब्भिडा° ।
† 'अंगमर्दनादिः ।' इति A टिप्पणी । 3 B °अविसए । 4 A चउमासय ।

§ ३. पडिपन्नसम्मत्तस्स य पइदिणं देव–गुरु–पूया–धम्मसवणपरायणस्स देसविरइपरिणामे जाए बारस-वयाइं आरोविज्जंति । तत्थ इमो विही–

गिहिधम्मे चीवंदण, गिहिवयउस्सग्गयइवउच्चरणं ।
जहसत्ति वयग्गहणं, पयाहिणुस्सग्गदेसणया ॥ [१०]

हत्थट्ठियपरिग्गहपरिमाणटिप्पणयस्स य । वयाभिलावो जहा –'अहं णं भंते तुम्हाणं समीवे थूलगं पाणाइवायं संकप्पओ निरवराहं पच्चक्खामि । जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं, मणेणं वायाए कायेणं, न करेमि न कारवेमि । तस्स भंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि' त्ति वारतिगं भणियव्वं । एवं, अहं णं भंते तुम्हाणं समीवे थूलगं मुसावायं जीहाच्छेयाइहेउयं कन्नालियाइपंचविहं पच्चक्खामि । दक्खिन्नाइअविसए अहागहियभंगएणं । एवं थूलगं अदिन्नादाणं खत्तखणणाइयं चोरंकारकरं रायनिग्गह-कारयं सचित्ताचित्तवत्थुविसयं पच्चक्खामि । एवं, ओरालियवेउव्वियभेयं थूलगं मेहुणं पच्चक्खामि, अहा-गहियभंगएणं । तत्थ दुविहतिविहेणं दिव्वं, तेरिच्छं एगविहतिविहेणं, माणुस्सयं एगविहएगविहेणं वोसि-रामि । अहं णं भंते परिग्गहं पडुच्च अपरिमियपरिग्गहं पच्चक्खामि । धणधन्नाइ–नवविह–वत्थुविसयं इच्छापरिमाणं उवसंपज्जामि, अहागहियभंगएणं । एवं गुणव्वयवए दिसिपरिमाणं पडिवज्जामि । उवभोग-परिभोगवए भोयणओ अणंतकाय–बहुबीय–राइभोयणाइं परिहरामि । कम्मओ णं पन्नरसकम्मादाणाइं इंगालकम्माइयाइं बहुसावज्जाइं खरकम्माइयं रायनिओगं च परिहरामि । अणत्थदंडे अवज्झाण-पावोवएस-हिंसोवकरणदाण-पमायायरियरूवं चउविहं अणत्थदंडं जहासत्तीए परिहरामि । अहं णं भंते तुम्हाणं समीवे सामाइयं पोसहोववासं देसावगासियं अतिहिसंविभागवयं च जहासत्तीए पडिवज्जामि । इच्चेयं सम्मत्तमूलं पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं सावगधम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरामि ।' पयाहिणा-वासदाणाइयं सेसं पुव्विं व दट्ठव्वं ॥

§ ४. पुव्वोल्लिंगियं परिग्गहपरिमाणटिप्पणं च गाहाहिं वित्तेहिं वा अत्थओ एवं लिहिज्जइ–'वीराइअन्नयरं जिणं नमित्तु, सम्मत्तमूलं गिहत्थधम्मं पडिवज्जामि । तत्थ अरहं मह देवो । तदाणाठियसाहू गुरुणो । जिणमयं पमाणं । धम्मत्थं परतित्थे तव–दाण–ण्हाण–होमाइ न करेमि । सक्कत्थएण वि तिकालं चीवदणं काहं ।

पाणिवह–मुसावाए अदत्त–मेहुण–परिग्गहे चेव ।
दिसि–भोग–दंड–समइय–देसे तह पोसह–विभागे ॥ [११]

संकप्पियं निरवराहं थूलं जीवं तिव्वकसायवसा मण–वय–तणूहिं जावज्जीवं न हणे न हणावे, सकज्जे सयणाइकज्जे वा ओसहाइसावज्जे किमि–गंडोलग–जलुगाविसए य जयणा । कन्नाइथूलग-मलीयं दुविहं तिविहेण वोसिरे । देव–संघ–साहु–मित्ताइकज्जे लहणिज्ज–दिज्ज–पडिकयववहारे य जयणा । थूलमदत्तं दुविहतिविहेण वज्जे । निहि-संकाइसु जयणा । दुविहतिविहेण दिव्वमित्थाइमणिय-भंगेणं मेहुणनियमो । परदारं परपुरिसं वा काएण सव्वहा नियमो वा । माणुस्से दुच्चिंतिय-दुब्भासिय-दुच्चिट्ठिय-हास-कक्खहवयणाइं अकयाणुबंधं वज्जित्ता जहासंभवं सव्वया । धण–धन्न–खेत्त–वत्थू–रुप्प–सुवन्ने चउप्पए दुपए कुविए परिग्गहे नवविहे इच्छापमाणमिणं । जाइफल-पुप्फलाइगणिमं, कुंकुम-गुडाइ-

---

1 B अरहंतो ।

वा विसिट्ठकयनेवत्था महया विच्छड्डेणं गुरुसमीवमागम्म समवसरणं वत्थ-नेवेज्ज-अक्खय-थाल-नालिएरविसिट्ठं पूयाए पूइऊण नालिकेरं अंजलीए करित्ता पयाहिणं करेइ, चउसु ठाणेसु पणामपुव्वं* । तओ समवसरणपुरओ अक्खए नालिएरं च मुंचइ† । तओ दुवालसावत्तवंदणं दाउं, खमासमणं दाऊण भणइ—'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं पंचमंगलमहासुयक्खंधाइउवहाणतवं उक्खिवह' । गुरू भणइ—'उक्खिवामो' । तओ 'इच्छं'ति भणित्ता, वंदिय भणइ—'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं पंचमंगलमहासुयक्खंधाइउवहाणतवउक्खिवणत्थं काउसग्गं करावेह' । गुरू भणइ—'करेह' । सीसो 'इच्छं'ति भणिय, खमासमणं दाउं भणइ—'पंचमंगलमहासुयक्खंधाइउवहाणतवउक्खिवणत्थं करेमि काउस्सग्गं । अन्नत्थ¹ ऊससिएण'मिच्चाइ । तत्थ नवकारं उज्जोयगरं वा चिंतेइ । तओ नमोक्कारेण पारित्ता, नमोक्कारं उज्जोयगरं वा भणिय, खमासमणं दाउं, भणइ—'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं पंचमंगलमहासुयक्खंधाइउवहाण-तवउक्खिवणत्थं चेइयाइं वंदावेह' । गुरू भणइ—'वंदावेमो' । सीसो भणइ—'इच्छं'ति । तओ गुरू तस्सु-त्तमंगे वासे खिवेइ, वारतिन्नियं सत्त वा । तओ गुरू चउविहसंघसहिओ वड्ढंतियाहिं थुईहिं चेइए वंदावेइ । संतिनाह-सुयदेवयापमुह-जाव-सासणदेवयाए काउस्सग्गे करित्ता, तासिं चेव थुईओ दाउं, सासण-देवयाए काउस्सग्गं चउरो उज्जोयगरे चिंतिय, नमोक्कारेण पारिय, थुइं दाउं, चउवीसत्थयं कहित्ता, नवकारतियं कहिय, बइसिऊण, सक्कत्थयं कहिय, पंचपरमेट्ठित्थवं भणेइ । तओ गुरू लोगुत्तमाणं माएसु वासे छुहिय, समवसरणंमि सव्वदेवयाणं सरणं करिय, वासे खिवेइ । तओ वद्धमाणविज्जाइणा अक्खए वासे य अहिमंतिय चउविहसंघस्स दाऊण, गुरू सीसं दुवालसावत्तवंदणं दाविय, भणावेइ—'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं पंचमंगलमहासुयक्खंधाइउवहाणतवं उद्दिसह' । गुरू भणइ—'उद्दिसामो' । सीसो 'इच्छं' इति भणिय, वंदिय, भणइ—'संदिसह किं भणामो' । गुरू भणइ—'वंदित्ता पवेयह' । सीसो 'इच्छं'ति भणिय, खमासमणेणं वंदिय, भणइ—'इच्छाकारेण तुब्भेहिं अम्हं पंचमंगलमहासुयक्खंधाइउवहाणतवो उद्दिट्ठो ?' । तओ गुरू वासे खिवंतो आह—'उद्दिट्ठो' । ३ खमासमणाणं । हत्थेणं सुत्तेणं अत्थेणं तदुभएणं सम्मं जोगो कायव्वो । सीसो भणइ—'इच्छामो अणुसट्ठिं' । तओ वंदिय भणइ—'तुम्हाणं पवेइयं; संदिसह साहूणं पवेएमि' । गुरू भणइ—'पवेयह' । तओ वंदिय, नम्मोक्कारं भणंतो पयक्खिणं करेइ । अणेण विहिणा अन्ने वि दो वारे पयक्खिणं करेइ । चउविहो वि संघो तस्सुत्तमंगे वासे अक्खए य खिवइ । तओ खमास-मणं दाउं भणइ—'तुम्हाणं पवेइयं, साहूणं पवेइयं; संदिसह काउस्सग्गं करेमि' । गुरू भणइ—'करेह' । तओ वंदिय खमासमणेणं भणइ—'पंचमंगलमहासुयक्खंधाइउवहाणतवउद्देसनिमित्तं करेमि काउस्सग्गं । अन्नत्थ ऊससिएणं' इच्चाइ । उज्जोअगरं चिंतिय सागरवरगंभीरा जाव पारिय, चउविसत्थयं पढइ । तओ पंचमंगलमहासुयक्खंधाइउवहाणतवउद्देसनंदिथिरीकरणत्थं अट्ठुस्सासं उस्सग्गं काउं नमोक्कारं भणित्ता, खमासमणदुगदाणपुव्वं पुत्तिं पेहिय वंदणं दाउं भणइ—'इच्छाकारेण संदिसह, पवेयणं पवेयहं' । गुरू भणइ—'पवेयह' । तओ वंदिय भणइ—'पंचमंगलमहासुयक्खंधदुवालसमपवेसनिमित्तु² तवु करहं' । गुरू भणइ—'करेह' । वंदिय उववासाइतवं करेइ, वंदणं देइ । तम्मि चेव समए पोसहं करेइ सज्झाए वा करेइ । तत्थ पोसहविही सव्वो वि कीरइ ।

---

* 'उक्खिवावणियं नंदिपवेसावणियं करेमि ।' इति B टिप्पणी । † 'ईर्यां प्रतिक्रम्य-मुखवस्त्रिकां प्रतिलिख्य ।' इति B टिप्पणी । 1 A. अन्नत्थूससिएण । 2 B निमित्तं तवु ।

एवं लिहित्ता एसा गाहा लिहिज्जइ–

सम्मत्तमूलमणुवयखंधं उत्तरगुणोरुसाहालं ।
गिहिधम्मदुमं सिंचे सद्धासलिलेण सिवफलयं ॥ [१४]

तओ गुरुक्कमं लिहित्ता अमुगगणहरपायमूले अमुगसंवच्छर-मास-तिहीसु अमुगेण अमुगीए वा एसो सावगधम्मो पडिवण्णो त्ति परिग्गहपमाणटिप्पणविही ॥

॥ परिग्गहपरिमाणविही समत्तो ॥ २ ॥

§५. पडिवन्नदेसविरइयस्स विसिट्ठतरसद्धस्स सड्ढस्स छम्मासियं सामाइयवयं आरोविज्जइ । तत्थ य चेइयवंदणाइविही हिट्ठिल्लो चेव । नवरं, काउस्सग्गाणंतरं अहिणवमुहपोत्तिया वासविन्नासपुव्वं समप्पणीया । तीए य तेण छम्मासे जाव उभयसंझं सामाइयं गहेयव्वं । तओ नवकारतिगपुव्वं 'करेमि भंते सामाइयं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि, जाव नियमं पज्जुवासामि, दुविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं, न करेमि न कारवेमि, तस्स भंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ।' तहा 'दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओ । तत्थ दव्वओ सामाइयदव्वाइं अहिगिच्च; खेत्तओ णं इहेव वा अन्नत्थ वा; कालओ णं जाव छम्मासं; भावओ णं जाव रोगायंकाइणा परिणामो न परिवडइ, ताव मे एसा सामाइयपडिवत्ती ।' इति दंडगो वारतिगमुच्चारणीओ । सेसं पुव्विं व दट्ठव्वं ॥

॥ इइ सामाइयारोवणविही ॥ ३ ॥

§६. अंगीकयसामाइएण य उभयसंझं सामाइयं गहेयव्वं । तस्स एसो विही–पोसहसालाए साहुसमीवे गेहेगदेसे वा खमासमणदुगपुव्वं सामाइयमुहपोत्तिं पडिलेहिय पढमखमासमणेण 'सामाइयं संदिसावेमि, बीयखमासमणेण सामाइए ठामि' त्ति भणिऊण पुणो वंदिय, अद्धावणओ नमोकारतिगपुव्वं 'करेमि भंते सामाइयं–इच्चाइदंडगं–वोसिरामि' पज्जंतं वारतिगं कड्ढिय, खमासमणेण इरियावहियं पडिक्कमिय, खमासमणदुगेणं वासासु कट्ठासणं, उडुबद्धे पाउंछणं, खमासमणदुगेण सज्झायं च संदिसाविय, पुणो वंदिय नवकारऽट्ठगं भणइ । तओ सीयकाले पंगुरणं संदिसावेइ । संझाए सज्झायाणंतरं कट्ठासणं संदिसावेइ त्ति । जइ पुण कयसामाइयं पोसहइत्तं वा, कोइ कयसामाइओ पोसहइत्तो वा वंदइ, तया 'वंदामो' त्ति वत्तव्वं, जइ इयरो वंदइ तत्थ 'सज्झायं करेह' त्ति वत्तव्वं । जहण्णओ वि घडियादुगं सुहज्झवसाएण चिट्ठित्ता, तओ मुहपोत्तिं पडिलेहिय पढमखमासमणे 'सामाइयं पारावेह'–गुरू आह–'पुणो वि कायव्वो' । बीयखमासमणे 'सामाइयं पारेमि'–गुरू आह–'आयारो न मुत्तव्वो' । तओ नवकारतिगं भणिय, 'भयवं दसन्नभद्दो' इच्चाइगाहाओ भूमिनिहित्तसिरो भणइ ।

॥ इय सामाइयग्गहण-पारणविही ॥ ४ ॥

§७. इत्थ केइ आरद्धाणं चउण्हं सावयपडिमाणं पडिवत्तिं इच्छंति । तं च न सुगुरूणं संमयं । जओ संपयं पडिमारूवं सावयधम्मं वोच्छिन्नं तिंति गीयत्था । अओ न तस्स विही भण्णइ ।

§८. इयाणिं उवहाणविही–सोहणतिहि–करण–मुहुत्ताइदिणे जिणभवणाइसु नंदी कीरइ । पंचमंगलमहासुयक्खंधे इरियावहियासुयक्खंधे य; अन्नेसु उवहाणतवेसु नंदीए न नियमो । जइ कोइ समोसरणे पूयं करेइ तया कीरइ नऽन्नहा । दोसु आरद्धउवहाणतवेसु पुण नियमा नंदी । तत्थ सावओ साविया

§ ११. एयस्स चेव निक्खिवणविही वोच्छइ–सीसो गुरुसमीवमागम्म इरियावहियं पडिक्कमिय, गमणागमणं आलोइय, खमासमणदुगदाणपुव्वं मुत्तिं[1] पेहिय[2] दुवालसावत्तवंदणं दाउं, भणइ–'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं पंचमंगलमहासुयक्खंधाइउवहाणतवं †निक्खिवह' । गुरू भणइ–'निक्खिवामो' । सीसो 'इच्छं'ति भणिय, खमासमणेण वंदिय, भणइ–'इच्छाकारेण संदिसह पंचमंगलमहासुयक्खंधाइउवहाणतवनिक्खिवणत्थं काउस्सग्गं करावेह' । गुरू भणइ–'करावेमो' । 'इच्छं'ति भणिय खमासमणेण वंदिय, पंचमंगलमहासुयक्खंधाइउवहाणतवनिक्खिवणत्थं करेमि काउस्सग्गं । अन्नत्थ ऊससिएणं' इच्चाइ जाव 'वोसिरामि'त्ति । तत्थ नवकारं चिंतिय, पारिय, नमोक्कारं पढिय, खमासमणेण वंदिय, भणइ–'इच्छाकारेण संदिसह पंचमंगलमहासुयक्खंधाइउवहाणतवनिक्खिवणत्थं चेइयाइं वंदावेह' । गुरू भणइ–'वंदावेमो' । तओ सक्कत्थयं भणिय, दुवालसावत्तवंदणं दाउं, 'पवेयणं पवेयह'त्ति भणिय, पडिपुण्णा विगइपारणगेणं पच्चक्खइ । तओ पोसहं सामाइयं च पारिय, खमासमणं दाउं, भणइ–'उपधाण[3] मज्झि अविधि आसातना ॥ मनि वचनि काइ ज कोई कीई तहिं मिच्छामि दुक्कडं' ॥

॥ उवहाणनिक्खिवणविही समत्तो ॥ ६ ॥

§ १२. इयाणिं उवहाणसामायारी भण्णइ । पंचमंगलमहासुयक्खंधे पढमं दुवालसमं पुव्वसेवाए[4] । तओ पंचण्हं अज्झयणाणं वायणा दिज्जइ ॥ १ ॥

तत्थ पुण सव्वे अज्झयणा अट्ठ, आयंबिलट्ठगेणं उववासतिगेणं । तओ तिण्हं चूलाअज्झयणाणं ॥ वायणा दिज्जइ । इत्थ उववासतिगं उत्तरसेवाए ॥ २ ॥

॥ पंचमंगलउवहाणं समत्तं ॥

§ १३. एवं इरियावहियासुयक्खंधे वि अट्ठ अज्झयणा । तिण्णि चरिमाणि चूला भण्णइ । सेसं जहा पंचमंगलमहासुयक्खंधे । दोसु वि दो दो वायणाओ । उत्तरिल्लेसु चउसु एगा पुव्वसेवा । अंते उववासाभावाओ उत्तरसेवा नत्थि ॥ ३ ॥

भावारिहंतत्थए पढमं अट्ठमं, तओ तिण्हं संपयाणं वायणा दिज्जइ । १ । पुणो बत्तीसं आयंबिलाणि । सोलसहिं गएहिं तिण्हं संपयाणं वायणा दिज्जइ । २ । अन्नेहिं सोलसहिं गएहिं तिण्हं संपयाणं वायणा दिज्जइ । चरमगाहाए वि वायणा दिज्जइ । ३ । सक्कत्थए सव्वाओ तिण्णि वायणाओ । नवरं सक्कत्थए 'नमोत्थुणं जियभयाणं'मिति वयणा सेसा बत्तीसं पया बत्तीसं हुंति अज्झयणा ।

ठवणारिहंतत्थए आईए चउत्थं, तओ तिन्नि आयंबिलाणि, तओ अंते तिण्हवि अज्झयणाणं एगा ॥ वायणा दिज्जइ । अज्झयणतिगं च इमं–'अरिहंतचेइयाणं...जाव...निरुवसग्गवत्तियाए' । १ । 'सद्धाए...जाव...ठामि काउस्सग्गं' । २ । 'अन्नत्थऊससिएणं...जाव...वोसिरामि' । ३ । ※ ॥ ४ ॥

नामाअरिहंतचउवीसत्थए आईए अट्ठमं । तओ चउरतिसयसिलोगस्स पढमा वायणा दिज्जइ । १ । पुणो पंचवीसं आयंबिलाणि । बारसहिं गएहिं अट्ठनाम गाहातिगस्स बीया वायणा दिज्जइ । २ । पुणोवि तेरसहिं गएहिं पणिहाण-गाहातिगस्स तइया वायणा दिज्जइ । ३ । नवरं एहिं रूवगेहिं चउवीसं ॥ अज्झयणा, पंचवीसइमं सत्तम-सत्तगाहाए । ४ । ※ ॥ ५ ॥

---

1 B मुहपुत्ति । 2 B पडिलेहिय । † एतच्चिह्नान्तर्गता पंक्तिर्नोपलभ्यते A आदर्शे । 3 B उवहाण मज्झे । 4 B °सेवाओ ।

§ ९. एवं सेसेसु वि दिणेसु नंदिवज्जं गुरुसगासे पोसहं सामाइयं च करेइ, पोसहकरणविहिणा । सो य इमो — इरियं पडिकमिय आगमणमालोइय खमासमणदुगेणं पोसहमुहपोत्तिं पडिलेहित्ता, पढमखमासमणेणं 'पोसहं संदिसावेमि' । बीयखमासमणेणं 'पोसहं ठामि' । पुणो तइयखमासमणं दाउं नवकारतिगं भणिय,– 'करेमि भंते पोसहं । आहारपोसहं देसओ, सरीरसक्कारपोसहं सव्वओ, बंभचेरपोसहं सव्वओ, अव्वावार-पोसहं सव्वओ । चउव्विहे पोसहे सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जाव अहोरत्तं पज्जुवासामि । दुविहं तिविहेणं, मणेणं वायाए काएणं, न करेमि न कारवेमि, तस्स भंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसि-रामि'–इइ दंडगं वारतिगं भणइ । तओ इरियावज्जं पुव्वविहिणा सामाइयं गिण्हइ । तओ मुहपोत्तिं पडि-लेहिय दुवालसावत्तवंदणं दाउं भणइ –'इच्छाकारेण संदिसह पवेयणं पवेयहं' । जो पुण पुढो पडिकंतो सो दुवालसावत्तवंदणेण आलोयणं, दुवालसावत्तवंदणेण य खमासमणं काउं, दुवालसावत्तवंदणेण पवेयणं पवे-इए । तओ वंदिउं भणइ–'पंचमंगलमहासुयक्खंधउवहाणदुवालसमपवेसनिमित्तु तपु करहं' । तओ गुरू भणइ–'करेह' । तओ 'इच्छं'ति भणिय, वंदिय, पच्चक्खाणं काउं, खमासमणदुगेण बहुवेलं संदिसाविय, खमासमणदुगेण सज्झायं, खमासमणदुगेण बइसणं च संदिसाविय, वंदणयं देइ । तओ गुरुणा सुहतवे पुच्छिए 'देवगुरुपसाएण'त्ति भणइ । एसो पभायसमये विही कीरइ । जओ मउणपहरमज्झे पवेयणं न पवेएइ, तओ सो दिवसो गलइ त्ति । उवहाणवाही पामाइयपडिक्कमणे नवकारसहियं चेव पच्चक्खंति । 'उग्गए सूरे नवकारसहियं पच्चक्खामि' इच्चाइ ।

तओ चरमपोरिसीए गुरुसमीवमागम्म इरियावहियं पडिक्कमिय, आगमणं आलोइय, खमासमणदुगेण पुत्तिं[1] पडिलेहिय, दुवालसावत्तवंदणं दाउं, आलोयणं खामणं च *पच्चक्खाणं च करिय, खमासमणदुगेण उवहि–थंडिल–पडिलेहणं संदिसाविय, खमासमणदुगेण सज्झायं संदिसाविय, खमासमणदुगेण बइसणं संदिसाविय, कट्ठासणं पाउंछणं वा पडिलेहिय, दुवालसावत्तवंदणं देइ । एसो चरमपोरिसीए विही । सेसविही जहा पोसहविहीए भणिओ तहा कीरइ ।

§ १०. तओ दुवालसमतवे पडिपुन्ने वायणा दिज्जइ । तत्थ एसो विही–पुत्तिं[2] पेहाविय, वंदणं दाविय, गुरू भणावेइ–'इच्छाकारेणं संदिसह पंचमंगलमहासुयक्खंधवायणापडिगाहणत्थं काउस्सग्गं करावेह' । गुरू भणइ–'करावेमो' । तओ 'इच्छं'ति भणिय, खमासमणेणं वंदिय, भणइ–'पंचमंगलमहासुयक्खंधवायणा-पडिगाहणत्थं करेमि काउस्सग्गं । अन्नत्थ ऊससिएणं'–इच्चाइ जाव–'वोसिरामि'त्ति भणिय, सागरवरगंभीरा जाव उज्जोयगरं चिंतिय, नमोक्कारेण पारिय, उज्जोयगरं भणिय, खमासमणं दाउं, भणइ–'इच्छाकारेण पंचमंगलमहासुयक्खंधवायणापडिगाहणत्थं चेइयाइं वंदावेह' । गुरू भणइ–'वंदावेमो' । तओ सक्कत्थयं भणिय खमासमणेण वंदिय, सीसो भणइ–'इच्छाकारेण संदिसह वायणं संदिसावेमि' । बीयखमासमणेण 'वायणं पडिगाहेमि' । गुरू भणइ–'पडिगाहेह' । तओ 'इच्छं'ति भणिय, खमासमणं दाउं, उभयकर-विहियगहियमुहपोत्तियाछाइयमुहकमलस्स, अद्धोणयकायस्स सीसस्स तिक्खुत्तो पंचनमुक्कारं कड्ढिय पंचण्हं अज्झयणाणं पढमा वायणा दिज्जइ । तओ बिइयाए वायणाए तस्सुत्तमंगेसु गुरू वासे खिवइ । तओ सीसो वंदिय सज्झायमाइ करेइ । तओ अट्ठहिं आयंबिलेहिं तिहिं उववासेहिं कएहिं बीया वायणा तिण्हं चूल-अज्झयणाणं दिज्जइ ।

---

1 B मुहपुत्तिं । * A खामणं च करिय समासमणदुगेणं पच्चक्खिय । 2 B मुहपुत्तिं ।

चउवीसत्थयं भणित्ता, नवकारतिगं भणित्तु,–'नाणं पंचविहं पण्णत्तं तं जहा–आभिणिबोहियनाणं, सुयनाणं, ओहिनाणं, मणपज्जवनाणं, केवलनाणं,...जाव...सुयनाणस्स उद्देसो समुद्देसो अणुन्ना अणुओगो पवत्तइ'– इति मंगलत्थं नंदिं कड्डिय सूरी निसिज्जाए उवविसिय 'भो भो देवाणुप्पिय' इच्चाइगाहाहिं, अह वा–

कल्लाणकंदकंदलकारणमइतिक्खदुक्खनिद्दलणं।
सम्मद्दंसणरयणं सिवसुहसंसाहगं भणियं ॥ १ ॥
तस्स य संसिद्धिविसुद्धिसाहगं बाहगं विवक्खस्स।
चिइवंदणमिह वुत्तं तस्सुवहाणं अओ वुत्तं ॥ २ ॥
लोए वि अणेगंतियपयत्थलंभे निहाणमाइम्मि।
पुरिसा पवत्तमाणा उवहाणपरा पयट्टंति ॥ ३ ॥
किं पुण एगंतियमोक्खसाहगे सयलमंतमूलम्मि।
पंचनमोक्काराईसुयम्मि भविया पयट्टंता ॥ ४ ॥
किंच–कप्पियपयत्थकप्पणपउणा वरकप्पपायवलया वि।
पाविज्जइ पाणीहिं ण उणो चीवंदणुवहाणं ॥ ५ ॥
लाभंमि जस्स नूणं दंसणसुद्धिवसेणनिमिसेणं।
करतलगय व्व जायइ सिद्धी धुवसिद्धिभावस्स ॥ ६ ॥
धन्ना सुणंति एयं मुणंति धन्ना कुणंति धन्नयरा।
जे सद्दहंति एयं ते वि हु धन्ना विणिद्दिट्ठा ॥ ७ ॥
कम्मक्खओवसमेणं गुरुपयपंकयपसायओ एयं।
तुब्भेहिं सुयं मुणियं सद्दहियमणुट्ठियं विहिणा ॥ ८ ॥

इच्चाइगाहाहिं देसणं करित्ता तिसंझं चेइय-साहुवंदणाभिग्गहं देइ। तओ वासक्खए अभिमंतेइ। तम्मि समये सुरहिगंधड्ढा अमिलाणसियपुप्फमाला सचसरिया जिणपडिमापाओवरि विण्णसणीया। तओ उट्ठाय सूरी जिणपाए सुगंधे खिविय चउव्विहसंघस्स वासक्खए देइ। तओ मालागाही वंदित्ता भणइ– 'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं पंचमंगलमहासुयक्खंधं अणुजाणह'। गुरू भणइ–'अणुजाणामो'। तओ सीसो वंदिय भणइ–'संदिसह किं भणामो ?'। गुरू भणइ–'वंदित्ता पवेयह'। पुणो वंदिय सीसो भणइ– 'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं पंचमंगलमहासुयक्खंधो अणुन्नाओ ?'। तओ गुरू वासे खिवंतो भणइ–'अणुन्नाओ'। ३ खमासमणाणं। हत्थेणं सुत्तेणं, अत्थेणं, तदुभएणं, 'सम्मं धारणीओ, चिरं पालणीओ, साहुं पइ पुणु अन्नेसिं पि पवेयणीओ त्ति'। सीसो भणइ–'इच्छामो अणुसट्ठिं'। सीसो वंदिय भणइ–'तुम्हाणं पवेइयं, संदिसह साहूणं पवेएमि'। गुरू भणइ–'पवेयह'। तओ वंदिय, नमोक्कारं भणंतो पयक्खिणं देइ। संघो गुरू य तस्स सिरे वासे अक्खए य खिवइ; 'नित्थारगपारगो होहि'त्ति भणिरो। एवं पढमा पयक्खिणा ॥ १ ॥ 'इरियावहियासुयक्खंधं अणुजाणह'–अणेण अभिलावेण सव्वे आलावगा भणिज्जंति। बीया पयक्खिणा ॥ २ ॥ भावारिहंतत्थयं अणुजाणह'–अणेण तईया पयक्खिणा ॥ ३ ॥ 'ठवणारिहंतत्थयं अणुजाणह'–अणेण चउत्थी पयक्खिणा ॥ ४ ॥ नामारिहंतत्थयं अणुजाणह'–अणेण पंचमी पयक्खिणा ॥ ५ ॥ 'सुयत्थयं अणुजाणह'–अणेण छट्ठी पयक्खिणा ॥ ६ ॥ 'सिद्धत्थयं अणुजाणह'–अणेण सत्तमी पयक्खिणा ॥ ७ ॥ सत्तसु य पयक्खिणासु सत्त गंधमुट्ठीओ हवंति। अन्ने अक्खयदाणाणंतरं एगहेलाए च्चिय सत्त गंधमुट्ठीओ दिंति त्ति ॥

दव्वारिहंतसुयत्थए पढमं चउत्थं, तओ पंच आयंबिलाणि, अंते एगा वायणा दिज्जइ। १। नवरं अज्झयणाइं तिहिं रूवगेहिं तिन्नि, चउत्थरूवगे दोहिं पाएहिं चउत्थमज्झयणं, अन्नेहिं दोहिं पंचमं॥ ६॥

सव्वत्थ जत्थ जेत्तियाणि अंबिलाणि तत्थ तेत्तियाणि अज्झयणाणि भवंति। सिद्धत्थयथुईए उवहाणं विणावि मालादिणओववासस्स तिण्हं गाहाणं वायणा दिज्जइ। न उण गाहादुगस्स। जेण वोडियपरिग्गहियउज्झिततित्थसंगहत्थं। दाहिणदारपविट्ठ-सिरिगोयमगणहरवंदिय-अट्ठावय-सीहनिसीहिइचेइयट्ठियजिणबिंबकमउवदंसणत्थं च पच्छा वुड्ढेहिं कयं ति अन्ने भणंति। एयस्स वि एगा परिवाडी दिज्जइ। वायणा किर सव्वत्थ परिवाडीतिगेणं दिज्जइ। एयस्स पुण गाहादुगस्स एगा चेव परिवाडि त्ति भावत्थो॥

संपयं पुण जहोत्ततवोविहाणअसामत्था एगविगइगहण-एगासण-पारणगंतरिया दस उववासा पंचमंगलमहासुयक्खंधे कीरंति। जओ दुवालसमट्ठमेहिं अट्ठ उववासा, आयंबिलट्ठगेणं चत्तारि, मिलिया बारस उववासा पंचमंगलमहासुयक्खंधे। जयावि दस एगासणा, दस उववासा, तयावि चउहिं एगासणेहिं उववासो त्ति दुवालसोववासा साइरेगा जायंति त्ति परमत्थओ सो चेव तवोवीही। एवं च वीसं पोसहदिणाइं भवंति। अओ चेव 'वी स इं ति' भण्णइ। जो य असहू पारणगे दोक्कासणं करेइ तस्स इक्कारस उववासा। अट्ठहिं दोक्कासणेहिं च एगो उववासो। एवं दुवालस॥ एवं चेव इरियावहियासुयक्खंधे वि॥

भावारिहंतत्थए पणतीसं पोसहदिणाइं उववासा इगुणवीसं पारणएहिं सह पूरिज्जंति॥

एवं ठवणारिहंतत्थए अड्ढाइज्जा उववासा चत्तारि पोसहदिणाइं। एयं च उवहाणदुगं एगट्ठमेव वहिज्जइ। अओ चेव एगूणचे वि रूढीए 'चा ली स इं'ति भण्णइ। ‡उक्खेव-निक्खेवा पुण पुढो पुढो कायव्वा॥

नामारिहंतत्थए अट्ठावीसपोसहदिणा पन्नरस उववासा पारणेहिं सह पूरिज्जंति। अओ चेव 'अ ट्ठा वी स इं'ति रूढं। एवं सुयत्थए अड्ढट्ठ उववासा छप्पोसहदिणाइं। अओ चेव 'छ क्क इं'ति भण्णइ। साहु-साहुणीओ य निव्विगइ-आयंबिलोववासेहिं जहुत्तोववाससंखं पूरंति। न उण तेसिं दिणसंखानियमो विगइपरिभोगो वा॥

॥ उवहाणसामायारी समत्ता॥

§ १४. संपयं एय उज्जमणरूवो मालारोवणविही भण्णइ। तत्थ पुव्विल्लो चेव नंदिकमो। *नाणत्तं पुण एयं। मालग्गाही भव्वो मालादिणाओ पुव्वदिणे परमभत्तीए वत्थासणाइणा पडिलाभियसाहु-साहुणिवग्गो, विहियसाहम्मियवच्छलतंबोलाइपवरवच्छलो, पत्ते य पसत्थतिहि-करण-मुहुत्त-नक्खत्त-जोग-लग्ग-चंदबलोवेए मालादिणे नियविहवाणुरूवं कयजिणपूओवयारोपक्खेव-बलिनिक्खेवपुव्वं विरइयविसिट्ठ-उचियणेवत्थो मेलियनीसेसमाया-पिउमाइबंधुजणो कय-साहु-साहम्मियवंदणो सन्निहीकयपउरगंध-चंदण-अक्खय-नालिकेराइपसत्थवत्थू अखंड-अक्खय-नालिकेरसणाहकरंजली तिपयाहिणीकयसमोसरणो खमासमणपुव्वं भणइ- 'पंचमंगलमहासुयक्खंध-पडिक्कमणसुयक्खंध-चीवंदणसुयअणुजाणावणियं वासनिक्खेवं करेह, देवे वंदावेह' त्ति। तओ गुरुणा अहिमंतियसिरोविन्नत्थगंधो जिणपडिमानिच्चलीकयदिट्ठी जिणमुद्दाइविहिणा पए पए सुयथयं भावितो महासंवेगरंगतरंगजुत्तो पवड्ढमाणसुहपरिणामो भत्तिभरनिब्भरो हरिसुल्लसियरोमंचो गुरुणा पउत्तिदिसंपेण य सद्धिं समोसरणपुरो वड्ढमाणथुईहिं देवे वंदेइ। जाव परमिट्ठिथुयभणणाणंतरं उट्ठित्ता पंचमंगलमहासुयक्खंध-पडिक्कमणसुयक्खंध-भावारिहंतत्थय-ठवणारिहंतत्थय-चउवीसत्थय-नाणत्थय-सिद्धत्थय-अणुजाणावणियं नंदिकड्ढावणियं सत्तावीसुस्सासं काउस्सग्गं दो वि करेंति। पारिए,

---

‡ [illegible] B [illegible]। * 'भिन्नेन पुन.' इति A टिप्पणी।

जो उ अकाऊणमिमं गोयम ! गिण्हिज्ज भत्तिमंतो वि ।
सो मणुओ दट्ठवो अगिण्हमाणेण सारिच्छो ॥ १६ ॥
आसायइ तित्थयरं तव्वयणं संघ-गुरुजणं चेव ।
आसायणबहुलो सो गोयम ! संसारमणुगामी ॥ १७ ॥
पढमं चिय कन्नाहेडएण जं पंचमंगलमहीयं ।
तस्स वि उवहाणपरस्स सुलहिया बोहि निद्दिट्टा ॥ १८ ॥
इय उवहाणपहाणं निउणं सव्वं पि वंदणविहाणं ।
जिणपूयापुव्वं चिय पढिज्ज सुयभणियनीईए ॥ १९ ॥
तं सर-वंजण-मत्ता-बिंदु-परिच्छेयठाणपरिसुद्धं ।
पढिऊणं चियवंदणसुत्तं अत्थं वियाणिज्जा ॥ २० ॥
तत्थ वि य जत्थे य सिया संदेहो सुत्त-अत्थविसयंमि ।
तं बहुसो वीमंसिय सयलं निस्संकियं कुणसु ॥ २१ ॥
अह सोहणतिहि-करणे मुहुत्त-नक्खत्त-जोग-लग्गंमि ।
अणुकूलंमि ससियले *सरसे सस्सेयसमयंमि ॥ २२ ॥
निययविहवाणुरूवं संपाडियभुवणनाहपूएणं ।
फुडभत्तीए विहिणा पडिलाहियसाहुवग्गेण ॥ २३ ॥
भत्तिभरनिब्भरेणं हरिसवसोल्लसियबहलपुलएणं ।
सद्धा-संवेग-विवेग-परमवेरग्गजुत्तेणं ॥ २४ ॥
निट्ठियघणराग-दोस-मोह-मिच्छत्त-मलकलंकेणं ।
अइउल्लसंतनिम्मलअज्झवसाएण अणुसमयं ॥ २५ ॥
तिहुयणगुरुजिणपडिमाविणिवेसियनयणमाणसेण तहा ।
जिणचंदवंदणाए धन्नोऽहमी मन्नमाणेण ॥ २६ ॥
नियसिररइयकरकमलमउलिणा जंतुविरहिओगासे ।
निस्संकं सुत्तत्थं पयं पयं भावयंतेण ॥ २७ ॥
जिणनाहदिट्ठगंभीरसमयकुसलेण सुहचरित्तेणं ।
अपमायाईबहुविहगुणेण गुरुणा तहा सद्धिं ॥ २८ ॥
चउविहसंघजुएणं विसेसओ नियबंधुसहिएणं ।
इय विहिणा निउणेणं जिणबिंबं वंदणिज्जं च[1] ॥ २९ ॥
तयणंतरं गुणड्ढे साहू वंदिज्ज परमभत्तीए ।
साहम्मियाण कुज्जा जहारिहं तह पणामाई ॥ ३० ॥
जाव य महग्घ-माउक[1]-चोक्ख-वत्थप्पयाणपुव्वेणं ।
पडिवत्ति[2]विहाणेणं कायव्वो गुरुयसम्माणो ॥ ३१ ॥
एयावसरे गुरुणा सुविहियगंभीरसमयसारेण ।
अक्खेवणि-विक्खेवणि-संवेयणिपमुहविहिणा उ ॥ ३२ ॥

---

* 'प्रयासे' इति A टिप्पणी । 1 B तु । १ 'मृदुक' इति A टिप्पणी । 2 A पडिवित्ति° ।

तओ खमासमणं दाउं सीसो भणइ–'तुम्हाणं पवेइयं, साहूणं पवेइयं, संदिसह काउस्सग्गं कारवेह'। गुरू भणइ–'करावेमो'। तओ खमासमणं दाउं–'पंचमंगलमहासुयक्खंधाइअणुन्नानिमित्तं करेमि काउस्सग्गं'। उज्जोयं चिंतिय, तं चेव पढिय, खमासमणं दाउं भणइ–'इच्छाकारेणं तुब्भे अम्हं उवहाणविहिं सुणावेह'। तओ सूरी उद्धट्ठिओ उवहाणविहिं वक्खाणेइ।

§ १९. सो य इमो–

पंच नमोक्कारे किल, दुवालस तवो उ होइ उवहाणं।
अट्ठ य आयामाइं, एगं तह अट्ठमं अंते ॥ १ ॥
एयं चिय निस्सेसं इरियावहियाइ होइ उवहाणं।
सक्कत्थयंमि अट्ठममेगं बत्तीस आयामा ॥ २ ॥
अरहंतचेइयथए उवहाणमिणं तु होइ कायव्वं।
एगं चेव चउत्थं तिन्नि अ आयंबिलाणि तहा ॥ ३ ॥
एगं चिय किर छट्ठं चउत्थमेगं च होइ कायव्वं।
पणवीसं आयामा चउवीसत्थयंमि उवहाणं ॥ ४ ॥
एगं चेव चउत्थं पंच य आयंबिलाणि नाणथए।
चिइवंदणाइसुत्ते उवहाणमिणं विणिद्दिट्ठं ॥ ५ ॥
अव्वावारो विगहाविवज्जिओ रुद्दझाणपरिमुक्को।
विस्सामं अकुणंतो उवहाणं वहइ[1] उवजुत्तो ॥ ६ ॥
अह कहवि होज्ज बालो वुड्ढो वा सत्तिवज्जिओ तरुणो।
सो उवहाणपमाणं पूरिज्जा आयसत्तीए ॥ ७ ॥
राईभोयणविरई दुविहं तिविहं चउव्विहं वावि।
नवकारसहियमाई पच्चक्खाणं विहेऊण ॥ ८ ॥
एक्केण सुद्धअच्छंबिलेण इयरेहिं दोहिं उववासो।
नवकारसहियएहिं पणयालीसाए उववासो ॥ ९ ॥
पोरसियउवीसाए होइ अवड्ढेहिं दसहिं उववासो।
विगईचाएहिं छहिं एगट्ठाणेहिं य चऊहिं ॥ १० ॥
जीएण निव्वियतियं पुरिमड्ढा सोलसेव उववासो।
एक्कासणगा चउरो अट्ठ य बिक्कासणा तह य ॥ ११ ॥
भयवं! पभूयकालो एव करेंतस्स पाणिणो होज्जा।
तो कहवि होज्ज मरणं नवकारविवज्जियस्सावि ॥ १२ ॥
नवकारवज्जिओ सो निव्वाणमणुत्तरं कह लभिज्जा।
तो पढमं चिय गिण्हइ, उवहाणं होउ वा मा वा ॥ १३ ॥
गोयम! जं समयं चिय सुओवयारं करिज्ज सो पाणी।
तं समयं चिय जाणसु गहियतयट्ठं जिणाणाए ॥ १४ ॥
एयं कयउवहाणो भवंतरे सुलभबोहिओ होज्जा।
एयज्झवसाणो वि हु गोयम! आराहगो भणिओ ॥ १५ ॥

---

1 B वहइ।

ते जइ नो तेणं चिय भवेण निव्वाणमुत्तमं पत्ता ।
ताऽणुत्तरगेविज्जाइएसु सुइरं अभिरमेउं ॥ ५० ॥
उत्तमकुलंमि उक्किट्ठलट्ठसव्वंगसुंदरा पयडी ।
सयलकलापत्तट्ठा जणमणआणंदणा होउं ॥ ५१ ॥
देविंदोवमरिद्धी दयावरा विणयदाणसंपन्ना ।
निव्विन्नकामभोगा धम्मं सयलं अणुट्ठेउं ॥ ५२ ॥
सुहज्झाणानलनिद्दड्ढघाइकम्मिंधणा महासत्ता ।
उपन्नविमलनाणा विहुयमला झत्ति सिज्झंति ॥ ५३ ॥
इय विमलफलं सुणिउं जिणस्स मह माणदेवसूरिस्स ।
वयणा उवहाणमिणं साहेह महानिसीहाओ ॥ ५४ ॥

॥ उवहाणविही समत्तो ॥ ७ ॥

§१६. तओ मालोववूहणं करेइ । जहा–

सावज्जकज्जवज्जणनिट्ठुरणुट्ठाणविहिविहाणेण ।
दुक्करउवहाणेणं विज्जा इव सिज्झए माला ॥ १ ॥
परमपयपुरीपत्थियपवयणपाहेयपाणिपहियस्स ।
पत्थाणपढममंगलमाला पयडा परमपसवा ॥ २ ॥
संतोसखग्गदारियमोहरिउत्तेण रुद्धविसयस्स ।
आणंदपुरपवेसे वंदणमाला जियनिवस्स ॥ ३ ॥
अहवा दुजोह-मय-मोह-जोहविजयत्थमुज्जमपरस्स ।
जीवज्जोहस्सेसा रणमाला इव सहइ माला ॥ ४ ॥
समत्त-नाण-दंसण-चरित्तगुणकलियभवजीवस्स ।
गुणरंजियाइ एसा सिद्धिकुमारीइ वरमाला ॥ ५ ॥
माला सग्गपवग्गमग्गगमणे सोवाणवीही समा,
एसा भीमभवोयहिस्स तरणे निच्छिद्दपोओवमा ।
एसा कप्पियवत्थुकप्पणकए संकप्परुक्खोवमा,
एसा दुग्गइदुग्गवारपिहणा गाढग्गला देहिणं ॥ ६ ॥
जह पुडपायविसुद्धं रयणं ठाणं वरं लहइ तह य ।
तवतवणुतवियपावो परमपयं पावए पाणी ॥ ७ ॥
जह सूरसमारुहणे कमेण छिज्जंति[1] सयलछायाओ ।
तह सुहभावारुहणे जीवाणं कम्मपयडीओ ॥ ८ ॥
दाणं सीलं तव-भावणाओ धम्मस्स साहणं भणिया ।
ताओ एय विहाणे पहु पडिपुन्नाओ नायव्वा ॥ ९ ॥

---

* 'छोमवे' इति A टिप्पणी । 1 B छर्जति ।

भवनिव्वेयपहाणा सद्धासंवेगसाहणे पउणा।
गुरुएण पबंधेणं धम्मकहा होइ कायव्वा ॥ ३३ ॥
सद्धासंवेगपरं सूरी नाऊण तं तओ भव्वं।
चिइवंदणाइकरणे इय 'वयणं भणइ निउणमई ॥ ३४ ॥
भो भो देवाणंपिय ! संपावियसयलजम्मसाफल्ल² ! ।
तुमए अज्जप्पभिई तिक्कालं जावजीवाए ॥ ३५ ॥
वंदेयव्वाइं चेइयाइं एगग्गसुथिरचित्तेणं।
खणभंगुराओ मणुयत्तणाओ इणमेव सारं ति ॥ ३६ ॥
तत्थ तुमे पुव्वण्हे पाणं पि न चेव ताव पेयव्वं।
नो जाव चेइयाइं साहू विय वंदिया विहिणा ॥ ३७ ॥
मज्झण्हे पुणरवि वंदिऊण नियमेण कप्पए भोत्तुं।
अवरण्हे पुणरवि वंदिऊण नियमेण सयणं ति ॥ ३८ ॥
एवमभिग्गहबंधं काउं तो वद्धमाणविज्जाए।
अभिमंतिऊण गेण्हइ सत्त गुरू गंधमुट्ठीओ ॥ ३९ ॥
तस्सोत्तमंगदेसे 'नित्थारगपारगो भविज्ज'त्ति।
उच्चारेमाणु चिय निक्खिवइ गुरू सुपणिहाणं ॥ ४० ॥
एयाए विज्जाए पभावजोगेण जो स किर भव्वो।
अहिगयकज्जाण लहुं नित्थारगपारगो होइ ॥ ४१ ॥
अह चउविहो वि संघो 'नित्थारगपारगो भविज्ज तुमं धन्नो।
सुलक्खणो' जंपिरो त्ति से निक्खिवइ गंधे ॥ ४२ ॥
तत्तो जिणपडिमाए पूया देसाउ सुरहि गंधड्ढं।
अमिलाणं सियदामं गिण्हिय विहिणा सहत्थेणं ॥ ४३ ॥
तस्सोभयखंधेसुं आरोविंतेण सुद्धचित्तेणं।
निस्संदेहं गुरुणा वत्तव्वं एरिसं वयणं ॥ ४४ ॥
'भो भो सुलद्धनियजम्म ! निचियअइगुरुअ-पुण्णपब्भार ! ।
नारय-तिरियगईओ तुज्झ अवस्सं निरुद्धाओ ॥ ४५ ॥
नो बंधगो य सुंदर ! तुममित्तो अयस-नीयगोत्ताणं।
न य दुलहो तुह जम्मंतरे वि एसो नमोक्कारो ॥ ४६ ॥
पंचनमोक्कारपभावओ य जम्मंतरे वि किर तुज्झ।
जातीकुलरूवारोग्गसंपयाओ पहाणाओ ॥ ४७ ॥
अन्नं च इमाउ चिय न हुंति मणुया कयावि जियलोए।
दासा पेसा दुभगा नीया विगलिंदिया चेव ॥ ४८ ॥
किं बहुणा जे गोयम ! विहिणा एयं सुयं अहिज्जित्ता।
सुयभणियविहाणेणं सुद्धे सीले अभिरमिज्जा ॥ ४९ ॥

1 वयणे। 2 B °साफल्ला।

अह भूरि मयविरोहा पमाणया नो महानिसीहस्स ।
लोइयसत्थाणं पिव तहाहि तम्मी अणुचियाइं ॥ ११ ॥
सत्तमनरयगमाईणि इत्थियाणं पि वण्णियाइं ति ।
तत्र लिहणाइदोसा संति विरोहा[1] सुए वि जओ ॥ १२ ॥
आभिणिबोहियनाणे अट्ठावीसं हवंति पयडीओ ।
आवस्सयम्मि वुत्तं इममन्नह कप्पभासम्मि ॥ १३ ॥
नाणमवाय-धिईओ दंसणमिट्ठं[2] च उग्गहेहाओ ।
एवं कह न विरोहो विवरीयत्तेण भणणाओ ॥ १४ ॥
किंच–गइ-इंदियाइसु दारेसु न सम्मसासणं इट्ठं ।
एगिंदीणं विगलाण मइ-सुए तं चऽणुन्नायं ॥ १५ ॥
सयगे पुण विगलाणं एगिंदीणं च सासणं इट्ठं ।
न पुणो मइ-सुयनाणे तहेवमावस्सए वुत्तं ॥ १६ ॥
सीहो तिविट्ठुजीओ जाओ सत्तममहीओ उवट्टो ।
जीवाभिगममएणं मीणत्तं चेव सो लहइ ॥ १७ ॥
नायासुं पुव्वण्हे दिक्खा नाणं च भणियमवरण्हे ।
आवस्सयम्मि नाणं बीयम्मि दिणम्मि मल्लीस्स ॥ १८ ॥
छउमत्थप्परियाओ सड्ढछम्मास-बारससमाओ ।
मग्गसिर[3]किण्हदसमी दिक्खाए वीरनाहस्स ॥ १९ ॥
वइसाहसुद्धदसमी केवललाभम्मि संभविज्ज कहं ।
इय सत्थेसुं[4] बहवो दीसंति परोप्परविरोहा ॥ २० ॥
तस्संभवे वि आवस्सयाइँ सत्थाइँ जह पमाणाइँ ।
तह किं महानिसीहं घिप्पइ न पमाणबुद्धीए ॥ २१ ॥
अह पंचनमोकाराइयाणमुवहाणमणुचियं भिन्नं ।
आवस्सयस्स अंतो पाढाओ तहाहि सामइयं ॥ २२ ॥
नवकारपुव्वयं चिय कारइ जं ता तयंगमेसो ति ।
अन्नं च इत्थ अत्थे पयडं चिय कित्तिअं एयं ॥ २३ ॥
नंदिमणुओगदारं, विहिवदुवग्घाइयं[†] च नाऊणं ।
काऊण पंचमंगलमारंभो होइ सुत्तस्स ॥ २४ ॥
इय सामाइयनिज्जुत्तिमज्झमज्झासिओ इमो ताव ।
पडिकमणे य पविट्ठो इरियावहियाएँ पाढो वि ॥ २५ ॥
अरिहंतचेइयाण य वंदणदंडो सुयत्थओ य तहा ।
काउस्सग्गज्झयणे पंचमए अणुपविट्ठो ति ॥ २६ ॥

---

1 B विरोहो । 2 B °मिंत । 3 B °कण्ह । 4 B सुत्तेसुं । † 'विधिवदुपोद्घातिकं उपन्यास इत्यर्थः ।' इति A टिप्पणी ।

—इच्चाइ। इत्थंतरे सुनेवत्थेहिं मालागाहिणो बंधवेहिं जिणनाहपूयाऽऽदेसाओ अणुजाणावित्तु माला आणेयव्वा। संपइ सुत्तमई रत्तवत्थुच्छुया माला कीरइ। सूरी य तत्थ वासे खिवेइ। तओ तब्बंधवहत्थेण तस्स भवस्स कंठे माला पखेवणीया। इत्थ केई भणंति–'पक्खित्तमाला समोसरणे पयाहिणाचउक्कं दिंति; संघो य तस्सीसे वासक्खए खिवइ'त्ति। तओ पंचसद्दे वज्जंते मालागाहिणो जिणगओ सपरियणा नच्चंति, दाणं च दिंति। आयंबिलं उपवासो वा तस्स तम्मि दिणे पच्चक्खाणं। संपयं उववासो कारविज्जइ त्ति दीसइ। तओ आरत्तियमाइ सावया कुणंति। तओ महयाविच्छड्डेणं सावय-सावियाओ मालागाहिणं गिहे नेंति। सो वि गिहागयाण तेसिं ससत्तीए वत्थ-तंबोलाइ देइ। जइ पुण वसहीए नंदीरयणा कया, तओ चेईहरे समुदाएण गम्मइ त्ति, सा य माला घरपडिमाअग्गओ ठाविया छम्मासं जाव पूइज्जइ त्ति॥

॥ मालारोवणविही समत्तो ॥ ८॥

§१७. इत्थ केई उदग्गकुग्गाहगहियचित्ता **महानिसीह**सिद्धंतमवमन्नंता उवहाणतवं न मन्नंति चेव। तओ य तेसिं जुत्तिआभासेहिं भावियमइणो* सीसा मा मिच्छत्तं गमिहिंति त्ति परिभाविय पुव्वायरिएहिं **उवहाणपइट्ठापंचासयं** नाम पगरणं विरइयं तं च सीसाणमणुग्गहट्ठाए इत्थ पत्थावे लिहिज्जइ।

नमिऊण वीरनाहं, वोच्छं नवकारमाइ उवहाणे।
किं पि पइट्ठाणमहं विमूढसंमोहमहणत्थं॥ १॥
जं सुत्ते निद्दिट्ठं पमाणमिह तं सुओवयाराइ।
आयाराईणं जह जहुत्तमुवहाणनिव्वहणं† ॥ २॥
वुत्तं च सुए नवकार-इरिय-पडिक्कमण-सक्कथयविसयं।
चेइय-चउवीसत्थय-सुयत्थएसु[1] च उवहाणं॥ ३॥
किं पुण सुत्तं तं इह जत्थ नमोकारमाइउवहाणं।
उवइट्ठं आह गुरू, महानिसीहक्खसुयखंधे॥ ४॥
एसो वि कह पमाणं नंदीए हंदि कित्तणाओ त्ति।
जं तत्थेव निसीहं महानिसीहं च संलत्तं॥ ५॥
अह तं न होइ एयं एवं आयारमाइवि तयत्तं[2]।
तुल्ले वि नंदिपाढे को हेऊ विसरिसत्तम्मि॥ ६॥
अह दुब्बलिसूरीणां, पराभवत्थं कयं सबुद्धीए।
गोट्ठेणं ति मयं नो इमं पि वयणं अविण्णूणं॥ ७॥
पुट्ठमबद्धं कम्मं अप्परिमाणं च संवरणमुत्तं[3]।
जं तेण दुगं एयं तं विय अपमाणमक्खायं॥ ८॥
सेसं तु पमाणत्तेण कित्तियं गोट्ठमाहिलुत्तं पि।
इग-दुगपभेयए[4] विय जं सुत्ते निण्हवा वुत्ता॥ ९॥
किंच न गोट्ठामाहिलकयमेयं नंदिसेणचरिए जं।
कह भोगफलं भणिही अवद्धिओ बद्धपुट्ठं सो॥ १०॥ प्रक्षेपः।

---

* 'भव्या' इति A टिप्पणी। † 'निम्मवण' इति A आदर्शे पाठभेदसूचिका टिप्पणी। 1 B °त्थए सुयं च। 2 B तयत्तं। 3 B संवरमुत्तं। 4 B ° मइभेए।

मंतंमि पुवसेवा जइ तुच्छफले वि वुचइ इहं ता ।
मुक्खफले वि उवहाणलक्खणा किं न कीरइ सा ॥ ४४ ॥
एईइ परमसिद्धी जायइ जं ता दढं तओ अहिगा ।
जत्तंमि वि अहिगत्तं भवस्सेयाणुसारेण ॥ ४५ ॥
अह सक्कविरयणाओ सक्कथए नोवहाणमुववन्नं ।
एयं पि केण सिट्ठं जमेस सक्केण रइओ त्ति ॥ ४६ ॥
सक्कस्स अविरयत्ता जिणथुई जइ अणेणणुन्नाया ।
ता तक्कउ त्ति सो वुत्तुमेवमुचियं कहं तम्हा ॥ ४७ ॥
केवलिणा दिट्ठाणं उवइट्ठाणं च विरइयाणं च ।
नवकारमाइयाणं महप्पभावो य वेयाणं ॥ ४८ ॥
तिकालियमहवा सत्तकालियं सुमरणे निउत्ताणं ।
जुत्तं चिय उवहाणं महानिसीहे निवद्धाणं ॥ ४९ ॥
उवहाणविहीणाण वि मरुदेवाईण सिवगमो दिट्ठो ।
एवं च वुच्चमाणे तवदिक्खाईण वि निसेहो ॥ ५० ॥
इय भूरिहेउजुत्तीजुयंमि वहुकुसलसलहिए मग्गे ।
कुग्गहविरहेणुज्जमह महह जइ मोक्खसुहमणहं ॥ ५१ ॥

॥ उवहाणपइट्ठापंचासगपगरणं समत्तं ॥ ९ ॥

---

§ १८. संपयं पुव्वुल्लिगिओ पोसहविही संखेवेण भण्णइ । जम्मि दिणे सावओ सावया वा पोसहं गिण्हिही, तम्मि दिणे अ प्पभाए चेव वावारंतरपरिच्चाएण गहियपोसहोवगरणो पोसहसालाए साहुसमीवे वा गच्छइ । तओ इरियावहियं पडिक्कमिय गुरुसमीवे ठवणायरियसमीवे वा खमासमणदुगपुव्वं पोसहमुहपोत्तिं पडिलेहिय पढमखमासमणेण पोसहं संदिसाविय, बीयखमासमणेण पोसहे ठामि त्ति भणइ । तओ वंदिय, नमोक्कारतिगं कड्ढिय, 'करेमिभंते पोसहमिच्चाइ दंडगं...वोसिरामि' पज्जंतं भणइ । तओ पुव्वुत्तविहिणा सामाइयं गेण्हइ । वासासु कट्ठासणं, सेसट्ठमासेसु पाउंछणं च संदिसाविय, उवउत्तो सज्झायं करिंतो, पडिक्कमणवेलं जाव पडिवालिय, पाभाइयं पडिक्कमइ । तओ आयरिय–उवज्झाय–सव्वसाहू वंदइ । तओ जइ पडिलेहणाए सवेला, ताहे सज्झायं करेइ । जायाए य पडिलेहणाए खमासमणदुगेण अंगपडिलेहणं संदिसावेमि, पडिलेहणं करेमि त्ति भणिय, मुहपोत्तिं पडिलेहेइ । एवं खमासमणदुगेण अंगपडिलेहणं करेइ । इत्थ अंगसद्देणं 'अंगट्ठियं कडिपट्टाइ णेयं' इइ गीयत्था । तओ ठवणायरियं पडिलेहित्ता नवकारतिगेणं ठविय, कडिपट्टयं पडिलेहिय, पुणो मुहपोत्तिं पडिलेहित्ता, खमासमणदुगेण उवहिपडिलेहणं संदिसाविय, कंबल–वत्थाइ, अवरण्हे पुण वत्थ-कंबलाइ, पडिलेहेइ । तओ पोसहसालं पमज्जिय, कज्जयं विहीए परिट्ठविय, इरियं पडिक्कमिय, सज्झायं संदिसाविय, गुणण–पढण–पुच्छण–वायण–वक्खाणसवणाइ करेइ । तओ जायाए पउणपोरिसीए, खमासमणदुगेण पडिलेहणं संदिसाविय, मुहपोत्तिं पडिलेहिय, भोयणभायणाइं पडिलेहेइ । तओ पुणो सज्झायं करेइ, जाव कालवेला । ताहे आवस्सियापुव्वं चेइहरे गंतुं देवे वंदेइ । उवहाणवाही पुण पंचहिं सक्कत्थएहिं देवे वंदेइ । तओ जइ पारणइत्तओ तो पचक्खाणे पुण्णे खमासमणदुगपुव्वं मुहपोत्तिं पडिलेहिय, वंदिय, भणइ–'भगवन् ! भाति पाणी पारावइं ।' उवहाणवाही भणइ–'नवकारसहिउं चउविहारं ।' इयरो

वीयज्झयणसरूवो चउवीसथओ वि जं विणिदिट्ठो।
आवस्सयाउ न पिहो जुज्जइ ता तेसिमुवहाणं ॥ २७ ॥
आवस्सओवहाणे ताणुवहाणं कयं समवसेयं।
कयओवहाणे य पिहो तक्करणे होइ अणवत्था ॥ २८ ॥
भण्णइ उत्तरमिहइं नवकारो आइमंगलत्तेणं।
वुचइ जया तयचिय सामइयऽणुप्पवेसो से ॥ २९ ॥
जइया य सयण-भोयणनिज्जरहेउं पढिज्जए एसो।
तइया सतंत एव हि गिज्झइ अन्नो सुयक्खंधो ॥ ३० ॥
इह-परलोयत्थीणं सामाइयविरहिओ वि वावारो।
दीसइ नवकारगओ तदत्थसत्थाणि य बहूणि ॥ ३१ ॥
नवकारपडल-नवकारपंजिया-सिद्धचक्कमाईणि।
सामाइयंगभावो इमस्स णेगंतिओ तम्हा ॥ ३२ ॥
पढमुचारणमित्ते वि ऽणुप्पवेसो हविज्ज सामइए।
एयस्स सव्वहा जइ ता नंदणुओगदाराणं[1] ॥ ३३ ॥
तदणुप्पवेसओ चिय तवचरणं नेय जुज्जइ विभिन्नं।
दीसइ य कीरमाणं जोगविहीए य भन्नंतं (भिन्नत्तं) ॥ ३४ ॥
किं वा भिन्नत्ते सव्वहा वि सामाइयाउ एयस्स।
काऊण पंचमंगलमिचाई अणुचियं वयणं ॥ ३५ ॥
इय भेयपक्खमणुसरिय जइ तवो कीरई नमोक्कारे।
ता को दोसो नंदणुओगदारेसु व हविज्ज ॥ ३६ ॥
इरियावहियाईयं सुयं पि आवस्सयस्स करणम्मि।
अणुपविसइ तम्मि तयन्नया य भिन्नं हि तेणेव ॥ ३७ ॥
भत्ते पाणे सयणासणाइसुत्तं पि जायइ कयत्थं।
तिन्नि वि कहइ तिसिलोइयत्थुइचाइसुत्तं पि ॥ ३८ ॥
आवस्सए पवेसो जइ एसिं सव्वहावि य हविज्ज।
तो पिहुपढणं एसिं सव्वेसिं कह घडिज्ज त्ति ॥ ३९ ॥
जं च इयरेयरासयदूसणमेयं च वुचइ इमाण।
पाढेण विणा ण तवो तवं विणा नेसिं पाढो त्ति ॥ ४० ॥
तं पि हु अदूसणं जह पव्वइउमुवट्ठियस्सऽणुन्नायं।
सामाइयाइयाणं आलावगदाणमतवे वि ॥ ४१ ॥
एवं जइ पढिएसु वि नवकाराईसु ताणमुवहाणं।
सविसेसगुणनिमित्तं कारिज्जइ को णु ता दोसो ॥ ४२ ॥
नियमइविगप्पियं पि हु कारिज्जइ सुयक्खंदपाइतवं।
सत्थुत्तं पि निसिज्झइ उवहाणं ही महामोहो ॥ ४३ ॥

1 A भिन्नदेर। 2 B °ग्गोम।

'खामेमि सव्वजीवे' इच्चाइगाहाओ भणिऊण वामबाहूवहाणो निद्दासोक्खं करेइ । जइ उव्वचइ तो सरीरसंथारए पमज्जिय, अह सरीरचिंताए उट्ठेइ, तो सरीरचिंतं काऊण, इरियावहियं पडिक्कमिय, जहन्नेण वि गाहातिगं गुणिय सुयइ । सुत्तो वि जाव न निद्दा एइ ताव धम्मजागरियं जागरंतो थूलभद्दाइमहरिसिचरियाइं परिभावेइ । तओ पच्छिमरयणीए उट्ठिय, इरियावहियं पडिक्कमिय, कुसुमिण-दुस्सुमिणकाउस्सग्गं सयउस्सासं मेहुणसुमिणे अट्ठुत्तरसयउस्सासं करिय, सक्कत्थयं भणिय, पुव्वुत्तविहीए सामाइयं काउं, सज्झायं संदिसाविय, ताव करेइ जाव पडिक्कमणवेला । तओ विहिणा पडिक्कमिय, जायाए पडिलेहणाए, पुव्वविहिणा काऊण पडिलेहणं, जहन्नओ वि मुहुत्तमेत्तं सज्झायं करिय, पोसहपारणट्ठी खमासमणदुगेण मुहपोत्तिं पडिलेहिय, खमासमणपुव्वं भणइ–'इच्छाकारेण संदिसह पोसहं पारावेह' । गुरू भणइ–'पुणो वि कायव्वो' । बीयखमासमणेण 'पोसहं पारेमि'त्ति । गुरू भणइ–'आयारो न मोत्तव्वो'ति । तओ नमोक्कारतिगं उद्धट्ठिओ भणइ । पुणो मुहपोत्तिं पडिलेहिय, पुव्वविहिणा सामाइयं पारेइ । पोसहे पारिए नियमा सइ संभवे साहू पडिलाभिय, पारियव्वं ति । जो पुण रत्तिं पोसहं लेइ सो संझाए उवहिं पडिलेहिय, तो पोसहे ठाउं, थंडिल्लपेहणाई सव्वं करेइ । नवरं जाव दिवससेसं रत्तिं वा पज्जुवासामि त्ति उच्चरइ । पभाए पुण जाव अहोरत्तं दिवसं वा पज्जुवासामि त्ति उच्चरइ । भणियत्थ संगाहियाओ इमाओ गाहाओ[1] –

वत्थाइअ पडिलेहिय, सड्ढो गोसंमि पेहिउं पोत्तिं ।
नवकारतिगं कड्ढिउमिय पोसहसुत्तमुच्चरइ ॥ १ ॥

'करेमि भंते पोसहं मिच्चाइ' ।

सामाइयं पगिण्हिय कयपडिक्कमणो य कुणइ पडिलेहं ।
अंगपडिलेहणं पिय कडिपट्टय-ठवणायरिए ॥ २ ॥
उवहिमुहपोत्ति-उवहीपोसहसालाइपेहसज्झाओ ।
पुत्तीभंड्डवगरणस्स पेहणं पउणपहरम्मि ॥ ३ ॥
चेइयचियवंदण-पुत्तिपेहणं भत्तपाणपारवणं ।
सक्कत्थय-भोयण-सक्कत्थयग-वंदणय-संवरणे ॥ ४ ॥
आवस्सियाइगमणं सरीरचिंताइ-आगमनिसीही ।
काउं गमणागमणालोयणमह कुणइ सज्झायं ॥ ५ ॥
तह चरिमपोरिसीए विहीइ पडिलेहणंगपडिलेहे ।
कडिपट्ट-वसहिपेहा-ठवणायरिउवहिमुहपोत्ती ॥ ६ ॥
तो उवहिथंडिले संदिसावइ कंबलाइ पडिलेहे ।
पुण मुहपोत्तिय-सज्झाय-आसणे संदिसावेइ ॥ ७ ॥
पढइ सुणेइ जाव कालवेलमह थंडिले चउवीसं ।
पेहिय पडिक्कमिउं जाममित्तमिह गुणइ विहिणाउ ॥ ८ ॥
राइयसंथारय-पुत्तिपेह-सक्कत्थएण उ सुविता ।
सुसुट्ठिओ उ इरियं सक्कथयं कहिय मुहपोत्तिं ॥ ९ ॥
पेहिय विहिणा सामाइयं पि काउं तओ पडिक्कमइ ।
पडिलेहणाइपुव्वं च कुणइ सव्वं पि कायव्वं ॥ १० ॥

1 B संगाहियाओ इमाइ गाहाओ ।

भणइ–'पोरिसि पुरिमड्ढो वा, तिविहारं चउविहारं वा, एकासणउं निवी आंबिलु वा, जा काइ वेला, तीए भत्तपाणं पारावेमि'त्ति । तओ सक्कत्थयं भणिय, खणं सज्झायं च काउं, जहासंभवं अतिहिसंविभागं काउं, मुह-हत्थे पडिलेहिय, नमोक्कारपुव्वं, अरत्तदुट्ठो असुरसुरं अचवचवं अद्दुयमविलंबियं अपरिसाडिं जेमेइ । तं पुण नियघरे अहापवत्तं फासुयं ति; पोसहसालाए वा पुव्वसंदिट्ठसयणोवणीयं । न य भिक्खं हिंडेइ । तओ आसणाओ अचलिओ चेव दिवसचरिमं पच्चक्खइ । तओ इरियावहियं पडिक्कमिय, सक्कत्थयं भणइ । जइ पुण सरीरचिंताए अट्ठो तो नियमा दुगाई आवस्सियं करिय साहु व उवउत्ता निज्जीवथंडिले गंतुं 'अणुजाणह जस्सावग्गहो' ति भणिऊण, दिसि–पवण–गाम–सूरियाइसमयविहिणा उच्चारपासवणे वोसिरिय, फासुयजलेणं आयमिय, पोसहसालाए आगंतूण, निसीहियापुव्वं पविसिय, इरियावहियं पडिक्कमिय, खमासमणपुव्वं भणंति –'इच्छाकारेण संदिसह गमणागमणं आलोयहं' । 'इच्छं' आवस्सियं करिय, अवर–दक्खिणप्पमुहदिसाए गच्छिय, दिसालोयं करिय, संडासए थंडिलं च पडिलेहिय, उच्चार-पासवणं वोसिरिय, निसीहियं करिय, पोसहसालं पविट्ठा आवंतजंतेहिं जं खंडियं जं विराहियं तस्स मिच्छामि दुक्कडं । तओ सज्झायं ताव करेइ, जाव पच्छिमपहरो । जाए य तम्मि खमासमणपुव्वं 'पडिलेहणं करेमि, पुणो पोसहसालं पमज्जेमि'त्ति भणइ । तओ पुव्वं व अंगपडिलेहणं काउं, पोसहसालं दंडग-पुंछणेण पमज्जिय, कज्जयं उद्धरिय, परिट्ठविय, इरियं पडिक्कमिय, ठवणायरियं पडिलेहिय ठवेइ । तओ गुरुसमीवे ठवणायरियसमीवे वा खमासमणदुगेण मुहपोत्तिं पडिलेहिय, पढमखमासमणे 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! सज्झायं संदिसावेमि'; बीए खमासमणे 'सज्झायं करेमि'त्ति भणिय, काऊण य, वंदणयं दाऊण गुरुसक्खियं पच्चक्खाइ । तओ खमासमणदुगेण उवहिथंडिलपडिलेहणं संदिसाविय, खमासमणदुगेण 'बइसणं संदिसावेमि, बइसणे ठामि'त्ति भणिय वत्थकंबलाइ पडिलेहेइ । इत्थ जो अभत्तट्ठी सो सव्वोवहिपडिलेहणाणंतरं कडिपट्टयं पडिलेहेइ । जो पुण भत्तट्ठी सो कडिपट्टयं पडिलेहिय, उवहिं पडिलेहेइ त्ति विसेसो । तओ सज्झायं ताव करेइ, जाव कालवेला । जायाए य तीए उच्चारपासवणथंडिले चउवीसं पडिलेहिय, जइ तम्मि दिणे चउद्दसी तो पक्खियं चउम्मासियं वा; अह अट्ठमी उद्दिट्ठा पुन्नमासिणी वा तो देवसियं; अह भद्दवयसुद्धचउत्थी तो संवच्छरियं, पडिक्कमणसामायारीए पडिक्कमिय साहुविस्सामणं कुणइ । तओ सज्झायं ताव करेइ जाव पोरिसी । उवरिं जइ समाही तो लहुयसरेणं कुणइ; जहा खुद्दजंतुणो न उट्ठिंति । तओ असज्झमणणपुरओ भूमिपमज्जणाइविहिविहियसरीरचिंतो खमासमणदुगेण मुहपोत्तिं पडिलेहिय, खमासमणेण राईसंथारयं संदिसाविय, बीयखमासमणेण राईसंथारए ठामि त्ति भणिय, सक्कत्थयं भणइ । तओ संथारगं उत्तरपट्टं च जाणुगोवरि मीलित्तु पमज्जिय भूमीए पत्थरेइ । तओ सरीरं पमज्जिय, निसीही 'नमोखमासमणाणं'ति भणिय, संथारए भविय, नमोक्कारतिगं सामाइयं च उच्चारिय–

अणुजाणह परमगुरू गुणगणरयणेहिं भूसियसरीरा ।
बहुपडिपुन्ना पोरिसि राईसंथारए ठामि ॥ १ ॥
अणुजाणह संथारं बाहुवहाणेण वामपासेण ।
कुक्कुडपायपसारण [1]अतुरंतु पमज्जए भूमिं ॥ २ ॥
संकोइयसंडासे उव्वत्तंते य कायपडिलेहा ।
दव्वाओ उवओगं ऊसासनिरुंभणा लोए ॥ ३ ॥
जइ मे होज्ज पमाओ इमस्स देहस्स इमाइ रयणीए ।
आहारमुवहिदेहं तिविहं तिविहेण वोसिरियं ॥ ४ ॥

---

1 B अंतरंतु ।

तिन्निथुईउ पढिय, सक्कत्थयं थुत्तं च भणिय, आयरियाई वंदिय, पायच्छित्तविसोहणत्थं काउस्सग्गं काऊं उज्जोयचउक्कं चिंतेइ त्ति ।

॥ इति देवसियपडिक्कमणविही ॥ ११ ॥

§२०. पक्खियपडिक्कमणं पुण चउद्दसीए कायव्वं । तत्थ 'अब्भुट्ठिओमि आराहणाए' इच्चाइसुत्तंतं देवसियं पडिक्कमिय, तओ खमासमणदुगेण पक्खियमुहपोत्तिं पडिलेहिय, पक्खियाभिलावेणं वंदणं दाउं, संबुद्धाखामणं काउं, उट्ठिय पक्खियालोयणसुत्तं 'सव्वस्स वि पक्खिय' इच्चाइपज्जंतं पढिय, वंदणं दाउं भणइ–'देवसियं आलोइयं पडिक्कंतं, पत्तेयखामणेणं अब्भुट्ठिओऽहं अब्भिंतरपक्खियं खामेमि' त्ति भणित्ता, आहारायणियाए साहू सावए य खामेइ, मिच्छुक्कडं दाउं सुहतवं पुच्छेइ, सुहपक्खियं च साहूणमेव पुच्छेइ, न सावयाणं । तओ जहामंडलीए ठाउं वंदणं दाउं भणइ–'देवसियं आलोइयं पडिक्कंतं, पक्खियं पडिक्कमावेह' । तओ गुरुणा–'सम्मं पडिक्कमह'त्ति भणिए, इच्छंति भणिय, सामाइयसुत्तं उस्सग्गसुत्तं च भणिय, खमासमणेण 'पक्खियसुत्तं संदिसावेमि', पुणो खमासमणेण 'पक्खियसुत्तं कड्ढेमि'त्ति भणित्ता, नमोक्कारतिगं कड्ढिय पडिक्कमणसुत्तं भणइ । जे य सुणंति ते उस्सग्गसुत्ताणंतरं 'तस्सुत्तरीकरणेणं'ति तिदंडगं पढिय काउस्सग्गे ठंति । सुत्तसमत्तीए उद्धट्ठिओ नवकारतिगं भणिय, उवविसिय, नमोक्कारसामाइयतिगपुव्वं 'इच्छामिपडिक्कमिउं जो मे पक्खिओ अइयारो कओ' इच्चाइदंडगं पढिय, सुत्तं भणित्ता, उट्ठिय 'अब्भुट्ठिओमि आराहणाए'त्ति दंडगं पढित्ता, खमासमणं दाउं 'मूलगुण–उत्तरगुण–अइयारविसोहणत्थं करेमि काउस्सग्गं'ति भणिय, 'करेमि भंते' इच्चाइ, 'इच्छामि ठामि काउस्सग्ग'मिच्चाइदंडयं च पढित्ता, काउस्सग्गं काउं, बारसुज्जोए चिंतेइ । तओ पारित्ता, उज्जोयं भणित्ता, मुहपोत्तिं पडिलेहिय, वंदणं दाउं, समत्तिखामणं काउं, चउहिं छोभवंदणगेहिं तिन्नि तिन्नि नमोक्कारे, भूनिहियसिरो भणेइ त्ति । तओ देवसियसेसं पडिक्कमइ । नवरं सुयदेवयाथुइअणंतरं भवणदेवयाए काउस्सग्गे नमोक्कारं चिंतिय, तीसे थुइं देइ सुणेइ वा । थुत्तं च अजियसंतित्थओ । एवं चाउम्मासिय–संवच्छरिया वि पडिक्कमणा तदभिलावेण नेयव्वा । नवरं जत्थ पक्खिए बारसुज्जोया चिंतिज्जंति, तत्थ चाउम्मासिए वीसं, संवच्छरिए चालीसं, पंचमंगलं च । तहा पक्खिए पणगाइसु जइसु तिण्हं संबुद्ध-खामणाणं, चाउम्मासिए सत्ताइसु पंचण्हं, संवच्छरिए नवाइसु सत्तण्हं । दुगमाईनियमा सेसे कुज्ज त्ति भावत्थो । तहा संवच्छरिए भवणदेवयाकाउस्सग्गो न कीरइ न य थुई । असज्झाइयकाउस्सग्गो न कीरइ । तहा राइय-देवसिएसु 'इच्छामोऽणुसट्ठिं'ति भणणाणंतरं, गुरुणा पढमथुईए भणियाए मत्थए अंजलिं काउं 'नमो खमासमणाणं'ति भणिय, मत्थए अंजलिपग्गहमित्तं वा काउं इयरे तिन्नि थुईओ भणंति । पक्खिए पुण नियमा गुरुणा थुइतिगे पूरिए, तओ सेसा अणुकड्ढंति त्ति ॥

॥ पक्खियपडिक्कमणविही ॥ १२ ॥

§२१. देवसियपडिक्कमणे पच्छित्तउस्सग्गाणंतरं खुद्दोवद्दवओहडावणियं सयउस्सासं काउस्सग्गं काउं, तओ खमासमणदुगेण सज्झायं संदिसाविय, जाणुट्ठिओ नवकारतिगं कड्ढिय विग्घावहरणत्थं सिरिपासनाहनमोक्कारं सक्कत्थयं 'जावंति चेइयाइं'ति गाहं च भणित्तु, खमासमणपुव्वं 'जावंत केइ साहू' इति गाहं पासनाहथवं च जोगमुद्दाए पढित्ता, पणिहाणगाहादुगं च मुत्तासुत्तिमुद्दाए भणिय, खमासमणपुव्वं भूमिनिहित्तसिरो 'सिरिथंभणयट्ठियपाससामिणो' इच्चाइगाहादुगमुच्चरित्ता, 'वंदणवत्तियाए' इच्चाइदंडगपुव्वं चउ लोगुज्जोयगरियं काउस्सग्गं काउं चउवीसत्थयं पढंति त्ति पडिक्कमणविहिमेसो पुव्वपुरिससंताणक्कमागओ, 'आयरणा वि हु

जो पुण रयणीपोसहमायरई सो वि संझसमयम्मि ।
पढमं उवहिं पडिलेहिऊण तो पोसहे ठाइ ॥ ११ ॥
थंडिल्लपेहणाई सो चि विहीए करेइ सवं पि ।
पारिंतो पुण पोत्तिं पेहित्ता दो खमासमणे[1] ॥ १२ ॥
दाउं नवकारतिगं भणइ ठिओ एवमेव सामाइयं ।
पारेइ किं पुण 'भयवं दसण्ण'भणणे इह विसेसो ॥ १३ ॥
गुरुजिणवल्लहविरइयपोसहविहिपयरणाउ संखेवा[2] ।
दंसियमेयविहाणं विसेसओ पुण तओ नेयं ॥ १४ ॥
आसाढाईपुरओ चउरंगुलवुड्ढिमाइओ हाणी ।
†पहरो दु-ति-ति-ति-एगे सह‡ छद्दसट्टछहिं पउणो ॥ १५ ॥
एयाए गाहाए उवरि पोसहिएण पडिलेहणाकालो नायवो ति ॥

॥ इति पोसहविही समत्तो ॥ १० ॥

§११९. पुव्वोल्लिगिया पडिकमणसामायारी पुण एसा । सावओ गुरूहिं समं इक्को वा 'जावंति चेइयाइं'ति गाहादुग-थुत्तिपणिहाणवज्जं चेययाइं वंदित्तु, चउराइखमासमणेहिं आयरियाई वंदिय, भूनिहियसिरो 'सवस्सवि देवसिय' इच्चाइदंडगेण सयलाइयारमिच्छामिदुक्कडं दाउं, उट्ठिय सामाइयसुत्तं भणित्तु, 'इच्छामि ठाइउं काउस्सग्ग'मिच्चाइसुत्तं भणिय, पलंबियभुयकुप्परधरिय नाभिअहो जाणुड्ढं चउरंगुलठवियकडियपट्टो संजइकविट्ठाइदोसरहियं काउस्सग्गं काउं, जहकमं दिणकए अइयारे हियए धरिय, नमोक्कारेण पारिय, चवीसत्थयं पढिय, संडासगे पमज्जिय, उवविसिय, अलग्गावियययाहुजुओ मुहणंतए पंचवीसं पडिलेहणाओ काउं, काए वि तत्तियाओ चेव कुणइ । साविया पुण पुट्ठि-सिर-हिययवज्जं पन्नरस कुणइ । उट्ठिय बत्तीसदोसरहियं पणवीसावस्सयसुद्धं किइकम्मं काउं अवणयंगो करजुयविहिधरियपुत्ती देवसियाइयाराणं गुरुपुरओ वियडणत्थं आलोयणदंडगं पढइ । तओ पुत्तीए कट्ठासणं पाउंछणं वा पडिलेहिय वामं जाणुं हिट्ठा दाहिणं च उड्ढं काउं, करजुयगहियपुत्ती सम्मं पडिकमणसुत्तं भणइ । तओ दवभावुट्ठिओ 'अब्भुट्ठिओमि' इच्चाइदंडगं पढित्ता, वंदणं दाउं, पणगाइसु जइसु तिन्नि खामित्ता, सामन्नसाहूसु पुण ठवणायरिएण समं खामणं काउं, तओ तिन्नि साहू खामित्ता, पुणो कीइकम्मं काउं, उद्धट्ठिओ सिरकयंजली 'आयरियउवज्झाए' इच्चाइगाहातिगं पढित्ता, सामाइयसुत्तं उस्सग्गदंडयं च भणिय, काउस्सग्गे चारित्ताइयारसुद्धिनिमित्तं, उज्जोयदुगं चिंतेइ । तओ गुरुणा पारिए पारित्ता, सम्मत्तसुद्धिहेउं उज्जोयं पढिय, सव्वलोयअरिहंतचेइयाराहणुस्सग्गं काउं, उज्जोयं चिंतिय, सुयसोहिनिमित्तं 'पुक्खरवरदीवड्ढं' कड्ढिय, पुणो पणवीसुस्सासं काउस्सग्गं काउं पारिय, सिद्धत्थवं पढित्ता, सुयदेवयाए काउस्सग्गे नमुक्कारं चिंतिय, तीसे थुइं देइ सुणेइ वा । एवं खित्त-देवयाए वि काउस्सग्गे नमुक्कारं चिंतिऊण पारिय, तत्थुइं दाउं सोउं वा पंचमंगलं पढिय, संडासए पमज्जिय, उवविसिय, पुत्तिं व पुत्तिं पेहिय, वंदणं दाउं, 'इच्छामो अणुसिट्ठिं'ति भणिय, जाणूहिं ठाउं वद्धमाणक्खरस्सरा

1 B °समणा । 2 B सखेवो । † 'एवं द्वादशमासेषु' । ‡ 'यथासंख्येन पदादिभिरंगुलैः' इति A आदर्शे स्थिता टिप्पणी ।

§ २२. भणिओ पसंगाणुप्पसंगसहिओ उवहाणविही। उवहाणं च तवो। अओ तवोविसेसा अन्ने वि उवदंसिज्जंति।

तत्थ कल्लाणगतवो चवण-जम्मेसु जिणाणं तासु तासु तिहीसु उववासा कीरंति ॥ १ ॥ दिक्खा-नाणोप्पत्ति-मोक्खगमणेसु जो तवो उसभाईहिं जिणेहिं कओ सो चेव जहासत्ति कायव्वो।

सो य इमो–

सुमइत्थ निचभत्तेण निग्गओ वासुपुज्जो जिणो चउत्थेणं।
पासो मल्ली विय अट्ठमेण, सेसाउ छट्ठेणं ॥ १ ॥

निच्चभत्ते वि उववासो कीरइ त्ति सामायारी।

अट्ठमतवेण नाणं पासोसभ-मल्लि-रिट्ठनेमीणं।
वसुपुज्जस्स चउत्थेण छट्ठभत्तेण सेसाणं ॥ २ ॥
निव्वाणमन्तकिरिया सा चउदसमेण पढमनाहस्स।
सेसाण मासिएणं वीरजिणिंदस्स छट्ठेणं ॥ ३ ॥

एगंतराइकरणे वि तहा कायवाइं निक्खमणाइतवाइं, जहा तीए कल्लाणगतिहीए उववासो एइ त्ति।

सग[७] तेरस[१३] दस[१०] चोद्दस,[१४] पनरस[१५] तेरस[१३] य सत्तरस[१७] दस[१०] छ[६]।
नव[९] चउ[४] ति[३] कत्तियाइसु, जिणकल्लाणाइं जह संखं ॥ ४ ॥

प्रतिमासकल्याणकसंख्यासंग्रहः, सर्वाग्रेण १२१।

तहा सुक्कपक्खे अट्ठोववासा एगंतरआयंबिलपारणेण सव्वंगसुंदरो खमाभिग्गहजिणपूयामुणिदाणपरेण विहेओ ॥ ४ ॥

एवं चिय किण्हपक्खे गिलाणपडिजागरणाभिग्गहसारो निरुजसिंहो ॥ ५ ॥

तहा एगासणपारणेण बत्तीसं आयंबिलाणि परमभूसणो। इत्थुज्जमणे तिलग-मउडाइ जहासत्ति जिणभूसणदाणं ॥ ६ ॥

आयइजणगो वि एवं चिय। नवरं वंदणग–पडिकमण–सज्झायकरण–साहुसाहुणिवेयावच्चाइसव्वकज्जेसु अणिगूहियबलविरियस्स अच्चंतपरिसुद्धो हवइ ॥ ७ ॥

एगे पुण एवमाहंसु–'अणिगूहियबलविरियस्स निरंतरबत्तीसायंबिलपमाणो एगासणंतरियबत्तीसोववासप्पमाणो वा आयइजणगो त्ति।

तहा सोहग्गकप्परुक्खो चित्ते एगंतरोववासा गुरुदाणविहिपुव्वं सव्वरसं पारणगं च। उज्जमणं पुण सुवण्णतंदुलाइमयस्स नाणाविहफलभरोणयस्स जिणनाहपुरओ कप्परुक्खस्स कप्पणेण चारित्तपवित्तमुणिजणदाणेण य विहेयं ॥ ८ ॥

तहा इंदियजओ जत्थ पुरिमड्ड–इक्कासणग–निव्विय–आंबिल–उववासा एगेगमिंदियमणुसरिय पंचहिं परिवाडीहिं कज्जंति इत्थ तवोदिणा पंचवीसं ॥ ९ ॥

कसायमहणो उण पुरिमड्डवज्जाहिं चउहिं परिवाडीहिं पइकसायं किज्जइ। तवो दिणा सोलस ॥ १० ॥

जोगसुद्धी उण इक्केकं जोगं पडुच्च निव्विगइय–आयाम–उववासा कीरंती त्ति पुरिमड्ड–एगासणवज्जाहिं तिहिं परिवाडीहिं तवोदिणा नव ॥ ११ ॥

आण' त्ति वयणाओ कायव्वो चेव । जहा थुइतिगभणणाणंतरं सक्कत्थय-थुत्त-पच्छित्त-उस्सग्गा । पुव्वं हि गुरुथुइगहणे थुईतिन्नि त्ति पज्जंतमेव पडिक्कमणमासि । अओ चेव थुइतिगे कड्डिए छिंदणे वि न दोसो । छिंदणं ति वा अंतरणि त्ति वा अग्गलि त्ति वा एगट्ठा । छिंदणं च दुहा-अप्पकयं, परकयं च । तत्थ अप्पकयं अप्पणो अंगपरियत्तणेण भवइ । परकयं जया परो छिंदइ । पक्खियपडिक्कमणे पत्तेयखामणं कुणंताणं पुढो-कयआलोयणं सुत्तुं नत्थि छिंदणदोसो । अओ चेव अम्ह सामायारीए मुहपोत्तिया पत्तेयखामणाणंतरं न पडिलेहिज्जइ त्ति । जया य मज्जारिया छिंदइ तया-

जा सा करडी कव्वरी अंखिहिं कक्कडियारि ।
मंडलिमाहिं संचरीय हय पडिहय मज्जारि-त्ति ॥ १ ॥

चउत्थपयं वारतिगं भणिय, खुद्दोपद्दवओहडावणियं काउस्सग्गो कायव्वो । सिरिसंतिनाहनमोक्कारो घोसेयव्वो । कारणंतरेण पुढोपडिक्कंता पुढोकयआलोयणा वा पडिक्कमणाणंतरं गुरुणो वंदणं दाउं, आलोयण-खामण-पच्चक्खाणाइं कुणंति । पटिक्कमणं च पुव्वाभिमुहेण उत्तराभिमुहेण वा ।

आयरिया इह पुरओ, दो पच्छा तिन्नि तयणु दो तत्तो ।
तेहिं पि पुणो इक्को, नवगणमाणा इमा रयणा ॥ १ ॥

इइगाहाभणियसिरिवच्छाकारमंडलीए कायव्वं । श्रीवत्सस्थापनाचेयम्- ⁘

तत्थ देवसियं पडिक्कमणं रयणिपढमपहरं जाव सुज्झइ । राइयं पुण आवस्सयचुण्णिअभिप्पाएण उग्घाडपोरिसिं जाव, ववहाराभिप्पाएण पुण पुरिमड्ढं जाव सुज्झइ ।

जो वट्टमाणमासो तस्स य मासस्स होइ जो तइओ ।
तन्नामयनक्खत्ते सीसत्थे गोसपडिक्कमणं ॥ १ ॥

राइयपडिक्कमणे पुण आयरियाई वंदिय भूनिहियसिरो 'सव्वस्स वि राइय' इच्चाइदंडगं पढिय, सक्कत्थयं भणित्ता, उट्ठिय, सामाइय-उस्सग्गसुत्ताइं पढिय, उस्सग्गे उज्जोयं चिंतिय पारिय, तमेव पढित्ता, बीये उस्सग्गे तमेव चिंतित्ता, सुयत्थयं पढित्ता; तईए जहक्कमं निसाइयारे चिंतित्ता, सिद्धत्थयं पढित्ता, संडासए पमज्जिय, उवविसिय, पुत्तिं पेहिय, वंदणं दाउं, पुव्विं व आलोयणसुत्तपढण-वंदणय-खामणय-वंदणय-गाहातिगपढण-उस्सग्गसुत्तउच्चारणाइं काउं, छम्मासियकाउस्सग्गं करेइ । तत्थ य इमं चिंतेइ-'सिरिवद्धमाणतित्थे छम्मासिओ तवो वट्टइ । तं ताव काउं अहं न सक्कुणोमि । एवं एगाइएगूणतीसंतदि-णूणं पि न सक्कुणोमि । एवं पंच-चउ-ति-दु-मासे वि न सक्कुणोमि । एवं एगमासं पि जाव तेरसदिणूणं न सक्कुणोमि । तओ चउतीस-बत्तीसमाइकमेण हावितो जाव चउत्थं आयंबिलं निव्वियं एगासणाइ पोरिसिं नमोक्कारसहियं वा जं सक्केइ तेण पारेइ । तओ उज्जोयं पढिय, पुत्तिं पेहिय, वंदणं दाउं, काउस्सग्गे जं चिंतियं तं चिय गुरुवयणमणुभणिनो सयं वा पच्चक्खाइ । तो 'इच्छामोणुसट्ठिं'ति भणंतो जाणूहिं ठाउं तिन्नि वद्धमाणथुईओ पढित्ता, मिउसरेणं सक्कत्थयं पढिय, उट्ठिय, 'अरहंतचेइयाणं' इच्चाइपढिय, थुइचउ-क्केणं चेइए वंदेइ । 'जावंति चेइयाइं' इच्चाइगाहादुगथुत्तं पणिहाणगाहाओ न भणेइ । तओ आयरियाई वंदेइ । तओ वेलाए पडिलेहणाइ करेइ त्ति ॥

॥ राइयपडिक्कमणविही ॥

॥ पडिक्कमणसामायारी समत्ता ॥ १३ ॥

तहा सत्तसु भद्दवएसु पइदिणं नवनवनेवज्जढोवणेण जिणजणणिपूयापुव्वं सुक्कसत्तमीए आरब्भ तेरसिपज्जंतं एगासणसत्तगं कीरइ जत्थ स मायरतवो। भद्दवयसुद्धचउद्दसीए पइवरिसं उज्जवणं कायव्वं। वलि–दुद्ध–दहि–घिय–खीर–करंबय–रुप्पसिया–घेउर–पूरीओ चउवीसं खीचडीथालं, दाडिमाइफलाणि य सपुत्तसावियाणं दायव्वाइं। पीयलीवत्थं च तंबोलाइ ऊसवो य॥ २१॥

तहा भद्दवए किण्हचउत्थीए एगासण–निव्विगइय–आयंबिल–उववासेहिं परिवाडीचउक्केण जहासत्ति-फएहिं समवसरणपूयाजुत्तं चउसु भद्दवएसु समवसरणदुवारचउक्कस्साराहणेण समवसरणतवो चउसट्ठिदिण-माणो होइ। उज्जमणे नेवज्जथालाइ चत्तारि भद्दवयसुद्धचउत्थीए दायव्वाइं॥ २२॥

तहा जिणपुरओ कलसो पइट्ठिओ मुट्ठीहिं पइदिणखिप्पमाणतंदुलेहिं जावइयदिणेहिं पूरिज्जइ, तावइयदिणाणि एगासणगाइं अक्खयनिहितवो॥ २३॥

तहा आयंबिलवद्धमाणतवो जत्थ अलवण–कंजिय–संछन्नभत्तमोयणमिचरूवमेगमायंबिलं, तओ उव-वासो; दुन्नि आयंबिलाणि, पुणो उववासो; तिन्नि आयंबिलाणि, उववासो; चत्तारि आयंबिलाणि, उववासो; एवं एगेगायंबिलवुड्ढीए चउत्थं कुणंतस्स जाव अंबिलसयपज्जंते चउत्थं। तओ पडिपुन्नो होइ। एत्थायं-बिलाणं पंचसहस्सा पंचासाहिया, उववासाणं सयं। एयस्स कालमाणं वरिसचउद्दसगं, मासतिगं, वीसं च दिणाणि त्ति॥ २४॥

तहा थेराइणो वद्धमाणतवो–जत्थ आइतित्थगरस्स एगं, दुइज्जस्स दुन्नि, जाव वीरस्स चउवीसं आयंबिलनिव्वियाईणि तस्स विसेसपूयापुव्वं कीरंति। पुणो वीरस्स एगं जाव उसहस्स चउवीसं, तओ पडिपुन्नो होइ त्ति॥ २५॥

तहा एगेगतित्थगरमणुसरिय वीस–वीस–आयंबिलाणि पारणयरहियाणि। एगं चायंबिलं सासण-देवयाए। उज्जमणे विसेसपूयापुव्वं तित्थयराणं चउवीसतिलयदाणं च जत्थ सो दवदंतीतवो॥ २६॥

नाणावरणिज्जस्स उत्तरपयडीओ पंच; दंसणावरणिज्जस्स नव, वेयणीयस्स दो, मोहणीयस्स अट्ठावीसं, आउस्स चत्तारि, नामस्स तेणउई, गोयस्स दो, अंतरायस्स पंच;–एवं अडयालसएण उववासाणं अट्ठकम्मउत्तरपयडीतवो॥ २७॥

चंदायणतवो दुहा–जवमज्झो, वज्जमज्झो य। तत्थ जवमज्झो सुक्कपडिवयाए एगदत्तियं एगकवलं वा। तओ एगोत्तरवुड्ढीए जाव पुन्निमाए किण्हपडिवयाए य पंचदस। तओ एगेगहाणीए जाव अमाव-साए एगदत्तियं एगकवलं वा। इय जवमज्झो। वज्जमज्झे किण्हपडिवयाए पंचदस। तओ एगेगहाणीए जाव अमावसाए सुक्कपडिवयाए य एगो। तओ एगेगवुड्ढीए जाव पुन्निमाए पंचदस। इय वज्जमज्झो। दोसु वि उज्जमणे रुप्पमयचंददाणं; जवमज्झे बत्तीसं सुवन्नमयजवा य, वज्जमज्झे वज्जं च॥ २८॥

तहा अट्ठ–दुवालस–सोलस–चउवीसपुरिसाण एक्कतीसं, थीणं सत्तावीसं कवला। जहक्कमं पंचहिं दिणेहिं ऊणोयरियातवो। जदाह–

अप्पाहार अवड्ढा दुभागपत्ता तहेव किंचूणा।
अट्ठ–दुवालस–सोलस–चउवीस–तहिक्कतीसा य॥ इति॥

उज्जमणे पुण मीलियं सव्वदिणकवलपरिमियमोयगा पूयापुव्वं तित्थनाहस्स ढोएयव्वा॥ २९॥

तहा जत्थेगेगं कम्ममणुसरिय, उववास–एगासणग–एगसित्थय–एगठाणग–एगदत्तिग–निव्विय–आयंबिल–अट्ठकवलाणि अट्ठहिं परिवाडीहिं किज्जंति, सो अट्ठकम्मसूडणो तवो दिणा चउसट्ठी । उज्जमणे सुवन्नमयकुहाडिया कायव्वा ॥ १२ ॥

तहा अट्ठमतिगेण नाण–दंसण–चरित्ताराहणातवो भवइ ॥ १३ ॥

तहा रोहिणीतवो रोहिणीनक्खत्ते वासुपुज्जजिणविसेसपूयापुरस्सरमुववासो सत्तमासाहियसत्तवरिसाणि । उज्जमणे वासुपुज्जबिंबपइट्ठा ॥ १४ ॥

तहा अंबातवो पंचसु किण्हपंचमीसु एगासणगाइ–नेमिनाह–अंबापूयापुव्वं किज्जइ ॥ १५ ॥

तहा एगारससु सुक्कएगारसीसु सुयदेवयापूया मोणोपवासकरणजुत्तो सुयदेवया तवो ॥ १६ ॥

तहा नाणपंचमिं छ अकम्ममासे वज्जित्ता मग्गसिर–माह–फग्गुण–वइसाह–जेट्ठ–आसाढेसु सुक्कपंचमीए जिणनाहपूयापुव्वं तयग्गविणिवेसियमहत्थपोत्थयं विहियपंचवण्णकुसुमोवयारो अखंडक्खयाभिलिहियपसत्थसत्थिओ घयपडिपुन्नपबोहियरत्तपंचवट्टिपईवो फलबलिविहाणपुव्वं पडिवज्जेइ । उववासबंभचेरविहाणेण । एवं पडिमासं पंचमासकरणे लहुई । महई उण पंचवरिसाणि । विसेसो उण पंचगुणपूयाविहाणं, पंचपोत्थयपूयणं, पंचसत्थियदाणं, पंचपईवबोहणं च त्ति । केइ पुण एयं जहन्नं पंचमासाहियपंचहिं वरिसेहिं; मज्झिमं तु दसमासाहियदसवरिसेहिं; उक्किट्ठं पुण जावज्जीवं ति भणंति । असहणो पुण बालाई पंचसु नाणपंचमीसु इक्कासणे, तओ पंचसु निव्वीए, तओ पंचसु आयंबिले, तओ पंचसु उववासे कुणंति त्ति । उज्जमणं पुण तीए आईए मज्झे अंते वा कुज्जा । तत्थ सविभवाणुसारेण जिणपूया–पुत्थयपंचयलेहण–संघदाणाइ कायव्वं । पंचविहबलिवित्थारो नाणग्गे, पंच ठवणियाओ, पंच मसीभायणाइं, एवं लेहणीओ, पंचकवलियाओ, कट्टगरणाइं, निक्खेवणाइं, छिद्ददोरयाइं, फुलियाओ, उत्तरियाओ । पट्टदुगुल्लाइपुत्थयवेट्टणयाइं । कुंपियाओ, पडलियाओ, जवमालियाओ, ठवणायरिया, ठवणायरियसिंहासणाइं, मुहपोत्तियाओ, सिरिखंडियाओ, पिंगाणियाओ, पट्टियाओ, वासकुंपगा; अन्नाइं वि जोडय–धूवकडुच्छय–कलस–भिंगारथाल–आरत्तियमाइ पंच पंच उवगरणाइं दायव्वाइं । सवित्थरुज्जमणे पुण सव्वं पंचवीसगुणं कायव्वं । नाणपंचमीतवोदिणे पुत्थयपुरओ नाणस्स तइयथुइरूवे अन्ने वा नमोक्कारे पढिय, उट्ठित्तु 'तमतिमिरपडल'इच्चाइदंडगं भणिय, काउस्सग्गनमोक्कारं चिंतिय, पारिय –

देविंदवंदियपएहिं परूवियाणि नाणाणि केवलमणोहिमईसुयाणि ।
पंचावि पंचमगइं सियपंचमीए पूया तवोगुणरयाण जियाण दिंतु ॥ १ ॥

इच्चाइथुइं दाऊण पुणो जाणुट्ठिओ नाणथुत्तं भणिय, 'बोधागाध'मिच्चाइनाणथुइं पढइ त्ति । नाणचीवंदणविही ॥ १७ ॥

तहा अमावसाए, मयंतरेण दीवूसवामावसाए, पडिलिहियनंदीसरजिणभवणपूयापुव्वं उववासाइसत्तवरिसाणि नंदीसरतवो ॥ १८ ॥

तहा एगा पडिवया, दुन्नि दुइज्जाओ, तिन्नि तिज्जाओ, एवं जाव पंचदसीओ उववासा भवंति जत्थ सो सव्वसुक्खसंपत्तितवो ॥ १९ ॥

तहा चित्तपुन्नमासीए आरब्भ पुंडरीयगणहरपूयापुव्वमुववासाइणमन्नतरं तवो दुवालसपुन्निमाओ पुंडरीयतवो ॥ २० ॥

तहा आसोयसियट्ठमिमाइ अट्ठदिणे एगासणाइतवो त्ति पढमा पाउडी । एवं अट्ठसु वरिसेसु अट्ठ-पाउडिओ । उज्जवणे कणगमयअट्ठावयपूया कणगनिस्सेणी य कायव्वा । पक्कन्नाइ फलाइ चउवीसवत्थूणि जत्थ सो अट्ठावयतवो ॥ ३४ ॥

सत्तरसय जिणाणं सत्तरसयं उववासाइं तवो कीरइ जत्थ सो सत्तरसयजिणाराहणतवो । उज्जवणे लड्डुयाइ वत्थूहिं सत्तरसयसंखेहिं सत्तरसयजिणपूया ॥ ३५ ॥

पंचनमोक्कारउवहाणअसमत्थस्स नवकारतवेणावि आराहणा कारिज्जइ । सा य इमा–पढमपए अक्खराणि सत्त, अओ सत्त इक्कासणा । एवं पंचक्खरे बीयपए पंच इक्कासणा । तइयपए सत्त । चउत्थपए वि सत्त । पंचमपए नव । छट्ठपए चूलापयदुगरूवे सोलस, सत्तमपए चूलाअंतिमपयदुगरूवे सत्तरसक्खरे सत्तरस्स इक्कासणा । उज्जमणे रुप्पमयपट्टियाए कणयलेहणीए मयनाहिरसेण अक्खराणि लिहित्ता अट्ठसट्ठीए मोयगेहिं पूया ॥ ३६ ॥

तित्थयरनामकरणाइ वीसं ठाणाइं पारणंतरिएहिं वीसाए उववासेहिं आराहिज्जंति त्ति चालीसदिण-माणो वीसट्ठाणतवो ॥ ३७ ॥

कीरंति धम्मचक्के तवंमि आयंबिलाणि पणवीसं ।
उज्जमणे जिणपुरओ दायव्वं रुप्पमयचक्कं ॥ १ ॥
अहवा–दो चेव तिरत्ताइं सत्तत्तीसं तहा चउत्थाइं ।
तं धम्मचक्कवालं जिणगुरुपूया समत्तीए ॥ २ ॥ ३८ ॥

चित्तबहुलट्ठमीओ आरब्भ चत्तारिसया उववासा एगंतराइकमेण जहा अंगिकारं पूरिज्जंति । तईय-वरिससंतियअक्खयतइयाए संघ–गुरु–साहम्मियपूयापुव्वं पारिज्जंति । उसभसामिचिन्नो संवच्छरियतवो ॥३९॥

एवं उसभसामितित्थसाहुचिण्णो बारसमासियतवो छट्ठेहिं तिहिं तिहिं सएण उववासाणं । बावीसं-तित्थयरसाहुचिण्णो अट्ठमासियतवो चालीसाहियदुसयउववासेहिं । वद्धमाणसामितित्थसाहुचिण्णो असिय-सएण उववासाणं छम्मासियतवो ॥ ४० ॥

अन्ने य माणिक्कपत्थारिया–मउडसत्तमी–अमियट्ठमी–अविहवदसमी–गोयमपडिग्गह–मोक्खदंडय–अदुक्खदिक्खिया–अखंडदसमीमाइतवविसेसा आगमगीयत्थायरणवज्झ त्ति न परूविया । जे य एगार-संगतवाइणो अट्ठावयाइणो य तवविसेसा ते तहाविहथेरेहिं अपवत्तिया वि आराहणापगारो त्ति पयंसिया । जे पुण एगावली–कणगावली–रयणावली–मुत्तावली–गुणरयणसंवच्छर–खुड्डमहल्ल–सिंहनिक्कीलियाइणो तवभेया ते संपयं दुक्कर त्ति न दंसिया । सुयसागराओ चेव नेय त्ति ॥

॥ तवोविही समत्तो ॥ १४ ॥

§ २३. संपयं पुण सम्मत्तारोवणाइसावयकिच्चाणि वित्थरनंदीए भवंति, दव्वत्थयप्पहाणत्तेण तेसिं; साहूणं पुण भावत्थयप्पहाणत्तेण संखेवनंदीए वि कीरंति त्ति–सावयकिच्चाहिगारे नंदिरयणाविही भण्णइ । अहवा सावय-साहुकिच्चाणमंतरे भणिओ नंदिरयणाविही, डमरुगमणिनाएण उभयत्थ वि संबज्झइ त्ति इहेव भण्णइ । तत्थ पसत्थखित्ते सूरिणा मुत्तासुत्तिमुद्दाए 'ॐ ह्रीँ वायुकुमारेभ्यः स्वाहा' इइमंतेण वायुकुमारा आहविज्जंति । तओ सावएहिं अवणीए[1] सुपरिमज्जणं तेसिं कम्मं कीरइ । एवं मेहकुमाराहवणे गंधोदग-दाणं । तओ देवीणं आहवणे सुगंधपंचवण्णकुसुमवुट्ठी । अग्गिकुमाराहवणे धूवक्खेवो । वेमाणिय–जोइस–

1 'अवन्या' इति B टिप्पणी ।

भद्दाइतवेसु तहा, इमालया इग दु तिन्नि चउ पंच।
तह ति चउ पंच इग दो तह पण इग दो तिग चउक्कं ॥ १ ॥
तह दु ति चउ पण एगेगं तह चउ पणगेग दु तिन्नेव।
पणहुत्तरि उववासा पारणयाणं तु पणवीसा ॥ २ ॥

१	२	३	४	५
३	४	५	१	२
५	१	२	३	४
२	३	४	५	१
४	५	१	२	२

भद्रतपः। तपोदिन ७५, पारणा २५.

*

पभणामि महाभद्दं, इग दुग तिग चउ पण छ सत्तेव।
तह चउ पण छग सत्तग इग दुग तिग सत्त इक्कं दो ॥ ३ ॥
तिन्नि चउ पंच छक्कं तह तिग चउ पण छ सत्तगेगं दो।
तह छग सत्तग इग दो तिग चउ पण तह दुग चऊ ॥ ४ ॥
पण छग सत्तेक्क तह, पण छग सत्तेक्क दोन्नि तिय चउ।
सो पारणयाणुगवन्ना छन्नउयसयं चउत्थाणं ॥ ५ ॥

१	२	३	४	५	६	७
४	५	६	७	१	२	३
७	१	२	३	४	५	६
३	४	५	६	७	१	२
६	७	१	२	३	४	५
२	३	४	५	६	७	१
५	६	७	१	२	३	४

महाभद्रतपः। तपोदिन १९६, पारणा ४९.

*

भद्दोत्तरपडिमाए पण छग सत्त ट्ठ नव तहा सत्त।
अड नव पंच छ तहा नव पण छग सत्त अट्ठेव ॥ ६ ॥
तह छग सत्तड नव पण तह ट्ठ नव पण छ सत्तभत्तट्ठा।
पणहत्तरसयमेवं पारणगाणं तु पणवीसं ॥ ७ ॥

५	६	७	८	९
७	८	९	५	६
९	५	६	७	८
६	७	८	९	५
८	९	५	६	७

भद्रोत्तरतपः। तपोदिन १७५, पारणा २५.

*

पडिमाइ सव्वभद्दाए पण छ सत्त ट्ठ नव दसेक्कारा।
तह अड नव दस एक्कार पण छ सत्त य तहेक्कारा ॥ ८ ॥
पण छग सत्तग अड नव दस तह सत्त ट्ठ नव दसेक्कारा।
पण छ तहा दस एगार पण छ सत्तट्ट नव य तहा ॥ ९ ॥
छग सत्तड नव दसगं एक्कारस पंच तह य नव दसगं।
एगारस पण छक्कं सत्त ट्ठ य इह तवे होंति ॥ १० ॥
तिन्निसया बाणउया इत्थुववासाण होंति संखाए।
पारणयागुणवन्ना भद्दाइतवा इमे भणिया ॥ ११ ॥

५	६	७	८	९	१०	११
८	९	१०	११	५	६	७
११	५	६	७	८	९	१०
७	८	९	१०	११	५	६
१०	११	५	६	७	८	९
६	७	८	९	१०	११	५
९	१०	११	५	६	७	८

सर्वतोभद्रतपः। तपोदिन ३९२, पारणा ४९.

एए चत्तारि वि तवा पारणगभेया चउव्विहा होंति। सव्वकामगुणिएण वा, निव्वीएण वा, वल्ल-चणगाइअलेवाडेण वा, आयंबिलेण वा। चउव्विहं पारणगं ति ॥ ३० ॥

तहा एगारससु सुद्धएगारसीसु सुयदेवयापूयापुव्वं एगासणगाइ तवो मासे एगारस कीरइ जत्थ सो <u>एगारसंगतवो</u>। उज्जमणं पंचमी तुल्लं। नवरं सव्ववत्थूणि एगारसगुणाइं ति ॥ ३१ ॥

एवं बारससु सुद्धबारसीसु <u>दुवालसंगाराहणतवो</u>। उज्जवणे पुण बारसगुणाणि वत्थूणि ॥ ३२ ॥

एवं चउद्दससु सुद्धचउद्दसीसु <u>चउद्दसपुव्वाराहणतवो</u> उज्जवणे चउद्दसट्ठाणाणि ॥ ३३ ॥

चतुर्वर्णाय संघाय देवी भवनवासिनी ।
निहत्य दुरितान्येषा करोतु सुखमक्षतम् ॥ ८ ॥
यासां क्षेत्रगताः सन्ति साधवः श्रावकादयः ।
जिनाज्ञां साधयन्तस्ता रक्षन्तु क्षेत्रदेवताः ॥ ९ ॥
अंबा निहतडिंबा मे सिद्ध-बुद्धसुताश्रिता ।
सिते सिंहे स्थिता गौरी वितनोतु समीहितम् ॥ १० ॥
धराधिपतिपत्नी या देवी पद्मावती सदा ।
क्षुद्रोपद्रवतः सा मां पातु फुल्लत्फणावली ॥ ११ ॥
चञ्चचक्रकरा चारु प्रवालदलसन्निभा ।
चिरं चक्रेश्वरी देवी नन्दतादवताच्च माम् ॥ १२ ॥
खड्गखेटककोदंडबाणपाणिस्तडिद्द्युतिः ।
तुरङ्गगमनाऽच्छुप्ता कल्याणानि करोतु मे ॥ १३ ॥
मथुरापुरिसुपार्श्व-श्रीपार्श्वस्तूपरक्षिका ।
श्रीकुबेरा नरारूढा सुताङ्का ऽवतु वो भवात् ॥ १४ ।
ब्रह्मशान्तिः स मां पायादपायाद् वीरसेवकः ।
श्रीमत्सत्यपुरे सत्या येन कीर्त्तिः कृता निजा ॥ १५
या गोत्रं पालयत्येव सकलापायतः सदा ।
श्रीगोत्रदेवता रक्षां सा करोतु नताङ्गिनाम् ॥ १६ ॥
श्रीशक्रप्रमुखा यक्षा जिनशासनसंश्रिताः ।
देवा देव्यस्तदन्येऽपि संघं रक्षं त्वपायतः ॥ १७ ॥
श्रीमद्विमानमारूढा यक्षमातङ्गसङ्गता ।
सा मां सिद्धायका पातु चक्रचापेषुधारिणी ॥ १८ ॥

*

§२६. अरहाणादि थुत्तं च इमं–

अरिहाण नमो पूयं अरहंताणं रहस्सरहियाणं ।
पयओ परमेट्ठीणं अरहंताणं धुयरयाणं ॥ १ ॥
निद्दड्ढअट्ठकम्मिंधणाण वरणाणदंसणधराणं ।
मुत्ताण नमो सिद्धाणं परमपरमेट्ठिभूयाणं ॥ २ ॥
आयारधराण नमो पंचविहायारसुट्ठियाणं च ।
नाणीणायरियाणं आयारुवएसयाण सया ॥ ३ ॥
बारसविहंगपुव्वं दिंताण सुयं नमो सुयहराणं ।
सययमुवज्झायाणं सज्झायज्झाणजुत्ताणं ॥ ४ ॥
सव्वेसिं साहूणं नमो तिगुत्ताण सव्वलोए वि ।
तह नियमनाणदंसणजुत्ताणं बंभयारीणं ॥ ५ ॥

भवणवासिआहवणे रयण–कंचण–रुप्पवण्णएहिं पगारतिगन्नासो । वंतराहवणे तोरण–चेइय–तरु–सिंहासण–छत्त–ज्झयणाइणं विन्नासो । तओ उक्किट्ठवण्णगोवरि समोसरणे बिंबरूवेण भुवणगुरुठवणा । एयस्स पुव्वदक्खिणभागे गणहरमग्गओ मुणीणं वेमाणियदेवीसाहुणीणं च ठावणा । एवं नियगवण्णेहिं अवरदक्खिणे भवणइ–वाणवंतर–जोइसदेवाणं । पुव्वोत्तरेण वेमाणियदेवाणं नराणं नारीणं च । बीयपायारंतरे अहि–नउल–मय–मयाहिवाइतिरियाणं । तईयपायारंतरे दिवजाणाईणं ठावणा । एवं विरइए, आलिक्खसमोसरणे जिणभवणागिइकट्ठाइनंदिआलगट्ठिय[1]पडिमासु वा थालाइपइट्ठियपडिमाचउक्के वा, वासक्खेवं चउद्दिसिं काऊणं, तओ धूववासाइदाणपुव्वं दिसिपाला नियनियमंतेहिं आहविज्जंति । तं जहा–'ॐ ह्रीँ इन्द्राय सायुधाय सवाहनाय सपरिजनाय इह नन्द्यां आगच्छ आगच्छ स्वाहा ।' एवं अग्नये, यमाय, नैर्ऋताय, वरुणाय, वायवे, सौम्याय, कुबेराय वा ईशानाय, नागराजाय, ब्रह्मणे । दससु वि दिसासु वासक्खेवो । तओ समोसरणस्स पुप्फवत्थाइएहिं पूया । एवं नंदिरयणा सव्वकिच्चेसु सामन्ना । नंदिसमत्तीए तेणेव कमेण आहूय देवे विसज्जेइ । जाव 'ॐ ह्रीँ इन्द्राय सायुधाय सवाहनाय सपरिजनाय पुनरागमाय स्वस्थानं गच्छ गच्छ यः ।' इच्चाइमंतेहिं दिसिपाले विसज्जिय, समोसरणमणुजाणाविय, समावेइ । जं च इत्थ पुव्वायरिएहिं भणियं जहा–'अक्खएहिं पुप्फेहिं वा अंजलिं भरित्ता सियवत्थच्छाइयनयणो पराहुत्तो वा काऊण, दिक्खट्ठमुवट्ठिओ संतोऽणंतरोत्तविहिरइयसमोसरणे अक्खयंजलिं पुप्फंजलिं वा खेवाविज्जइ । जइ तस्स मज्झदेसे सिहरे वा पडइ तया जोग्गो; बाहिरे पडइ अजोग्गो । इइ परिक्खं काऊणं सावयत्तदिक्खा दिज्जइ त्ति ।' तं मिच्छद्दिट्ठीहिंतो जो सम्मत्तं पडिवज्जइ तं पडुच्च बोधव्वं । जे पुण परंपरागयसावयकुलप्पसूया तेसिं परिक्खाकरणे न नियमो । अओ चेव सावयधम्मकहा पीइमाइपंचलिंगगम्मस्स अत्थिणो चेव गुरुविणयाइपंचलक्खणलक्खियजम्म समत्थस्सेव सज्जणवल्लहयाइलिंगपंचगसज्झस्स सुत्तापडिकुट्ठस्सेव य सावयधम्माहिगारित्ते पुव्वायरियभणिए वि संपयं परिक्खाए अभावे वि पवाहओ सावयधम्मारोवणं पसिद्धं ति ।

§२४. देववंदणावसरे वद्धंतियाओ य थुईओ इमाओ–

> यदङ्घ्रिनमनादेव देहिनः सन्ति सुस्थिताः ।
> तस्मै नमोस्तु वीराय सर्वविघ्नविघातिने ॥ १ ॥
> सुरपतिनतचरणयुगान् नाभेयजिनादिजिनपतीन् नौमि ।
> यद्वचनपालनपरा जलाञ्जलिं ददन्ति दुःखेभ्यः ॥ २ ॥
> वदन्ति वन्दारुगणाग्रतो जिनाः, सदर्थतो यद् रचयन्ति सूत्रतः ।
> गणाधिपास्तीर्थसमर्थनक्षणे, तदङ्गिनामस्तु मतं तु मुक्तये ॥ ३ ॥
> शक्रः सुरासुरवरैः सह देवताभिः, सर्वज्ञशासनसुखाय समुद्यताभिः ।
> श्रीवर्द्धमानजिनदत्तमतप्रवृत्तान्, भव्यान् जनानवतु नित्यममंगलेभ्यः ॥ ४ ॥

§२५. संतिनाहथुईओ पुन इमाओ–

> रोगशोकादिभिर्दोषैरजिताय जितारये ।
> नमः श्रीशान्तये तस्मै, विहितानन्तशान्तये ॥ ५ ॥
> श्रीशान्तिजिनभक्ताय भव्याय सुखसंपदम् ।
> श्रीशान्तिदेवता देयादशान्तिमपनीय मे ॥ ६ ॥
> सुवर्णशालिनी देयाद् द्वादशाङ्गी जिनोद्भवा ।
> श्रुतदेवी सदा मह्यमशेषश्रुतसंपदम् ॥ ७ ॥

---

1 B [illegible] ।

सुद्धप्पा सुद्धमणा पंचसु समिईसु संजुय तिगुत्ता।
जे तम्मि रहे लग्गा सिग्घं गच्छंति सिवलोयं ॥ २३ ॥
थंभेइ जलं जलणं चिंतियमत्तो वि पंचनवकारो।
अरि–मारि–चोर–राउल–घोरुवसग्गं पणासेइ ॥ २४ ॥
अट्ठेव य अट्ठसया अट्ठसहस्सं च अट्ठकोडीओ।
रक्खं तु मे सरीरं देवासुरपणमिया सिद्धा ॥ २५ ॥
नमो अरहंताणं तिलोयपुज्जो य संठिओ भयवं।
अमरनररायमहिओ अणाइनिहणो सिवं दिसउ ॥ २६ ॥
सवे पओसमच्छरआहियहियया पणासमुवयंति।
दुगुणीकयधणुसद्दं सोउं पि महाधणुं सहसा ॥ २७ ॥
इय तिहुयणप्पमाणं सोलसपत्तं जलंतदित्तसरं।
अट्टारअट्ठवलयं पंचनमोक्कारचक्कमिणं ॥ २८ ॥
सयलुज्जोइयभुवणं विद्दावियसेससत्तुसंघायं।
नासियमिच्छत्ततमं वियलियमोहं हयतमोहं ॥ २९ ॥
एयस्स य मज्झत्थो सम्मदिट्ठी विसुद्धचारित्तो।
नाणी पवयणभत्तो गुरुजणसुस्सूसणापरमो ॥ ३० ॥
जो पंच नमोक्कारं परमो पुरिसो पराइ भत्तीए।
परियत्तेइ पइदिणं पयओ सुद्धप्पओ अप्पा ॥ ३१ ॥
अट्ठेव य अट्ठसयं अट्ठसहस्सं च उभयकालं पि।
अट्ठेव य कोडिओ सो तइयभवे लहइ सिद्धिं ॥ ३२ ॥
एसो परमो मंतो परमरहस्सं परंपरं तत्तं।
नाणं परमं नेयं सुद्धं झाणं परं झेयं ॥ ३३ ॥
एयं कवयमभेयं खाइयमत्थं[1] परा भुवणरक्खा[2]।
जोईसुन्नं बिंदुं नाओ [3]तारालवो मत्तो[4] ॥ ३४ ॥
सोलसपरमक्खरबीयबिंदुगब्भो जगोत्तमो जोओ।
सुयबारसंगसायरमहत्थपुवत्थपरमत्थो ॥ ३५ ॥
नासेइ चोर-सावय-विसहर-जल-जलण-बंधणसयाइं।
चिंतिज्जंतो रक्खस-रण-रायभयाइं भावेण ॥ ३६ ॥

॥ अरिहांणादिथुत्तं समत्तं ॥

अन्नं पि वा परमिट्ठिथवणं भणिज्जइ त्ति।

॥ नंदिरयणाविही समत्तो ॥ १५ ॥

*

1 A °मित्थं। 2 C रक्खो। 3 A तारो। 4 A मित्तो।

एसो परमेट्ठीणं पंचण्ह वि भावओ नमोक्कारो।
सवस्स कीरमाणो पावस्स पणासणो होइ ॥ ६ ॥
भुवणे वि मंगलाणं मणुयासुरअमरखयरमहियाणं।
सवेसिमिमो पढमो होइ महामंगलं पढमं ॥ ७ ॥
चत्तारिमंगलं मे हुंतु ऽरहंता तहेव सिद्धा य।
साहू अ सवकालं धम्मो य तिलोअमंगल्लो ॥ ८ ॥
चत्तारि चेव ससुरासुरस्स लोगस्स उत्तमा हुंति।
अरहंत-सिद्ध-साहू धम्मो जिणदेसियमुयारो ॥ ९ ॥
चत्तारि वि अरहंते सिद्धे साहू तहेव धम्मं च।
संसारघोररक्खसभएण सरणं पवज्जामि ॥ १० ॥
अह अरहओ भगवओ महइ महावीरवद्धमाणस्स।
पणयसुरेसरसेहरवियलियकुसुमचियकमस्स ॥ ११ ॥
जस्स वरधम्मचक्कं दिणयरबिंबं व भासुरच्छायं।
तेएण पज्जलंतं गच्छइ पुरओ जिणिंदस्स ॥ १२ ॥
आयासं पायालं सयलं महिमंडलं पयासंतं।
मिच्छत्तमोहतिमिरं हरेइ तिण्हं पि लोयाणं ॥ १३ ॥
सयलम्मि वि जीयलोएँ चिंतियमेत्तो करेइ सत्ताणं।
रक्खं रक्खस-डाइणि-पिसाय-गह-जक्ख-भूयाणं ॥ १४ ॥
लहइ विवाए वाए ववहारे भावओ सरंतो य।
जूए रणे य रायंगणे य विजयं विसुद्धप्पा ॥ १५ ॥
पच्चूस-पओसेसुं सययं भवो जणो सुहज्झाणो।
एवं झाएमाणो मुक्खं पइ साहगो होइ ॥ १६ ॥
वेयाल-रुद्द-दाणव-नरिंद-कोहंडि-रेवईणं च।
सवेसिं सत्ताणं पुरिसो अपराजिओ होइ ॥ १७ ॥
विज्जु व पज्जलंती सवेसु वि अक्खरेसु मत्ताओ।
पंच नमोक्कारपए इक्किक्के उवरिमा जाव ॥ १८ ॥
ससिधवलसलिलनिम्मलआयारसहं च वण्णियं बिंदुं।
जोयणसयप्पमाणं जालासयसहसदिप्पंतं ॥ १९ ॥
सोलससु अक्खरेसुं इक्किक्कं अक्खरं जगुज्जोयं।
भवसयसहस्समहणो जंमि ठिओ पंच नवकारो ॥ २० ॥
जो थुणति हु इक्कमणो भविओ भावेण पंचनवकारं।
सो गच्छइ सिवलोयं उज्जोयंतो दसदिसाओ ॥ २१ ॥
तव-नियम-संजमरहो पंचनमोक्कारसारहिनिउत्तो।
नाणतुरंगमजुत्तो नेइ फुडं परमनिवाणं ॥

चारणपुव्वं पणामं काउं लोगुत्तमाणं पाएसु वासे खिवेइ । अक्खए अभिमंतिऊण संघस्स देइ । तओ खमासमणं दाउं सीसो भणइ –'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं सव्वविरइसामाइयं आरोवेह' । गुरू भणइ –'आरोवेमो' । खमासमणं दाउं सीसो भणइ –'संदिसह किं भणामो' । गुरू भणइ–'वंदित्ता पवेयह' । पुणो खमासमणं दाउं भणइ –'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं सव्वविरइसामाइयं आरोवियं ?' गुरू वासक्खेवपुव्वयं भणइ –'आरोवियं' । ३ खमासमणाणं, 'हत्थेणं सुत्तेणं, अत्थेणं, तदुभएणं, सम्मं धारणीयं, चीरं पालणीयं, नित्थारगपारगो होहि, गुरुगुणेहिं वड्ढाहि' । सीसो–'इच्छामो अणुसट्ठिं'ति भणित्ता खमासमणं दाऊण भणइ–'तुम्हाणं पवेइयं, संदिसह साहूणं पवेएमि' । तओ खमासमणं दाउं नमोक्कारमुच्चरंतो पयाहिणं देइ, वाराओ तिन्नि । संघो य तस्सिरे अक्खयनिक्खेवं करेइ । तओ खमासमणं दाउं भणइ –'तुम्हाणं पवेइयं, संदिसह काउस्सग्गं करेमि' । गुरू भणइ –'करेह' । खमासमणं दाउं 'सव्वविरइसामाइयआरोवणत्थं करेमि काउस्सग्गं, अन्नत्थूससिएण'मिच्चाइ पढिय, सागरवरगंभीरापज्जंतं उज्जोयगरं चिंतिय, पारित्ता उज्जोयगरं पढइ । तओ खमासमणपुव्वं भणइ –'इच्छाकारेण तुम्हे अम्हं सव्वविरइसामाइयथिरीकरणत्थं काउस्सग्गं करावेह' । 'सव्वविरइसामाइयथिरीकरणत्थं करेमि काउस्सग्गं' । तत्थ सागरवरगंभीरापज्जंतं उज्जोयगरं चिंतिय पारित्ता उज्जोयगरं पढइ । तओ खमासमणं दाउं–'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं नामठवणं करेह' । गुरू भणइ–'करेमो' । तओ वासे खिवंतो रवि–ससि–गुरुगोयरसुद्धीए जहोचियं नामं करेइ । तओ कयनामो सेहो सव्वसाहूणं वंदेइ । अज्जिया सावया सावियाओ वि तं वंदंति । तओ खमासमणपुव्वयं सेहो गुरुं भणइ –'तुब्भे अम्हं धम्मोवएसं देह' । पुणो खमासमणं दाउं जाणूहिं ठिओ सीसो सुणइ । गुरू–

चत्तारि परमंगाणि दुल्लहाणीह देहिणो ।
माणुसत्तं सुई सद्धा, संजमंमि य वीरियं ॥

इच्चाइ उत्तरज्झयणाणं तइयज्झयणं चाउरंगिज्जं वक्खाणइ । पव्वज्जाविहाणं वा । "जयं चरे जयं चिट्ठे" इच्चाइयं वा । सो वि संवेगाइसयओ तहा सुणेइ, जहा अन्नो वि को वि पव्वयइ । इत्थ संगहो–

चिइवंदण वेसऽप्पण समइय[1] उस्सग्ग लग्ग अट्ठगहो ।
सामाइय तिय कड्ढण तिपयाहिण वास उस्सग्गो ॥

॥ पव्वज्जाविही समत्तो ॥ १६ ॥

§२८. पव्वइएण य लोओ कायव्वो । अओ तव्विही भण्णइ –गुरुसमीवे खमासमणदुगेण मुहपोत्तिं पडिलेहिय दुवालसावत्तवंदणं दाउं, पढमखमासमणेण 'इच्छाकारेण संदिसह लोयं संदिसावेमि'; बीए 'लोयं कारेमि'; तइए 'उच्चासणं संदिसावेमि'; चउत्थए 'उच्चासणे ठामि' । तओ लोयगारं खमासमणपुव्वं भणइ –'इच्छाकारि लोयं करेह' । मत्थयरक्खधारिणो य इच्छाकारं देइ । तओ–

पुव्विं पडिवय नवमी तइया इक्कारसी य अग्गीए ।
दाहिणि पंचमि तेरसि, बारसि चउत्थि नेरइए ॥ १ ॥
पच्छिम छट्टि चउद्दसि सत्तमि पडिपुन्न वायवदिसाए ।
दसमि दुइज्जा उत्तर, अट्ठमि अमावसा य ईसाणे ॥ २ ॥

इइ गाहक्कमेण जोगिणीओ वामे पिट्ठओ वा काउं, बुह-सोमवारेसु चंदबलाइभावे सुक्क-गुरूसु वि, पुस्स–पुणव्वसु–रेवइ–चित्ता–सवण–धणिट्ठा–मियसिर–ऽस्सिणि–हत्थेसु किंत्तिया–विसाहा–महा–

---

1 'सामायिक । सर्वविरतिसामायिकोत्सर्गः ।' इति A टिप्पणी ।

§ २७. सावओ कयाइ चारित्तमोहणीयकम्मक्खओवसमेणं पव्वज्जापरिणामे जाए दिक्खं पडिवज्जइ त्ति, तीए विही भण्णइ – पव्वज्जादिणस्स पुव्वदिणम्मि संझासमये वयग्गाही सचो जहाविभूईए मंगलतूरसहिओ रयहरणाइवेससंगयछव्वएणं अविहवसुइनारीसिरम्मि दिन्नेणं समागम्म गुरुवसहीए, समोसरणाइ-पूयसक्कारं अक्खयवत्तनालिएरसहियं करेत्ता गुरूणं पाए वंदइ। तओ गुरू वासचंदणअक्खए अहिमंतिऊण सीसस्स सिरम्मि वासे खिवंतो वद्धमाणविज्जाईहिं अट्ठाओ† अहिवासिय कुंकुमरत्तदसियाए उग्गाहेइ‡, चंदणं अक्खए य सिरे देइ। तओ रयहरणाइवेसमहिवासिय तस्स मज्झे पूगीफलानि पंच सत्त नव पणवीसं वा पक्खि-वावेइ। मुहपोट्टलियं च वेसछव्वएणं अविहवनारीसिरदिन्नएणं उभओ पासट्ठिएसु निक्कोसखग्गहत्थेसु दोसु पच्चइयनरेसु गिहं गंतूण जिणबिंबे पूइत्ता, तेसिं पुरओ सासणदेवयापुरो वा छव्वयं ठवित्ता, रयणिं जग्गंति। सावया सावियाओ य देव-गुरूणं चउव्विहसंघस्स य गीयाणि गायमाणीओ चिट्ठंति, जाव पभायवेला। तओ पभाए गुरूणं चउव्विहसंघसहियाणं गिहमागयाणं पूयं काऊण अमारिघोसणापुव्वयं दाणं दाविंतो जहोचियं सयणाइवग्गं[1] सम्माणेइ। तओ तस्स माइपिइबंधुवग्गो गुरूणं पाए वंदिय भणइ – 'इच्छाकारेण सचित्त-भिक्खं पडिग्गाहेह।' गुरू भणइ – 'इच्छामो, वट्टमाणजोगेण।' तओ गुरुसहिओ जाणाइसु आरूढो मंगल-तूररवेणं सयमेव दाणं दिंतो जिणभवणे समागच्छइ। लग्गाइकारणे पच्छा वा। तओ जिणाणं पूयं करेइ। तओ अक्खयाणं अंजलिं नालिएरसहियं भरिऊणं पयाहिणत्तयं नमोक्कारपुव्वयं देइ। तओ पुव्वोत्तविहिणा पुप्फे अक्खए वा खेवाविज्जइ, परिक्खानिमित्तं। तओ पच्छा इरियावहियं पडिक्कमिऊण खमासमणपुव्वयं पुव्विं पडिवन्नसम्मत्ताइगुणो सीसो भणइ – 'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं सव्वविरइसामाइयआरोवणत्थं चेइयाइं वंदावेह'। जो पुण अपडिवन्नसम्मत्ताइगुणो सो 'सम्मत्तसामाइय-सव्वविरइसामाइयआरोवणत्थं' ति भणइ। गुरू आह – 'वंदावेमो'। पुणरवि खमासमणं दाउं, गुरुपुरओ जाणूहिं ठाइ। गुरू वि तस्स सीसे वासे खिवेइ। तओ गुरुणा सह चेइयाइं वंदेइ। गुरू वि सयमेव संतिनाह-संतिदेवयाइथुईओ देइ। सासण-देवयाकाउस्सग्गे उज्जोयगरचउक्कं चंदेसुनिम्मलयरापज्जंतं चिंतंति। गुरू वि पारित्ता थुई देइ, सेसा काउ-स्सग्गठिया सुणंति। पच्छा सव्वे वि य उज्जोयगरं पढंति। तओ नमोक्कारतयं कड्ढंति। तओ जाणूहिं ठाऊण सक्कत्थयं पंचपरमेट्ठित्थयं च भणिंति। तओ गुरू वेसमभिमंतेइ। पच्छा खमासमणं दाउं सीसो भणइ – 'इच्छाकारेण संदिसह तुब्भे अम्हं रयहरणाइवेसं समप्पेह'। तओ नमोक्कारपुव्वं 'सुगृहीतं करेह' त्ति भणंतो सीसदक्खिणबाहासंमुहं रओहरणदसियाओ करिंतो पुव्वाभिमुहो उत्तराभिमुहो वा वेसं समप्पेइ। पुणो खमासमणं दाउं, रयहरणाइवेसं गहाय, ईसाणदिसाए गंतूण आभरणाइअलंकारं ओमुयइ। वेसं परिहरेइ। पयाहिणावत्तं। चउरंगुलोवरिं कप्पियकेसो गुरुपासमागम्म खमासमणं दाउं भणइ – 'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं अट्ठं गिण्हह'। पुणो खमासमणं दाउं उद्धट्ठियस्स ईसिमोणयकायस्स नमोकारतिगमुच्चरित्तु उद्धट्ठिओ गुरू पच्चाए लग्गवेलाए समकालनाडीदुगपवाहवज्जं अब्भिंतरपविसमाणसासं अक्खलियं अट्ठातिगं गिण्हइ। तस्समीवट्ठिओ साहू सदसवत्थेणं अट्ठाओ पडिच्छइ। तओ खमासमणं दाउं सीसो भणइ – 'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं सव्वविरइसामाइयआरोवणत्थं काउस्सग्गं करावेह।' खमासमणपुव्वयं 'सव्वविरइ-सामाइयआरोवणत्थं करेमि काउस्सग्गं अन्नत्थूससिएण' मिच्चाइ पढिय, उज्जोयगरं सागरवरगंभीरापज्जंतं सीसो गुरू य दो वि चिंतंति। पारित्ता उज्जोयगरं भणंति। तओ खमासमणं दाउं सीसो भणइ – 'इच्छा-कारेण तुब्भे अम्हं सव्वविरइसामाइयसुत्तं उच्चारावेह'। गुरू आह – 'उच्चारावेमो'। पुणो खमासमणं दाऊण ईसिमोणयकाओ गुरुवयणमणुभणंतो, नमोकारतिगपुव्वं सव्वविरइसामाइयसुत्तं वारतिगमुच्चरइ। गुरू मंतो-

† 'सिखा' इति A टि°। ‡ 'बभाति' इति B टि°। 1 B सयणवग्गं।

§ ३०. संपयं उवओगं विणा न भत्तपाणविहरणं ति उवओगविही भण्णइ – तत्थ सूरिए उग्गए पमज्जियाए वसहीए गुरुणो पुरओ आयरिय–उवज्झाय–वायणायरिया पंगुरिया, सेसा कडिपट्टमित्तावरणा पढमे खमासमणे 'सज्झायं संदिसावेमि' त्ति; बीए 'सज्झायं करेमि' त्ति भणिय, जाणूवरि धरियरयहरणा मुहपोत्तिया-थइयवयणा 'धम्मो मंगलाइ' सत्तरससिलोगे थेरावलियं वा सज्झायं सुत्तपोरिसि-आयारसच्चवणत्थं करित्ता, समासमणं दाउं 'उवओगं संदिसावेमि'त्ति; बीए 'उवओगं करेमि'त्ति भणिय, उट्ठित्तु 'उवओगस्स काराविणियं करेमि काउस्सग्गं'ति दंडगं भणिय, काउस्सग्गं करिय, नवकारं चिंतेति । गुरुणो पुण नवकारं चिंतित्ता वारतिगं मंतं सुमरिंति । सो य इमो–

अउम् नअ मओ भअ गअ वअ तइ कआ मए शवअ रइ अ ननअम् पऊ रणअम् भअ वअ तउ सवआ हआ ।

तओ नमोक्कारेण गुरुणा पारिए काउस्सग्गे, साहुणो पारित्ता पंचमंगलं भणंति । तओ जिट्ठो ओणयकाओ भणइ–'इच्छाकारेण संदिसह' । इत्थंतरे गुरुनिमित्तोवउत्तो भणइ 'लाभु' त्ति पुणो जिट्ठो ओणयतरकाओ भणइ – 'कह लेसहं' । गुरू भणइ 'तह'त्ति । जहा पुव्वसाहूहिं गहियं तहा ग्रहीतव्यमित्यर्थः । तओ इत्थं आवसियाए जस्स वि जोगो त्ति भणिऊण जहारायणियाए साहुणो वंदंति ।

॥ उवओगविही समत्तो ॥ १८ ॥

§ ३१. कए य उवओगे सो नवदिक्खिओ भोम-सणिवज्जिय पसत्थदिणे, चित्ता–अणुराहा–रेवई–मियसिर–रोहिणि–तिउत्तरा–साइ–पुणव्वसु–स्सवण–धणिट्ठा–सयभिस–हत्थ–स्सिणि–पुस्स–अभीइरिक्खेसु अहिणवपत्ताबंध उग्गाहिय कयवासक्खेवपत्तो महूसवपुव्वं गोयरचरियाए गीअत्थसाहुसहिओ भिक्खालाभं जाव भूमिअट्ठवियदंडगो वच्चइ । तओ उच्च-नीय-मज्झिमकुलेसु एसियं[1] वेसियं[2] गवेसियं[3] फासुयं घयाइ-[4] भिक्खमादाय पडिनियत्तो–'निसीही ३, नमो खमासमणाणं गोयमाईणं महामुणीणं' ति भणिय उवस्सए पविसइ । तओ गुरुपुरओ खमासमणपुव्वं इरियं पडिक्कमिय, काउस्सग्गे जं जहा गहियं तं तहा चिंतिय, नमोक्कारेण पारित्ता, गमणागमणं आलोइत्ता, कविया–करोडिया–चट्टुयाइणा इत्थीओ पुरिसाओ वा जं जहा गहियं भत्तपाणं तं तहा आलोइज्जा । तओ 'दुरालोइय-दुपडिक्कंतस्स इच्छामि पडिक्कमिउं गोयरचरियाए भिक्खायरियाए'...इच्चाइ जाव...जं उग्गमेण उप्पायणेसणाए अपरिसुद्धं पडिग्गाहियं परिभुत्तं वा जं न परिट्ठवियं तस्स मिच्छामि दुक्कडं । तस्सुत्तरीकरणेणमिच्चाइ...जाव...वोसिरामि त्ति पढिय, काउस्सग्गे य–

अहो जिणेहिऽसावज्जा, वित्ती साहूण देसिया ।
मोक्खसाहणहेउस्स साहुदेहस्स धारणा ॥ १ ॥

इइ चिंतेइ । तओ नमोक्कारेण पारित्ता, चउविसत्थयं भणित्ता, भत्तपाणं पाराविय, उवरिं अहे य पमज्जियाए भूमीए दंडगं ठाविय, देवे वंदित्ता जहन्नओ वि 'धम्मो मंगलमुक्किट्ठं'मिच्चाइ सत्तरससिलोगे सज्झायं करित्ता, जहारायणियं जहारिहं दवाइ जेसिं न अट्ठो ते अणुन्नवित्ता, मुहपोत्तियाए मुहं पडिलेहित्ता, रयहरणेण पायभाणट्ठाणं च पमज्जिय, असुरसुरमिच्चाइविहिणा अरत्तदुट्ठो जेमेइ ।

॥ आइमअडणविही ॥ १९ ॥

*

१ एषणादोषपरिशुद्धं एसियं । २ वेषमात्रेण लब्धं तदयमुत्थोऽदं अमुकस्याम्य एवंगुण इत्यादि कथनत इति वेसियं । ३ स्वयं गत्वा अवलोकितं गवेसियं । ४ एतेनादौ घृतं विहर्तव्यमित्युक्तम् । इति A आदर्शे टिप्पणी ।

भरणीवज्जेसु अन्नेसु वा रिक्खेसु उववितिय सम्ममहियासंतो लोयं कारिय, लोयगारवाहुं विस्सामिय, इरियावहियं पडिक्कमिय, सक्कत्थयं भणिय, गुरुसमीवमागम्म, खमासमणदुगेण मुहपोत्तिं पडिलेहिय, दुवालसावत्तवंदणं दाउं, खमासमणं दाउं, पढमखमासमणे भणइ–'इच्छाकारेण संदिसह लोयं पवेएमि'। गुरू भणइ–'पवेयह'; बीए 'संदिसह किं भणामो'। गुरू भणइ–'वंदित्ता पवेयह'; तइए 'केसा मे पज्जुवासिया'। तओ 'दुक्करं कयं, इंगिणी साहिय'त्ति गुरुणा वुत्ते 'इच्छामो अणुसट्ठिं'ति भणइ। चउत्थे 'तुम्हाणं पवेइयं, संदिसह साहूणं पवेएमि'; पंचमे नमोक्कारं भणइ। छट्ठेणं 'तुम्हाणं पवेइयं, साहूणं पवेइयं, संदिसह काउस्सग्गं करेमि'। सत्तमे केसेसु पज्जुवासिज्जमाणेसु सम्मं जन्न अहियासियं, कुइयं कक्कराइयं छीयं जंभाइयं तस्स ओहडावणियं करेमि काउस्सग्गं अन्नत्थूससिएण'मिच्चाइणा सत्तावीसुस्सासं काउस्सग्गं करेइ। चउवीसत्थयं भणित्ता जहारायणियं साहू वंदइ, पाए य विस्सामेइ। जो उण सयं चिय लोयं करेइ सो संदिसावणपवेयणाइ न करेइ।

॥ इइ लोयकरणविही ॥ १७ ॥

§२९. पव्वइएण य उभयकालं पडिक्कमणं विहेयं। तव्विही य सावयकिच्चाहिगारे वुत्तो। जओ साहूणं सावयाण पडिक्कमणविही तुल्लो चेव। नाणत्तं पुण इमं–साहुणो ससूरिए चेव चउव्विहाहारं पच्चक्खिय, जलाइ उज्झिय, जलभंडाइ संठविय, सम्मं इरियं पडिक्कमिय, चउवीसं थंडिले जहन्नओ विहत्थमित्ते बाहिं अंतो य अहियासि-अणहियासिजुग्गे आसन्ने मज्झिमे दूरे य दंडाउंछणेणं पेहिय गुरुपुरओ खमासमणेण 'गोयरचरियं पडिक्कमेमो'; बीयखमासमणेणं 'गोयरचरियपडिक्कमणत्थं काउस्सग्गं करेमो'त्ति भणित्ता, अन्नत्थूससिएणमिच्चाइ भणित्ता, नवकारं चिंतिय पढित्ता य इमं गाहं घोसंति–

कालो गोयरचरिया थंडिल्ला वत्थपत्तपडिलेहा।
संभरऊ सो साहू जस्सवि जं किंचि अणुवउत्तं॥

तओ अहारायणियाए साहू वंदित्ता, तहा देवसियपडिक्कमणमारभंति, जहा चेइयवंदणाणंतरं अद्धनिवुड्ढे सूरिए सामाइयसुत्तं कड्ढंति। सावया पुण वावारबाहुल्लेण अत्थमिए वि पडिक्कमंति। तहा साहुणो रयणीचरमजामे जागरिय, सत्तट्ठ नवकारे भणिय, इरियं पडिक्कमिय, कुसुमिण-दुस्सिमिणुस्सग्गे उज्जोयचउक्कं चिंतिय, सक्कत्थएण चेइए वंदिय, मुहपोत्तिं पडिलेहिय, खमासमणदुगेण सज्झायं संदिसाविय, नवकारं सामाइयं च तिक्खुत्तो कड्ढिय, अहारायणियाए साहू वंदिय, सज्झायं काउं, पडिक्कमणाणंतरं मुहपोत्ती–रयहरण–निसिज्जा–दुगचोलपट्ट–कप्पतिग–संथारुत्तरपट्टेसु पडिलेहिएसु जहा सूरो उट्ठेइ तहा वेलं तुलित्ता राइयं पडिक्कमंति। तहा चेइयवंदणाणंतरं साहुणो खमासमणदुगेण 'बहुवेलं संदिसावेमि, बहुवेलं करेमि' त्ति भणित्ता, आयरियाई वंदंति। सावया पुण बहुवेलं न संदिसावेयंति अपोसहिया। तहा साहुणो 'आयरियउवज्झाए' इच्चाइगाहातिगं न भणंति। पडिक्कमणसुत्तं च साहूणं 'चत्तारिमंगल'मिच्चाइ। सावयाणं तु 'वंदित्तु सव्वसिद्धे' इच्चाइ। तहा पक्खिए पज्जंतियखामणाणंतरं चउसु छोभवंदणएसु साहुणो भूनिहियसिरा 'पियं च मे जं भे' इच्चाइदंडगे भणंति। सावया पुण तिन्नि तिन्नि नवकारे पढंति। पढमे छोभवंदणए 'साहूहिं समं'; बीए 'अहमवि चेइयाइं वंदे'; तइए 'गच्छस्स संतियं'; चउत्थे 'नित्थारपारगा होह'त्ति जहक्कमं गुरुवयणाइं। पक्खियसुत्तं च साहूणं 'तित्थं करेइ तित्थे' इच्चाइ। सावयाणं पुण पडिक्कमणसुत्तमेव। तहा साहुणो खुद्दोवद्दवकाउस्सग्गाणंतरं पक्खिए चाउम्मासिए वा 'असज्झाइय अणाउत्तओहडावणियं करेमि काउस्सग्गं अन्नत्थूससिएण' मिच्चाइ भणिय, चउगुणं पंचमीसुस्सासं काउस्सग्गं कुणंति। सावया न कुणंति।

साहुणो वंदइ । अज्जिया सावया सावियाओ वि तं वंदंति । पुणो खमासमणं दाउं भणइ—'इच्छाकारेण तुम्हे अम्हं दिसिबंधं करेह' । गुरू भणइ—'करेमो' । तओ सीसस्स आयरिओवज्झायरूवो दुविहो दिसिबंधो कीरए । जहा—चंदाइयं कुलं, कोडियाइओ गणो, वइराइया साहा, अप्पणिच्चया गुरुणो आयरिया उवज्झाया य । गच्छे य उवज्झायाभावे आयरिया चेव उवज्झाया । साहुणीए अमुगा पवत्तिणीय त्ति तिविहो । तम्मि दिणे जहासत्तीए आयामनिव्वियाइ तवो कारिज्जइ । तओ खमासमणपुव्वयं सीसो गुरुं भणइ—'तुब्भे अम्हं धम्मोवएसं देह' । पुणो खमासमणं दाउं जाणूहिं ठिओ सीसो सुणइ । गुरू य नायाधम्मकहा-अंग-पढमसुयक्खंध-सत्तमज्झयणस्स रोहिणीनायस्स अत्थओ वक्खाणं करेइ । सो वि संवेगाइसयओ तहा सुणेइ, जहा अन्नो वि को वि पव्वयइ । रोहिणीनायं पुण सुपसिद्धं । तस्स य अत्थोवणओ एवं—

§ ३३. जह सिट्ठी तह गुरुणो जह नाइजणो तहा समणसंघो ।
जह वहुया तह भव्वा जह सालिकणा तह वयाइं ॥ १ ॥
जह सा उज्झियनामा उज्झियसाली जहत्थमभिहाणा ।
पेसणगारित्तेणं असंखदुक्खक्खणी जाया ॥ २ ॥
तह भव्वो जो कोई संघसमक्खं गुरुविइन्नाइं ।
पडिवज्जिउं समुज्झइ महव्वयाइं महामोहो ॥ ३ ॥
सो इह चेव भवंमी जणाण धिक्कारभायणं होइ ।
परलोए उ दुहत्तो नाणाजोणीसु संचरइ ॥ ४ ॥

उक्तं च—धम्माउ भट्ठं सिरिओववेयं जन्नग्गिविज्झायमिवप्पतेयं ।
हीलंति णं दुविहियं कुसीला दाढोद्धियं घोरविसं व नागं ॥ ५ ॥
इहेव धम्मो अयसो अ कित्ती दुन्नामधिज्जं च पिहुज्जणंमि ।
चुअस्स धम्माउ अहम्मसेविणो संभिन्नचित्तस्स उ हिट्ठओ गई ॥ ६ ॥
जहवा सा भोगवई जहत्थनामोवभुत्तसालिकणा ।
पेसणविसेसकारित्तणेण पत्ता दुहं चेव ॥ ७ ॥
तह जो महव्वयाइं उवभुंजइ जीविय त्ति पालिंतो ।
आहाराइसु सत्तो चत्तो सिवसाहणिच्छाए ॥ ८ ॥
सो इत्थ जहिच्छाए पावइ आहारमाइ लिंगि त्ति ।
विउसाण नाइपुज्जो परलोगम्मी दुही चेव ॥ ९ ॥
जहवा रक्खियवहुया रक्खियसालीकणा जहत्थक्खा ।
परिजणमन्ना जाया भोगसुहाइं च संपत्ता ॥ १० ॥
तह जो जीवो सम्मं पडिवज्जित्ता महव्वए पंच ।
पालेइ निरइयारे पमायलेसं पि वज्जंतो ॥ ११ ॥
सो अप्पहिइक्करुई इहलोयंमि वि विऊहिं पणयपओ ।
एगंतसुही जायइ परंमि मोक्खं पि पावेइ ॥ १२ ॥
जह रोहिणी उ सुण्हा रोवियसाली जहत्थमभिहाणा ।
वड्ढित्ता सालिकणे पत्ता सव्वस्स सामित्तं ॥ १३ ॥

§ ३२. तत्तो य आवस्सगतवं कारिज्जइ। मंडलिसत्तगायंबिलाणि य। मंडलिसत्तगं च इमं—

सुत्ते[1] अत्थे[2] भोयण[3] काले[4] आवस्सए य[5] सज्झाए[6]।
संथारए[7] विय तहा सत्तेया मंडली होंती ॥ १ ॥

अन्ने पुणुवट्ठावियं चेव कारियायंबिलं मंडलीए पवेसंति, तं च जुत्ततरं। जओ भणियं—

अणुवट्ठावियासहं अकयविहाणं च मंडलीए उ।
जो परिभुंजइ सहसा सो गुत्तिविराहगो भणिओ ॥ २ ॥

तओ दसवेयालियतवं कारित्ता उट्ठावणा कीरइ। आवस्सय-दसवेयालियजोगविही उवरिं भण्णिही। तीए विही पुण इमो—

पढिए य कहिय अहिगय परिहर उवठावणाए सो कप्पो।
छक्कं तेहिं विसुद्धं परिहरनवएण भेएण ॥ ३ ॥

'धम्मो मंगलाइ–छज्जीवणियासुत्तं' पाढित्ता, तस्सेव अत्थं कहित्ता, पुढविकायाइजीवरक्खणविहिं जाणावित्ता, पाणाइवायविरमणाईणि वयाणि सभावणाइं साइयाराणि कहिय, पसत्थे तिहि–करणजोगे ओसरणे गुरू अप्पणो वामपासे सीसं ठावेऊण मुहपोत्तिं पडिलेहाविय, दुवालसावत्तवंदणयं दाविय भणेइ– 'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं पंचमहव्वयाणं राईभोयणवेरमणछट्ठाणमारोवणत्थं चेइयाइं वंदावेह'। गुरू भणइ–'वंदावेमो'। तओ सेहस्स वासक्खेवं काउं वड्ढमाणथुईहिं चेइए वंदिय, जाव थोत्तभणणं पणिहाणपज्जंतं। तओ सेहं खमासमणं दावित्ता, पंचमहव्वयसुत्तउच्चारावणत्थं सत्तावीसुस्सासं काउस्सग्गं कराविय, चउवीसत्थयं भाणित्ता, लोगुत्तमाण पाएसु वासे छुहित्ता, पंचमंगलं तिक्खुत्तो कड्ढित्ता, गुरुकुप्परेहिं पट्टं धरिय, वामहत्थअणामियाए मुहपोत्तिं लंबंतिं धरित्ता, गयग्गदंतोन्नएहिं करेहिं रयहरणं धारिय, तिक्खुत्तो पंचमहव्वयाइं राईभोयणवेरमणछट्ठाइं उच्चारावेइ। जाव लग्गवेलाए 'इच्चेयाइं पंचमहव्वयाइं' इति आलावगं तिन्निवारे कड्ढेइ। गुरू वासक्खए अभिमंतेइ। तओ गुरू लोगुत्तमाण पाएसु वासे खिवइ। वासक्खए अभिमंतिए संघस्स देइ। तओ खमासमणं दाउं सीसो भणइ–'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं पंचमहव्वयाइं राईभोयणवेरमणछट्ठाइं आरोवेह'। गुरू भणइ–'आरोवेमि'। सीसो खमासमणं दाउं भणइ–'संदिसह किं भणामो'। गुरू भणइ–'वंदित्ता पवेयह'। पुणो खमासमणं दाउं भणइ–'इच्छाकारेण तुब्भेहिं अम्हं पंचमहव्वयाइं राईभोयणवेरमणछट्ठाइं आरोवियाइं?'। गुरू वासक्खेवपुव्वयं भणइ–'आरोवियाइं।' ३ खमासमणाणं, हत्थेणं, सुत्तेणं, अत्थेणं, तदुभएणं, सम्मं धारणीयाणि, चिरंपालणीयाणि, नित्थारगपारगो होहि, गुरुगुणेहिं वड्ढाहिइ।' सीसो 'इच्छामो अणुसट्ठिं'ति भणित्ता, खमासमणं दाऊण भणइ–'तुम्हाणं पवेइयं, संदिसह साहूणं पवेएमि'। तओ खमासमणं दाउं नमोक्कारमुच्चरंतो पयाहिणं देइ वाराओ तिन्नि। संघो य तस्स सिरे वासअक्खयनिक्खेवं करेइ। तओ खमासमणं दाऊण भणइ–'तुम्हाणं पवेइयं, साहूणं पवेइयं, संदिसह काउस्सग्गं करेमि'। गुरू भणइ–'करेह'। खमासमणं दाऊण 'पंचमहव्वयाणं राईभोयणवेरमणछट्ठाणं आरोवणत्थं करेमि काउस्सग्गं, अन्नत्थूससिएणं'–मिच्चाइ पढिय, सागरवरगंभीरापज्जंतं उज्जोयगरं चिंतिय, पारित्ता उज्जोयगरं पढइ। तओ खमासमणपुव्वयं भणइ–'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं पंचमहव्वयाणं राईभोयणवेरमणछट्ठाणं थिरीकरणत्थं काउस्सग्गं करावेह'। गुरू भणइ–'करावेमो'। 'पंचमहव्वयाणं राईभोयणवेरमणछट्ठाणं थिरीकरणत्थं करेमि काउस्सग्गं' इच्चाइ भणिय, काउस्सग्गं करेइ। तत्थ सागरवरगंभीरापज्जंतं उज्जोयगरं चिंतिय, पारित्ता उज्जोयगरं पढइ। तओ खमासमणं दाउं भणइ–'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं नामठवणं करेह'। गुरू भणइ–'करेमो'। तओ वासे खिवंतो जहोचियं नामं करेइ। तओ कयनामो सीसो सव्वे

दीसइ। जइ आगासे गंधव्वनगरं विज्जु उक्का दिसदाहो वा तो असज्झाओ। जाव एयाणि वट्टंति। थेवेसु वि एगा पोरुसी हवइ। उक्कालक्खणं पडियाए वि पच्छओ रेहा, अहवा उज्जोओ हवइ। कणगो पुण तव्विरहिओ। तहिं वरिसाले सत्तहिं, सीयाले पंचहिं, उण्हयाले तिहिं पहरमित्तमसज्झाओ हवइ। गज्जिए पुण पहरदुगं। तहा आसाढचाउम्मासियपडिक्कमणानंतरं पडिवया जाव असज्झाओ। बीयाए सुज्झइ। एवं कत्तिय-चाउम्मासिए वि। आसोयसुक्कपक्खपंचमीपहरदुगाओ आरब्भ बारसदिणाणि, जाव पडिवया ताव असज्झाओ, बीयाए सुज्झइ। एवं चित्तमाससुक्कपक्खे वि; नवरमेगारसीए आरब्भ जाव पुन्निमा दिणतिगं अचित्तरजओ-हडावणियं काउस्सग्गो कीरइ। लोगस्सुज्जोयगरचउक्कं चिंतिज्जइ। अह न सुमरियं तो बारसी-तेरसीओ वि आरब्भ कीरइ। अह तेरसीए वि न सुमरियं तो संवच्छरं जाव धूलीए पडंतीए असज्झाओ होइ। दोण्हं राईणं कलहे, मेच्छाइभए, आलयासन्ने, इत्थीणं पुरिसाणं वा जुज्झे, फग्गुणे धूलिकीलाए य जाव एयाणि वट्टंति, ताव असज्झाओ। दंडिए पंचत्तं गए जाव अन्नो न हवइ ताव असज्झाओ। ठविए वि जाव न समंजसं ति। नयरपहाणपुरिसे अहोरत्तमसज्झाओ। आलयाओ सत्तघरमज्झे पसिद्धे पंचत्तं गए अहोरत्तमसज्झाओ। अणाहपुरिसे पुण जत्तियावेला मडयं चिट्ठइ। एवं तिरिए वि नीणिए सुज्झइ। तिरियाणं रुहिरे पडिए, अंडए फुट्टिए, गोणीए य पसूयाए, जराउपडणे, पहरतियं असज्झाओ हवइ। माणुसरुहिरे पडिए, उद्धरिए वि अहोरत्तं। जइ महईए वुट्ठीए धोयं तो तव्वेलाए वि सुज्झइ। अह रयणीए घडियामेत्ताए वि चिट्ठंतीए पडियं उद्धरियं च तो अहोरत्तछेओ त्ति सूरुग्गमे सुज्झइ। माणुसहड्डे बारस संवच्छराणि असज्झाओ। अह दंता वा दाढा वा पडिया, पयत्तेण पलोइया वि न लद्धा, तो ओहडावणिज्ज-काउस्सग्गो कीरइ। नवकारो चिंतिज्जइ भणिज्जइ य। जइ मूसगं बिराली गहिऊण जीवंतं नेइ तो न असज्झाओ; अह विणासिऊण नेइ तो अहोरत्तमसज्झाओ। तिरियाणमवयवा रुहिरं च सट्ठिहत्थमज्झे असज्झायं कुणंति। माणुस्साणं पुण हत्थसयमज्झे, जइ न अंतरे सगडस्स उभयदिसिगामिणी वत्तणी। हत्थसयमज्झे इत्थीए पसूयाए जइ कप्पट्ठगो[1] तो सत्तदिणाणि असज्झाओ, अह कप्पट्ठिया[2] तो अट्ठदिणाणि। रत्तुक्कडा इत्थिय त्ति—इत्थीए मासे मासे रिउरुहिरं पडइ, जइ जाणिज्जइ तो तिन्नि दिणाणि असज्झाओ कीरइ। अह पवाहि-याओ रोगाओ उवरिं पि पवहइ, ता असज्झायओहडावणत्थं काउसग्गो कीरइ। अद्दाइनक्खत्तदसगे आइच्चेण संगए विज्जु-गज्जियं पि सज्झायं न उवहणइ। तारगादंसणमवि जाव साइनक्खत्ते आइच्चगमणं होइ। सेसकाले उण अवस्सं तारगतिगदंसणे सुज्झइ। अह केसिं पि साहूणं तहाविहं नक्खत्तपरिण्णाणं न हवइ, तओ आसाढ-चउम्मासाओ कत्तियचउम्मासं जाव विज्जु-गज्जिएसु वि न असज्झाओ होइ। उवा सयावि उवहणइ। तहा धडहडे भूमिकंपे य संजाए अट्ठपहरा असज्झाओ होइ। जत्तियावेलाए संजाओ बीयदिणे तत्तियाए वेलाए परओ सुज्झइ। ससद्दो धडहडो, सद्दरहिओ भूमिकंपो। पलीवणे य संजाए जाव तं वट्टइ ताव असज्झाओ।

संपयं चंदसूरगहणअसज्झाओ भण्णइ—चंदे गहिए उक्कोसेण बारस पहरा असज्झाओ। कहं?—उप्पायगहणे चंदो उग्गमंतो चेव गहिओ, गहिओ चेव सव्वराई पज्जंते अत्थमिओ। एए रयणीए चत्तारि पहरा, अन्नं च अहोरत्तं, एवं दुवालस पहरा असज्झाओ। अहवा अन्नहा दुवालस पहरा। को वि साहू अयाणओ न जाणइ कित्तियाए वेलाए गहणं, इत्तियं पुण जाणइ जहा अज्ज पुण्णिमाराईए गहणं भवि-स्सइ। अब्भच्छन्नत्तेण य गहणदंसणाभावाओ चत्तारि वि पहरा परिहरिया। पभायसमये अब्भविगमे सगहो अत्थमंतो दिट्ठो तओ एए रयणितणया चत्तारि पहरा अन्नं च अहोरत्तं। एवं दुवालस। जहन्नेणं पुण अट्ठ। पुण्णिमारयणीपज्जंते चंदो गहिओ, तहट्ठिओ चेव अत्थमिओ; तओ अहोरत्तं परिहरिज्जइ। एवं अट्ठ। एयाणं मज्झे मज्झिमो। सग्गहनिबुड्डे एवं। जइ पुण राईए गहिओ, राईए चेव मुक्कियाए सेसाए विमुक्को तो तीए

1 'पुत्रः' इति A टिप्पणी। 2 'पुत्री' इति A टिप्पणी।

तह जो भव्वो पाविय वयाइं पालेइ अप्पणा सम्मं ।
अन्नेसि वि भव्वाणं देइ अणेगेसि हियहेउं ॥ १४ ॥
सो इह संघपहाणो जुगप्पहाणो त्ति लहइ संसद्दं ।
अप्पपरेसिं कल्लाणकारओ गोयमपहु व्व ॥ १५ ॥
तित्थस्स वुड्डिकारी अक्खेवणओ कुतित्थियाईण ।
विउसनरसेवियकमो कमेण सिद्धिं पि पावेइ ॥ १६ ॥

उट्ठावणा जहन्नओ सत्तराईदिएहिं, सा पुण पुव्वोवट्ठावियपुराणस्स कीरइ । मज्झिमओ चउहिं मासेहिं, सा य अणहिज्जओ मंदसद्धस्स य । उक्कोसओ छम्मासेहिं, सा य दुम्मेहस्स । असद्दहओ य लग्गाइकारणे य अइरित्तेणावि कालेण कीरइ त्ति ॥

॥ उट्ठावणाविही समत्तो ॥ २० ॥

§ ३४. उट्ठाविएण य सुयमहिज्झियव्वं । सुयाहिज्झणं[1] च न जोगवहणमंतरेण त्ति संपयं जोगविही भण्णइ—तत्थ पढमं ताव जोगवाहीहिं एवं भूएहिं होयव्वं ।

पियधम्मा सुविणीया लज्जालुइया तहा महासत्ता ।
उज्जुत्ता य विरत्ता दढधम्मा सुट्ठियचरित्ता ॥ १ ॥
जियकोह-माण-माया जियलोहा जियपरीसहा निरुया ।
मण-वयण-कायगुत्ता एरिसया जोगवाहीओ ॥ २ ॥
थोवोवहिओवगरणा निद्दजयाहारजयपहाणा य ।
आलोयणसलिलेणं पक्खालियपावमलपडला ॥ ३ ॥
कयकप्पतिप्पकिरिया सन्निहियाई गुरूण आणरया ।
अणगाढजोगिणो विहु अगाढजोगी विसेसेण ॥ ४ ॥

तत्थ पसत्थे दिणे अमियजोग – सिद्धिजोग – रविजोगाइगुणगणोवेए मिगसिराइनाणनक्खत्तजुत्ते मच्चुजोगवज्जपायाइदोसलेसादूसिए संझागय – रविगय – विड्डेर – सग्गह विलंबि – राहुहय – गहभिन्ननक्खत्तवज्जे सुमेसु सुमिणसउणनिमित्तेसु दिणपढमपोरिसीए चेव अंगसुयक्खंधाणं उद्देस-समुद्देसाणुन्नाओ कीरंति । नो पच्छिमपोरिसीए राईए वा । अज्झयणुद्देसाइयं राईए वि कीरइ ।

§ ३५. तहा जोगा दुविहा – गणिजोगा, बाहिरजोगा य । तत्थ गणिजोगा आगाढा चेव । आगाढा नाम जेसु सव्वसमत्तीए उत्तरीज्जइ । इयरे आगाढा अणागाढा य । तत्थ उत्तरज्झयणसत्तिकय पण्हावागरण–महानिसीहाणि आगाढा । आवस्सगाई अणागाढा असमत्तीए वि उत्तरिज्जइ त्ति काउं । अन्ने दिणचउक्काणंतरमुत्तरिज्जइ त्ति भणंति । तहा उक्कालिया कालिया य । तत्थुक्कालिएसु जोगुक्खेवो कीरइ न संघट्टं । केसिंचि मएण न जोगुक्खेवो न संघट्टं । कालिएसु जोगुक्खेवो संघट्टं च । केसु वि आउत्तवाणयं च । एयविहाणं पत्थावे भणिही ।

§ ३६. तहा कालिएसु कालग्गहणाइयं च होइ । कालग्गहणं च अणज्झाए न विहेयव्वं ति पुव्वमणज्झयणविही भण्णइ । तत्थ गब्भमासेसु कत्तिय-मग्गसिराइसु महियाए पडंतीए रए वा जाव पडइ ताव असज्झाओ । जओ महिया पडणसमकालमेव सव्वं आउक्कायभावियं करेइ । अओ तक्कालसममेव सव्वचिट्ठाओ निरुम्भंति पाणिदयट्ठा । सचित्तो आरण्णो उद्धुओ आगओ रओ भण्णइ । वण्णओ ईसि आयंबो दियंतेसु

1 B सुयमहिज्झणं । १ 'आताम्रो दिगन्तेषु' इति A टिप्पणी ।

काउस्सग्गं करेइ। अह कालकाउस्सग्गाणंतरं गच्छंतस्स पवेयणसमए वा भज्जइ तो मूलओ गच्छेइ। एगम्मि कालमंडले जइ तिन्नि वेला भज्जइ तो तम्मि गहणं न कप्पइ। अओ दुइए कालमंडले इमाए विहीए मूलाओ घेप्पइ। तम्मि वि तिन्नि वेला; एवं तइए वि। अहवा अन्नम्मि कालमंडले जइ गेण्हिउं न जाइ तो एगंमि चेव नववेला घेप्पइ। तदुवरि न कप्पइ।

§ ३८. अहुणा विसेसेण कालग्गहणविही भण्णइ—तत्थ पाभाइयस्स ताव जहा पच्छिमदिसि ठवणायरियं ठविता, दंडगं च तस्स समीवे धरिय कालग्गाही वामपासट्ठियदंडधरसमेओ कालमंडले ठाउं नमोक्कारं भणइ। तओ दोवि आवस्सियं काऊण, असज्ज ३. निसीही ३. नमो खमासमणाणं ति भणंता ठवणायरियमंडले गंतूण खमासमणं दाउं भणंति—'इच्छाकारेण संदिसह पाभाइउ कालु पडियरहं; इच्छं मत्थएण वंदामि' आवस्सी असज्ज ३. निसीही ३. नमो खमासमणाणं ति भणिय कालमंडलसगासे दोवि ठंति। तओ दंडधरो दिसालोयं करिय, आवस्सियाइ पुव्वोत्तं भणंतो ठवणायरियमंडलमागम्म, इरियं पडिक्कमिय, अट्ठुस्सासं काउस्सग्गं करित्ता, नमोक्कारं भणइ। तओ मुहपोत्तिं पडिलेहिय, दुवालसावत्तवंदणं दाऊण, खमासमणपुव्वं 'इच्छाकारेण पाभाइयकालवेला वट्टइ, साहुणो उवउत्ता होह त्ति' भणिय, दंडं गिण्हिय, आवस्सियाइं कुणंतो कालग्गाहि-समीवमागम्म पच्छिमामुहो चिट्ठइ। तओ कालग्गाही आवस्सिई असज्ज ३. निसीही ३. नमो खमासमणाणं ति भणंतो ठवणायरियमंडले गंतूण, इरियं पडिक्कमिय, अट्ठुसासुस्सग्गं करिय, पारिय, पंचमंगलं भणिय, मुहपोत्तिं पडिलेहिय, दुवालसावत्तवंदणं दाऊण, खमासमणदुगेण भणइ—'पाभाइउ कालु संदिसावहं, पाभाइउ कालु लेहं!' जउ सुद्धु, तउ मोणेणं आवस्सी असज्ज ३. निसीही ३. नमो खमासमणाणं ति भणंतो काल-मंडले जाइ। तदागमणे दंडधरो हत्थसंठियं दंडं तस्संमुहं ठवेइ। तओ कालग्गाही तयग्गे उद्धट्ठिओ इरियं पडिक्कमिय, अट्ठुस्सासमुस्सग्गं करिय पारिय, नमोक्कारं भणिय, संडासगे पडिलेहिय, उवविसिय, पुत्ति-तिगपडिलेहणेण अक्खलियाइविहिणा रयहरणेण वारतिगं कालमंडलं पडिलेहेइ। इत्थ कालमंडलकरणे उव-ओगहत्थपरावत्ताइविही गुरुमुहाओ सिक्खियव्वो। न लिहिउं पारिज्जइ। तओ दंडयं नमोक्कारपुव्वं दंडधर-करे समप्पेइ। अणंतरं पाए हत्थेसु लाएयंतो निसीही नमोखमासमणाणं ति भणंतो, कालमंडले पविसिय, चोलपट्टं वेढयाअंतो पडिलेहिय, उद्धो होऊण भणइ—'उवउत्ता होह। पाभाइयकाललियावणियं करेमि-काउस्सग्गं, अन्नत्थूससिएणमिच्चाइ' जावअट्ठुस्सासं काउस्सग्गं उद्धट्ठिय दंडधरधरिय दंडअग्गे करिय पारित्ता सणियं बाहाओ समाहट्टु रयहरणसणाहं मुहपोत्तियं मुहे दाउं, जोडियकरसंपुडो चउवीसत्थयं भणिय, दुमपुप्फिय-सामन्नपुव्वियअज्झयणे तइयअज्झयणसिलोगं च चिंतेइ। णवरं अज्झयणसमत्तिआलावगे न उच्चारेइ। उच्चारणे कालवहो। एवं पुव्वाए चिंतिय, दाहिणाए पच्छिमाए उत्तराए य सिलोग १७ चिंतेइ। दंडधरो वि जत्थ जत्थ सो पडिदिसं पाए ठाविस्सइ, तत्थ तत्थ रयहरणेण अग्गं पडिलेहेइ। पुणो पुव्व-दिसाए बाहाओ अवलंबिय, नमुक्कारं चिंतिय, पारित्ता नमोक्कारं कड्ढित्ता, 'मत्थएण वंदामि आवस्सिई असज्ज ३. निसीही ३. नमो खमासमणाणं' ति भणंतो, ठवणायरियमंडलसमीवे पविसिय, खमासमणपुव्वं इरियं पडि-क्कमइ। काउस्सग्गे नमुक्कारं चिंतिय पारित्ता भणित्ता य, खमासमणमुहपोत्तिपुव्वं वंदणं दाऊण—'इच्छाकारेण संदिसह पाभाइउ काल पवेयहं। इच्छाकारि तपसियहु पाभाइउ कालु सूझइ'। सव्वे भणंति सूझति त्ति। तओ दोवि जाणुट्ठिया दुमपुप्फियज्झयणेण सज्झायं करेंति। तओ कालुग्गाही दुवालसावत्तवंदणं दाउं भणइ 'इच्छकारि तपसियहु दिट्ठं सुयं!'। सव्वे भणंति न किंचि। एवं वाघाइय-अड्डरत्तिय-वेरत्तिया वि तव्वय-णाभिलावेण घिप्पंति। नवरं पाभाइयकालो पभाए वसहिपवेयणाणंतरं पवेइज्जइ। सेसा गहणाणंतरं चेव पवेइज्जंति। तहा पाभाइयकालो अवरण्हे पडिलेहणाए कयाए सज्झायं पट्ठविय, कालमंडलाइं दुक्खुत्तो काउं, पच्चक्खाणं वंदणं दाऊण, सज्झायपडिक्कमणाणंतरं च पडिक्कमिज्जइ। अन्नसंघडाइसु उदुबद्धे गज्जि-

चेव राईए सेसं परिहरिज्जइ। सूरे उग्गए सज्झाओ हवइ। आइच्चगहणे पुण उक्कोसेण सोलसपहरा असज्झाओ। कहं?—उप्पायगहणे उग्गमंतो चेव गहिओ, सव्वं दिणं ठाऊण गहिओ चेव अत्थमिओ। तओ एए चत्तारि दिणपहरा, चत्तारि राईपहरा, अन्नं च अहोरत्तं—एवं सोलस। अहवा अब्भच्छन्ने साहू न याणइ केवइवेलाए गहणं भविस्सइ; तहाविहपरिण्णाणाभावाओ। तओ तं दिवसं सूरुग्गमाओ आरब्भ परिहरियं। अत्थमणसमए गहिओ अत्थमंतो दिट्ठो, तओ सा राई य परिहरिया; अन्नं च अहोरत्तं—एवं सोलस। जहन्नेणं पुण बारस। कहं?—अत्थमंतो आइच्चो गहिओ, तह चेव अत्थमिओ, तओ आगामिराइतणया चत्तारि पहरा अन्नं च अहोरत्तं—एवं बारस। सोलस-बारसण्हमंतराले मज्झिमो असज्झाओ। सग्गहनिवुड्डे एवं। जइ पुण दिणमज्झे गहिओ मुक्को य, तो गहणाओ आरब्भ अहोरत्तं परिहरिज्जइ।

जदाह—उक्कोसेण दुवालस चंदो जहन्नेण पोरिसी अट्ठ।
सूरो जहन्नबारस पोरसि उक्कोस दो अट्ठ॥ १॥
सग्गहनिवुड्ड एवं सूराई जेण होंत ऽहोरत्ता।
आइन्नं दिणमुक्को सो चिय दिवसो य राई य॥ २॥

संपयं वुट्ठीअसज्झाओ—बारससु वि मासेसु बुब्बुयवरिसे अहोरत्ता उड्डंपि जइ वरिसइ तो असज्झाओ, जाव वरिसइ। बुब्बुयवज्जवरिसे दोण्हमहोरत्ताणमुवरि जाव पडइ, ताव असज्झाओ। फुसियवरिसे सत्तण्हमहोरत्ताणमुवरि संतयं[1] पडंते जाव पडइ, ताव असज्झाओ, न परओ। अणुदिए सूरे, मज्झन्ने अत्थमणे अड्ढरत्ते य चि चउसु संझासु असज्झाओ। सुक्कपक्खस्स पडिवयं बीयं वा आरब्भ दिणतिगं जूवओ तत्थ वाघाइयकालो न घिप्पइ। एवं पक्खियदिणे वि।

॥ अणज्झायविही समत्तो॥ २१॥

§ ३७. अह कालग्गहणविही—तत्थ सामन्नेण कालो दुविहो—वाघाइओ अवाघाइओ य। तत्थ जो वाघाइओ सो घंघसालाए घेप्पइ, जो उण अवाघाइओ सो मज्झे बाहिरे वा। जइ मज्झे घिप्पइ तो नियमा सोहगो ठावेयव्वो। अह बाहिरे, तो ठाविज्जइ वा नवा। दंडधरो चेव सोहइ। विसेसो, जहा—चत्तारि काला। तं जहा—पाओसिओ वाघाइओ वा १. अड्ढरत्तिओ २. वेरत्तिओ ३. पाभाइओ ४। तत्थ पाओसिओ पओसवेलाए घेप्पइ। तीए य वेलाए छीयकलयलाइ अणेगे वाघाया होंति। अओ घंघसालाए घेप्पइ। अओ चेव पाओसिओ वाघाइओ भण्णइ १। अड्ढरत्तिओ अड्ढरत्तुवरिं घेप्पइ २। वेरत्तिय-पामाइया चउत्थपहरे घिप्पंति। पाओसिय-अड्ढरत्तिएसु नियमा उत्तरदिसाए कालगहणं पुव्वं कायव्वं। वेरत्तिए भयणा उत्तरा वा पुव्वा वा। पाभाइए पुव्वा चेव। कालं गेण्हमाणस्स वाणारियस्स दंडधरस्स वा वच्चंतस्स कालउस्सग्गे वा वंदणाणंतरं संदिसावण-पवेयणसमए वा जइ छीय-खलिय-जोइ-निग्घाय-विज्जुक-गज्जियाईणि भवंति तओ चउरो वि हम्मंति। पाओसिय-अड्ढरत्तिय-वेरत्तिया जइ उवहया तो उवहया चेव। पाओसिओ एगं वारं घिप्पइ न सुद्धो तो उवहम्मइ। अड्ढरत्तिओ दो तिन्नि वारा, वेरत्तिओ चत्तारि पंच वा, पाभाइओ नव वारेत्ति। अओ चेव पाभाइए असुद्धे योगवाहीणं जाव काला न पुज्जंति ताव दिणं गच्छइ त्ति। एवं पि पयाओ सुबइ त्ति—पाभाइओ उण पुणो पुणो नियत्तिय घेप्पइ नववेला जाव। इमिणा विहिणा जइ संदिसावणापुव्विं भज्जइ तो मूलाओ घेप्पइ; अह संदिसावणाणंतरं वच्चंतस्स कालमंडलस्स पडिलेहणाए पुव्वं वा भज्जइ, तो एवमेव नियत्तिऊण कालगेण्हगो ठवणायरियसमीवे खमासमणपुव्वं संदिसाविऊण विहिणा कालमंडले आगच्छइ। अह कालपडिलेहणाणंतरं कालकाउस्सग्गो, कालकाउस्सग्गाणंतरं कालमंडले ठियस्स, तो तत्थेव ठिओ ठवणायरियसंमुहं ठाऊण खमासमणपुव्वं संदिसाविऊण पुणो मूलाओ

1 B हम°। 2 A °र्राय [illegible]। [illegible]।

अणुओगो पवत्तइ, किं आवस्सगस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो पवत्तइ ?; आवस्सगवइरित्तस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो पवत्तइ ? । आवस्सगस्स वि उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो पवत्तइ; आवस्सगवइरित्तस्स वि उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो पवत्तइ । जइ आवस्सगस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो पवत्तइ; किं सामाइयस्स, चउवीसत्थयस्स, वंदणस्स, पडिक्कमणस्स, काउस्सगस्स, पच्चक्खाणस्स सव्वेसिं पि एएसिं उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो पवत्तइ ? । जइ आवस्सगवइरित्तस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो पवत्तइ, किं कालियस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो पवत्तइ ?; उक्कालियस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो पवत्तइ ? । कालियस्स वि उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो पवत्तइ; उक्कालियस्स वि उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो पवत्तइ । जइ उक्कालियस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो पवत्तइ, किं दसवेयालियस्स, कप्पियाकप्पियस्स, चुल्लकप्पसुयस्स, महाकप्पसुयस्स, पमायप्पमायस्स, ओवाइयस्स, रायपसेणईयस्स, जीवाभिगमस्स, पण्णवणाए, महापण्णवणाए, नंदीए, अणुओगदाराणं देविंदत्थयस्स, तंदुलवेयालियस्स, चंदाविज्झयस्स, पोरिसीमंडलस्स, मंडलिपवेसस्स, गणिविज्जाए, विज्जाचरणविणिच्छियस्स, झाणविभत्तीए, मरणविभत्तीए, आयविसोहीए, मरणविसोहीए, । [1]संलेहणासुयस्स, वीयरायसुयस्स, विहारकप्पस्स, चरणविहीए, आउरपच्चक्खाणस्स, महापच्चक्खाणस्स, सव्वेसिं पि एएसिं उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो पवत्तइ । जइ कालियस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो पवत्तइ; किं उत्तरज्झयणाणं, दसाणं, कप्पस्स, ववहारस्स, इसिभासियाणं, निसीहस्स, जंबुद्दीवपन्नत्तीए, चंदपन्नत्तीए, सूरपन्नत्तीए, दीवसागरपन्नत्तीए, खुड्डियाविमाणपविभत्तीए, महल्लियाविमाणपविभत्तीए, अंगचूलियाए, वग्गचूलियाए, विवाहचूलियाए, अरुणोववायस्स, गुरुलोववायस्स, धरणोववायस्स, वेलंधरोववायस्स, वेसमणोववायस्स, देविंदोववायस्स, उट्ठाणसुयस्स, समुट्ठाणसुयस्स, नागपरियावलियाणं, निरयावलियाणं, कप्पियाणं, कप्पवडिंसियाणं, पुप्फियाणं, पुप्फचूलियाणं, वण्हीदसाणं, आसीविसभावणाणं, दिट्ठिविसभावणाणं, चारणभावणाणं, महासुमिणगभावणाणं, तेयग्गनिसग्गाणं, सव्वेसिं पि एएसिं उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो पवत्तइ । जइ अंगपविट्ठस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो पवत्तइ, किं आयारस्स, सूयगडस्स, ठाणस्स, समवायस्स, विवाहपण्णत्तीए, नायाधम्मकहाणं, उवासगदसाणं, अंतगडदसाणं, अणुत्तरोववाइदसाणं, पण्हावागरणाणं, विवागसुयस्स दिट्ठिवायस्स । सव्वेसिं पि एएसिं उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो पवत्तइ ।

इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च—इमस्स साहुस्स इमाइ साहुणीए वा अमुगस्स अंगस्स, सुयक्खंधस्स वा उद्देसनंदी अणुण्णानंदी वा पयट्टइ । तओ गंधाभिमंतणं तित्थयरपाएसु गंधक्खेवो अहासन्निहियाणं वासदाणं । तओ बारसावत्तवंदणयपुव्वं खमासमणं दाउं भणंति—'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं अंगं सुयक्खंधं वा उद्दिसह' । गुरू भणइ—'उद्दिसामो' । १ । पुणो वंदित्ता भणइ—'संदिसह किं भणामो' । गुरू भणइ—'वंदित्ता पवेयह' । २ । इच्छं भणित्ता; पुणो वंदित्ता भणइ—'इच्छाकारेण तुब्भेहिं अम्हं सुयक्खंधाइ उद्दिट्ठं ?' । गुरू आह 'उद्दिट्ठं' । ३. खमासमणाणं । हत्थेणं, सुत्तेणं, अत्थेणं, तदुभयेणं । सम्मं जोगो कायव्वो' । सीसो भणइ—'इच्छामो अणुसट्ठिं' । ३ । पुणो वंदित्ता भणइ—'तुम्हाणं पवेइयं, संदिसह साहूणं पवेएमि' । गुरू आह—'पवेयह' । ४ । इच्छं ति भणिऊण वंदित्ता नमोक्कारं कड्ढिंतो पयाहिणं देइ । ५ । पुणो वि, एवं दुन्निवारे । तओ वंदित्ता—'तुम्हाणं पवेइयं, साहूणं

1 A संलेहणा° ।

माइभया कयाइ उद्देसाइकिरियाए अणंतरं सज्झायं पट्ठाविय, कालमंडलाइं दुक्खुत्तो काऊण, सज्झायं पडिक्कमिय, पउणपहरमज्झे वि पडिकमिज्जइ। सेसा पुण उद्देसाइ किरियाणंतरं चेव पडिकमिज्जंति। जाव कालो न पडिक्कंतो ताव गज्जिमाईहिं उवघाओ। उद्देसाइसु कएसु खमासमणदुगेण 'सज्झाउ पडिकमहं, सज्झायपडिक्कमणत्थु काउसग्गु करेहं' इति भणिय, मोणेण अन्नत्थूससिएणमिच्चाइ पढित्ता, अट्ठुस्सासं काउस्सग्गं करिय, पारित्ता, नमोक्कारं भणंति। एवं कालो वि पाभाइयाइअभिलावेण पडिक्कमियव्वो। एयं पसंगओ भणियं।

§ ३९. एवं सुद्धे पाभाइए काले पडिकमणं काउं, पडिलेहणं अंगपडिलेहणं च काउं, वसहिं पमज्जिय, सोहित्ता य हड्डाई परिट्ठविय, वायणायरियअग्गओ इरियं पडिकमिय, पुत्तिं पडिलेहित्ता, वसहिं पवेयंति। 'इच्छकारि तपसियहु वसति सूझइ'। जो वसहिं सोहिउं सह गओ सो भणइ सुज्झइ त्ति। तओ कालग्गाही एवं चेव कालं पवेएइ। नवरं इत्थ दंडधरो सूझइ त्ति भणइ। तओ वायणायरिओ वामपासट्ठिओ सीसो य ठवणायरिअग्गओ सज्झायं पट्ठवेति। जहा मुहपोत्तिं पडिलेहिय बारसावत्तवंदणं दाउं, खमासमणदुगेण भणंति— 'इच्छाकारेण संदिसह सज्झाउ संदिसावहं, सज्झाउ पाठविसहं'। जउ सुद्धु तउ मोणेण—'सज्झाय पट्ठवणत्थं करेमि काउस्सग्गं, अन्नत्थूससिएण'मिच्चाइ भणिय, अट्ठुस्सासं काउस्सग्गं वेइयामज्झे काउं पारिय, चउवीसत्थयं सत्तरससिलोगे य पढित्ता, पुणो ओलंबियबाहू नवकारं चिंतिय, भणिय, उवविसिय, वेइयामज्झे दाहिणपासट्ठियरयहरणे वंदणयं दाउं, खमासमणेण भणंति—'इच्छाकारेण संदिसह सज्झाउ पवेयहं'। पुणो खमासमणं 'इच्छाकारि तपसियहु सज्झाउ सूझइ ?'। सव्वे भणंति सूझइ। तओ खमासमणदुगेण सज्झायं संदिसाविंति, कुणंति य 'धम्मोमंगलाइ'सिलोग ५। पुणो वायणारिओ निसिज्जाए सीसो पाउंछणे वासासु कट्ठासणे रयहरणं ठाविय, वंदणं दाउं भणंति—'इच्छाकारि तपसियहु दिट्ठं सुयं ?'। सव्वे भणंति न किंचि। इत्थवि छीय-खलियाईयं कालगमणेण नेयव्वं।

॥ सज्झायपट्ठवणविही ॥ २२ ॥

§ ४०. एवं सुद्धे सज्झाए जोगवाहिणो वंदणं दाउं भणंति—'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं जोगे उक्खिवेह।' गुरू भणइ 'उक्खेवामो'। पुणो वंदिय भणंति—'तुब्भे अम्हं जोगोक्खेवावणियं काउस्सग्गं करावेह'। गुरू भणइ 'करावेमो'। तओ जोगोक्खेवावणियं पणवीसुस्सासं अट्ठोस्सासं वा, मयंतरे सत्तावीसुस्सासं वा, काउस्सग्गं करेंति। पारित्ता चउवीसत्थयं भणंति। तओ सावयकयपूयाचेइयहरे वसहीए वा समोसरणे सुयक्खंधस्स अंगस्स वा उद्देसनिमित्तं अणुन्नानिमित्तं वा वासे सिरसि खिवावेंति। पुणो वंदिय भणंति— 'तुब्भे अम्हं अमुगसुयक्खंधाइ-उद्देसाइनिमित्तं चेइयाइं वंदावेह'। गुरू भणइ 'वंदावेमो'। तओ ते वामपासे काऊण वड्ढंतियाहिं थुईहिं गुरू चेइए वंदइ पुव्वविहीए, जाव थुत्तपणिहाणपज्जंतं। तओ पुत्तिं पडिलेहिय बारसावत्तवंदणं दाऊं नंदिकड्ढावणियं अट्ठुस्सासं काउस्सग्गं करेंति। पारित्ता नमोक्कारं पढंति। अन्नेसिं पुण सत्तावीसुस्सासं काउस्सग्गं काउं चउवीसत्थयं भणंति। तओ तेहिं खमासमणपुव्वं 'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं नंदिं सुणावेह'त्ति वुत्ते गुरू नमोक्कारतिगपुव्वं उद्देसत्थं अणुन्नत्थं वा नंदिं कड्ढइ।

जहा—नाणं पंचविहं पण्णत्तं। तं जहा—आभिणिबोहियनाणं, सुयनाणं, ओहिनाणं, मणपज्जवनाणं, केवलनाणं। तत्थ चत्तारि नाणाइं ठप्पाइं ठवणिज्जाइं, नो उद्दिसिज्जंति, नो समुद्दिसिज्जंति, नो अणुन्नविज्जंति। सुयनाणस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो पवत्तइ। जइ सुयनाणस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो पवत्तइ, किं अंगपविट्ठस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो पवत्तइ ? अंगबाहिरस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो पवत्तइ ?। अंगपविट्ठस्स वि उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो पवत्तइ, अंगबाहिरस्स वि उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो पवत्तइ। जइ अंगबाहिरस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा

तं उवहम्मइ । आगाढजोगवाही सीवण-तुन्नण-पीसण-लेवणाइं न करेइ । उभयपोरिसीसु सुवत्थाइं परियट्टेइ । वहिज्जमाणसुयं मुत्तूण अपुव्वपढणं न करेइ । पुव्वपढियं न वीसारेइ । पत्ताइउवगरणं सया उववत्तो नियनियकाले पडिलेहेइ । अप्पसद्देण वयइ न दड्डरेण । कामकोहाइनिग्गहो कायव्वो । तहा कप्पइ भत्तं वा पाणं वा अब्भिंतरं संघट्टं, वेइबाहिं गयं न कप्पइ । [1]उग्गुडिओ तुयट्टो विगहाओ वा असंखडं व करेमाणो संघट्टेइ उस्संघट्टं, उग्गुडिओ भूमीए मेल्लइ । परिसाडिं वा भत्तपाणे छुहेइ । तिन्नि भायणाइं उवरिं ठवेइ । उवविट्ठस्स उब्भो भत्तपाणं अप्पेइ । संघट्टे वा पयलाइ, उस्संघट्टं बल्लीसंघट्टं भत्तं पाणं च न कप्पइ । भत्तं पाणं वा मज्झपविट्ठकरंगुलिचउक्कगहियं तिप्पणय-तुंबगाइयं, मज्झपविट्ठकरंगुट्ठगहियं तुंबगाइपत्तं च न उस्संघट्टइ । एयविवरीयं उस्संघट्टइ । उग्गुडिओ भूमिट्ठियं संघट्टइ उस्संघट्टं[2] ।

§ ४३. संपयं गणिजोगविहाणे कप्पाकप्पविही भण्णइ – सा य जोगिपरिण्णेया जोगि-सावयपरिण्णेया य । तत्थ जोगिपरिण्णेया जहा – पिंडवायहिंडयसंघाडयछित्ते परोप्परं न उवहम्मइ । सीवण-तुन्नणाइयं वाणायरियाणुन्नाए करेइ । जोगवाहिणो सण्णा असज्झाइयं च रुहिराइ न उवहणइ । ओल्ली सण्णा[3] मणुय-साण-मज्जाराईणं, आमिसासीणं पक्खीणं च । अतिणभक्खिणो *तन्नयस्स य गय-हय-खराण य छिक्कासमाणी[4] उवहणइ, न सुक्का । उल्लं चम्मं हड्डं च । गोसाले अणुण्णाए वालसुक्कचम्मट्ठिसुक्कसन्नाओ वि न उवहणंति । तेसिं अणुवघायट्ठा पवेयणासमए काउस्सग्गो कीरइ । अट्ठंगुलाहियप्पमाणो दिट्ठो भोयणाइसु वालो उवहणइ । तहा गिहत्थीए बालए थणं पियंते सुक्के जइ थणे दुद्धं न दीसइ, तो कप्पियं होइ । एवं गोपमुहेसु वि । सन्निहि-आहाकम्म-मणुय-तिरियपंचिंदियसंघट्टे उवहम्मइ । लेवाडयपरिवासे पत्ते पत्तावंधे वा भत्तं पाणं च उवहम्मइ । आहाकम्मिओवहए पत्तगाइं चउकप्पाइं अन्नत्थ तिकप्पाइं । जइ कप्पिएणं भाणं हत्थाइकप्पिया तो उल्लेणावि हत्थमत्तएणं घिप्पइ । अह पुण [5]मूलमंडलियाणं पाणएणं ताहे सुक्केसु काउस्सग्गे कए घिप्पइ । [6]वायणारियाणुण्णाए पढण-सुणण-वक्खाण-धम्मकहाओ कीरंति न समईए । परियट्टणं अणुप्पेहा य जहाजोगं कीरइ । पढमपोरिसिमज्झे पवेयणे पवेइए संघट्टाइए य संदिसाविए कप्पइ असणाइपडिगाहित्तए; न उण उवरिं । कप्पइ निव्विगइयघयतिल्लेहिं कारणे पायगायाइ अब्भंगित्तए वायणायरियसंसट्टेण य ॥

इयाणिं जोगिसावयपरिण्णेया जहा – आ छट्ठजोगाओ दससु विगईसु, छट्ठजोगे पुण लग्गे पक्कन्नवज्जासु नवसु विगईसु, छिवणदाणलिवणाइवावडहत्थो उवहम्मइ । तेसिं जइ अवयवं पि छिवइ तो भत्तं पाणं वा जं हत्थे तं उवहम्मइ । विगइसंसट्ठं ति परंपरं न उवहणइ । मयगभत्तं न कप्पइ । तिल्लघयाइअब्भंगिया इत्थी पुरिसो वा जं संघट्टेइ सो उवहम्मइ । तद्दिणनवणीयमोइयकज्जलं छिवंती तेणंजियनयणा वा दिंती उवहम्मइ; न सेसदिवसेसु । अन्नं पि अकप्पिएणं दव्वेणं मीसियं छिक्कं वा बीयदिणे न उवहणइ । ण्हाया जइ केसेसु असुक्केसु असणाइ देइ तो उवहम्मइ । तद्दिणतिल्लाइमोइयकुंकुमपिंजरियसरीरा य उवहणइ । दीवओ वि जं पुण थिरं कट्ठकवाडाइयं अकप्पिएणं दव्वेणं छिक्कं तं न उवहणइ । जइ तं दव्वं न छिवइ थिरकट्ठकवाडाइं जोगवाहिणा छिक्काइं न उवहणंति । उच्चिविडिठियअकप्पवत्थुभायणछिक्कं सत्तपरंपरमवि अणायरियं । एगे तिपरंपरं गिण्हंति, अन्ने दुपरंपरं पि । एवं तिरिच्छयलीठिएसु वि परोप्परसंबद्धेसु दायगेसु वि तहा कप्पइ । कक्कब-इक्खुरस-गुडपाय-गुलवाणीय-खंड-सक्करवाट-खीरिदुद्धकंजिय-दुद्धसाडिया-कक्करियग-मोरिंडग-गुलहाणा । दुद्धसाडिया नाम दक्खदुद्धरद्धा । मोरिंडगाणि

---

1 A उग्गुइओ । 2 C भूमिट्ठियं संघट्टं । 3 C उल्ला सण्णा । * C स्तन्यपायिनः । 4 A 'छट्टाइणी' ।
5 B मुडि° । 6 B वाणायरि° । 7 A लिप्पणाइ°; C लिवणाइ° ।

पवेइयं, संदिसह काउस्सग्गं करावेह'। गुरू आह–'करावेमो'। ६। इच्छं भणित्ता, वंदित्ता, 'सुयक्खंधाइउद्दिसावणियं करेमि काउस्सग्गं...जाव...वोसिरामि'। सत्तावीसुस्सासं काउस्सग्गं काऊण पारित्ता, पुणो चउवीसत्थयं भणइ। एवं सव्वत्थ सत्त छोमा वंदणा भवंति। तओ उद्देस-अणुण्णानंदि-थिरीकरणत्थं अट्ठुस्सासं काउस्सग्गं करिय नवकारं भणंति। सुयक्खंधस्स अंगस्स य उद्देसाणुन्नासु नंदी। ५ एवं उद्देसे सम्मं जोगो कायव्वो। समुद्देसे थिरपरिचियं कायव्वं। अणुण्णाए सम्मं धारणीयं, चिरं पाल-णीयं, अन्नेसिं पि पवेणीयं। साहुणीणं तु अन्नेसिं पि पवेयणीयं ति न वत्तव्वं। उद्देसाणंतरं खमासमणदुगेण वायणं संदिसाविय तहेव वइसणं संदिसाविज्जइ। अणुण्णानंतरं वंदणयपुव्वं पवेयणे पवेइए। पढमदिणे असहस्स आयंबिलं निरुद्धं ति वुच्चइ, सहस्स अब्भत्तट्ठं। बीयदिणे पारणयं निव्वीयं। तओ दोहिं दोहिं खमासमणेहिं बहुवेलं सज्झायं वइसणं च संदिसाविय, खमासमणदुगेण 'सज्झाउ पाठविसहं, सज्झाय-१० पाठवणत्थु काउस्सग्गु करिसहं। तहेव कालमंडला संदिसाविसहं, कालमंडला करिसहं'। तओ खमा-समणतिगेण 'संघट्टउ संदिसाविसहं संघट्टउ पडिगाहिसहं, संघट्टपडिगाहणत्थु काउस्सग्गु करिसहं'। केसु वि आउत्तवाणयं च एमेव संदिसावेंति। तओ खमासमणदुगेण 'सज्झाउ पडिक्कमिसहं, सज्झायपडि-क्कमणत्थु काउस्सग्गु करिसहं। तहेव पाभाइकालु पडिक्कमिसहं, पाभाइयकालपडिक्कमणत्थु काउस्सग्गु करिसहं'। ततो तववंदणयं दिंति।। गुरुणा मुहत्तवो पुच्छियव्वो। तओ मुहपोत्तिं पडिलेहिय, खमासमण-१५ तिगेण 'संघट्टउ संदिसावउं, संघट्टउ पडिगाहउं, संघट्टापडिगाहणत्थु काउस्सग्गु करउं। संघट्टापडिगाह-णत्थं करेमि काउस्सग्गं अन्नत्थूससिएण'मिच्चाइ। नमोकारचिंतणं भणणं च। एवं आउत्तवाणयं पि घेप्पइ। पुणो खमासमणं दाउं 'त्रांबा त्रउया सीसा कांसा सूना रूपा हाड चाम रुहिर लोह नह दंत वाल 'सूकीसान त्वादि' इच्चाइ ओहडावणियं करेमि काउस्सग्गं'। नवकारचिंतणं भणणं च।

§ ४१. जोगसमत्तीए जया उत्तरंति तया सिरसि गंधक्खेवपुव्वं वायणायरिओ योगनिक्खेवावणियं देवे २० वंदाविय, पुत्तिं पडिलेहाविय, वंदणं दाविय, पच्चक्खाणं कारिय, विगइलियावणियं अट्ठुस्सासं काउस्सग्गं कारेइ। अन्ने भणंति दुवालसावत्तवंदणं दाउं, खमासमणेण 'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं जोगे निक्खिवहं; बीए जोगनिक्खेवावणियं काउस्सग्गं करावेह'त्ति भणित्ता,–जोगनिक्खेवावणियं करेमि काउस्सग्गं। नव-कारचिंतणं भणणं च। तओ 'जोगनिक्खेवावणियं चेइयाइं वंदावेह'त्ति खमासमणेण भणित्ता, सक्कत्थयं कहिंति। पुणो वंदणं दाउं, भणंति–'पवेयणं पवेयहं। पडिपुण्णा विगइ, पारणउं करहं'। गुरू २५ भणइ–'करेह'त्ति। तओ विगईपच्चक्खाणं काउं, वंदिय गुरुणो पाए संवाहिय, जोगे वहंतेहिं अविही आसायणं च मण-वयण-काएहिं मिच्छादुक्कडेण खमाविय आहारायणियाए सव्वे वंदंति।

॥ जोगनिक्खेवणविही ॥ २३ ॥

§ ४२. राइयपडिक्कमणे जोगवाहिणो पइदिणं नवकारसहियं पच्चक्खंति। जोगारंभदिणादारब्भ छम्मासं जाव काला न उवहम्मंति, तत्तियाणि दिणाणि जाव संघट्टा कीरंति; उवरिं न सुज्झंति। एस पगारो अणा-३० गाढेसु आयाराइसु नेओ। चित्तासोयसुद्धपक्खे वि आगाढा गणिजोगा न निक्खिप्पंति। कप्पतिप्पकिरिया य कीरइ। सज्झाओ पुण निक्खिप्पइ। छम्मासियकप्पो य वइसाह-कत्तियबहुलपाडिवयाउड्ढं उत्तारिज्जइ। अन्नं च रयणीए पढम-चरमजामेसु जागरणं वाल्वुड्ढाईणं सामन्नं। जोगिणा उण सव्ववेलं अप्पणिद्देण होयव्वं। विसेसओ दिवा हास-कंदप्प-विगहा-कलहरहिएण य होयव्वं। एगागिणा सया वि हत्थसया बाहिं न गंतव्वं; किमुय जोगवाहिणा। अह जाइ अणाभोगेणं आयामं से पच्छित्तं। जं च हत्थे भत्तं पाणं वा

1 'विद्या' टि°। 2 A 'त्वद'।

तस्सेव अणुण्णा। सुयक्खंधस्स अंगस्स य उद्देसे समुद्देसे अणुण्णाए य आयंबिलं। अन्नदिणेसु निवीयं। एवं सव्वजोगेसु नेयं, भगवई—पण्हावागरण—महानिसीहवज्जं। अन्नसामायारीसु पुण निविंयंतरियाणि आयंबिलाणि चेव कीरंति। जहा निसीहे असहू वालाई निव्वीयदिणे पणगेणावि णिव्वाहिज्जंति; एवं दसकालिए वि।

छच्च अज्झयणा पुण—सामाइयं १, चउवीसत्थओ २, वंदणं ३, पडिक्कमणं ४, काउस्सग्गो ५, पच्चक्खाणं ६ ति। ओहनिज्जुत्ती आवस्सयं चेव अणुप्पविट्ठा अओ न तीए पुढो उवहाणं।

§४५. दसयालियम्मि एगो सुयक्खंधो बारसेव अज्झयणा। पंचम-नवमे दो-चउउद्देसा दिवसपन्नरस॥१॥
ऐगेगमज्झयणमेगेगदिणेण वच्चइ। नवरं पंचमं अज्झयणमुद्दिसिय पढम-बीयउद्देसया उद्दिस्संति। तओ ते अज्झयणं च समुद्दिसइ। तओ ते अज्झयणं च अणुण्णवइ। एवं नवमं दोहिं दिणेहिं दो दो उद्देसा दिणे जंति त्ति काउं दो दिणा सुयक्खंधे। एवं पन्नरस।

बारस अज्झयणाइं इमाइं, जहा—दुमपुप्फिया १, सामन्नपुव्विया २, खुड्डियायारकहा ३, छज्जीवणिय धम्मपन्नत्ती वा ४, पिंडेसणा ५, इत्थ पिंडनिज्जुत्ती ओयरइ। धम्मत्थकामज्झयणं—महल्लियायारकहा वा ६, वक्कसुद्धी ७, आयारप्पणिही ८, विणयसमाही ९, सभिक्खु अज्झयणं १०, रइवक्का ११, चूलिया १२।
—दसवेयालियजोगविही।

§४६. उत्तरज्झयणाणं एगो सुयक्खंधो, छत्तीसं अज्झयणाणि, एगेगदिणेण एगेगं जाइ। नवरं चउत्थमज्झयणमसंखयं पउणपहरमज्झे जइ उट्ठवेइ, तओ तम्मि चेव दिवसे निव्विएण अणुण्णवइ। अह न उट्ठवेइ, तओ तम्मि दिणे अंबिलं काउं, बीयदिणे अंबिलेण अणुण्णवइ। एवं दोहिं दिणेहिं आयंबिलेहि य असंखयं जाइ। केई भणंति जइ पढमपोरिसीए उट्ठवेइ तो निव्विएण अणुजाणिज्जइ; अह न, तो आयंबिलं कारिज्जइ। तओ जइ पच्छिमपोरिसीए उट्ठावेइ, तो वि तम्मि चेव दिणे अणुजाणिज्जइ। जइ पुण बीयदिणे पढमपोरिसीमज्झे तो वि तम्मि दिणे निव्विएण अणुजाणिज्जइ। अह न, तो आयंबिलदुगेणं। तं चेमं—

असंखयं जीविय मा पमायए जरोवणीयस्स हु नत्थि ताणं।
एवं वियाणाहि जणे पमत्ते कन्नु विहिंसा अजया गहिंति॥ १॥
जे पावकम्मेहिं धणं मणूसा समाययंती अमइं गहाय।
पहाय ते पासपयट्टिए नरे वेराणुबद्धा नरयं उवेंति॥ २॥
तेणे जहा संधिमुहे गहीए सकम्मुणा किच्चइ पावकारी।
एवं पया पिच्च इहं च लोए कडाण कम्माण न मोक्खु अत्थि॥ ३॥
संसारमावन्नपरस्स अट्ठा साहारणं जं च करेइ कम्मं।
कम्मस्स ते तस्स उ वेयकाले न बंधवा बंधवयं उवेंति॥ ४॥
वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते इमंमि लोए अदुवा परत्था।
दीवप्पणट्ठे व अणंतमोहे नेयाउयं दट्ठुमदट्ठुमेव॥ ५॥
सुत्तेसु आवी पडिबुद्धजीवी न वीससे पंडिय आसुपन्ने।
घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं भारंडपक्खीव चरऽप्पमत्तो॥ ६॥

कक्करियविसेसा। तहा मोइय कुल्लरि[1] चुप्पडिय मंडग मोइय सत्तुय दहिकरंबय घोल सिहरणि तिलवट्टिय पगरणसंसट्ठ माइसराव एयाणि वासियाणि कप्पंति। वीसंदण भरोलग नंदिहलि नालिएर तिलमाइ गिहत्थेहिं अप्पणो कए कयं कप्पइ। वीसंदणं ताविययघयहंडियाए वेसणाइकयं। भरोलगाणि घयलोट्टकयमुट्ठियाणि। अन्नं पि [2]खुड्डहडियदक्खा, दक्खावाणयं, अंबिलियावाणय-नालिएरवाणय-सुंठिमिरियमाइयं कप्पइ। तहा [3]दहिकयआसुरी, घूविय इड्डुरी [4]मोकलिपमुहं तद्दिणे उवहणइ; बीयदिणे कप्पइ। छट्टजोगे लग्गे संधूइय तक्कतीमणं भज्जियाइयं च कप्पइ; न आरओ कप्पइ। अववाएणं असहुस्स तिण्ह घाणाणोवरि जं निब्भंजणं चउत्थघाणो गाहिमं, अन्नघयाइअपक्खेवे पुव्विल्लघयभरियतावियाए बीयघाणपक्कं पि ओगाहिमं कप्पइ। जइ एगेण चेव पूएण ताविया पूरिज्जइ। उद्देसाइ, जइ साहुणीहिं सह तो चोलपट्टसंजुयाणं; अह अन्नहा, तो अग्गोयरेणावि कप्पइ। कप्पइ साहुणीणं उद्देसाइ पडिकमणं वा काउं सया ओढियपरिहियाणं। कप्पइ दुगाउयद्धाणं भिक्खायरियाए अडित्तए। कप्पइ बत्तीसं कवला आहारं आहारित्तए। कप्पंति तिन्नि पाउरणा पाउरित्तए। असहुस्स चत्तारि पंच जाव समाही। कप्पइ दिया वा राओ वा आयावेउं। एवं सव्वो वि जो जंमि कप्पे विही उवहयाणुवहय-कप्पा-कप्पाइ जहा दिट्ठो गीयत्थेहिं, सो तहेव संकारहिएहिं वायणायरियाणुन्नाए कायव्वो; न समईए। अन्नहाकरणे बहुदोसप्पसंगाओ। तथाहि—

उम्मायं च लभिज्जा रोगायंकं च पाउणइ दीहं।
केवलिपन्नत्ताओ धम्माओ वा वि भंसिज्जा॥ १॥
इह लोए फलमेयं परलोए फलं न दिंति विज्जाओ।
आसायणा सुयस्स य कुव्वइ दीहं च संसारं॥ २॥
जं जह जिणेहिं भणियं केवलनाणेण तत्तओ नाउं।
तस्सन्नहाविहाणे अणाभंगो महापावो॥ ३॥

एसो य उवहयाणुवहयविही भत्तपाणनिमित्तं आउत्तवाणयकाउस्सग्गे कए दट्ठव्वो, न सामन्नेण। विगइवावडहत्थाइदंसणेण, तहा अंजियनयणाए पुंछिए धोयल्लहिए वि जेहिं सा दिट्ठा तेसिं तीए हत्थेण न कप्पइ। जेसिं पुण न दिट्ठा ते धूयल्लहिए गेण्हंति, जइ दिट्ठपुव्वजोगीहिं न साहियं। अओ चेव परोप्परं अमुगा उवहय त्ति न साहियव्वं। एवं भत्तं पाणं च इमाए विहीए अडित्ता, इरियं पडिक्कमिय, गमणागमण-मालोइत्ता, भत्तपाणं च जहागहियविहिणा तओ पाराविता, सन्निहियसाहुणो अणुण्णवित्ता, मुहपोत्तियाए मुहं पडिलेहित्ता, उवउत्ता असुरसुरं अचवचवं अदुयमविलंबियं अपरिसाडिं अक्कसरक्कं[5] अकुरुडुकमुरुडुकं इच्चाइविहिणा अरत्तदुट्ठा जेमंति। इत्थ य पमाय-अन्नाणाइणा अन्नहाणुट्ठाणे जोगवाहिणो पच्छित्तं, उवरिं सवाइयारपच्छित्ते भणीहामो।

एवं जोगविहाणं संखेवेणं तु तुम्हमक्खायं।
जं च न इत्थ उ भणियं गीयापरणाइ तं नेयं॥

*

§ ४४. एयं जो अन्य तवोविही सो भण्णइ—

आयारंगंमि एगो सुयक्खंधो छच होंति अज्झयणा।
दोण्णि दिणा सुयक्खंधे सव्वे वि य होंति अट्ठदिणा॥ १॥

सव्वंगसुयक्खंधोद्देसाणुन्नासु नंदी हवइ। पढमदिणे सुयक्खंधस्स उद्देसो पढमज्झयणस्स य उद्देस-समुद्देसणुन्नाओ। बीयाइदिणेसु बीयाइअज्झयणा। सत्तमदिणे सुयक्खंधस्स समुद्देसो, अट्ठमदिणे

1 B C इगुरि। 2 A एरवलिय। 3 A दहिकय°। 4 'पुरगं'। 5 A भरडुकं।

§ ५२. इयाणिं भगवईए विवाहपन्नत्तीए पंचमंगस्स जोगविहाणं[1] — गणिजोगा छहिं मासेहिं छहिं दिवसेहिं आउत्तवाणएणं वचंति। तत्थ सुयक्खंधो नत्थि। अज्झयणाणि य सयनामाणि एकचालीसं। अंगं नंदीए उद्दिसिय पढमसयं उद्दिसिज्जइ। तत्थ उद्देसा १०; कालेण दो दो वचंति। एगंतरायामेणं दिणेहिं ५, कालेहिं ५ पढमसयं जाइ। एगंतरायामं जाव चमरो। बीयसए उद्देसा १०; नवरं पढमुद्देसओ खंदओ। तस्स अंबिलेण उद्देसो समुद्देसो य कीरइ। तओ जइ उट्ठवेइ तो तंमि चेव दिणे तेण चेव कालेण अणुजाणिय आयामं कारिज्जइ। अह न उट्ठिओ, तो बीयदिणे बीयकालेण बीयअंबिलेण अणुजाणिज्जइ। उट्ठिओ चि पादेणागओ। अणुण्णाए य तंमि अंबिले पविट्ठे अग्गओ काउस्सग्गाइअणुट्ठाणं कीरइ। एत्थ[2] पंच दत्तीओ सपाणमोयणाओ भवंति। सेसा दो दो उद्देसा दिणे दिणे जंति। जाव नवमुद्देसो। एगंमि पंचमे दिणे दसमो सयं च। सब्वे दिणा ७, काला ७। तइयसए वि उद्देसा १०; नवरं पढमदिवसे पढमकालेण पढमुद्देसयं मोयानामगमणुजाणिय, बीयकालेण चमरस्स उद्देसो समुद्देसो य कीरइ। सेसं तओ जइ उट्ठवेइ इच्चाइ जहा खंदए। दत्तीओ वि सपाणमोयणाओ पंच। केई चत्तारि भणंति। एवं चमरे अणुण्णाए पनरसहिं कालेहिं पनरसहिं दिणेहिं य गएहिं छट्ठजोगो लग्गइ। छट्ठजोगअणुजाणावणत्थं ओगाहिमविगइविसज्जणत्थं काउस्सग्गो कीरइ; नमोक्कारचिंतणं भणणं च। पंचनिव्वियाणि छट्ठं निरुद्धं ४। अन्ने छन्निव्वियाणि सत्तमं निरुद्धं ति भणंति[3]। तम्मि लग्गे संघूइयतक्क-तीमण-वंजणाइ तद्दिणकयं पि कप्पइ। तओ पुव्वं एयमकप्पमासि। ओगाहिमविगई वि न उवहणइ। जहा दिट्ठिवाए मोयगो गुरुमाइकए आणेउं पि कप्पइ। सेसा अट्ठ उद्देसा चउहिं दिवसेहिं सएणसमं वचंति। सव्वे दिणा ७, काला ७। चउत्थसए वि उद्देसा १०, दोहिं दिणेहिं वचंति। पढमदिणे ८, चत्तारि चत्तारि आइल्ला अंतिल्ल त्ति काऊण उद्दिसिज्जंति, समुद्दिसिज्जंति, अणुन्नविज्जंति। बीयदिणे दो सएण समं वचंति। दिणा २, काला २। पंचम-छट्ठ-सत्तम-अट्ठमसएसु दस दस उद्देसया दो दो दिणे दिणे जंति। चत्तारि वि वीसाए दिणेहिं कालेहिं य वचंति। अट्ठसु सएसु काला ४१। नवमं दसमं एगारसं बारसं तेरसं चउदसमं च एयाइं [4]छस्सयाइं एक्केक्ककालेण वचंति। नवरं नवमसयमुद्दिसिय तस्सुद्देसा ३४ दुहाकाउं (१७+१७) पढममाइल्ला उद्दिसिज्जंति, तओ अंतिल्ला सयं च समुद्दिसिज्जंति। तओ आइल्ला अंतिल्ला सयं च अणुन्नविज्जंति। एवं सए सए नव नव काउस्सग्गा कीरंति। एवं दसमसए वि उद्देसा ३४ दुहा (१७+१७); एकारसमे उद्देसा १२ दुहा (६+६); बारसमे तेरसमे चउदसमे य दस दस पत्तेयं पंच पंच दुहा कज्जंति। पनरसमं गोसालसयमेगसरं पढमदिणे उद्दिसिज्जइ। तओ जइ उट्ठिओ तो तम्मि चेव दिणे तेणेव कालेण आयंबिलेण य अणुजाणिज्जइ। अह न उट्ठिओ, तो [5]बीय-दिणे बीयकालेण बीयअंबिलेण अणुजाणिज्जइ। [6]इत्थ दत्तीओ तिन्नि तिन्नि सपाणमोयणाओ भवंति। गोसाले अणुन्नाए अट्ठमजोगो लग्गइ। तस्स अणुजाणावणत्थं काउस्सग्गो कीरइ। सत्त निव्वियाणि अट्ठमं निरुद्धं। अण्णे अट्ठ निव्वियाणि नवमं निरुद्धं। सेसाणि निव्वियाणि चि। गोसालयसए तेयनिसग्गावरनामगे अणुण्णाए निव्वियदिणे नंदिमाईणं वंदणय-खमासमण-काउस्सग्गपुव्वं उद्देसाई कीरंति। ते य इमे—नंदि १, अणुओग २, देविंद ३, तंदुलं ४, चंदवेज्झ ५, गणिविज्जा ६, मरण ७, ज्झाणविभत्ती ८, आउर ९, महा-पच्चक्खाणं च १०। गोसालो जो[7] जइ दत्तीहिं अलद्धियाहिं उवहओ ताहे उवहओ चेव। अह बहवे जोग-वाहिणो ताहे ताण संबंधिणीओ घेप्पंति। गोसालाणुण्णं जाव एगूणवन्नासं काला ४९ हवंति। तदुवरि सेसाणि छव्वीससयाणि एक्केकेण कालेण वचंति। एएहिं २६ सह ७५ भवंति। एगेणंगं समुद्दिसिज्जइ। बीएण नंदीए अणुजाणिज्जइ। गणिसद्दपज्जंतं नामं च ठाविज्जइ। अंगस्स समुद्देसे अणुण्णाए य अंबिलं।

1 B विहीणं। 2 B इत्थ। 3 नास्ति A। 4 B C छच्च सयाइं। 5 नास्तिपदमेतद् A। 6 B नास्ति 'इत्थ'। 7 नास्ति 'जो' A C।

उद्देसा २, दिण १। इओणंतरमेगारसज्झयणाणि एगसराणि एगेगदिणेण एगकालेण जंति। पढमसुयक्खंधज्झयणनामाणि जहा– समओ १, वेयालीयं २, उवसग्गपरिण्णा ३, थीपरिण्णा ४, निरयविभत्ती ५, वीरत्थओ ६, कुसीलपरिभासा ७, वीरियं ८, धम्मो ९, समाही १०, मग्गो ११, समोसरणं १२, अहतहं १३, गंथो १४, जमईयं १५, गाहा १६। सुयक्खंधसमुद्देसाणुण्णाए दिणमेगं। सव्वे दिणा २०। पढमसुयक्खंधो गाहासोलसगो नाम गओ। बीयसुयक्खंधे नंदीए उद्दिसिए तस्स सत्त महज्झयणाणि, एगसराणि, एगेगदिणेण एगेगकालेण य वच्चंति। तेसिं नामाणि जहा– पुंडरीयं १, किरियाठाणं २, आहारपरिण्णा ३, पच्चक्खाणकिरिया ४, अणगारं ५, अद्दइज्जं ६, नालंदा ७। सुयक्खंधसमुद्देसाणुण्णाए दिणमेगं। उद्देसगमाणमिणं–

सूयगडे सुयखंधा दोन्निउ पढमम्मि सोलसज्झयणा।
चउ १, तिय २, चउ ३, दो ४, दो ५, एक्कारस ६, पढमसुयखंधस्स ॥१॥

सत्त इक्कसरा बीयसुयक्खंधस्स। अंगसमुद्देसे दिण १, अंगाणुण्णाए दिण १। सव्वे दिणा ३०।

–सूयगडंगविही।

§४९. तइयं **ठाणंगं** नंदीए उद्दिसिज्जइ। तओ सुयक्खंधो, तओ पढमज्झयणं, एगसरं एगदिणेण एगकालेण वच्चइ। बीए उद्देसा ४, दिणा २। तइए उद्देसा ४, दिणा २। चउत्थे उद्देसा ४, दिणा २। पंचमे उद्देसा ३, दिणा २। सेसाणि पंचठणाणि एगसराणि पंचहिं दिणेहिं वच्चंति। एयउद्देसगमाणमिणं–

पढमं एगसरं चिय१ चउ२ चउ३ चउरो४ ति५ पंच१० एगसरा।
ठाणंगे सुयखंधो एगो दस होंति अज्झयणा ॥१॥

तेसिं नामाणि जहा– एगठाणं दुठाणमिच्चाइ...जाव...दसठाणं ७। सुयक्खंधसमुद्देसाणुण्णाए दिणा २, अंगसमुद्देसाणुण्णाए दिणा २, सव्वे दिणा १८। **–ठाणंगविही।**

§५०. चउत्थं **समवायंगं** एगदिणे नंदीए उद्दिसिज्जइ, बीयदिणे समुद्दिसिज्जइ, तइयदिणे नंदीए अणुजाणिज्जइ। एवं तिहिं कालेहिं तिहिं आयंबिलेहिं वच्चइ। सुयक्खंधज्झयणुद्देसा इत्थ नत्थि।

–समवायंगविही।

§५१. इत्थंतरे इमे जोगा– **निसीहे** एगमज्झयणं वीसं उद्देसगा एगेगदिणेण एगेगकालेण य दो दो वच्चंति। दसहिं दिवसेहिं एगंतरायामेहिं समप्पइ। इत्थ अज्झयणत्तेण नंदी नत्थि। अणागाढजोगो। निसीहे दिणा १०।

§५२. **दसा-कप्प-ववहाराणं** एगो सुयक्खंधो सो नंदीए उद्दिस्सइ। तत्थ दस दसाअज्झयणा एगसरा, दसहिं दिवसेहिं वच्चंति। तेसिं नामाणि जहा– असमाहिठाणाइं १, सबला २, आसायणाओ ३, गणिसंपया ४, अचसोही ५, उवासगपडिमा ६, भिक्खुपडिमा ७, पज्जोसवणाकप्पो ८, मोहणीयठाणाइं ९, आयाइ ठाणं १० ति। कप्पज्झयणे उद्देसा ६, दिणा ३। **ववहारज्झयणे** उद्देसा १०, दिणा ५। एगदिणे सुयक्खंधसमुद्देसो, बीयदिणे नंदीए सुयक्खंधाणुण्णा, सव्वे दिणा २०। केइ **कप्प-ववहाराणं** भिन्नं सुयक्खंधमिच्छंति। एवं च दिणा २२। तहा **पंचकप्पो** आयंबिलेण मंडलीए वहिज्जइ। **जीयकप्पो** निव्वीएणं ति। **निसीह-दसा-कप्प-ववहारसुयक्खंध-पंचकप्प-जीयकप्पविही।**

एसु चरिमो उद्देसयो अज्झयणेण सह एगदिणेण एगकालेण य वच्चइ । एवं सव्वंगसुयक्खंधज्झयणेसु दट्ठव्वं । बीए उद्देसा ६, दिणा ३। तइए उद्देसा ४, दिणा २। चउत्थए उद्देसा ४, दिणा २। पंचमे उद्देसा ६, दिणा ३। छट्ठे उद्देसा ५, दिणा ३। सत्तमे उद्देसा ८, दिणा ४। अट्ठमे उद्देसा ४, दिणा २। नवमज्झयणं वोच्छिन्नं । तं च महापरिण्णा—इत्तो किर आगासगामिणी विज्जा वइरसामिणा उद्धरिया आसि चि साइसयत्तणेण वोच्छिन्नं । निज्जुत्तिमित्तं चिट्ठइ । **सीलंकायरिय**मएण पुण एयं अट्ठमं, विमुक्खज्झयणं सत्तमं, उवहाणसुयं नवमं ति । एएसिं नामाणि जहा—सत्थपरिण्णा १, लोगविजओ २, सीओसणिज्जं ३, सम्मत्तं ४, आवंती, लोगसारं वा ५, धूयं ६, विमोहो ७, उवहाणसुयं ८, महापरिण्णा ९। सुयक्खंधो एगकालेण एगायंबिलेण वच्चइ । तम्मि चेव दिणे समुद्दिसिय नंदीए अणुजाणिज्जइ । एवं बंभचेरसुयक्खंधे दिणा २४। एवं अन्नत्थ वि जत्थ दो सुयक्खंधा तत्थेगकालेण एगायंबिलेण य समुद्दिसिज्जइ, नंदीए अणुजाणिज्जइ य । जत्थ पुण एगो सुयक्खंधो सो एगकालेण एगायंबिलेण समुद्दिसिज्जइ, बीयदिणे बीय-कालेण आयंबिलेण य नंदीए अणुजाणिज्जइ ।

इयाणिं आयारंगबीयसुयक्खंधं नंदीए उद्दिसिय पढमज्झयणमुद्दिसिज्जइ । तम्मि उद्देसगा ११। एगेग-दिणेण एगेगकालेण य दो दो जंति । चरिमुद्देसओ पुव्वं व अज्झयणेणं समं दिणा ६। बीए उद्देसा ३, दिणा २। तइए उद्देसा ३, दिणा २। चउत्थे उद्देसा २, दिण १। पंचमे उद्देसा २, दिण १। छट्ठे उद्देसा २, दिण १। सत्तमे उद्देसा २, दिण १। अणंतरं सत्तसत्तिक्कया नामज्झयणा एगसरा आउत्तवाणएणं पुव्वुत्तभगवईविहाणछट्ठजोगा लग्गविहीए एक्केक्केण दिणेण वच्चंति । एवं चोद्दस-पनरसमे दिणमेगं, सोलसमे दिणमेगं । एएसिं नामाणि जहा—पिंडेसणा १, सेज्जा २, इरिया ३, भासाजायं ४, वत्थेसणा ५, पाएसणा ६, उग्गहपडिमा ७, एएहिं सत्तहिं अज्झयणेहिं पढमा चूला । तओ सत्तसत्तिक्कएहिं बीया चूला । तत्थ पढमं ठाणसत्तिक्कयं १, बीयं निसीहियासत्तिक्कयं २, तइयं उच्चारपासवणसत्तिक्कयं ३, चउत्थं सद्दसत्तिक्कयं ४, पंचमं रूवसत्तिक्कयं ५, छट्ठं परकिरियासत्तिक्कयं ६, सत्तमं अन्नोन्नकिरियासत्तिक्कयं ७। एएसुं च उद्देसगाभावाओ इक्कगवएसो ।

ठाण-निसीहिय-उच्चारपासवण-सद्द-रूव-परकिरिया ।
अन्नोन्नकिरिया वि य सत्तिक्कयसत्तगं कमेण* ॥

तओ भावणज्झयणं तइया चूला । तओ विमुत्तिअज्झयणं चउत्थी चूला । एवं बीयसुयक्खंधे आयारंगे अज्झयणा १६, उद्देसा २५। पंचमचूला निसीहज्झयणं सुयक्खंधसमुद्देसाणुण्णाए दिणमेगं । एवं बीय-सुयक्खंधे दिणा २४। अंगसमुद्देसे दिण १। अंगाणुण्णाए दिण १। एवमायारंगे दिणा ५०। सव्वोद्देस-गपरिमाणमिणं—

सत्तय १, छ २, चउ ३, चउरो ४, छ ५, पंच ६, अट्ठेव ७ होंति चउरो य ८।
—इति पढमसुयक्खंधस्स ।
एक्कारस १, दोसु तिगं ३, चउसुं दो दो ७, नवेक्कसरा १६ ॥ १ ॥
—इति बीयसुयक्खंधस्स । **आयारंगविही ।**

§४८. बीयं **सूयगडंगं** नंदीए उद्दिसिय पढमसुयक्खंधो उद्दिसिज्जइ, तओ पढमज्झयणं । तम्मि उद्देसा ४, दिणा २। बीए उद्देसा ३, दिणा २। तइए उद्देसा ४, दिणा २। चउत्थे उद्देसा २, दिण १। पंचमे

* इमं गाथा नास्ति C आदर्शे.

चरे पयाइं परिसंकमाणो जं किंचि पासं इह मन्नमाणो ।
लाभंतरे जीविय वूहइत्ता पच्छा परिन्नाय मलावधंसी ॥ ७ ॥

छंदं निरोहेण उवेइ मुक्खं आसे जहा सिक्खियवम्मधारी ।
पुव्वाइं वासाइं चरऽप्पमत्तो तम्हा मुणी खिप्पमुवेइ मुक्खं ॥ ८ ॥

स पुव्वमेवं न लभेज्ज पच्छा एसोवमा सासयवाइयाणं ।
विसीयई सिढिले आउयंमि कालोवणीए सरीरस्स भेए ॥ ९ ॥

खिप्पं न सक्केइ विवेगमेउं तम्हा समुट्ठाय पहाय कामे ।
समिच लोगं समया महेसी आयाणरक्खी चरअप्पमत्तो ॥ १० ॥

मुहुं मुहुं मोहगुणा जयंतं अणेगरूवा समणं चरंतं ।
फासा फुसंती असमंजसं च न तेसु भिक्खू मणसा पउसे ॥ ११ ॥

मंदा य फासा बहुलोभणिज्जा तहप्पगारेसु मणं न कुज्जा ।
रक्खिज्ज कोहं विणइज्ज माणं मायं न सेवे पयहिज्ज लोहं ॥ १२ ॥

जे संखया तुच्छपरप्पवाई ते पिज्ज दोसाणुगया परज्झा ।
एए अहम्मु त्ति दुगुंछमाणो कंखे गुणे जाव सरीरभेउ ॥ १३ ॥ – त्तिबेमि ॥

समत्तेसु अज्झयणेसु छत्तीसाए सत्ततीसाए वा दिणेहिं एगायंबिलेण सुयक्खंधो समुद्दिसइ । बीएणं नंदीए अणुजाणिज्जइ । एवं अट्ठत्तीसा एगूणचत्ता वा दिणाइं हवंति । अहवा जाव चोद्दस ताव एगसराणि, सेसाणि २२ एगेगदिणे दो दो उद्दिसिज्जंति, समुद्दिसिज्जंति, अणुजाणिज्जंति । दो दिणा सुयक्खंधे । एवं सत्तावीसं अट्ठावीसं वा दिणाणि होंति । आगाढजोगा एए । एएसु संघट्टिय-मोइय-चोट्टियाइं च तद्दिवसियं न कप्पइ । तेसिं नामाणि जहा – विणयसुयं १, परीसहा २, चाउरंगिज्जं ३, असंखयं पमायप्पमायं वा ४, अकाममरणिज्जं ५, खुड्डागणियंठिज्जं ६, एलइज्जं ७, काविलिज्जं ८, नमिपव्वज्जा ९, दुमपत्तयं १०, बहुस्सुयपुज्जं ११, हरिएसिज्जं १२, चित्तसंभूइज्जं १३, उसुयारिज्जं १४, सभिक्खु अज्झयणं १५, बंभचेरसमाहिट्ठाणं १६, पावसमणिज्जं १७, संजइज्जं १८, मियापुत्तिज्जं १९, महानियंठिज्जं २०, समुद्दपालिज्जं २१, रहनेमिज्जं २२, केसिगोयमिज्जं २३, समिईओ २४, जन्नइज्जं २५, सामायारी २६, खुलंकिज्जं २७, मोक्खमग्गगई २८, सम्मत्तपरक्कमं २९, तवमग्गइज्जं ३०, चरणविही ३१, पमायट्ठाणं ३२, कम्मपयडी ३३, लेसज्झयणं ३४, अणगारमग्गो ३५, जीवाजीवविभत्ती ३६ । छत्तीसं उत्तरज्झयणाणि । – **उत्तरज्झयणजोगविही ।**

*

§४७. संपयं पढममायारंगं नंदीए उद्दिसिय अणंतरं पढमसुयक्खंधो उद्दिसिज्जइ । पढमं अंगउद्देसकाउस्सग्गं काऊण तओ सुयक्खंधउद्देसकाउस्सग्गो कायव्वो । तओ तस्स पढममज्झयणं, पच्छा तस्स पढमबीयउद्देसया उद्दिसिज्जंति समुद्दिसिज्जंति अणुजाणिज्जंति य । एवं एगदिणेण एगकालेण दो उद्देसगा जंति । एवं तइय-चउत्था वि पंचम-छट्ठा वि, सत्तमउद्देसओ एगकालेण उद्दिसिज्जइ समुद्दिसिज्जइ वा । तओ अज्झयणं समुद्दिसिज्जइ, तओ उद्देसओ अज्झयणं च अणुजाणिज्जइ । एवं पढमज्झयणे दिण ४, काल ४ । एवं अन्न अज्झयणे समा उद्देसया तत्थेगेगदिणेण एगेगकालेण य दो दो वच्चंति । विसमुद्देस-

§ ५३. इयाणिं भगवईए विवाहपन्नत्तीए पंचमंगस्स जोगविहाणं[1]—गणिजोगा छहिं मासेहिं छहिं दिवसेहिं आउत्तयाणएणं वच्चंति । तत्थ सुयक्खंधो नत्थि । अज्झयणाणि य सयनामाणि एकचालीसं । अंगं नंदीए उद्दिसिय पढमसयं उद्दिसिज्जइ । तत्थ उद्देसा १०; कालेण दो दो वच्चंति । एगंतरायामेणं दिणेहिं ५, कालेहिं ५ पढमसयं जाइ । एगंतरायामं जाव चमरो । बीयसए उद्देसा १०; नवरं पढमुद्देसओ खंदओ । तस्स अंबिलेण उद्देसो समुद्देसो य कीरइ । तओ जइ उट्ठवेइ तो तंमि चेव दिणे तेण चेव कालेण अणुजाणिय आयामं कारिज्जइ । अह न उट्ठिओ, तो बीयदिणे बीयकालेण बीयअंबिलेण अणुजाणिज्जइ । उट्ठिओ त्ति पाढेणागओ । अणुण्णाए य तंमि अंबिले पविट्ठे अगओ काउस्सग्गाइअणुट्ठाणं कीरइ । एत्थ[2] पंच दत्तीओ सपाणभोयणाओ भवंति । सेसा दो दो उद्देसा दिणे दिणे जंति । जाव नवमुद्देसो । एगंमि पंचमे दिणे दसमो सयं च । सव्वे दिणा ७, काला ७ । तइयसए वि उद्देसा १०; नवरं पढमदिवसे पढमकालेण पढमुद्देसयं मोयानामगमणुजाणिय, बीयकालेण चमरस्स उद्देसो समुद्देसो य कीरइ । सेसं तओ जइ उट्ठवेइ इच्चाइ जहा खंदए । दत्तीओ वि सपाणभोयणाओ पंच । केई चत्तारि भणंति । एवं चमरे अणुण्णाए पनरसहिं कालेहिं पनरसहिं दिणेहिं य गएहिं छट्ठजोगो लग्गइ । छट्ठजोगअणुजाणावणत्थं ओगाहिमविगइविसज्जणत्थं काउस्सग्गो कीरइ; नमोक्कारचिंतणं भणणं च । पंचनिव्वियाणि छट्ठं निरुद्धं ४ । अन्ने छन्निव्वियाणि सत्तमं निरुद्धं ति भणंति[3] । तम्मि लग्गे संधूइयतक्क—तीमण—वंजणाइ तद्दिणकयं पि कप्पइ । तओ पुव्वं एयमकप्पमासि । ओगाहिमविगई वि न उवहणइ । जहा दिट्ठिवाए मोयगो गुरुमाइकए आणेउं पि कप्पइ । सेसा अट्ठ उद्देसा चउहिं दिवसेहिं सएणसमं वच्चंति । सव्वे दिणा ७, काला ७ । चउत्थसए वि उद्देसा १०, दोहिं दिणेहिं वच्चंति । पढमदिणे ८, चत्तारि चत्तारि आइल्ला अंतिल्ल त्ति काऊण उद्दिसिज्जंति, समुद्दिसिज्जंति, अणुन्नविज्जंति । बीयदिणे दो सएण समं वच्चंति । दिणा २, काला २ । पंचम-छट्ठ-सत्तम-अट्ठमसएसु दस दस उद्देसया दो दो दिणे दिणे जंति । चत्तारि वि वीसाए दिणेहिं कालेहिं य वच्चंति । अट्ठसु सएसु काला ४१ । नवमं दसमं एगारसं बारसं तेरसं चउदसमं च एयाइं [4]छस्सयाइं एक्केक्ककालेण वच्चंति । नवरं नवमसयमुद्दिसिय तस्सुद्देसा ३४ दुहाकाउं (१७+१७) पढममाइल्ला उद्दिसिज्जंति, तओ अंतिल्ला सयं च समुद्दिसिज्जंति । तओ आइल्ला अंतिल्ला सयं च अणुन्नविज्जंति । एवं सए सए नव नव काउस्सग्गा कीरंति । एवं दसमसए वि उद्देसा ३४ दुहा (१७+१७); एक्कारसमे उद्देसा १२ दुहा (६+६); बारसमे तेरसमे चउदसमे य दस दस पत्तेयं पंच पंच दुहा कज्जंति । पनरसमं गोसालसयमेगसरं पढमदिणे उद्दिसिज्जइ । तओ जइ उट्ठिओ तो तम्मि चेव दिणे तेणेव कालेण आयंबिलेण य अणुजाणिज्जइ । अह न उट्ठिओ, तो [5]बीयदिणे बीयकालेण बीयअंबिलेण अणुजाणिज्जइ । [6]इत्थ दत्तीओ तिन्नि तिन्नि सपाणभोयणाओ भवंति । गोसाले अणुन्नाए अट्ठमजोगो लग्गइ । तस्स अणुजाणावणत्थं काउस्सग्गो कीरइ । सत्त निव्वियाणि अट्ठमं निरुद्धं । अन्ने अट्ठ निव्वियाणि नवमं निरुद्धं । सेसाणि निव्वियाणि वि । गोसालसए तेयनिसग्गावरनामगे अणुन्नाए निव्वियदिणे नंदिमाईणं वंदणय-खमासमण-काउस्सग्गपुव्वं उद्देसाइं कीरंति । ते य इमे—नंदि १, अणुओग २, देविंद ३, तंदुलं ४, चंदवेज्झ ५, गणिविज्जा ६, मरण ७, ज्झाणविभत्ती ८, आउर ९, महापच्चक्खाणं च १० । गोसाले जो[7] जइ दव्वीहिं अलद्धियाहिं उवहओ ताहे उवहओ चेव । अह बहवे जोगवाहिणो ताहे तस्स संबंधिणीओ घेप्पंति । गोसालणुण्णं जाव एगूणवन्नासं काला ४९ हवंति । तदुवरि सेसाणि छव्वीससयाणि एक्केक्केण कालेण वच्चंति । एएहिं २६ सह ७५ भवंति । एगेणंगं समुद्दिसिज्जइ । बीएण नंदीए अणुजाणिज्जइ । गणिसद्दपन्नंतं नामं च ठाविज्जइ । अंगस्स समुद्देसे अणुण्णाए य अंबिलं ।

---

1 B ष्विहाणं । 2 B इत्थ । 3 नत्थि A । 4 B C छच्च सयाइं । 5 नत्थि 'बीयदिणे' A । 6 B नत्थि 'इत्थ' । 7 नत्थि 'जो' A C ।

उद्देसा २, दिण १। इओणंतरमेगारसज्झयणाणि एगसराणि एगेगदिणेण एगकालेण जंति। पढमसुयक्खंध-ज्झयणनामाणि जहा—समओ १, वेयालीयं २, उवसग्गपरिण्णा ३, थीपरिण्णा ४, निरयविभत्ती ५, वीरत्थओ ६, कुसीलपरिभासा ७, वीरियं ८, धम्मो ९, समाही १०, मग्गो ११, समोसरणं १२, अहतहं १३, गंथो १४, जमईयं १५, गाहा १६। सुयक्खंधसमुद्देसाणुण्णाए दिणमेगं। सव्वे दिणा २०। पढमसुयक्खंधो गाहासोलसगो नाम गओ। बीयसुयक्खंधे नंदीए उद्दिसिए तस्स सत्त महज्झयणाणि, एगसराणि, एगेगदिणेण एगेगकालेण य वच्चंति। तेसिं नामाणि जहा—पुंडरीयं १, किरियाठाणं २, आहारपरिण्णा ३, पच्चक्खाणकिरिया ४, अणगारं ५, अद्दइज्जं ६, नालंदा ७। सुयक्खंधसमुद्देसाणुण्णाए दिणमेगं। उद्देसगमाणमिणं—

सूयगडे सुयखंधा दोन्निउ पढमम्मि सोलसज्झयणा।
चउ १, तिय २, चउ ३, दो ४, दो ५, एक्कारस ६, पढमसुयखंधस्स ॥ १ ॥

सत्त इक्कसरा बीयसुयक्खंधस्स। अंगसमुद्देसे दिण १, अंगाणुण्णाए दिण १। सव्वे दिणा ३०।
—सूयगडंगविही।

§ ४९. तइयं **ठाणंगं** नंदीए उद्दिसिज्जइ। तओ सुयक्खंधो, तओ पढमज्झयणं, एगसरं एगदिणेण एगकालेण वच्चइ। बीए उद्देसा ४, दिणा २। तइए उद्देसा ४, दिणा २। चउत्थे उद्देसा ४, दिणा २। पंचमे उद्देसा ३, दिणा २। सेसाणि पंचठणाणि एगसराणि पंचहिं दिणेहिं वच्चंति। एयउद्देसगमाणमिणं—

पढमं एगसरं चिय १ चउ २ चउ ३ चउरो ४ ति ५ पंच १० एगसरा।
ठाणंगे सुयखंधो एगो दस होंति अज्झयणा ॥ १ ॥

तेसिं नामाणि जहा—एगठाणं दुठाणमिच्चाइ...जाव...दसठाणं ७। सुयक्खंधसमुद्देसाणुण्णाए दिणा २, अंगसमुद्देसाणुण्णाए दिणा २, सव्वे दिणा १८। **—ठाणंगविही।**

§ ५०. चउत्थं **समवायंगं** एगदिणे नंदीए उद्दिसिज्जइ, बीयदिणे समुद्दिसिज्जइ, तइयदिणे नंदीए अणुजाणिज्जइ। एवं तिहिं कालेहिं तिहिं आयंबिलेहिं वच्चइ। सुयक्खंधज्झयणुद्देसा इत्थ नत्थि।
—समवायंगविही।

§ ५१. इत्थंतरे इमे जोगा—**निसीहे** एगमज्झयणं वीसं उद्देसगा एगेगदिणेण एगेगकालेण य दो दो वच्चंति। दसहिं दिवसेहिं एगंतरायामेहिं समप्पइ। इत्थ अज्झयणत्तेण नंदी नत्थि। अणागाढजोगो। निसीहे दिणा १०।

§ ५२. दसा-कप्प-ववहाराणं एगो सुयक्खंधो सो नंदीए उद्दिस्सइ। तत्थ दस दसाअज्झयणा एगसरा, दसहिं दिवसेहिं वच्चंति। तेसिं नामाणि जहा—असमाहिठाणाइं १, सबला २, आसायणाओ ३, गणिसंपया ४, अवगोही ५, उवासगपडिमा ६, भिक्खुपडिमा ७, पज्जोसवणाकप्पो ८, मोहणीयठाणाइं ९, आयाइ ठाणं १० त्ति। कप्पज्झयणे उद्देसा ६, दिणा ३। **ववहारज्झयणे** उद्देसा १०, दिणा ५। एगदिणे सुयक्खंधसमुद्देसो, बीयदिणे नंदीए सुयक्खंधाणुण्णा, सव्वे दिणा २०। केइ **कप्प-ववहाराणं** भिन्नं सुयक्खंधमिच्छंति। एवं च दिणा २२। तहा **पंचकप्पो** आयंबिलेण मंडलीए पढिज्जइ। **जीयकप्पो** निव्वीएणं ति। **निसीह-दसा-कप्प-ववहारसुयक्खंध-पंचकप्प-जीयकप्पविही।**

शत १३
उद्देश १०।
दिन १।

शत १४
उद्देश १०।
दिन १।

गोशालशत १५
उद्देश०
दिन २।

शत १६
उद्देश १४।
दिन १।

शत १७
उद्देश १७।
दिन १।

शत १८
उद्देश १०।
दिन १।

शत १९
उद्देश १०।
दिन १।

शत २०
उद्देश १०।
दिन १।

शत २१
उद्देश ८०।
दिनानि १।

शत २२
उद्देश ६०।
दिन १।

शत २३
उद्देश ५०।
दिन १।

शत २४
उद्देश २४।
दिन १।

शत २५
उद्देश १२।
दिन १।

शत २६
उद्देश ११।
दिन १।

शत २७
उद्देश ११।
दिन १।

शत २८
उद्देश ११।
दिन १।

शत २९
उद्देश ११।
दिन १।

शत ३०
उद्देश ११।
दिन १।

शत ३१
उद्देश २८।
दिन १।

शत ३२
उद्देश २८।
दिन १।

शत ३३
उद्देश १२४।
दिन १।

शत ३४
उद्देश १२४।
दिन १।

शत ३५
उद्देश १३२।
दिन १।

शत ३६
उद्देश १३२।
दिन १।

शत ३७
उद्देश १३२।
दिन १।

शत ३८
उद्देश १३२।
दिन १।

शत ३९
उद्देश १३२।
दिन १।

शत ४०
उद्देश १३१।
दिन १।

शत ४१
उद्देश १९६।
दिन १।

शत स० ४१
उद्देश सर्वाम
१९३२।

§५४. अणंतरं कयपंचमंगजोगविहाणस्स तस्सामग्गिविरहे अन्नहावि अणुण्णवियगुरुयणस्स छट्ठमंगं नायाधम्मकहा नंदीए उद्दिसिज्जइ । तम्मि दो सुयक्खंधा नायाइं धम्मकहाओ य । तत्थ नायाणं एगूणवीसं अज्झयणाणि । एगूणवीसाए दिणेहिं वच्चंति । तेसिं नामाणि जहा—उक्खित्तनाए १, संघाडनाए २, अंडनाए ३, कुम्मनाए ४, सेलयनाए ५, तुंबयनाए ६, रोहिणीनाए ७, मल्लीनाए ८, मायंदीनाए ९, चंदिमानाए १०, दावद्दवनाए ११, उदगनाए १२, मंडुक्कनाए १३, तेतलीनाए १४, नंदिफलनाए १५, अवरकंकानाए १६, आइण्णनाए १७, सुसुमानाए १८, पुंडरीयनाए १९। एगं दिणं सुयक्खंधसमुद्देसाणुन्नाए । सवे दिणा २०। धम्मकहाणं दस वग्गा दसहिं दिवसेहिं जंति । तत्थ नंदीए सुयक्खंधमुद्दिसिय पढमवग्गो उद्दिसिज्जइ । तम्मि दस अज्झयणा । पंच पंच आइल्ला अंतिल्ल चि काऊण उद्दिसिज्जंति, समुद्दिसिज्जंति य । तओ वग्गो समुद्दिसिज्जइ । तओ आइल्ला अंतिल्ला वग्गा य अणुन्नविज्जंति । एवं वग्गो एगकालेण एगदिणेण नवहिं काउस्सग्गेहिं वच्चइ । एवं सेसावि नव वग्गा । नवरं अज्झयणेसु नाणत्तं । बीए दस अज्झयणा, तइय-चउत्थेसु चउप्पण्णं चउप्पण्णं । पंचम-छट्ठेसु बत्तीसं बत्तीसं । सत्तम-अट्ठमेसु

एवं सत्तहत्तरि ७७ कालेहिं भगवईपंचमंगं समप्पइ । नवरं सोलसमे सए उद्देसा चउद्दस ७+७ । सत्तरसमे सत्तरस ९+८ । अट्ठारसमे दस ५+५ । एवं एगूणविसइमे वि ५+५ । वीसइमे वि ५+५ । इक्कवीसइमे असीई ४०+४० । बावीसइमे सट्ठी ३०+३० । तेवीसइमे पण्णासा २५+२५ । इत्थं इक्कवीसमे अट्ठवग्गा, बावीसइमे छवग्गा, तेवीसइमे पंचवग्गा । वग्गे वग्गे दस उद्देसा । अओ असीइ-सट्ठि-पण्णासा उद्देसा कमेण । चउवीसइमे चउवीसं १२+१२ । पंचवीसइमे बारस ६+६ । बंधिसए २६ । करिंसुगसए २७ । कम्मसमज्जिणणसए २८ । कम्मपट्ठवणसए २९ । समोसरणसए ३० । एएसु पंचसु वि सएसु एक्कारस-एक्कारस उद्देसा दुहा ६+५ कज्जंति । उववायसए अट्ठावीसं १४+१४; ३१ । उवट्टणासए अट्ठावीसं १४+१४; ३२ । एगिंदियजुम्मसयाणि बारस, तेसु उद्देसा १२४, दुहा ६२+६२; ३३ । सेढीसयाणि बारस तेसु वि उद्देसा १२४, दुहा ६२+६२; ३४ । एगिंदियमहाजुम्मसयाणि बारस, तेसु उद्देसा १३२, दुहा ६६+६६; ३५ । बेइंदियमहाजुम्मसयाणि बारस, तेसु वि उद्देसा १३२; दुहा ६६+६६, ३६ । तेइंदियमहाजुम्मसयाणि बारस, तेसु वि उद्देसा १३२, ६६+६६; ३७ । चउरिंदियमहाजुम्मसयाणि बारस, तेसु वि उद्देसा १३२, ६६+६६; ३८ । असन्निपंचिंदियमहाजुम्मसयाणि बारस, तेसु वि उद्देसा १३२, दुहा ६६+६६; ३९ । सन्निपंचिंदियमहाजुम्मसयाणि इक्कवीसं, तेसु उद्देसगा २३१, दुहा ११६+११५; ४० । रासीजुम्मसए उद्देसा १९६, दुहा ९८+९८; ४१ । इत्थ य तेत्तीसइमे सए अवंतरसया १२, तत्थ अट्ठसु पत्तेयं उद्देसा ११, चउसु ९, सव्वग्गेणं १३४ । एवं चउतीसइमे वि १२४ । पणतीसइमाइसु पंचसु सएसु अवंतरसया १२, तेसु पत्तेयं उद्देसा ११, सव्वग्गेणं १३२ । चालीसइमे अवंतरसया २१, तेसु पत्तेयं उद्देसा ११, सव्वग्गेणं २३१ । एवं महाजुम्मसयाणि ८१, एवं सव्वग्गेणं सया १३८ । सव्वग्गेणं उद्देसा १९२३ ।

इत्थ संगहगाहाओ उवरिं जोगविहाणे भण्णिहिंति । **भगवईए जोगविही ।**

गणिजोगेसु वूढेसु संघट्टओ थिरो भवइ । नय घिप्पइ नय विसज्जिज्जइ त्ति समायारी । आउत्तवाणयं तु घिप्पइ विसज्जिज्जइ य त्ति ।

अथ यन्त्रकम् । इदं सकलं शतकउद्देशादि यन्त्रतोऽवसेयम् ।[1]

शत १ उद्देस १०। दिन ५।	शत ४ उद्देश १०। प्र०दि० ८। द्वि०दि० २।	शत ७ उद्देश १०। दिन ५।	शत १० उद्देश ३४। दिन १।
शत २ उद्देस १०। दिन ५।	शत ५ उद्देश १०। दिन ५।	शत ८ उद्देश १०। दिन ५।	शत ११ उद्देश १२। दिन १।
शत ३ उद्देस १०। दिन ७।	शत ६ उद्देश १०। दिन ५।	शत ९ उद्देश ३४। दिन १।	शत १२ उद्देश १०। दिन १।

1 ध्वंसि यत्रमिदम् A ।

§ ६१. इयाणिं उवंगा—आयारे उवंगं ओवाइयं १, सूयगडे रायपसेणइयं २, ठाणे जीवाभिगमो ३, समवाए पण्णवणा ४, एए चत्तारि उक्कालिया तिहिं तिहिं आयंबिलेहिं मंडलीए वहिज्जंति। अहवा आयारे अंगाणुण्णाणंतरं संघट्टयमज्झे चेव उद्देससमुद्देसाणुण्णासु आयंबिलतिगेण ओवाइयं गच्छइ। जोगमज्झे चेव निव्वीयदिणे आयंबिलेण अंबिलतिगपूरणाओ वच्चइ त्ति अन्ने। एवं सूयगडे रायपसेणइयं पि वोढव्वं। एवं चेव जीवाभिगमो ठाणंगे। एवं समवाए वूढे दसा-कप्प-ववहारसुयक्खंधे अणुण्णाए य संघट्टयमज्झे अंबिलतिगेण, मयंतरेण अंबिलेण, पण्णवणा वोढव्वा। एएसु तिन्नि इक्कसरा। नवरं जीवाभिगमे दुविहाइ-दसविहंतजीवभणणाओ नव पडिवत्तीओ। पण्णवणाए छत्तीसं पयाइं। तेसिं नामाणि जहा—पण्णवणापयं १, ठाणपयं २, बहुवत्तव्वपयं ३, ठिईपयं ४, विसेसपयं ५, वुक्कंतीपयं ६, उस्सासपयं ७, आहाराइदससण्णापयं ८, जोणिपयं ९, चरमपयं १०, भासापयं ११, सरीरपयं १२, परिणामपयं १३, कसायपयं १४, इंदियपयं १५, पओगपयं १६, लेसापयं १७, कायट्ठिइपयं १८, सम्मत्तपयं १९, अंतकिरियापयं २०, ओगाहणापयं २१, किरियापयं २२, कम्मपयं २३, कम्मवंधगपयं २४, कम्मवेयगपयं २५, वेयगवंधपयं २६, वेयगपयं २७, आहारपयं २८, उवओगपयं २९, पासणापयं ३०, मणोविन्नाणसन्नापयं ३१, संजमपयं ३२, ओहीपयं ३३, पवियारणापयं ३४, वेयणापयं ३५, समुग्घायपयं ति ३६।

भगवईए सूरपण्णत्तीउवंगं आउत्तवाणएणं तिहिं कालेहिं अंबिलतिगेणं वोढव्वा। अहवा भगवई-अंगाणुण्णाणंतरे एयं संघट्टयमज्झे तिहिं कालेहिं अंबिलेहिं च वच्चइ। नायाणं जंबुद्दीवपण्णत्ती, उवासगदसाणं चंदपण्णत्ती; एयाओ दोवि पत्तेयं तिहिं तिहिं कालेहिं, तिहिं तिहिं अंबिलेहिं वहिज्जंति संघट्टएणं। अहवा निय-नियअंगेऽणुण्णाए तस्संघट्टयमज्झे चेव तिहिं तिहिं कालेहिं अंबिलेहिं च वच्चंति। सूरपण्णत्तीए चंदपण्णत्तीए य वीसं पाहुडाइं। तत्थ पढमे पाहुडे अट्ठ पाहुड-पाहुडाइं, विए तिन्नि, दसमे वावीसं, सेसाइं एगसराणि। जंबुद्दीवपण्णत्ती एगसरा। अंतगडदसाइपंचण्हमंगाणं दिट्ठिवायंताणं एगमुवंगं निरयावलियासुयक्खंधो। तम्मि पंच वग्गा कप्पियाओ, कप्पवडिंसियाओ, पुप्फियाओ, पुप्फिचूलियाओ, वण्हिदसाओ। तत्थ पढम-वीय-तईय-चउत्थवग्गेसु दस दस अज्झयणा, पंचमे वारस। तत्थ पढमे वग्गे अज्झयणा कालाई, वीए पउमाई, तईए चंदाई, चउत्थे सिरिमाई, पंचमे निसढाई। सुयक्खंधं नंदीए उद्दिसिय पढमवग्गं च। तओ अज्झयणाणि दुहा काऊण आइल्ला अंतिल्ल त्ति भणिय, वग्गे वग्गे नव नव काउस्सग्गा कीरंति। वग्गेसु दिणा ५, सुयक्खंधे दिणा २, सव्वे दिणा ७; काला ७। केई सत्त अंबिले करेंति। अन्ने सुयक्खंध-उद्देस-समुद्देसाणुण्णासु अंबिलं करेंति। अन्नदिणेसु निव्वीयं। निरयावलिया-सुयक्खंधो गओ।

अण्णे पुण चंदपण्णत्तिं सूरपण्णत्तिं च भगवईउवंगे भणंति। तेसिं मएण उवासगदसाईण पंचण्ह-मंगाणमुवंगं निरयावलियासुयक्खंधो।

ओ०रा०जी०पण्णवणा सू०जं०चं०नि०क०क०पुप्पु०वण्हिदसा।
आयाराइउवंगा नायव्वा आणुपुव्वीए॥ —उवंगविही।

§ ६२. संपयं पइण्णगा, नंदी-अणुओगदाराइं च इक्किक्केणं[1] निव्वीएण मंडलीए वहिज्जंति। केई तिहिं दिणेहिं निव्वीएहिं य उद्देसाइकमेण इच्छंति। देविंदत्थयं-तंदुलवेयालियं-मरणसमाहि-महापच्चक्खाण-आउरपच्चक्खाण-संथारय-चंदाविज्झयं-भत्तपरिण्णा-चउसरण-वीरत्थय-गणिविज्जा-दीवसागरपण्ण-

1 A निव्वएणं। 2 A इक्किक्कनिव्वीएण।

चत्तारि चत्तारि । नवम-दसमेसु अट्ठ अट्ठ अज्झयणा । दुहा काऊण सव्वत्थ आइल्ला अंतिल्ल त्ति वत्तव्वा । एवं दससु वग्गेसु दिणा १०। सुयक्खंधसमुद्देसाणुण्णाए दिण १। अंगसमुद्देसे दिण १। अंगाणुण्णाए दिण १। एवं सव्वे दिणा ३३।—**नायाधम्मकहांगविही ।**

§५५. उवासगदसासत्तमंगं नंदीए उद्दिसिज्जइ । तम्मि एगो सुयक्खंधो, तस्स दस अज्झयणा, एगसरा दसहिं कालेहिं दसहिं दिणेहिं वच्चंति । तेसिं नामाणि जहा—आणंदे १, कामदेवे २, चूलणीपिया ३, सुरादेवे ४, चुल्लसयगे ५, कुंडकोलिए ६, सद्दालपुत्ते ७, महासयगे ८, नंदिणीपिया ९, लेतियापिया १०। दो दिणा सुयक्खंधे, दो अंगे, सव्वे दिणा १४।—**उवासगदसंगविही ।**

§५६. अंतगडदसाअट्ठमंगे एगो सुयक्खंधो अट्ठवग्गा । तत्थ पढमे वग्गे दस अज्झयणा । बीयवग्गे अट्ठ । तइए तेरस । चउत्थ-पंचमेसु दस दस । छट्ठे सोलस । सत्तमे तेरस । अट्ठमवग्गे दस अज्झयणा । आइल्ला अंतिल्ला भणिय जहा धम्मकहाए तहा । अट्ठहिं कालेहिं अट्ठहिं दिणेहिं वच्चंति । इत्थ अज्झयणाणि गोयममाईणि दो दिणा सुयक्खंधे, दो अंगे, सव्वे बारस १२।—**अंतगडदसाअंगविही ।**

§५७. अणुत्तरोववाइयदसानवमंगे एगो सुयक्खंधो, तिन्नि वग्गा, तिहिं दिणेहिं तिहिं कालेहिं वच्चंति। इत्थ अज्झयणाणि जालिमाईणि । तत्थ पढमे वग्गे दस । बीए तेरस । तइए दस अज्झयणा । सेसं जहा धम्मकहाणं । वग्गेसु दिणा तिन्नि, सुयक्खंधे दिणा दोन्नि, दो दिणा अंगे, सव्वे दिणा ७; काल ७। —**अणुत्तरोववाइयदसंगविही ।**

§५८. पण्हावागरणदसमंगे एगो सुयक्खंधो, दस अज्झयणा, दसहिं कालेहिं, दसहिं दिवसेहिं वच्चंति । तेसिं नामाणि जहा—हिंसादारं १, मुसावायदारं २, तेणियदारं ३, मेहुणदारं ४, परिग्गहदारं ५, अहिंसादारं ६, सच्चदारं ७, अतेणियदारं ८, बंभचेरदारं ९, अपरिग्गहदारं १० । सुयक्खंधसमुद्देसाणुण्णाए दिणा दो, अंगे दिणा दो, सव्वे दिणा चोद्दस १४। आगाढजोगा आउत्तवाणएणं जइ भगवईए अवूढाए गुरुमणुण्णविय वहइ तो भगवईए छट्ठजोगाऽलग्गकप्पाकप्पविहीए; अह वूढाए तो छट्ठजोगलग्गकप्पाकप्पविहीए एगंतरायंबिलेहिं वच्चंति । महासत्तिक्कय त्ति भण्णंति । इत्थ केई पंचहिं पंचहिं अज्झयणेहिं दो सुयक्खंधा इच्छंति ।—**पण्हावागरणंगविही ।**

§५९. विवागसुयइक्कारसमंगे दो सुयक्खंधा । तत्थ पढमे दुहविवागसुयक्खंधे दस अज्झयणा, दसहिं कालेहिं, दसहिं दिवसेहिं वच्चंति । तेसिं नामाणि जहा—मियापुत्ते १, उज्झियए २, अभग्गसेणे ३, सगडे ४, बहस्सइदत्ते ५, नंदिवद्धणे ६, उंबरिदत्ते ७, सोरियदत्ते ८, देवदत्ता ९, अंजू १०। एगं दिणं सुयक्खंधे, एवं सव्वे दिणा ११ । एवं सुहविवागबीयसुयक्खंधे अज्झयणा १० । तेसिं नामाणि जहा—सुबाहु १, भद्दनंदी २, सुजाय ३, सुवासव ४, जिणदास ५, धणवइ ६, महब्बल ७, भद्दनंदी ८, महचंद ९, वरदत्त १० । सुयक्खंधे दिण १, अंगे दिण २, सव्वे दिणा २४, काला २४।

विवागसुयंगविही ।

दिट्ठिवाओ दुवालसमंगं तं च वोच्छिन्नं ।

§६०. इत्थ य दिक्खापरियाएण तिवासो आयारपकप्पं वहिज्जा वाइज्जा य । एवं चउवासो सूयगडं । पंचवासो दसा-कप्पववहारे । अट्ठवासो ठाण-समवाए । दसवासो भगवइं । इक्कारसवासो खुड्डियाविमाणाइपंचज्झयणे । बारसवासो अरुणोववायाइपंचज्झयणे । तेरसवासो उट्ठाणसुयाइचउरज्झयणे । चउदसाइअट्ठारसंतवासो कमेण आसीविसभावणा-दिट्ठिविसभावणा-चारणभावणा-महासुमिणभावणा-तेयनिसग्गे । एगूणवीसवासो दिट्ठिवायं । संपुन्नवीसवासो सव्वसुत्तजोगो त्ति ।

*

जा अन्चउत्थ[1] चउद्दस इगेगकालेण जाइ इक्किको।
दो दो इगेगकालेण जंति पुण सेस बावीसं ॥ ११ ॥
आयारो पढमंगं सुयखंधा तेसु दोण्णि जहसंखं।
अड-सोलस अज्झयणा इत्तो उद्देसए वोच्छं ॥ १२ ॥
सत्तयं[1] छ[2] चउ[3] चउरो[4] छ[5] पंच[6] अट्ठेव[7] होंति चउरो य[8]।
इक्कारस[1] ति[2] तिय[3] दो[4] दो[5] दो[6] दो[7] नव[8] हुंति इक्कसरा ॥ १३ ॥
बीयम्मि सुयक्खंधे उग्गहपडिमाणमुवरि सत्तिक्का।
आउत्तवाणएणं सुयाणुसारेण वहियवा ॥ १४ ॥
आयारो य समप्पइ पन्नासदिणेहिं तत्थ पढमम्मि।
सुयखंधे चउवीसं बीए छव्वीसई दिवसा ॥ १५ ॥
बीयंगं सूयगडं तत्थवि दो चेव होंति सुयखंधा।
सोलस-सत्तज्झयणा कमेण उद्देसए सुणसु ॥ १६ ॥
चउ[1] तिय[2] चउरो[3] दो[4] दो[5] इक्कारस[6-16] पढमयंमि इक्कसरा।
सत्तेव महज्झयणा इक्कसरा बीय सुयखंधे ॥ १७ ॥
सूयगडो य समप्पइ तीसाए वासरेहिं सयलो वि।
पढमो वीसाए तहिं दिणेहिं बीओ तह दसेहिं ॥ १८ ॥
ठाणंगे सुयखंधो एगो दस चेव होंति अज्झयणा।
पढमं एगसरं[1] चउ[2] चउ[3] चउ[4] तिगं[5] सेस एगसरा ॥ १९ ॥
समवाओ पुण नियमा सुयखंधविवज्जिओ चउत्थंगं।
तिहि वासरेहिं गच्छइ ठाणं अट्ठारसदिणेहिं ॥ २० ॥
होंति दसा-कप्पाईसुयखंधे दस दसा उ एगसरा।
कप्पम्मि छ उद्देसा ववहारे दस विणिद्दिट्ठा ॥ २१ ॥
अज्झयणंमि निसीहे वीसं उद्देसगा मुणेयवा।
तीसेहिं दिणेहिं जंति हु सवाणि वि छेयसुत्ताणि ॥ २२ ॥
निविएण जीयकप्पो आयामेणं तु जाइ पणकप्पो।
तिहिं अंबिलेहिं उक्कालियाइं ओवाइयाइं चऊ ॥ २३ ॥
आउत्तवाणएणं विवाहपण्णत्ति पंचमं अंगं।
छम्मासा छद्दिवसा निरंतरं होंति वोढवा ॥ २४ ॥
इत्थ य नय सुयखंधो नय अज्झयणा जिणेहिं परिकहिया।
इगचत्तालसयाइं ताइं तु कमेण वोच्छामि ॥ २५ ॥
अट्ठ दसुद्देसाइं ८, दो चउ तीसाइं १०, बारसहिं एगं ११।
तिण्णि दसुद्देसाइं १४, गोसालसयं तु एगसरं १५ ॥ २६ ॥

1 'चतुर्थमहापरिज्ञाध्ययनं वर्जयित्वा' इति टिप्पणी।

त्ति-संगहणी-गच्छायारे-इच्चाइपइण्णगाणि इक्किक्केण निव्वीएण वच्चंति। जइ पुण भगवईजोगमज्झे केसिंचि पुव्वुत्तविहिए खमासमण-वंदण-काउस्सग्गा कया ते पुढो न वोढव्वा। दीवसागरपण्णत्ती तिहिं कालेहिं तिहिं अंबिलेहिं जाइ। इसिभासियाइं पणयालीसं अज्झयणाइं कालियाइं, तेसु दिण ४५ निव्विएहिं अणागाढजोगो। अण्णे भणंति-उत्तरज्झयणेसु चेव एयाइं अंतब्भवंति। पुज्जा पुण एवमाइसंति-तिहिं कालेहिं आयंबिलेहिं य उद्देस-समुद्देसाणुण्णाओ एएसिं कीरंति।-**पइण्णगविही।**

§ ६३. संपयं **महानिसीह**जोगविही-आउत्तवाणएणं गणिजोगविहाणेण निरंतरायंबिलपणयालीसाए भवइ। तत्थ महानिसीहसुयक्खंधं नंदीए उद्दिसिय पढमज्झयणं उद्दिसिज्जइ, समुद्दिसिज्जइ, अणुण्णविज्जइ य। तओ बीयज्झयणं, तत्थ नव उद्देसा दो दो दिणे दिणे जंति। नवमुद्देसो अज्झयणेण सह वच्चइ। एवं तइए उद्देसा १६, चउत्थे १६, पंचमे १२, छट्ठे ४, सत्तमे ६, अट्ठमे २०। जओ आह-

अज्झयणं नवं सोलस, सोलस बारस चउक्कं छं-वीसा।
अट्ठज्झयणुद्देसा ४५, तेसीइ महानिसीहम्मि॥

इत्थ सत्तट्ठमाइं चूलारूवाइं तेयालीसाए दिणेहिं अज्झयणसमत्ती। एगं दिणं सुयक्खंधस्स समुद्देसे, एगमणुण्णाए, सव्वे दिणा ४५, काल ४५। आगाढजोगा।-**महानिसीहजोगविही।**

*

॥ जोगविहाणपयरणं ॥

§ ६४. संपयं भणियत्थसंगहरूवं जोगविहाणं नाम पयरणं भण्णइ-

नमिऊण जिणे पयओ जोगविहाणं समासओ वोच्छं।
पइअंगसुयक्खंधं अज्झयणुद्देसपविभत्तं॥ १॥
जंमि उ अंगंमि भवे दो सुयखंधा तहिं तु कीरंति।
सुयखंधस्स दिणेणं दोवि समुद्देसणुण्णाओ॥ २॥
अह एगो सुयखंधो अंगे तो दिणदुगेण सुयखंधो।
अणुण्णवइ अंगं पुण सव्वत्थ वि दोहिं दिवसेहिं॥ ३॥
आवस्सयसुयखंधो तहियं छ चेव हुंति अज्झयणा।
अट्ठहिं दिणेहिं वच्चइ आयामदुगं च अंतम्मि॥ ४॥
दसयालियसुयखंधो दस अज्झयणाइं दो य चूलाओ।
पिंडेसणअज्झयणे भवंति उद्देसगा दुन्नि॥ ५॥
विणयसमाहीए पुण चउरो तं जाइ दोहिं दिवसेहिं।
इक्किक्कवासरेणं सेसा पक्खेण सुयखंधो॥ ६॥
आवस्सय-दसकालियमोइण्णा ओह-पिंडनिज्जुत्ती।
एगेण तिहिं च निव्विएहिं णंदि-अणुओगदाराइं॥ ७॥
एगो य सुयक्खंधो छत्तीस भवंति उत्तरज्झयणा।
तत्थेक्केक्कज्झयणं वच्चइ दिवसेण एगेण॥ ८॥
नवरि चउत्थमसंखयमज्झयणं जाइ अंबिलदुगेणं।
अह पढइ तद्दिणि चिय अणुण्णवइ निव्विगइएणं॥ ९॥
सव्वोवि य सुयखंधो वच्चइ मासेण नवहि य दिणेहिं।
केसिं च मएण पुणो अट्ठावीसाइ दिवसेहिं॥ १०॥

नायाधम्मकहाओ छट्ठंगं तत्थ दो सुयक्खंधा ।
पढमे इक्कसराइं अज्झयणाइं अउणवीसं ॥ ४३ ॥
वीए दसवग्गा तहिं उद्देसा दसं[१] दसेवं[२] चउवन्नां[३] ।
चउपन्नां[४] बत्तीसां[५] बत्तीसां[६] चउं[७] चउं अडेऽट्ठं ॥ ४४ ॥
नायाधम्मकहाओ तेत्तीसाए दिणेहिं वचंति ।
पढमे वीसं दिवसा सुयखंधे तेरस उ वीए ॥ ४५ ॥
सत्तमयं पुण अंगं उवासगदस त्ति नाम तत्थेगो ।
सुयखंधो इक्कसरा इत्थऽज्झयणा हवंति दस ॥ ४६ ॥
अंतगडदसाओ पुण अट्ठममंगं जिणेहिं पन्नत्तं ।
तत्थेगो सुयखंधो वग्गा पुण अट्ठ विण्णेया ॥ ४७ ॥
अंतगडदसाअंगे वग्गे वग्गे कमेण जाणाहिं ।
दसं[१] दसं[२] तेरसं[३] दसं[४] दसं[५] सोलसं[६] तेरसं[७] दसुद्देसा[८] ॥ ४८ ॥
अहऽणुत्तरोववाइयदसा उ नामेण नवमयं अंगं ।
एगो य सुयक्खंधो तिन्नि उ वग्गा मुणेयव्वा ॥ ४९ ॥
उद्देसगाण संखं वग्गे वग्गे य एत्थ वोच्छामि ।
दसं[१] तेरसं[२] दसं[३] चेव य कमसो तीसुं पि वग्गेसुं ॥ ५० ॥
चोद्दस उवासगदसा अंतगडदसा दुवालसेहिं तु ।
सत्तहिं दिणेहिं जंति उ अणुत्तरोववाइयदसाओ ॥ ५१ ॥
वग्गस्साइल्लाणं उद्देसाणं तहिं तिमिल्लाणं ।
उद्देस-समुद्देसे तहा अणुण्णं करिज्जासु ॥ ५२ ॥
दिवसेण जाइ वग्गो उस्सग्गा तत्थ होंति नव चेव ।
छप्पुव्वण्हे भणिया अवरण्हे नियमओ तिन्नि ॥ ५३ ॥
पण्हावागरणंगं दसमं एगो य होइ सुयखंधो ।
तहियं दस अज्झयणा एगसरा जंति पइदिवसं ॥ ५४ ॥
चोद्दसहिं वासरेहिं पण्हावागरणमंगमिह जाइ ।
आउत्तवाणएणं तं वहियव्वं पयत्तेणं ॥ ५५ ॥
एक्कारसमं अंगं विवागसुयमित्थ दो सुयक्खंधा ।
दोसुं पि य एगसरा अज्झयणा दस दस हवंति ॥ ५६ ॥
कालियचंद[२]उपण्णत्ती आउत्ताणेण सूरपण्णत्ती ।
सेसा संघट्टेणं ति-तिआयामेहिं चउरो वि ॥ ५७ ॥
निरयावलियभिहाणो सुयखंधो तत्थ पंचवग्गाओ ।
इक्किक्कंमि य वग्गे उद्देसा दसदसंतिमे दु जुया ॥ ५८ ॥

---

1 A °समुद्देसा । 2 'जंबू°, चंद°, सूर°, दीव°'–इति B टिप्पणी ।

वीए पंढमुद्देसो खंदो तइयम्मि चमरओ वीओ।
गोसालो पनरसमो पण पण तिग हुंति दत्तीओ ॥ २७ ॥

एया सभत्तपाणा पारणगदुगेण होयणुण्णवणा।
खंदाईण कमेणं वोच्छामि विहिं अणुण्णाए ॥ २८ ॥

चमरंमि छट्टजोगो विगईए विसज्जणत्थमुस्सग्गा।
अट्टमजोगो लग्गइ गोसालसए अणुण्णाए ॥ २९ ॥

पनरसहिं कालेहिं पनरसदियहेहिं चमरणुण्णाए।
लग्गइ य छट्टजोगो पणनिविय अंबिलं छट्टं ॥ ३० ॥

अउणावण्णदिणेहिं अउणावण्णाइ वावि कालेहिं।
अट्टमजोगो लग्गइ अट्टमदियहे निरुद्धं च ॥ ३१ ॥

चोद्दस १६ सत्तरस १७ तिण्णि उ दस उद्देसाइ २० तह असी २१ सट्टी २२।
पन्नासा २३ चउवीसा २४ वारस २५ पंचसु य इक्कारा ३० ॥ ३२ ॥

अट्टावीसा दोसुं ३२ चउवीससयं च ३४ पणसु वत्तीसं ३९।
दोण्णि सया इगतीसा ४० चरिमसए चेव छन्नउयं ४१ ॥ ३३ ॥

बंधी २६ करिसुगनामं २७ कम्मसमज्जिणण २८ कम्मपट्टवणं २९।
ओसरणं समपुव्वं ३० उववा-३१ उव्वट्टणसयं च ३२ ॥ ३४ ॥

एगिंदिय ३३ तह सेढी ३४ एगिंदिय ३५ बेइंदियाण समहाणं ३६।
तेइंदिय ३७ चउरिंदिय ३८ असण्णिपणिंदिमह सहिया ३९ ॥ ३५॥

एएसिं सत्तण्हं जुम्मसयदुवालसाणि नेयाणि।
आइदुगजुम्मवज्जं सन्निमहाजुम्मि य सयाणि ॥ ३६ ॥

एयाइं इक्कतीसं ४० चरमं पुण होइ रासिजुम्मसयं ४१।
पणयीसइमा आरा अभिहाणाइं वियाणाहिं ॥ ३७ ॥

इत्थ चउत्थम्मि सए अट्ठुद्देसा दुहा उ कायव्वा।
अट्ठमसयपयोलीणे सव्वो वि हु विसमयाइं वि ॥ ३८ ॥

दोमासअद्धमासे विहिणा अंगे इमम्मिऽणुण्णाए।
नामट्टवणं कीरइ पुणरवि तह कालसज्झायं ॥ ३९ ॥

असुहभवकम्मयहेऊ अयंतं अप्पमत्तपियधम्मा।
पूरंति हु परियायं जावसमप्पंति कइवि[1] दिणा ॥ ४० ॥

सट्ठाणे थोवयं होइ इमं तह सुयाणुसारेणं।
आयारेऽणुण्णाए केई आलंपणाइरया ॥ ४१ ॥

सोहणतिहि-रिक्खाइसु विउट्टेमण-निक्वसग्गि ग्गित्तम्मि।
उग्गियणमाइजोगाण काहि किथं निरयसेसं ॥ ४२ ॥

---

1 'कईर' A प्रिन्नी।

गुरुणा सज्झाए उक्खिविए मुहपोत्तिं पडिलेहिय, दुवालसावत्तवंदणं दाउं, खमासमणेण भणंति—'सज्झायं उक्खिवामो, बीयखमासमणेण सज्झायउक्खिवणत्थं काउस्सग्गं करेमो'। तओ अन्नत्थूससिएणमिच्चाइ पढिय, नवकारं चउवीसत्थयं चिंतिय, मुहेण तं भणिय, काउस्सग्गतियं कुणंति। पढमं असज्झाइय-अणाउत्तओहडावणियं, बीयं खुद्दोवद्दवओहडावणियं, तइयं सक्काइवेयावच्चगरआराहणत्थं। तिसु वि चउ उज्जोयचिंतणं, उज्जोयभणणं च। तओ खमासमणदुगेण सज्झायं संदिसावेमि, सज्झायं करेमि त्ति भणिय, जाणुट्ठिएहिं पंचमंगलपुव्वं 'धम्मो मंगलाइ' अज्झयणतियसज्झाओ कीरइ त्ति।

§६६. **सज्झायउक्खिवणविही**—जया य चित्तासोयसुद्धपक्खे सज्झाओ निक्खिविज्जइ, तया दुवालसावत्तवंदणं दाउं सज्झायनिक्खिवणत्थं अट्ठुस्सासं काउस्सग्गं काउं पारित्ता, मंगलपाढो कायव्वो त्ति। राओ[1] सन्नाए कयाए वमणे सित्थ-रुहिराइनिस्सरणे य पभाए कप्पो उत्तारिज्जइ। बाहिरभूमीए आगया पिंडियाओ पाए य तिप्पंति। जत्थ पाया मंडोवगरणं वा तिप्पिज्जइ सा भूमी अणाउत्ता होइ। सा य आउत्तजलउल्लियगदंडपुंछणेण सिद्धीए तिप्पिज्जइ। तं च दंडपुंछणं अणाउत्तट्ठाणे नेऊण तिप्पिज्जइ। अणाउत्तट्ठाणं नाम नीसरंताणं वामबाहाए दुवारपासे भूमिखंडलं इट्टिगाइपरिहिज्जुत्तं अणाउत्तडं ति रूढं। उच्चारे वोसिरिए वामकरेण तिहिं नावापूरेहिं आयमिय, आउत्तेण दाहिणहत्थेण दवं मत्थए छोढूण कोप्परेण वा दवं घित्तूणं अहिट्ठाणलिंगेसु जंघासु कलाइयासु चउरो चउरो तिप्पाओ घेप्पंति। पुरीसपवित्तीए जायाए जइ मुहे अणाउत्तो हत्थो लग्गइ तया कप्पुत्तारणेण सुज्झइ। तहा जइ आयामंतस्स तिप्पणयं दोरओ वा वामहत्थे पाए वा लग्गइ तया अणाउत्ती हवइ। दवं उज्झित्ता दोरयं मज्झे खिवित्ता तं भायणं तिप्पिज्जइ। बाहिं कंटयाइंमि भग्गे जेण हत्थेण तं उद्धरेइ सो हत्थो तिप्पियव्वो। जइ दंडओ हड्डे लग्गइ तया तिप्पियव्वो। जेण अंगेण उवंगेण वा अणाउत्तं मंडोवगरणं साहुं वा छिवइ, जंमि य रुहिरं नीहरइ तं अणाउत्तं होइ[2]। कज्जयं भंडाइसु पाणियं तिप्पणयाइ कंठट्ठियं दोरयं च राओ जइ वीसरइ सव्वमणाउत्तं होइ। जाणंतेण विहाराइकारणे तुंबयकंठदिन्नं दोरयमणाउत्तं न होइ। गुड-घय-तिल्ल-खीराई भोयणवइरित्तकज्जे आणीयमवस्सं तिप्पित्तु वावरिज्जइ। नालिएराइसु घसणत्थं तिल्लं निक्खित्तं परिवसियं अणाउत्तं होइ, जइ लवणं मज्झे न निक्खिप्पइ। सुत्तूण उट्ठिएहिं दसाइणा कप्पवाणियं घेत्तुं पढमं एगं हत्थं मत्थए, एगं च मुहे काउं चउरो तिप्पाओ घेप्पन्ति। जइ पुण कारणजाए मुहसुद्धिमाइ मुहे चिट्ठइ, तया पढमं मत्थयं तिप्पित्ता, तओ मुहं पुढो तिप्पियव्वं। तओ मत्थए आउत्तदवं छोढुं कण्ण-खंध-पँगंड[3]-कोप्पँर[4]-पउँट्ट[5]-हियएसु चत्तारि चत्तारि तिप्पाओ। तओ पिट्ठ-पुट्ठीओ समगं तिप्पित्ता चोलपट्टय-उरु-जाणु-पिंडिया-पाएसु चउरो चउरो तिप्पाओ। तओ भायणाइं बइसणं च तिप्पिउं निउत्तो साहू ओमरायणिओ वा मंडलिं गिण्हिय, तक्क-तीमणाइखरडियं च भूमिं जलेण सोहिय, दंडउंछणं पमज्जणिं वा जेण मंडली गहिया तं मंडलीए तिप्पिय, तेणेव आउत्तजलउल्लियग्गेण मंडलीठाणं बाहिं नीसरंतेणं तिप्पियदेसं अच्छिवंतेणं अविच्छिन्नं तिप्पियव्वं। तं च दरतिप्पियं जइ केणवि अणाउत्तेहिं पाएहिं अक्कंतं पुणो अणाउत्तं होइ, तओ दंडउंछणं उद्धरणियाए उवरिं तिप्पित्ता मंडलिं परिट्ठाविय उद्धरणियं अणाउत्तट्ठाणे तिप्पिय खीलए धारित्तु अब्भुक्खणं निक्खिविज्जइ। जो य सेहो गिलाणो सामायारी अकुसलो वा सो दंडउंछणेण तिप्पिज्जइ। अववाएण राओ विहारत्थं नगराईहिंतो नीसरंताणं जइ पाएसु तलियाओ तो अणाउत्ता न हौंति पाया, अन्नहा हौंति। दिया वा राओ वा अणाउत्ते हत्थपायाइं अंगे जइ पयलाइ तो कप्पुत्तारणेण सुज्झइ। भुंजंतस्स

1 'रात्रौ' इति B टिप्पणी। 2 A पाणयं। 3 'कूर्परस्कन्धयोर्मध्ये प्रगंडः। 4 भुजामध्यं कूर्परः। 5 आमणिबन्धात् कूर्परस्याधः प्रकोष्ठः कलाचिका स्यात्।' इति टिप्पणी A आदर्शे।

चउवीसाइ दिणेहिं इक्कारसमं विवागसुयमंगं।
वचइ सत्तदिणेहिं निरयावलियासुयक्खंधो ॥ ५९ ॥
ओ॰रा॰जी॰पण्णवणा सू॰जं॰चं॰नि॰क॰क॰पुप्फ॰वण्हिदसा।
आयाराइउवंगा नेयव्वा आणुपुव्वीए ॥ ६० ॥
देविंदत्थयमाई पइण्णगा होंति इगिगनिविएण।
इसिभासियअज्झयणा आयंबिलकालतिगसज्झा ॥ ६१ ॥
केसिं चि मए अंतब्भवंति एयाइं उत्तरज्झयणे।
पणयालीस दिणेहिं केसि वि जोगो अणागाढो ॥ ६२ ॥
आउत्तवाणएणं गणिजोगविहीइ निसीहं तु।
अच्छिन्नं कालंबिलपणयालीसाइ वोढव्वं ॥ ६३ ॥
एगसरं नव सोलस सोलस बारस चउ छ वीस तहिं।
तेसीइं उद्देसा छज्झयणा दोन्नि चूलाओ ॥ ६४ ॥
कालग्गहसज्झायं संघट्टाईविहिं निरवसेसं।
सामायारिं च तहा विसेससुत्ताओ जाणिज्जा ॥ ६५ ॥
नियसंताणवसेणं सामायारीओ इत्थ भिन्नाओ।
पिच्छंता इह संकं मा हु गमिच्छा सया कालं ॥ ६६ ॥
सामायारीकुसलो वाणायरिओ विणीयजोगीण।
भयभीयाण य कुज्जा सकज्जसिद्धिं न इहराओ ॥ ६७ ॥
जं इत्थ अहं चुक्को मंदमइत्तेण किंपि होज्जाहि।
तं आगमविहिकुसला सोहिंतु अणुग्गहं काउं ॥ ६८ ॥

*

॥ जोगविहाणपगरणं समत्तं ॥*॥ समत्तो जोगविही ॥ २४ ॥

---

§६५. जोगा य कप्पतिप्पं[1] विणा न वहिज्जंति—'कयकप्पतिप्पकिरिय'त्ति वयणाओ। अओ संपयं कप्पतिप्पविही भण्णइ—तत्थ वइसाह-कत्तियचाउम्मासपडिक्कमणाणंतरं पसत्थदिणे चउवाइयरिक्खे गुरु-सोमवारे सुनिसिणेवउपहिं गद्दभगन्थंयंडियगिहत्थमायणेणं कप्पवाणियमाणिया, जोईणीओ पिट्ठओ वामओ वा काउं गुरु-हत्थ-पाए धोविं काऊण अट्ठारायणियाए छम्मासियकप्पो उत्तारिज्जइ। पविसमाणस्सावि दसियाइ कय-आउयमज्झेणं पढमं चउरो तिप्पाओ मुहे घेप्पंति, तओ पाएसु। इत्थ हत्थविण्णासो संपदाया नेयव्वो। छम्मासियकप्पे पयाहिण्णाओ चेव तिप्पाओ घेप्पंति। इयरकप्पे दसियापुंछणकोप्परेहिं पयाहिण्णाओ वा। तहा छम्मासियकप्पुत्तारणे उद्धट्ठियस्स उद्धट्ठिओ तिप्पाओ दिज्जा, उवविट्ठस्स उवविट्ठो। सामन्नकप्पे नत्थि नियमो। तओ वसही भंडुवगरणं च मागोवगरणवज्जं सव्वं पि तिप्पिज्जइ[2]। नवरं मंडलिट्ठाणं गोमयलेवे कए तिप्पिज्जइ। कप्पमज्झे पाणियं घय-भंड-मलग-उवट्टणी-पमज्जणिया-तडिया-सोदरच्छाइ जलेण कप्पिउं तिप्पिज्जइ। एवं कप्पे उत्तारिए वसहिं सोहित्तु दड-केसाइ परिट्ठविय, इरियं पडिक्कमिय, पढमं

---

1 A °त्थं। 2 A °प्पंगाओ। 3 A हेरित्र।

"नाणं पंचविहं पण्णत्तं, तं जहा—आभिणिबोहियनाणं, सुयनाणं, ओहिनाणं, मणपज्जवनाणं, केवलनाणं ति" पंचमंगलत्थं नंदिं कड्ढिय इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च—'एयस्स साहुस्स वायणायरियपयअणुण्णा नंदी पवत्तइ' त्ति भणिय सिरसि वासे खिवेइ । तओ निसिज्जाए उवविसिय गंधे अक्खए य अभिमंतिय संघस्स देइ । तओ जिणचलणेसु गन्धे खिवेइ । तओ सीसो वंदिउं भणइ—'तुब्भे अम्हं वायणायरियपयं अणुजाणह' । गुरू भणइ—'अणुजाणेमो' । सीसो भणइ—'संदिसह किं भणामो ?' गुरू भणइ—'वंदित्ता पवेयह' । पुणो वंदिय सीसो भणइ—'इच्छाकारेण तुब्भेहिं अम्हं वायणायरियपयमणुन्नायं' ३ खमासमणाणं, हत्थेणं सुत्तेणं अत्थेणं तदुभएणं, सम्मं धारणीयं चिरं पालणीयं अन्नेसिं पि पवेयणीयं । सीसो वंदिय भणइ—'इच्छामो अणुसट्ठिं'; पुणो वंदिय सीसो भणइ—'तुम्हाणं पवेइयं, संदिसह साहूणं पवेएमि' । तओ नमोक्कारमुच्चरंतो सगुरुं समवसरणं पयक्खिणी करेइ तिन्नि वाराओ । गुरू संघो य 'नित्थारगपारगो होहि, गुरुगुणेहिं वड्ढाहि' त्ति भणिरो तस्स सिरे वासक्खए खिवेइ । तओ वंदिय सीसो भणइ—'तुम्हाणं पवेइयं, साहूणं पवेइयं, संदिसह काउस्सग्गं करेमि' त्ति भणित्ता अणुण्णाय 'वायणायरियपयथिरीकरणत्थं करेमि काउस्सग्गं अन्नत्थूससिएणमिच्चाइ' भणिय काउसग्गे उज्जोयं चिंतिय, पारित्ता चउवीसत्थयं भणित्ता, गुरुं वंदित्ता भणइ—'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं निसिज्जं समप्पेह' । तओ गुरू निसिज्जं अभिमंतिय, उवरि चंदणसत्थियं काऊण, तस्स देइ । सो य निसिज्जं मत्थएण वंदित्ता सनिसिज्जो गुरुं तिपयाहिणी करेइ । तओ पत्ताए लग्गवेलाए चंदणचच्चियदाहिणकन्ने तिन्नि वारे गुरू मंतं सुणावेइ—'अ-उ-म्-न्-अ-म्-ओ-म्-अ-ग्-अ-व्-अ-अ-उ-अ-र्-अ-ह्-अ-अ-उ-म्-अ-ह्-अ-इ-म्-अ-ह्-आ-व्-ई-र्-अ-व्-अ-द्ध्-अ-म्-आ-ण्-अ-स्-आ-म्-इ-स्स्-अ-स्-इ-ज्ज्-अ-उ-म्-ए-भ्-अ-ग्-अ-व्-अ-ई-म्-अ-ह्-अ-इ-म्-अ-ह्-आ-व्-इ-ज्ज्-आ-अ-उ-म्-व्-ई-र्-ए-व-ई-र्-ए-म्-अ-ह्-आ-व्-ई-र्-ए-ज्-अ-य्-अ-व्-ई-र-ए-स्-ए-ण्-अ-व्-ई-र्-ए-व्-अ-द्ध्-अ-म्-आ-ण्-अ-व्-ई-र्-ए-ज्-अ-य्-ए-व-इ-ज्-अ-य्-ए-ज्-अ-य्-अं-त्-ए-अ-प्-अ-र्-आ-ज्-इ-ए-अ-ण्-इ-ह्-अ-ए-अ-उ-म्-ह्-र्-ई-म्-स्-व्-आ-ह्-आ । उवयारो चउत्थेण साहिज्जइ । पव्वज्जोवट्ठावणा-गणिजोग-पइट्ठा-उचिमट्टपडिवत्तिमाइएसु कज्जेसु सत्तवारा जवियाए गंधक्खेवे नित्थारगपारगो होइ, पूयासक्कारारिहो य । तओ वद्धमाणविज्जामंडलपडो तस्स दिज्जइ । तओ नामट्ठवणं करिय, गुरुणा अणुण्णाए ओमरायणिया साहू साहुणीओ य सावया साविआओ य तस्स पाएसु दुवालसावत्तवंदणं दिंति । सो य सयं जिट्ठज्जे वंदइ । तओ तस्स कंबलवत्थखंडरहियस्स पुट्ठिपट्टस्स अणुण्णं दाऊणं साहु-साहुणीणं अणुवत्तणे गंभीरयाए विणीययाए इंदियजए य अणुसट्ठी दायव्वा । तओ वंदणं दाविऊण पच्चक्खाणं निरुद्धं कारिज्जइ त्ति ।

॥ वायणायरियपयट्ठावणाविही समत्तो ॥ २७ ॥

*

§ ६९. संपयं उवज्झायपयट्ठावणाविही । सो वि एवं चेव—उवज्झायपयाभिलावेण भाणियव्वो । नवरं उवज्झायपयं आसन्नलद्धपइभत्ताद्दिगुणरहियस्स वि ममग्गसुतत्थगहणधारणवक्खाणणगुणवंतस्स सुत्तवायणे अपरिस्संतस्स पसंतस्स आयरियट्ठाणजोग्गस्सेव दिज्जइ । निसिज्जा य दुकंबला; आयरियवज्जं जेट्ठकणिट्ठा सव्वे वंदणं दिंति । मंतो य तस्स सो चेव; नवरं आइए नंदिपयाणि अहिज्जन्ति ।

अ-उ-म्-न्-अ-म्-ओ-अ-र्-अ-ह्-अ-म्-त-आ-ण्-अ-म् । अ-उ-म्-न्-अ-म्-ओ-स्-इ-द्ध्-आ-ण्-अ-म् । अ-उ-म्-न्-अ-म्-ओ-आ-य्-अ-र्-इ-आ-ण्-अ-म् । अ-उ-म्-न्-अ-म्-ओ-उ-व्-अ-ज्झ्-आ-य्-आ-ण्-

---

1 C आदर्शे अत्र—'उवयारो चउत्थेण तम्मि चेव दिणे सहस्सजावेण—सोभग्गमुद्दा १, परमेट्ठिमुद्दा २, पवयणमुद्दा ३, सुरभिमुद्दा ४, एतन्मुद्राचतुष्टयं कृत्वा मंत्रः स्मरणीयः—साहिज्जइ'—एतादृशः पाठो विद्यते । 2 A नास्ति पदमिदम् ।

विधि० ९

सित्थं पियंतस्स वा दवं जइ चोलपट्टयमज्झे गयं तो वि कप्पुत्तारणेण सुज्झइ। कारणपरिवासियजलेण तिप्पाओ न सुज्झंति। अणुग्गए य जइ तिप्पाओ गेण्हंतो एगं दो तिन्नि वा गिण्हेइ अपडंते वा दवे गिण्हइ सव्वमणाउत्तं होइ। नहा लोयकेसा य वसहीए वीसरिया तइए दिणे अणाउत्ता होंति। खइरकक्कसमाणं पूइत्तावण्णं वा रुहिरमणाउत्तं न होइ। लद्दीए मज्जार-सुणग-माणुसाइपुरीसे वा छिक्के अणाउत्तो होइ। तेप्पणयाइसु दवं अणाउत्तं जायं अइरित्ते वा मा उज्झियव्वं होहिइ त्ति। तओ आकंठं जलेण भरित्ता तिप्पियं आउत्तं होइ त्ति।

॥ कप्पतिप्पसामायारी समत्ता ॥ २५ ॥

*

§ ६७. एवं कप्पतिप्पाइविहिपुरस्सरं साहू समाणियसयलजोगविही मूलग्गंथ-नंदि-अणुओगदार-उत्तरज्झयण-इसिभासिय-अंग-उवंग-पइन्नय-छेयग्गंथआगमे वाइज्जा। अतो **वायणाविही** भणइ—

तत्थ अणुओगमंडलिं पमज्जिय गुरुणो निसिज्जं रइत्ता, दाहिणपासे य निसिज्जाए अक्खे ठाइत्ता, गुरूणं पाएसु मुहपोत्तियापडिलेहणपुव्वं दुवालसावत्तवंदणं दाउं, पढमे खमासमणे अणुओगं आढवेमो त्ति, बीए अणुओगआढवणत्थं काउस्सग्गं करेमो त्ति भणिय, अणुओगआढवणत्थं करेमि काउस्सग्गं अन्नत्थ ऊससिएणमिच्चाइ पढिय, अट्ठुस्सासं काउस्सग्गं करिय, पारित्ता पंचमंगलं भणित्ता, पढमे खमासमणे वायणं संदिसावेमि, बीए वायणं पडिगाहेमि, तइए बइसणं संदिसावेमि, चउत्थे बइसणं ठामि त्ति भणिऊण, नीयासणत्थो मुहपोत्तियाठइयवयणो उवउत्तो उचियसरेणं वाइज्जा। जे के वि अणुओगं आढविय उवउत्ता सुणन्ति तेसिं सव्वेसिं वायणा लग्गइ। अणुओगे आढत्ते निद्दा-विगहा-वत्ता-हास-पच्चक्खाणदाणाइ न कीरइ। जस्स सगासे तं सुयमहिज्जियं तमेगं मुत्तुं अन्नस्स गुरुणो वि न अब्भुट्ठिज्जइ। उद्देसगसमत्तीए छोभवंदणं भणंति। अज्झयणाइसु वंदणगमेव। अणुओगसमत्तीए पढमखमासणे अणुओगपडिक्कमहं, बीए अणुओगपडिक्कमणत्थ काउस्सग्गु करहं। अणुओगपडिक्कमणत्थं करेमि काउस्सग्गमिच्चाइ पढिय, अट्ठुस्सासं उस्सग्गं काउं पारित्ता, पंचमंगलं भणित्ता, गुरुणो वंदंति त्ति।

॥ वायणाविही समत्तो ॥ २६ ॥

*

§ ६८. एवं विहिगहियागमं सीसं अणुवत्तगत्ताइगुणजियं नाउं वायणायरियपए उवज्झायपए आयरियपए वा गुरुणो ठावेंति। सिस्सिणिं च पवत्तिणीपए महत्तरापए वा। तत्थ **वायणायरियपयठावणाविही** भण्णइ—

एगकंबलं निसिज्जं उत्तरच्छयसहियं रइत्ता पक्खालियंगं सीसं वामपासे ठाविय दुवालसावत्तवंदणं दवाविय, खमासमणपुव्वं गुरू भणावेइ—'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं वायणायरियपयअणुजाणावणियं वासनिक्खेवं करेह'। गुरू भणइ—'करेमो'। पुणो खमासमणेणं सीसो भणइ—'तुब्भे अम्हं वायणायरियपयअणुजाणावणियं चेइयाइं वंदावेह'। तओ गुरू 'वंदावेमो'त्ति भणित्ता, तस्स सिरे वासे खिविय वड्ढंतियाहिं थुईहिं तेण सहिओ देवे वंदइ। जाव पंचपरमिट्ठित्थवभणणं पणिहाणगाहाओ य। तओ गुरू सीसो य वायणायरियपयअणुजाणावणियं सत्तावीसुस्सासं काउस्सग्गं दो वि करित्ता उज्जोयगरं भणंति। तओ सूरी उद्धट्ठिओ नंदिकड्ढावणियं काउस्सग्गं अट्ठुस्सासं कारवित्ता करित्ता य नवकारतिगं भणित्ता

1 'पतिप्पाप्रण' इति A टिप्पणी। 2 'रइत्ते' इति A टिप्पणी।

साहूणं पवेएमि !' । गुरू भणइ—'पवेयह' । तओ नमोकारमुच्चरंतो चउद्दिसिं सगुरुं समवसरणं पणमंतो पाउंछणं गहिय, रयहरणेण भूमिं पमज्जिंतो पयक्खिणं देइ । संघो य तस्स सिरे अक्खए खिवइ । एवं तिन्नि वाराओ देइ । तओ खमासमणं दाउं भणइ—'तुम्हाणं पवेइयं, संदिसह काउस्सग्गं करेमि !' । गुरू भणइ—'करेह' । खमासमणं दाउं—दव्व-गुण-पज्जवेहिं अणुओगअणुण्णानिमित्तं करेमि काउस्सग्गं—उज्जोयं चिंतिय तं चेव भणइ । तओ गुरू सूरिमंतेण निसिज्जं अभिमंतेइ । तओ सीसो खमासमणं दाउं भणइ—'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं निसिज्जं समप्पेह' । तओ गुरू वासे मत्थए खिविय तिकंबलं निसिज्जं समप्पेइ । ततो निसिज्जासहिओ समवसरणं गुरुं च तिन्नि वाराओ पयक्खिणी करेइ । तओ गुरुस्स दाहिणभुयासन्ने स निसिज्जाए निसीयइ । तओ पत्ताए लग्गवेलाए चंदणचच्चियदाहिणकन्नस्स गुरुपरंपरागए मंतपए कहेइ, तिन्नि वाराओ । एसो य सूरिमंतो भगवया वद्धमाणसामिणा सिरिगोयमसामिणो एगवीससयअक्खरप्पमाणो दिन्नो, तेण य बत्तीससिलोगप्पमाणो कओ । कालेण परिहायंतो परिहायंतो जाव दुप्पसहस्स अद्धुट्ठसिलोग-प्पमाणो भविस्सइ । नय पुत्थए लिहिज्जइ; आणाभंगप्पसंगाओ । जित्तियमित्तो य संपयं वट्टइ तित्तियस्स सयलस्स वि लग्गवेलाए दाणे इट्ठलग्गंसो न फव्वइ । अतो लग्गस्स आरेणावि पीढचउक्कं दायव्वं । इट्ठलग्गंसे पुण चउपीढसामिणो मंतरायस्स पंच सत्त वा जहा संपदायं पयाई दायव्वाइं ति गुरु आएसो । उवयारो एयस्स कोडिअंसतवेण साहिज्जइ । तव्विही इमो—

उ०नि०आ०नि०आ०नि०आ०नि०उ०इग पणिग पणेग पणिग इगमेगं ।
चिंतण-पढणं विकहाचाओ ऽहोरत्तपुट्ठाणं ॥ १ ॥
उ०नि०आ०नि०आ०नि०उ०इगेग ति चउ इग दुग इंग पुव्ववावारो ।
सविसेसो जिणथव चत्तमंतऽसयं च उस्सग्गे ॥ २ ॥
उ०नि०आ०नि०आ०नि०उ०इगट्ठ पंच सत्तेग दु इग तइयपए ।
उ०नि०आ०दु इग पणेगिग तुरिए पुव्वो विही दुसुवि ॥ ३ ॥
मोणेण सुरहिदव्वचिय गोयमतप्परेण निस्संकं ।
झाणं इत्थियदंसणमंतपए सोलसायामा ॥ ४ ॥

साहणाविही य अम्हचिय सूरिमंतकप्पे दट्ठव्वो । जओ चेव एस महप्पभावो एत्तोच्चिय एयस्साराहगो सूयगभत्तं मयगभत्तं रयस्सलाछुत्तभत्तं मज्जमंसासिभत्तं च परिहरइ । अन्नेसिं साहूणं उच्छिट्ठजलकणेणावि लग्गेण एयस्स न भोयणं कप्पइ त्ति । तओ सीसो खमासमणं दाउं भणइ—'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं अक्खे समप्पेह' । तओ गुरू तिन्नि अक्खमुट्ठीओ वड्ढंतियाओ गंधकप्पूरसहियाओ देइ । सीसो वि उवउत्तो करयलसंपुडेण गिण्हइ । जोगपट्टयं खडियं च गुरू समप्पेइ त्ति पालित्तयसूरी । तओ सीसो खमासमणं दाउं भणइ—'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं नामट्ठवणं करेह' । तओ गुरू वासे खिवन्तो जहोचियं सूरिसद्दपज्जंतं नामं तस्स करेइ ।

तओ गुरू निसिज्जाए उट्ठेइ, सीसो तत्थ निसीयइ । तओ नियनिसिज्जानिसन्नस्स सीसस्स मुहपोत्तिं पडिलेहिऊण गुरुगुणक्खावणत्थं जीयं ति काउं गुरू दुवालसावत्तवंदणं दाउं भणइ—'वक्खाणं करेह' । तओ सीसो जहासत्तीए परिसाणुरूवं वा नंदिमाइयं वक्खाणं करेइ । कए वक्खाणे साहवो वंदणं दिंति । ताहे सो निसिज्जाओ उट्ठेइ, गुरू निसिज्जाए उववितइ । सीसो य जाणू ठिओ सुणेइ ।

1 C ग्ग। 2 पढमिदं नस्ति A।

अ-म्। अ-उ-म्-न्-अ-म्-ओ-स्-अ-ब्-अ-स्-आ-ह्-ऊ-ण्-अ-म्। अ-उ-म्-न्-अ-म्-ओ-अ-उ-ज्-इ-ज्-इ-ण्-अ-अ-ण्-अ-म्। अ-उ-म्-न्-अ-म्-ओ-प्-अ-र्-अ-म्-ओ-ह्-इ-ज्-इ-ण्-अ-अ-ण्-अ-म्। अ-उ-म्-न्-अ-म्-ओ-स्-अ-ब्-ओ-ह्-इ-ज्-इ-ण्-अ-अ-ण्-अ-म्। अ-उ-म्-न्-अ-म्-ओ-म्-अ-ण्-अ-म्-त्-ओ-ह्-इ-ज्-इ-ण्-अ-अ-ण्-अ-म्। उवयारो सो चेव। संघपूयाइमहूसवाहिगारो एत्थ सावयाणं ति।

॥ उवज्झायपयट्ठावणाविही समत्तो ॥ २८ ॥

*

§७०. इयाणिं आयरियपयट्ठावणाविही भण्णइ। आयार-सुय-सरीर-वयण-वायणा-मइपओग-मइसंगह-परिण्णारूवअट्ठविहगणिसंपओववन्नस्स देस-कुल-जाइ-रूवी-इच्चाइगुणगणालंकियस्स बारसेवरिसे अहिज्जिय सुत्तस्स बारसंवरिसे गहियत्थसारस्स बारसवरिसे लद्धिपरिक्खानिमित्तं कयदेसदंसणस्स सीसस्स लोयं काउं पाभाइयकालं गिण्हिय, पडिक्कमणाणंतरं वसहीए सुद्धाए कालग्गाहीहिं काले पवेइए अंगपक्खालणं काउं, दाहिणकरे कणयकंकणमुद्दाओ पहिराविज्जु, चोक्खनेवत्थं पंगुराविज्जइ। पसत्थतिहि-करण-मुहुत्त-नक्खत्त-जोग-लग्गजुत्ते दिवसे अक्ख-गुरुजोगाओ दुन्नि निसिज्जाओ पडिलेहिज्जन्ति। सीसो गुरू य दुन्नि वि सज्झायं पट्ठविंति। पट्ठविए सज्झाए जिणाययणे गन्तूण समवसरणसमीवे दुन्नि वि निसिज्जाओ भूमिं पमज्जित्तु संघट्टियाओ धरिज्जन्ति। तओ गुरू सूरिमन्तेण चंदणघणसारचच्चियअक्खाभिमंतणे कए निसिज्जाओ उट्ठित्ता, सूरिपयजोग्गं सीसं वामपासे ठवित्ता, खमासमणपुव्वं भणावेइ—'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं दव्व-गुण-पज्जवेहिं अणुओगअणुजाणावणत्थं वासे खिवेह'। तओ गुरू सीसस्स वासे खिवेइ, मुद्दाओ सरीररक्खं च करेइ। तओ सीसो खमासमणं दाउं भणइ—'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं दव्व-गुण-पज्जवेहिं चउविहअणुओगअणुजाणावणत्थं चेइआइं वंदावेह'। तओ गुरू सीसं वामपासे ठवित्ता वड्ढंतियाहिं थुईहिं संघसहिओ देवे वंदइ। संतिनाह-संतिदेवयाइ आराहणत्थं काउस्सग्गं करेइ। तेसिं थुईओ देइ। सासणदेवयाकाउस्सग्गे य उज्जोयगरं चउक्कं चिन्तइ[1]। तीसे चेव थुइं देइ। तओ उज्जोयगरं भणिय, नवकारतिगं कड्ढिय, सक्कत्थयं भणित्ता, पंचपरमेट्ठित्थवं पणिहाणदंडगं च भणति। तओ सीसो पुत्तिं पडिलेहित्ता दुवालसावत्तवंदणं दाउं भणइ—'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं दव्व-गुण-पज्जवेहिं अणुओगअणुजाणावणत्थं सत्तसइयं नंदिकड्ढावणत्थं काउस्सग्गं करावेह। तओ दुवे वि काउस्सग्गं करेंति सत्तावीसुस्सासं, पारित्ता चउवीसत्थयं भणंति। तओ सीसो खमासमणं दाउं भणइ—'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं सत्तसइयं नंदिं सुणावेह। तओ सूरी नमोक्कारतिगपुव्वं उद्धट्ठिओ नंदिपुत्थियाए वासे खिवित्ता, सयमेव नंदिं अणुकड्ढइ। अन्नो वा सीसो उद्धट्ठिओ मुहपोत्तियाठइयमुहकमलो उवउत्तो नंदिं सुणावेइ। सीसो य मुहपोत्तियाए ठइयमुहकमलो जोडियकरसंपुडो एगग्गमणो उद्धट्ठिओ नंदिं सुणेइ। नंदिसमत्तीए सूरी सूरिमंतेण मुद्दापुव्वं गंधक्खए अभिमंतेइ। तओ मूलपडिमासमीवं गुरू गंतूण पडिमाए वासक्खेवं काउण, सूरिमंतं उद्धट्ठिओ जवइ। तओ समवसरणसमीवमागम्म नंदिपडिमाचउक्कम्म वामे खिवेइ। तओ अभिमंतिय वासक्खए चउविहसिरिसमणसंघस्स देइ। तओ सीसो खमासमणं दाउं भणइ—'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं दव्व-गुण-पज्जवेहिं अणुओगं अणुजाणेह'। गुरू भणइ—'अहं एयस्स दव्व-गुण-पज्जवेहिं खमासमणाणं हत्थेणं अणुओगं अणुजाणामि'। सीसो खमासमणं दाउं भणइ—'इच्छाकारेण तुब्भेहिं अम्हं दव्व-गुण-पज्जवेहिं अणुओगो अणुण्णाओ!'—एवं सीसेण वन्दे कए गुरू भणइ—'खमासमणाणं हत्थेणं सुत्तेणं अत्थेणं तदुभयेणं अणुओगो अणुण्णाओ २। सम्मं धारणीओ, चिरं पालणीओ, अन्नेसिं च पवेयणिओ'—इति भणंतो वासे खिवेइ। तओ सीसो खमासमणं दाउं भणइ—'तुम्हाणं पवेइयं, संदिसह

---

1 A चतेइ। 2 B नंदिय। 3 सिन्ति।

सीयावेइ विहारं गिद्धो सुहसीलयाइ जो मूढो ।
सो नवरि लिंगधारी संजमसारेण निस्सारो ॥ १३ ॥
वज्जेसु वज्जणिज्जं नियपरपक्खे तहा विरोहं च ।
वायं असमाहिकरं विसग्गिभूए कसाए य ॥ १४ ॥
नाणंमि दंसणंमि य चरणंमि य तीसु समयसारेसु ।
चोएइ जो ठवेउं गणमप्पाणं गणहरो सो ॥ १५ ॥
एसा गणहरमेरा आयारत्थाण वण्णिया सुत्ते ।
आयारविरहिया जे ते तमवस्सं विराहिंति ॥ १६ ॥
अपरिस्सावी सम्मं समदंसी होज्ज सव्वकज्जेसु ।
संरक्खसु चक्खुं पिव सबालवुड्ढाउलं गच्छं ॥ १७ ॥
कणगतुला सममज्झे धरिया भरमविसमं जहा धरइ ।
तुल्लगुणपुत्तजुगलगमाया वि समं जहा हवइ ॥ १८ ॥
नियनयणं जुयलियं वा अविसेसियमेव जह तुमं वहसि ।
तह होज्ज तुल्लदिट्ठी विचित्तचित्ते वि सीसगणे ॥ १९ ॥
अन्नं च मोक्खफलकंखिभवियसउणाण सेवणिज्जो तं ।
होहिसि लद्धच्छाओ तरु व्व मुणिपत्तजोगेण ॥ २० ॥
ता एए वरमुणिणो मणयं पि हु नावमाणणीया ते ।
उक्खित्तभरुव्वहणे परमसहाया तुह इमे जं ॥ २१ ॥
जहा विंझगिरी आसन्न-दूरवणवत्तिहत्थिजूहाणं ।
आधारभावमविसेसमेव उव्वहइ सव्वाणं ॥ २२ ॥
एवं तुमं पि सुंदर ! दूरं सयणेयराइसंकप्पं ।
मुत्तुमिमाण मुणीणं सव्वाण वि हुज्ज आहारो ॥ २३ ॥
सयणाणमसयणाणं भूणप्पायाण सयणरहियाण ।
रोगिनिरक्खरकुक्खीण बालजरजज्जराईणं ॥ २४ ॥
पेमहुपिया व पियामहो ऽहवाऽणाहमंडवो वावि ।
परमोवट्ठंभकरो सव्वेसि मुणीण होज्ज तुमं ॥ २५ ॥
तह इह दुसमागिम्हे साहूणं[1] धम्ममइपिवासाणं ।
परमपयपुरपहाणुगसुविहियचरियापवाइ ठिओ ॥ २६ ॥
संपाडिज्जऽज्झाण वि किंचजलं देसणापणालीए ।
वज्जियसंसग्गीण वि तुममंतेवासिणीउ त्ति ॥ २७ ॥
तह दुविहो आयरिओ इहलोए तह य होइ परलोए ।
इहलोए असारिणिओ[2] परलोए फुडं भणंतो य ॥ २८ ॥
ता भो देवाणुप्पिया परलोए हुज्ज सम्ममायरिओ ।
मा होज्ज[3] स-परनासी होउं इहलोयआयरिओ ॥ २९ ॥

---

1 BC साहुण वि । 2 B असारणिओ; C सारणिओ । 3 A होइ ।

गुरू वि तस्स उववूहणं काउं सूरिपयठवियसीसस्स साहुवग्गस्स साहुणीवग्गस्स य अणुसट्ठिं देइ। अणुओगविसज्जावणत्थं काउस्सग्गं दुवे वि करेंति। कालस्स पडिक्कमंति। तओ अविहवसावियाओ आरत्तियाइअवतारणं कुव्वंति। तओ संघसहिओ छत्तेणं धरिज्जमाणेणं महूसवेणं वसहीए जाइ। अणुण्णायाणुओगो सूरी निरुद्धं उववासं वा करेइ। जहासत्तीए संघदाणं करेइ। इत्थ संघपूया-जिणभवणट्ठाहियाइकरणं च सावयाहियारो। भोयणे पुरओ चउक्कियाइधारणं, आसणे य कंबलवत्थखंडपडिच्छन्नो पुट्टिपट्टो य तस्स अणुण्णाओ।

§ ७१. उववूहणा पुण एवं–

निज्जामओ भवण्णवतारणसद्धम्मजाणवत्तंमि।
मोक्खपहसत्थवाहो अन्नाणंधाण चक्खू य ॥ १ ॥
अत्ताणाणंताणं नाहोऽनाहाण भवसत्ताणं।
तेण तुमं सुपुरिस! गरुयंगच्छभारे निउत्तोऽसि ॥ २ ॥

अह अणुसट्टी–

छत्तीसगुणधुराधरणधीरधवलेहिं पुरिससीहेहिं।
गोयमपामुक्खेहिं जं अक्खयसोक्खमोक्खकए ॥ ३ ॥
सव्वोत्तमफलजणयं सव्वोत्तमपयमिमं समुव्वूढं।
तुमए वि तयं दढमसढबुद्धिणा धीर! धरणीयं ॥ ४ ॥
न इओ वि परं परमं पयमत्थि जए वि कालदोसाओ।
वोलीणेसु जिणेसुं जमिणं पवयणपयासकरं ॥ ५ ॥
अओ–नाणाविणेयवग्गाणुसारिसिरिजिणवरागमाणुगयं।
अगिलाणीएऽणुवजीवणाए विहिणा पइदिणं पि ॥ ६ ॥
कायव्वं वक्खाणं जेण परत्थोज्जएहिं धीरेहिं।
आरोवियं तुममिमं नित्थरसि पयं गणहराणं ॥ ७ ॥
सपरोवयारगरुयं पसत्थतित्थयरनामनिम्मवणं।
जिणभणियागमवक्खाणकरणमिव अणणुगुणजणगं ॥ ८ ॥
अगणियपरिस्समो तो परेसिमुवयारकरणदुल्ललिओ।
सुंदर! दरिसिज्ज तुमं सम्मं रम्मं अरिहधम्मं ॥ ९ ॥
तहा–निच्चं पि अप्पमाओ कायव्वो सव्वहा वि धीर! तुमे।
उज्जमपरे पहुंमि सीसा वि समुज्जमंति जओ ॥ १० ॥
पइंसओ विहारो कायव्वो सयहा तहा तुमए।
हे सुंदर! दरिसण-नाण-चरणगुणपयरिसनिमित्तं ॥ ११ ॥
संखित्ता वि हु मूले जह वड्ढइ वित्थरेण वच्चंती।
उदहिं तेण वरनई तह सीलगुणेहिं वड्ढाहि ॥ १२ ॥

---

1 A गुरुय°।

थेरस्स तवस्सिस्स वि सुबहुसुयस्स वि पमाणभूयस्स ।
अज्जासंसग्गीए निवडइ वयणिज्जदढवज्जं ॥ ४६ ॥
किं पुण तरुणो अबहुस्सुओ य अविगिट्ठतवपसत्तो य ।
सद्दाइगुणपसत्तो न लहइ जणजंपणं लोए ॥ ४७ ॥
एसो य मए तुम्हं मग्गमजाणाण मग्गदेसयरो ।
चक्खू व अचक्खूणं सुवाहिविहुराण विज्जो व ॥ ४८ ॥
असहायाण सहाओ भवगत्तगयाण हत्थदाया य ।
दिन्नो गुरू गुणगुरू अहं च परिमुक्कलो इण्हिं ॥ ४९ ॥
एयम्मि सारणावारणाइदाणे वि नेव कुवियव्वं ।
को हि सकण्णो कोवं करिज्ज हियकारिणि जणम्मि ॥ ५० ॥
एसो तुम्हाण पहू पभूयगुणरयणसायरो धीरो ।
नेया एस महप्पा तुम्ह भवाडविनिवडियाणं ॥ ५१ ॥
ओमो समरायणिओ अप्पयरसुओ हव त्ति धीरमिमं ।
परिभविहिह मा तुब्भे गणि त्ति एण्हिं दढं पुज्जो ॥ ५२ ॥
मोक्खत्थिणो हु तुब्भे नय तदुवाओ गुरुं विणा अन्नो ।
ता गुणनिही इमो चिय सेवेयव्वो हु तुम्हाणं ॥ ५३ ॥
ता कुलवहुनाएणं कज्जे निब्भच्छिएहिं वि कहिं पि[1] ।
एयस्स पायमूलं आमरणंतं न मोत्तव्वं ॥ ५४ ॥
किं बहुणा भणियव्वे जिमियव्वे सव्वचिट्ठियव्वे य ।
होज्जह अईव निहुया एसो उवएससारो त्ति ॥ ५५ ॥

॥ आयरियपयट्ठावणाविही समत्तो ॥ २९ ॥

*

§ ७२. संपयं पवत्तिणीपयट्ठावणा । सा य पवत्तिणीपयाभिलावेण वायणायरियपयट्ठवणातुल्ला, मंतो सो चेव; नवरं खंधकरणी लग्गवेलाए दिज्जइ । सेसं सव्वं निसिज्जाइ तहे व ।

§ ७३. अह महत्तरापयट्ठावणाविही भण्णइ । जहासत्तीए संघपूयापुरस्सरं पसत्थतिहि-करण-मुहुत्त-नक्खत्त-जोगलग्गजुत्ते दिवसे महत्तराजोग्गा निसिज्जा कीरइ । तओ सिस्सिणीए कयलोयाए सरीरपक्खालणं काउं जिणाययणनिवेसियसमोसरणसमीवे गुरू अहीयसुयं सिस्सिणिं वामपासे ट्ठविता – 'तुब्भे अम्हं पुप्फ-अज्जाचंदणाइनिवेसियमहयर-पवत्तिणीपयस्स अणुजाणावणियं नंदिकड्ढावणियं वासनिक्खेवं करेह त्ति –' भणाविंतो सिस्सिणीए सिरसि वासे खिवइ । वड्ढंतियाहिं थुईहिं चेइआइं वंदइ, जाव अरिहाणादिथुत्त-भणणं । तओ 'महत्तरापयअणुजाणावणियं काउस्सग्गं करेह' त्ति भणंती सत्तावीसोस्सासं काउस्सग्गं गुरुणा सह करेइ । पारित्ता चउवीसत्थयं भणित्ता उद्धट्ठिओ सूरी नमोक्कारतिगं भणित्ता, 'नाणं पंचविहं पन्नत्तं तं जहा – आभिणिबोहियनाणं, सुयनाणं, ओहिनाणं, मणपज्जवनाणं, केवलनाणं' ति मंगलत्थं भणिय, इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च – इमीसे साहुणीए महत्तरापयस्स अणुण्णानंदी पयट्टइ – त्ति सिरसि वासे खिवेइ । तओ उववि-

---

1 A कहं पि ।

तह मण-वइ-काएहिं करिंतु विप्पियसयाइं तुह समणा ।
तेसु तुमं तु पियं चिय करिज्ज मा विप्पियलवं ति ॥ ३० ॥
निग्गहिऊण अणक्खे अकुंणतो तह य एगपक्खित्तं ।
साहम्मिएसु समचित्तयाइ सवेसु वट्टिज्जा ॥ ३१ ॥
सवजणबंधुभावारिहं पि इक्कस्स चेव पडिबद्धं ।
जो अप्पाणं कुणई तओ विमूढो हु को अन्नो ॥ ३२ ॥
एवं च कीरमाणे होही तुह भुवणभूसणा कित्ती ।
एत्तो चेव य चंदं पडुच्च केणावि जं भणियं ॥ ३३ ॥
'गयणंगणपरिसक्कणखंडणदुक्खाइं सहसु अणवरयं ।
न सुहेण हरिणलंछण ! कीरइ जयपायडो अप्पा' ॥ ३४ ॥
अविणीए सासिंतो कारिमकोवे वि मा हु मुंचिज्जा ।
भद्द ! परिणामसुद्धिं रहस्समेसा हि सवत्थ ॥ ३५ ॥
उप्पाइयपीडाण वि परिणामवसेण गइविसेसो जं ।
जह गोव[1]-खरय-सिद्धत्थयाण वीरं समासज्ज ॥ ३६ ॥
अइतिक्खो खेयकरो होहिसि परिभवपयं अइमिऊ य ।
परिवारंमि सुंदर ! मज्झत्थो तेण होज्ज तुमं ॥ ३७ ॥
स-परावायनिमित्तं संभवइ जहा असीअ परिवारो ।
एवं पहू वि ता तयणुवत्तणाए जएज्ज तुमं ॥ ३८ ॥
अणुवत्तणाइ सेहा पायं पावंति जोग्गयं परमं ।
रयणं पि गुणोक्करिसं पावइ परिकम्मणगुणेण ॥ ३९ ॥
इत्थ उ पमायखलिया पुवब्भासेण कस्स व न होंति ।
जो[2] तेऽवणेइ सम्मं गुरुत्तणं तस्स सहलं ति ॥ ४० ॥
को नाम सारही णं स होज्ज जो भद्दवाइणो[3] दमए ।
दुट्टे वि हु जो आसे दमेइ तं सारहिं बिंति ॥ ४१ ॥
को नाम भणिइकुसलो वि इत्थ अच्चब्भुयप्पभावम्मि ।
गणहरपए पइपयं सघुवएसे खमो वुत्तुं ॥ ४२ ॥
परमित्तियं भणामो जायइ जेणुण्णई पवयणस्स ।
तं तं विचिंतिऊणं तुमए सयमेव कायवं ॥ ४३ ॥
सीसाणुसासणे वि हु पारद्धे अह इमं तुमं पि खणं ।
पणिज्जंतं जइपहु ! पहिट्ठचित्तो निसामेहि ॥ ४४ ॥
वज्जेह अप्पमत्ता अज्जासंसग्गिभंग्गिविससरिसं ।
अज्जाणुचरो[5] साहू पावइ वयणिज्जमचिरेण ॥ ४५ ॥

---

1 BC गोयरखरय° । 2 BC जा ते । 3 'भद्रवाजिनः' इति A टिप्पणी । 4 B °संसग्गमग्गि° ।
5 A अज्जाणुचर(; B अज्जाणुचरं ।

अन्नं च विद्रुमलया मुत्तासुत्तीओं रयणरासीओं ।
अइमणहराउ धारइ न केअलाओं जलहिवेला ॥ १२ ॥
किं तु जह सिप्पिणीओ भेरीओ तह्व वराडियाओ वि ।
जलजोणि त्ति समत्ता असुंदराओ वि धारेइ ॥ १३ ॥
एवं राईसरसिद्दिपमुहपुत्तीओं पउरसयणाओ ।
बहुपढियपंडियाओ सवग्ग-सयणीओं जाओ य ॥ १४ ॥
मा ताओ चेव तुमं धारिज्जसु किं तु तदियराओ वि ।
संजमभरवहणगुणेण जेण सव्वाओं तुल्लाओ ॥ १५ ॥
अवि नाम जलहिवेला ताओ धरिउं कयाइ उज्झइ वि ।
निच्चं पि तुमं तु धरिज्ज चेव एयाओ धन्नाओ ॥ १६ ॥
अन्नं च दुत्थियाणं दीणाणमणक्खराण विगलाणं ।
ऊणहियियाण निब्बंधवाण तह लद्धिरहियाणं ॥ १७ ॥
पयइनिरादेयाणं विन्नाणविवज्जियाण असुहाणं ।
असहायाण जरापरिगयाण निब्बुद्धियाणं च ॥ १८ ॥
भग्गविलुग्गंगीण वि विसमावत्थगयखंडखरडाणं ।
इयरूवाण वि संजमगुणिक्करसियाण समणीणं ॥ १९ ॥
गुरुणीव अंगपडिचारिग व्व धावीव पियवयंसि व ।
हुज्ज भगिणीव जणणीव अहव पियमाइमाया[2] व ॥ २० ॥
तह दढफलियमहादुमसाह व्व तुमं पि उचियगुणसहला ।
समणिजणसउणिसाहारणा दढं हुज्ज किं बहुणा ॥ २१ ॥
एवमणुसासिऊणं पवत्तिणिं; अज्जियाओं अणुसासे ।
जह एसो तुम्ह गुरू बन्धू व पिया च माया व ॥ २२ ॥
एए वि महामुणिणो सहोयरा जेट्ठभायरो व्व सया ।
तुम्हं देवाणुपियाण परमवच्छल्लतल्लिच्छा ॥ २३ ॥
ता गुरुणो मुणिणो वि य मणसा वयसा तहेव काएणं ।
नय पडिकूलेयव्वा अवि य सुबहुमन्नियव्वाओ ॥ २४ ॥
एवं पवत्तिणी वि हु अखलियतव्वयणकरणओ चेव ।
सम्ममणुयत्तणिज्जा न कोवणिज्जा मणागं पि ॥ २५ ॥
कुविया वि कहवि तुम्हं सदोसपडिवत्तिपुव्वमणुवेलं ।
खामेयव्वा एसा मिगावई इव नियगुरुणी ॥ २६ ॥
एसा सिवपुरगमणे सुपसत्था सत्थवाहिणी जं भे ।
एसा पमायपरचक्कविहुणे पट्ठयपडिसेणा ॥ २७ ॥

---

1 A पवर°। 2 A C पिइमायमाया व।

सिय गंधाभिमंतणं संघवासदाणं जिणचलणेसु गंधक्खेवो। तओ पढमखमासमणे–'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं महत्तरापयं अणुजाणह–' त्ति भणिए, गुरू भणइ–'अणुजाणामि'। बीए–'संदिसह किं भणामि?' गुरू आह–'वंदित्ता पवेयह'। तइए–'तुब्भेहिं अम्हं महत्तरापयमणुण्णायं?' गुरू आह–'अणुण्णायं'। ३ खमासमणाणं हत्थेणं०, 'इच्छामि अणुसट्ठिं' ति; गुरू भणइ–नित्थारगपारगा होहि, गुरुगुणेहिं वड्ढाहि।
5 चउत्थे–'तुम्हाणं पवेइयं संदिसह साहूणं पवेएमि'। पंचमं खमासमणं देइ। तओ नमोक्कारमुच्चरन्ती सगुरुं समवसरणं पयक्खिणी करेइ वारतिगं। छट्ठे–'तुम्हाणं पवेइयं, साहूणं पवेइयं, संदिसह करेमि' त्ति भणित्ता, सत्तमे अणुण्णायमहत्तरापयथिरीकरणत्थं करेमि काउस्सग्गमिति काउस्सग्गो कीरइ। उज्जोयचिंतणपुव्वयं काउस्सग्गं पारित्ता, चउवीसत्थयं भणित्ता, वंदित्ता उवविसइ। तओ पत्ताए लग्गवेलाए खंधकरणीखंधे निसिज्जइ। दुकंबला निसिज्जा य हत्थे दिज्जइ। तदुत्तरं चंदणचच्चियदाहिणकण्णाए
10 उवज्झायमंतो दिज्जइ वारतिगं, नामट्ठवणं च कीरइ। तदुत्तरं अज्जचंदणा-मिगावईण परमगुणे साहिंतो महत्तराए वइणीणं च गुरू अणुसट्ठिं देइ। जहा–

उत्तममिमं पयं जिणवरेहिं लोगोत्तमेहिं पण्णत्तं।
उत्तमफलसंजणयं उत्तमजणसेवियं लोए॥ १॥
धण्णाण निवेसिज्जइ धण्णा गच्छन्ति पारमेयस्स।
15 गंतुं इमस्स पारं पारं वच्चंति दुक्खाणं॥ २॥
जइ वि तुमं कुसल चिय सव्वत्थ वि तहवि अम्ह अहिगारो।
सिक्खादाणे तेणं देवाणुपिए! पियं भणिमो॥ ३॥
संपत्ता इय पयविं समत्थगुणसाहणंमि गुरुययरिं।
ता तीए उत्तरोत्तरवुड्ढिकए कीरउ पयत्तो॥ ४॥
20 सुत्तत्थोभयरूवे नाणे नाणोत्तकिच्चवग्गे य।
सत्तिं अइक्कमित्ता वि उज्जमो किर तुमे किच्चो॥ ५॥
सुचिरं पि तवो तवियं चिन्नं चरणं सुयं च बहुपढियं।
संवेगरसेण विणा विहलं जं ता तदुवएसो॥ ६॥
तहा–सन्नाणाइगुणेसुं पयत्तणेणं इमाण समणीणं।
25 सच्चं पवित्तिणि चिय जह होसि तहा जइज्ज तुमं॥ ७॥
नियगुणेहिं महग्घं सियवीयाससिकलं जह कलाओ।
कमसो समल्लियंती पयई हिमहारधवलाओ॥ ८॥
तह तुह वि तहाविहनियगुणेहिं अग्घारिहाए लोगम्मि।
एयाउ समल्लीणा पयइसु धवलोज्जलगुणाओ॥ ९॥
30 तम्हा निव्वाणपसाहगाण जोगाण साहणविहीए।
सम्मं सहायिणीए होयव्वं सइ इमाण तए॥ १०॥
तह वज्जसिंखला इव मंजूसा इव सुनिविडवाडी च।
पायारु व्व हविज्जसु तुममज्जाणं पयत्तेणं॥ ११॥

---

1 A मयहरापय°।

तदणुण्णाओ अन्नो वा तहाविहो अणुण्णत्थं नंदिं कड्ढइ। सीसो उवउत्तो भावियप्पा तयत्थपरिभावणापरो सुणेइ। तयंते गुरू उवविसिय, गंधे अभिमंतिय, जिणपाए पूइय साहुमाईणं देइ। तओ वंदित्ता सीसो भणइ—'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं दिगाइ अणुजाणह'। गुरू आह—'खमासमणाणं हत्थेणं इमस्स साहुस्स दिगाइ अणुन्नायं ३'। पुणो वंदित्ता भणइ—'संदिसह किं भणामो?' गुरू आह—'वंदित्ता पवेयह'। तओ वंदित्ता भणइ—'इच्छाकारेण तुब्भेहिं अम्हं दिगाइ अणुन्नायं। इच्छामो अणुसट्ठिं'। गुरू आह—'गुरु-गुणेहिं वड्ढाहि'। पुणो वंदित्ता भणइ—'तुम्हाणं पवेइयं, संदिसह साहूणं पवेएमि'। गुरू आह—'पवेएहि'। तओ खमासमणपुव्वं नमोकारमुच्चरंतो गुरुं पयक्खिणीकरेइ। गुरू सीसे वासे खिवंतो—'गुरुगुणेहिं वड्ढाहि'त्ति भणइ। एवं तिन्नि वेला। तओ—'तुम्हाणं पवेइयं, साहूणं पवेइयं, संदिसह काउस्सग्गं करेमि'—त्ति भणिय दिगाइअणुण्णत्थं करेमि काउस्सग्गं, अन्नत्थूससिएणमिचाइ काउस्सग्गं करिय सूरिसमीवे उवविसइ। सीसाइया तस्स वंदणं दिंति। तओ मूलगुरू गणहरगच्छाणुसट्ठिं देइ। जहा—

धन्नोऽसि तुमं नायं जिणवयणं जेण सयलदुक्खहरं।
तो सम्ममिमं भवया पउंजियव्वं सयाकालं॥ १॥
इहरा उ रिणं परमं असम्मजोगो अजोगओ अवरो।
तो तह इह जइयव्वं जह इत्तो केवलं होइ॥ २॥
परमो य एस हेऊ केवलनाणस्स अन्नपाणीणं।
मोहावणयणओ तह संवेगाइसयभावेण॥ ३॥
उत्तममिमं०......गाहा॥ ४॥ धण्णाण०......गाहा॥ ५॥
संपाविऊण परमे नाणाई दुहियताणसमत्थे।
भवभयभीयाण दढं ताणं जो कुणइ सो धन्नो॥ ६॥
अन्नाणवाहिगहिया जइवि न सम्मं इहाउरा होंति।
तहवि पुण भावविज्जा तेसिं अवणिंति तं चाहिं॥ ७॥
ता तंसि भावविज्जो भवदुक्खनिवीडिया तुहं एए।
हंदि सरणं पवन्ना मोएयव्वा पयत्तेणं॥ ८॥
तं पुण एरिसओ चिय तहवि हु भणिओसि समयनीईए।
निययावत्थासरिसं भवया निच्चं पि कायव्वं॥ ९॥
तुब्भेहिं पि न एसो संसाराडविमहाकुडिल्लम्मि।
सिद्धिपुरसत्थवाहो जत्तेण खणं पि मोत्तव्वो॥ १०॥
नय पडिकूलेयव्वं वयणं एयस्स णाणरासिस्स।
एव गिहवासचाओ जं सफलं होइ तुम्हाणं॥ ११॥
इहरा परमगुरूणं आणाभंगो निसेविओ होइ।
विहला य होंति तम्मी नियमा इहलोग-परलोगा॥ १२॥
ता कुलवहुनाएणं कज्जे निब्भच्छिएहिं वि कहिंवि।
एयस्स पायमूलं आमरणन्तं न मोत्तव्वं॥ १३॥
नाणस्स होइ भागी थिरयरओ दंसणे चरित्ते य।
धन्ना आवकहाए गुरुकुलवासं न मुंचंति॥ १४॥

तह निहुयं चंकमणं निहुयं हसणं पयंपियं निहुयं।
सव्वं पि चिट्ठियं निहुयमहव तुब्भेहिं कायव्वं ॥ २८ ॥
वाहिं उवस्सयाओ पयं पि नेगागिणीहिं दायव्वं।
वुड्ढज्जियाजुयाहि य जिण-जइगेहेसु गंतव्वं ॥ २९ ॥

तओ अणुण्णायमहत्तरापया वंदणं दाऊण पच्चक्खाणं निरुद्धाइ करेइ। सव्वलोगो वंदइ, थीजणो वंदणयं च देइ तीए। जिणहरे गुरूणं समोसरणे य पूया कायव्वा। पवत्तिणीपए महत्तरापए य अणुण्णाए वत्थपत्ताइगहणं सयं पि तीसे काउं कप्पइ।

॥ महत्तरापयट्ठावणाविही ॥ ३० ॥

*

§ ७४. एवं मूलगुरू सम्मत्तारोवणदिक्खाइकज्जाइं वक्खमाणाइं च पइट्ठाईणि काऊण कयाइ आउपज्जन्तं जाणिय, तस्सेव कयअणुजोगाणुण्णस्स अन्नस्स वा अहियगुणस्स गणाणुण्णं करेइ। जदाह—

सुत्तत्थे निम्माओ पियदढधम्मोऽणुवत्तणाकुसलो।
जाईकुलसंपन्नो गंभीरो लद्धिमंतो य ॥ १ ॥
संगहुवग्गहनिरओ कयकरणो पवयणाणुरागी य।
एवं विहो उ भणिओ गणसामी[1] जिणवरिंदेहिं ॥ २ ॥

तहा—गीयत्था कयकरणा कुलजा परिणामिया य गंभीरा।
चिरदिक्खिया य वुड्ढा अज्जा य [2]पवत्तिणी भणिया ॥ ३ ॥
एयगुणविप्पमुक्के जो देइ गणं [2]पवत्तिणिपयं वा।
जो वि[3] पडिच्छइ नवरं सो पावइ आणमाईणि ॥ ४ ॥

जओ—वूढो गणहरसद्दो गोयममाईहिं धीरपुरिसेहिं।
जो तं ठवइ अपत्ते जाणंतो सो महापावो ॥ ५ ॥
एव पवत्तिणिसद्दो वूढो जो अज्जचंदणाईहिं।
जो तं ठवइ अपत्ते जाणंतो सो महापावो ॥ ६ ॥
लोगम्मि उड्डाहो जत्थ गुरू एरिसा तहिं सीसा।
लट्ठयरा अन्नेसिं अणायरो होइ अगुणेसु ॥ ७ ॥
तम्हा तित्थयराणं आराहंतो जहोइयगुणेसु।
दिज्ज गणं गीयत्थो नाऊण पवित्तिणिपयं च ॥ ८ ॥

*

§ ७५. गणाणुण्णाविही य इमो—सुहतिहि-करणाइएसु गुरू खमासमणपुव्वं—'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं दिगाइअणुजाणावणत्थं वासनिक्खेवं करेह'— त्ति सीसं भाणिय, काऊण य वासक्खेवं, पुणो खमासमण-पुव्वं—'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं दिगाइअणुजाणावणियं नंदिकड्ढावणियं देवे वंदावेह'— त्ति भाणिय वाम-पासे तं करिय, वड्ढंतियाहिं थुईहिं देवे वंदइ। तओ सीसो वंदित्ता भणइ—'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं दिगाइअणुजाणावणियं नंदिकड्ढावणियं काउस्सग्गं कारेह'। तओ दोवि दिगाइअणुजाणणत्थं काउस्सग्गं करिंति। तत्थ चउवीसत्थयं चिंतित्ता, नमोक्कारेण पारित्ता, चउवीसत्थयं भणित्ता, नमोक्कारतिगपुव्वं गुरू

---

1 A गणिसामी। 2 A पवित्तिणी। 3 A जोय।

तओ—अरिहं देवो गुरुणो सुसाहुणो जिणमयं मह पमाणं।
जिणपन्नत्तं तत्तं इय सम्मत्तं मए गहियं ॥ १० ॥

इइ सम्मत्तपुरस्सरं नमोक्कारतिगपुव्वं 'करेमि भंते सामाइयं' ति वेलातिगमुच्चाराविज्जइ। 'पढमे भंते महव्वए' इच्चाइवयाणि य एगेगं तिन्नि तिन्नि वेलाओ भणाविज्जइ। जाव इच्चेइयाई गाहा। 'चत्तारि मंगलं....जाव....केवलिपन्नत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि'—इति चउसरणगमनं दुक्कडगरिहा सुकडाणुमोयणा य कारिज्जइ। नमो समणस्स भगवओ महइ महावीरवद्धमाणसामिस्स उत्तमट्ठे ठायमाणो पच्चक्खाइ सव्वं पाणाइवायं १, सव्वं मुसावायं २, सव्वं अदिन्नादाणं ३, सव्वं मेहुणं ४, सव्वं परिग्गहं ५, सव्वं कोहं ६, माणं ७, मायं ८, लोभं ९, पिज्जं १०, दोसं ११, कलहं १२, अब्भक्खाणं १३, अरइरई १४, पेसुन्नं १५, परपरिवायं १६, मायामोसं १७, मिच्छादंसणसल्लं १८—इच्चेइयाइं अट्ठारसपावट्ठाणाइं जावजीवाए तिविहं तिविहेणं वोसिरइ। तहा तद्दिवसं सउणसयणाइसंमएणं वंदणं दाऊण नमुक्कारपुव्वं गिलाणो अणसणं समुच्चरइ, भवचरिमं पच्चक्खाइ, तिविहं पि आहारं असणं खाइमं साइमं अन्नत्थणाभोगेणं ४ वोसिरामि। अणागारे पुण आइमआगारदुगस्स उच्चारणं, तं जहा—भवचरिमं निरागारं पच्चक्खामि, सव्वं असणं सव्वं खाइमं सव्वं साइमं अन्नत्थणाभोगेणं सहस्सागारेणं अईयं निंदामि पडुप्पन्नं संवरेमि अणागयं पच्चक्खामि, अरिहंतसक्खियं सिद्धसक्खियं साहुसक्खियं [सम्यग्दृष्टि] देवसक्खियं अप्पसक्खियं वोसिरामि त्ति।

जइ मे होज्ज पमाओ इमस्स देहस्सिमाइ वेलाए।
आहारउवहिदेहं तिविहं तिविहेण वोसिरियं ॥

तओ संघो संतिनिमित्तं नित्थारगपारगा होहि त्ति भणंतो अक्खए तस्संमुहं खिवइ। 'अट्ठावयंमि उसभो' इच्चाइतित्थथुई वत्तव्वा। 'चवणं च जम्मभूमी' इच्चाइ 'पंचानुत्तरसरणा' इच्चाइ वा थुत्तं भाणियव्वं। देसणा तदुववूहणा य विहेया। तहा तस्स समीवे निरंतरं 'जम्मजरामरणजले' इच्चाइ उत्तरज्झयणाणि वा मरणसमाहि-आउरपच्चक्खाण-महापच्चक्खाण-संथारय-चंदाविज्झय-भत्तपरिण्णा-चउसरणाइपइण्णगाणि वा इसिभासियाणि सुहज्झवसाणत्थं परावत्तिज्जंति।

इत्थ संगहगाहाओ—

संघजिणपूयवंदणउस्सग्गवयसोहितयणुखमगंधा।
नवकार-सम्मसमइयवयसरणाणसणतित्थथुई ॥ १ ॥
इय पडिपुन्नसुविहिणा अंते जो कुणइ अणसणं धीरो।
सो कल्लाणकलावं लद्धुं सिद्धिं पि पाउणइ ॥ २ ॥

सावगस्सवि एवमेव। विसेसो उण सम्मत्तगाहाठाणे—अहण्णं भंते तुम्हाणं समीवे मिच्छत्ताओ पडिक्कमामि—इच्चाइ सम्मत्तदंडओ पंचाणुव्वयाणि य भाणिज्जंति। सत्तखित्तेसु संघ-चेइय-जिणबिंब-पोत्थय-लक्खणेसु दव्वविणिओगं च कारिज्जइ। तओ सामग्गीसब्भावे संथारयदिक्खं पडिवज्जइ त्ति।

॥ अणसणविही समत्तो ॥ ३२ ॥

*

§ ७७. एवं विहिविहियपज्जंताराहणस्स लोगंतरियस्स इड्ढीए देहनीहरणं कीरइ। अओ अचित्तसंजयपारिट्ठावणियाविही भण्णइ। तत्थ गामे वा नगरे वा अवर-दक्खिणदिसाए दूरमज्झासन्ने थंडिलतिगं पेहिज्जइ। सेयसुगंधिचोक्खवत्थतिगं च धारिज्जइ। तत्थेगं पत्थरिज्जइ, एगं पंगुराविज्जइ, एगं उवरिं आच्छायणे

पुव्वं वत्थ-पत्त-सीसाइया लद्धी गुरुआयत्ता आसि, संपयं तुज्झ वि सव्वं अणुण्णायमिति गुरू भणइ। तओ अहिणवसूरी उट्ठित्तु सपरिवारो मूलायरियं तिपयाहिणी काऊण वंदेइ । पवेयणे य जहा सामायारी-आगयं तवं कारिज्जइ । तओ सो वि अन्ने सीसे निप्फाएइ त्ति । जस्स गणाणुण्णा तस्संतिओ चेव दिसिबंधो कीरइ । सो चेव गच्छनायगो भणइ । तस्सेव भट्टारगस्स गच्छे आणा पवत्तइ त्ति ।

॥ गणाणुण्णाविही समत्तो ॥ ३१ ॥

*

§ ७६. एवं मूलगुरू कयकिच्चो हरिसभरनिब्भरो पज्जंताराहणं करेइ, अन्नस्स वा कारेइ । अओ तव्विही भण्णइ—पढमं च विहियपूयाविसेसस्स जिणबिंबस्स दरिसणं गिलाणो कारविज्जइ । चउव्विहसंघं मीलिय गिलाणेण समं संघसहिओ गुरू अहिगयजिणथुईए देवे वंदेइ । तओ सिरिसंतिनाह-संतिदेवया-खेत्तदेवया-भवणदेवया-समत्तवेयावच्चगराणं काउस्सग्गा थुईओ य । तओ सक्कत्थय-संतित्थयभणणाणंतरं आराहणादेवयाए काउस्सग्गो, उज्जोयचउक्कचिंतणं, पारिय उज्जोयभणणं तीसे वा थुइदाणं । सा य इमा—

यस्याः सान्निध्यतो भव्या वाञ्छितार्थप्रसाधकाः ।
श्रीमदाराधनादेवी विघ्नव्रातापहाऽस्तु वः ॥ १ ॥

तओ सूरि निसिज्जाए उवविसिय गंधे अभिमंतिय 'उत्तमट्ठआराहणत्थं वासनिक्खेवं करेह' त्ति भणिय, आराहयसिरसि वासचंदणक्खए खिवइ । तओ बालकालाओ आरब्भ आलोयणदावणं ।

जे मे जाणंति जिणा अवराहे जेसु जेसु ठाणेसु ।
तेऽहं आलोएमी उवट्ठिओ सव्वभावेण ॥ १ ॥
छउमत्थो मूढमणो कित्तियमित्तं च संभरइ जीवो ।
जं च न सुमरामि अहं मिच्छा मे दुक्कडं तस्स ॥ २ ॥
जं जं मणेण बद्धं असुहं वायाइ भासियं जं जं ।
जं जं काएण कयं मिच्छा मे दुक्कडं तस्स ॥ ३ ॥
हा दुट्ठु कयं हा दुट्ठु कारियं अणुमयं पि हा दुट्ठु ।
अंतोअंतो डज्झइ हिययं पच्छाणुतावेणं ॥ ४ ॥
जं पि सरीरं इट्ठं कुडुंब-उवगरण-रूव-विन्नाणं ।
जीवोवघायजणयं संजायं तं पि निंदामि ॥ ५ ॥
गहिऊण य मोक्काइं जंमण-मरणेसु जाइं देहाइं ।
पावेसु पसत्ताइं वोसिरियाइं मए ताइं ॥ ६ ॥

इइ गाहाओ भाणिज्जइ । तओ संघखामणा—

साहू य साहुणीओ सावय-सावीओ चउविहो संघो ।
जे मण-वइ-काएहिं आसाईओ तं पि खामेमि ॥ ७ ॥
आयरिए उवज्झाए सीसे साहम्मिए कुलगणे य ।
जे मे कया कसाया सव्वे तिविहेण खामेमि ॥ ८ ॥
खामेमि सव्वजीवे सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूएसु वेरं मज्झं न केणइ ॥ ९ ॥

सट्टाणाओ चेव नियत्तियव्वं । जेणेव पहेण गया तेणेव य न नियत्तियव्वं । तहा चिरंतणकाले अवरोप्परम-संबद्धा हत्थचउरंगुलप्पमाणा समच्छेया दब्भकुसा गीयत्थो विकिरइ त्ति आसि । गहियसंकेयट्ठाणे कप्पमुचारित्ता कप्पवाणियभायणं दोरयं च तत्थेव परिट्ठाविय, पच्छा नवकारतिगं भणिऊण दंडयं ठविय इरियं पडिक्कंता सक्कत्थवं भणंति, उवसग्गहरं ति थुत्तं । तओ महापारिट्ठावणिया परिट्ठावणियं काउस्सग्गं करेंति । उज्जोयचउक्कं नवकारं वा चिंतित्ता पारित्ता उज्जोयगरं नवकारं वा भणंति । तिविहं तिविहेणं वोसिरिओ ३ इति भणंति । तओ खुद्दोवद्दवओहडावणियं काउस्सग्गं करिंति । उज्जोयचउक्कं चिंतिय पारिय चउवीसत्थयं भणंति । पच्छा बीयं कप्पं गामस्स समीवे आगंतुमुत्तारिंति, कप्पवाणियं मत्तगं च परिट्ठवेंति । तओ पराहुत्तं पंगुरित्ता अहारायणियक्कमं परिहरित्ता सम्मुहचेईहरे गंतुं उम्मत्थयगसंकेल्लियरयहरण-मुहपोत्तीहिं गमणागमण-मालोइय इरियं पडिक्कमिय उप्पराहुत्तं चेइयवंदणं काउं संतिनिमित्तं अजियसंतित्थयं भणंति । तओ उम्मत्थगवेसपरिहारेण पंगुरिय, जहाविहि चेइयाइं वंदिय, वसहीए आगम्म, खंधिया तईयं कप्पं उत्तारिंति । तओ आयरियसगासे अविहिपारिट्ठावणियाए ओहडावणियं काउस्सग्गं करेंति, उज्जोयचउक्कं नवकारं वा चिंतिय पारित्ता उज्जोयं नवकारं वा भणंति । जं तालयमज्झे निक्खित्तं भंडोवगरणं तं अणाउत्तं न भवइ, सेसं सव्वं तिप्पिज्जइ । आयरिय-भत्तपच्चक्खाय-खवगाइए बहुजणसंमए मए असज्झाओ खमणं च कीरइ, न सव्वत्थ । एस सिवविही । असिवे खमणं असज्झाओ अविहिविगिंचणकाउस्सग्गो य न कीरइ । तओ गिहत्थेहिं आयरणावसाओ अग्गिसक्कारे कए जं तस्स भोयणं रोयंतगं तं तस्सेव पत्तियाए छोढुं तहिं दिणे तत्थेव धारिज्जइ । काग-चडय-कवोडाइयं खणं तत्थेव चिंतिज्जइ । सेयजीवे देवगई, कसिणजीवे कुगई, अन्नेसु मज्झिमगई तुमं अम्हकेरपरिग्गहाओ उत्तिण्णो, वड्ढाणं परिग्गहे संवुत्तो -- इति भाणिऊण अणुजाणाविज्जइ त्ति ।

॥ महापारिट्ठावणियाविही समत्तो ॥ २३ ॥

*

§ ७८. अणसणं च पायच्छित्तदाणपुव्वयं दिज्जइ त्ति संपयं पच्छित्तदाणविही भण्णइ । तं च दसविहं — आलोयणारिहं १, पडिक्कमणारिहं २, तदुभयारिहं ३, विवेगारिहं ४, उस्सग्गारिहं ५, तवारिहं ६, छेदारिहं ७, मूलारिहं ८, अणवट्टप्पारिहं ९, पारंचियारिहं १०।

तत्थ आहाराइग्गहणे तहा उच्चार-सज्झायभूमि-चेइय-जइवंदणत्थं पीढ-फलगपच्चप्पणत्थं कुलगण-संघाइकज्जत्थं वा हत्थसया बाहिं निग्गमे आलोयणा गुरुपुरओ वियडणं तेणेव सुद्धो ॥ १ ॥

पडिक्कमणं मिच्छाउक्कडदाणं । तं च गुत्तिसमिइपमाए, गुरुआसायणाए, विणयभंगे, इच्छाकाराइ सामाचारीअकरणे, लहुसमुसावाय-अदिन्नादाण-मुच्छासु, अविहीए खास-खुय-जिंभियवाएसु, कंदप्प-हास-विकहा-कसाय-विसयाणुसंगेसु, सहसा अणाभोगेण वा दंसणनाणाइकप्पियसेवाए[1] चउवीसविहाए अविराहिय-जीवस्स, तहा आभोएण वि अप्पेसु नेह-भय-सोग-बाओसाईसु य कीरइ । तत्थ लहुसमुसावाया पयला उल्ले मरुए इच्चाइ पनरसपया[2], लहुसअदिन्नं अणणुन्नविय तण-डगल-छार-लेवाइगहणं, लहुसमुच्छा सिज्जायर-कप्पट्ठगाईसु वसहि-संथारयठाणाइसु वा ममत्तं ॥ २ ॥

---

1 "दंसणनाणचरित्ते, तवपवयणसमिइगुत्तिहेउं वा । साहम्मियाण वच्छल्लत्तणेण कुलगणस्सावि ॥ १ ॥
संघस्सायरियस्स य, असहुस्स गिलाणबालवुड्ढस्स । उदयग्गिचोरसावयभयकंतारावई वसणे ॥ २ ॥"

2 "पयलाउ हेमरुए, पच्चक्खाणे य गमणपरियाए । समुद्देससंखडीओ, खुड्डगपरिहारी मुहीओ ॥ १ ॥
अवसगमणे दिसासुं, एगकुले चेव एगदव्वे य । एए सव्वे वि पया, लहुसमुसा भासणे हुंति ॥ २ ॥" इति B आदर्शे टिप्पणी ।

किज्जइ। दिया वा राओ वा परोक्खीभूयस्स मुहं मुहपोत्तियाए बज्झइ पाणिपायंगुट्ठंगुलिमज्झेसु ईसि फालिज्जइ। पायंगुट्ठा परोप्परं बज्झंति हत्थंगुट्ठा य। मयगदेहं ण्हवित्ता अखंगचोलपट्टं संथारकिडीए कीरइ, दोरेहिं बज्झइ। मुहपोत्ति-चिलिमिलियाओ चिंधट्ठं पासे ठविज्जंति। जया राईए परलोगो हवइ तया अच्छीनिमीलणं किज्जइ, अंगोवंगा समा धरिजंति, मुहं झड त्ति ढक्किज्जइ होट्ठमीलणेणं। नवकारो सुणाविज्जइ।
५ हत्थपायंगुट्ठंतरेसु छेदो किज्जइ। पंचंगमवि निब्भयपासाओ कारिविज्जइ। उववउत्तेहिं पहरओ दायव्वो। तत्थ जे सेहा बाला अपरिणया य ते ओसारेयव्वा। जे पुण गीयत्था अभिरू जियनिद्दा उवायकुसला आसुकारिणो महाबल-परक्कमा महासत्ता दुद्धरिसा कयकरणा अपमाइणो य ते जागरंति। काइयमत्तयमपरिट्ठविय पासे ठविंति। जइ उट्ठेइ अट्टहासं वा मुंचइ तो मत्ताओ काइयं वामहत्थेण गहाय 'मा उट्ठे, बुज्झ बुज्झ गुज्झगा, मा मुज्झ' इइ भणंतेहिं सिंचेयव्वं। तहा कलेवरं निज्जमाणं जइ वसहीए उट्ठेइ वसही मोत्तव्वा।
१० निवेसणे पलहीए निवेसणं, साहीए घरपंतीए साही, गाममज्झे गामद्धं, गामदारे गामो, गामस्स उज्जाणस्स य अंतरा मंडलं विसयखंडं, उज्जाणे कंडं, महल्लयरं विसयखंडं, उज्जाणनिसीहियंतरे देसो, निसीहियाए थंडिले रज्जं मोत्तव्वं। तत्थ एगपासे मुहुत्तं संचिक्खंति। तो जइ निसीहियाए उट्ठेइ तत्थेव पडइ य, तो वसही मोत्तव्वा। निसीहियाए उज्जाणस्स य अन्तरा निवेसणं, उज्जाणे साही, उज्जाणस्स गामस्स य अन्तरे गामद्धं, गामद्दारे गामो, गाममज्झे मंडलं, साहीए कंडं, निवेसणे देसो, वसहीए पविसिय जइ पडइ रज्जं मोत्तव्वं।
१५ पुणो निज्जूढो जइ बीयवेलं एइ, तो दो रज्जाणि, तइयाए तिन्नि, तेण परं बहुसो वि इंतो तिन्नि चेव। तहा पणयालीसमुहुत्तिएसु नक्खत्तेसु मयस्स पदिकिदी दो दब्भमया, दसियामया वा पोत्तला कायव्वा। एए ते बिइज्जया इति। जइ न कीरंति तो अन्ने दो कड्ढेइ। संथारगे करिसगावारो कीरइ। तत्थ उत्तरातिगं पुणव्वसु-रोहिणी-विसाह त्ति छ नक्खत्ता पणयालीसमुहुत्ता। पुत्तलगाणं च समीवे रओहरणं मुहपोत्ती य ठविज्जइ। तहा तीसमुहुत्तिएसु इक्को कायव्वो। एस ते बिइज्ज त्ति। तदकरणे एगं कड्ढइ। ताणि य—

२० अस्सिणि-कित्तिय-मिगसिर-पुस्सा मह-फग्गु-हत्थ-चित्ता य।
अणुराह-मूलसाढा सवण-धणिट्ठा य भद्दवया॥
तह रेवइ त्ति एए पन्नरस हवंति तीसइमुहुत्ता[1]।
तहा पन्नरसमुहुत्तिएसु अभिइंमि य न कायव्वो॥
सयभिसया भरणीओ अद्दा-अस्सेस-साइ-जिट्ठा य।
२५ एए छनक्खत्ता पन्नरसमुहुत्तसंजोगा॥

संघियगचउक्कस्स छगणमूइ-कुमारीसुत्ततंतूण य उत्तरासंगेण तिवयणेण रक्खाकरणं। तं च अपयाहिणावत्तेणं वामभुयाहिट्ठेणं दक्खिणखंधस्सोवरिं च कायव्वं। दंडधरो वाणायरिओ सरावसंपुडे केसराइ गेण्हइ, छगणचुण्णं वा। दोण्हं साहूणं कप्पतिप्पत्थमसंसट्ठं पाणगं गहाय अमुगपएसे आगंतव्वं ति संकेयदाणं। जो उण वसहीए ठाइ तस्स मयगसंतियउच्चारपासवणखेलमत्तविगिंचण-वसहिपमज्जण-तहाविह-
३० पएसोल्लिंपण-निरोवदाणं, पच्छा सव्वं सो करेइ। पडिस्सयाओ नीणंतेहिं पुव्वं पाया पच्छा सीसं नीणेयव्वं। थंडिले वि जत्तो गामो तत्तो सीसं कायव्वं। तहा उस्सग्गओ दिगंतरपरिहारेण अवर-दक्खिणदिसाए ठियं परिट्ठवणथंडिलं पमज्जिय तत्थ केसरेहिं अवोच्छिन्नधाराए विवरिओ क्को (?卐)कायव्वो वाणायरिएण। पयस्स अईय अमुगआयरिओ अमुगउवज्झाओ। संजईए उण अमुगा अईया पवत्तिणी त्ति दिसिबंधं करिय, तिविहं तिविहेणं वोसिरियमेयं ति भणइ। परिट्ठवियस्स वि नियत्तंतेहिं पयाहिणा न कायव्वा।

1 A त्ति।

लगणे चउलहू। मयंतरे जहण्णाए नाणासायणाए मासलहुं, मज्झिमाए मासगुरुं, उक्कोसाए चउलहुं चउगुरुं वा। विसेसओ उण सुत्तासायणाए चउलहु, अत्थासायणाए चउगुरु, विणयवंजणभंगेसु पणगं। **गयं नाणाइयारपच्छित्तं।**

§ ८०. संकादिसु अट्ठसु दंसणाइयारेसु देसओ चउगुरु, पुरिसाविवक्खाए पुण भिक्खुवसहोवज्झायायरियाणं मासलहु-मासगुरु-चउलहु-चउगुरुगा, सव्वओ मूलं। गयं **दंसणाइयारपच्छित्तं।**

§ ८१. इओ परं आवत्तिं मुत्तूण सुहबोहत्थं दाणमेव लिहिज्जइ — पुढविआउतेउवाऊपत्तेयवणस्सईणं संघट्टणे नि०, अगाढपरितावणे पु०, गाढपरितावणे ए०, उद्दवणे आं०, विगलिंदियाणंतकाइयाणं संघट्टणादिसु जहासंखं पु०ए०आं०उ०। पंचिंदियाणं पुण ए०आं०उ०। कल्लाणगाणि—इत्थ संघट्टणं तदहजायथिरोलगाईणं,[1] दप्पओ पंचिंदियउद्दवणे पंचकल्लाणं। दप्पो धावणवग्गणाई। आउट्टियाए मूलं। बीयसंघट्टे ससिणिद्धे य नि०। उदयउल्लसंघट्टे ए०। सच्चित्ते मुहपोत्तियाए गहिए पु०। अद्दामलगमित्तसचित्तपुढवीए, अंजलिमित्तोदगे सच्चित्ते मीसे य उद्दविए आं०। मयंतरे नि०। नाभिप्पमाणउदगप्पवेसे वत्थिमाइणा कोसं जाव नदीगमणे य आं०। दुक्कोसं जाव नावा-उडुवाइणा नदीगमणे आं०। कोसं जाव हरियाणं भूदगअगणिवाऊणं विगलिंदियाणं पंचिंदियाणं मद्दणे कमेण उ०, आं०, उ०, पंचकल्लाणाणि। कोसं ओसाए मीसोदगे य गमणे पु०, कोसदुगे ए०, जोयणे आं०। सजीवदगपाणे छट्ठं, जलग्गामोयणे गाढनइउत्तारणे य आं०। पईवफुसणयसंखाए आं०। कंबलिपावरणं विणा पईवफुसणे उ०, सकंबले आं०, उ०, विज्जुफुसणे नि०, अकंबले पु०। छप्पईहरनासणे पंचकल्लाणं। संनाकिमिपाडणे उ०। उदउल्लवत्थसंघट्टे पु०। जलणे संघट्टिए ओसक्किए य आं०। किसलयमलणे उ०। संखाईयाणं बेइंदियाणं उद्दवणे दोन्नि पंचकल्लाणाइं, उप० २०। संखाईयाणं तेइंदियाणं उद्दवणे तिन्नि पंचकल्लाणाइं, उ० ३०। संखाईयाणं चउरिंदियाणं उद्दवणे चत्तारि पंचकल्लाणाइं, ४०। जहन्न-मज्झिम-उक्कोसेसु मुसावाय-अदिन्नादाण-परिग्गहेसु जहासंखं ए०, आं०, उ०। मेहुणस्स चिंताए आं०। मेहुणपरिणामे उ०। रागे छट्ठं। नपुंसगस्स पुरिसस्स वा वयणसेवाए मूलं। अन्नोन्नं करणे पारंचियं। गब्भाहाण-गब्भसाडणेसु मूलं। सकाममेहुणसेवणे मूलं। करकम्मे अट्ठमं। बहुठाणे तम्मि पंचकल्लाणं। लेवाडदव्वोवलित्तपत्ताइपरिवासे उ०। सुंठिमाइसुक्कसंनिहिभोगे उ०। घयगुलाइअल्लसंनिहिभोगे छट्ठं। दिवागहिय-दिवाभुत्ताइ-सेसनिसिभत्ते अट्ठमं। सुक्क-अल्लसंनिहिधारणे जहासंखं पु०, ए०। गयं **मूलगुणपायच्छित्तं।**

§ ८२. आहाकम्मिए कम्मुद्देसियचरिममेयतिगे मिस्सजायअंतिममेयदुगे बायरपाहुडियाए सपच्चवायपरगामाभिहडे लोभपिंडे अणंतकाय-अणंतरनिक्खित्त-पिहिय-साहरिय-उम्मीसापरिणयछड्डिएसु गलंतकुट्ठ-पाउयारूढदायगेसु गुरुअचित्तपिहिए संजोयणा-इंगालेसु वड्ढमाणाणागयनिमित्ते य उ०। कम्मोद्देसियआइमभेए मीसजायपढमभेदे धाईपिंडे दूईपिंडे अईयनिमित्ते आजीवणापिंडे वणीमगपिंडे बादरतिगिच्छाए कोहमाणपिंडेसु संबंधिसंथवकरणे विज्जामन्तचुण्णजोगपिंडेसु पयासकरणे दुविहे दव्वकीए आयभावकीए लोइय-पामिच्चपरियट्टिए निपच्चवायपरग्गामाभिहडे पिहिओब्भिन्ने कवाडोब्भिन्ने उक्किट्ठमालोहडे अच्छिज्जाणिसिट्ठेसु पुरोकम्म-पच्छाकम्मेसु गरहियमक्खिए संसत्तमक्खिए पत्तेयअणंतरनिक्खित्तपिहियसाहरियउम्मीसापरिणयछड्डिएसु बालवुड्ढाइदायगदुट्ठे पमाणोल्लंघणे सधूमे अकारणभोयणे य आं०। अज्झवपूरगअंतिममेयदुगे कडमेयचउक्के भत्तपाणपूईए मायापिंडे अणंतकायपरंपरनिक्खित्तपिहियाइसु मीस-अणंतअणंतरनिक्खित्ताइसु य ए०। ओहोद्देसिए उद्दिट्ठमेयचउक्के उवगरणपूईए चिरट्ठविए पायडकरणे लोगोत्तर-

---

1 B C °थिरोलिगाईणं।

सहसाणाभोगेण वा संभमभयाईहिं वा सव्वयाइयारेसु उत्तरगुणाइयारेसु वा दुच्चिंतियाइसु वा कप्पेसु मीसं पच्छित्तं ॥ ३ ॥

पिंडोवसहिसेज्जाई गीएण उवउत्तेण गहियं पच्छा असुद्धं ति नायं, अहवा कालद्धाईयं अणुग्गयत्थमियगहियं कारणगहिओव्वरियं वा भत्ताइ विगिंचिंतो सुद्धो ॥ ४ ॥

काउस्सग्गो नावा-नइसंतार-सावज्जसुमिणाईसु ॥ ५ ॥ तवपच्छित्तं तु बहुवत्तव्वयं ति पच्छा भणिही ॥ ६ ॥ तवगव्विय-तवअसमत्थ-तवदुद्दमाइसु पंचरायाइ पज्जायच्छेदणं छेदो ॥ ७ ॥

आउट्टियाए पंचिंदियवहो दप्पेण मेहुणे अदिण्णमुसापरिग्गहाणं उक्कोसा भिक्खसेवणे ओसन्नयाविहारे इच्चाइसु मूलं; भिक्खुस्स नवमदसमावत्तीए वि मूलं चेव दिज्जइ ॥ ८ ॥

सपक्खे परपक्खे वा निरवेक्खपहारे अत्थायाण-हत्थालंबदाणाईसु य अणवट्टप्पो कीरइ। तत्थ अत्थायाणं दव्वोवज्जणकारणं अट्ठंगनिमित्तं, तस्स पउंजणं। हत्थालंबदाणं पुण पुररोहाइअसिवे तप्पसमणत्थमभिचारमंतादिप्पओगो। एयं पुण पच्छित्तं उवज्झायस्सेव दिज्जइ ॥ ९ ॥

तित्थयराईणं बहुसो आसायगो रायवहगो रायग्गमहिसिपडिसेवओ सपक्ख-परपक्खकसायविसयप्पदुट्ठे अन्नोन्नंकारी थीणद्धीनिद्दावंतो य पारंचियमावज्जइ। एयं च पच्छित्तं आयरियस्सेव दिज्जइ। तवअणवट्टप्पो तवपारंचिओ य पढमसंघयणो चउदसपुव्वधरम्मि वोच्छिन्ना। सेसा पुण लिंग-खेत्त-काल-अणवट्टप्पपारंचिया जाव तित्थं वट्टिहिंति ॥ १० ॥

§७९. संपयं तवारिहं पायच्छित्तं भण्णइ। तत्थ तवा लहुपणगाओ आरब्भ गुरुछम्मासं जाव बावीस भवंति। संपयं पुण सत्त वट्टंति। ते य इमे—पणगं १ मासलहुं २, मासगुरुं ३, चउलहुं ४, चउगुरुं ५ छलहुं ६, छग्गुरुं ७। एएसिं च आवत्तीए संपइकाले जीएण निव्विगइय-पुरिमड्ढ-एकासण-आयंबिल-चउत्थ-छट्ठट्ठमाइं जहासंखं दिज्जंति। लिवी पुण इमा—।५। ।०।०।ः॰।ः॰।ःः॰।ःःः। पणगाई पंचमिलिय कल्लाणं। तत्थ चउत्थदुगं लब्भइ। ते चेव पंचगुणा पंचकल्लाणं तत्थ दसोववासा लब्भन्ति। इयाणिं नाणाइपंचायारविसयं कमेण पच्छित्तं भण्णइ—नाणायाराइयारेसु अकालपाढाइसु अट्ठसु उद्देसए पणगं अज्झयणे मासलहुं, सुयक्खंधे मासगुरुं, अंगे चउलहुं। एवं ताव अणागाढे दसवेयालिय-आयारंगाईए आगाढे पुण उत्तरज्झयण-भगवइमाईए उद्देसगाइसु जहसंखं लहुमास-मासगुरू, चउलहु-चउगुरुगा, अकओवट्ठाण-अपत्तअवत्ताईणं उद्देसादिकरणे वायणादाणे य चउगुरू। तत्थ अपत्तो तिंतिणियाई, सुयज्झयणपज्जायअसंपत्तो य। तत्थ आइमो इमो—

तिंतिणिए चलचित्ते गाणंगणिए य दुब्बलचरित्ते।
आयरियपारिभासी वामावट्टे य पिसुणे य ॥

सुयज्झयणपज्जाओ य—तिवरिसपरियायस्स आयारंगं, चउवासपरियायस्स सुयगडं, पंचवासपरियायस्स दसा-कप्प-ववहारा, अट्ठवासपरियायस्स ठाण-समवाया, दसवासपरियायस्स भगवई—इच्चाइ; तं असंपत्तो—आरओ वत्ती। कालअणुओगाणमपडिक्कमणे पणगं; सुत्तत्थमोयणमंडलीणमप्पमज्जणे पणगं। अणुओगे अक्खाणं गुरु-अक्खनिसेज्जाणं च अट्ठावणे, वंदण-काउस्सग्गाकरणे य चउगुरू। आगाढाणागाढजोगाणं सव्वभंगे छल्लहु-चउगुरुगा जहसंखं। देसभंगे चउगुरु-चउलहुगा। तत्थ विगइभोगे सव्वभंगो। एगमाणे विगइं आयंबिलपाडग्गं च गिण्हइ। जोगसमत्तीए गुरुं विणा वि सयमेव विगइगहणकाउस्सग्गं करेइ उस्संघट्टं वा भुंजइ त्ति। देसभंगो नाणनाणीणं पच्चणीययाए निंदाए पओसे पाढाइअंतरायकरणे य मासगुरू। पुत्थय-पट्टिया-टिप्पणगाईणं पडणे कक्खाकरणे दुग्गंधहत्थगहणे थुक्कभरणे थुक्काइअक्खरमज्जणे पाय-

अभिहडमुत्तुं दुविहं सगाम-परगामभेयओ तत्थ।
चरमं सपच्चवायं अपच्चवायं च इय दुविहं ॥ १६ ॥
सप्पच्चवायपरगामआहडे चउगुरुं लहइ साहू।
निपच्चवायपरगामआहडे चउलहुं जाण ॥ १७ ॥
मासलहू सग्गामाहडंमि[11] तिविहं च होइ उब्भिन्नं।
जउ-छगणाइविलित्तु भिन्नं तह दद्दरुब्भिन्नं[1] ॥ १८ ॥
तह य कवाडुब्भिन्नं लहुमासो तत्थ दद्दरुब्भिन्ने।
चउलहुयं सेसदुगे[12] तिविहं मालोहडं तु भवे ॥ १९ ॥
उक्किट्ठ-मज्झिम-जहण्णभेयओ तत्थ चउलहुक्किट्ठे।
लहुमासो य जहन्ने गुरुमासो मज्झिमे जाण[13] ॥ २० ॥
सामि-प्पहु-तेणकए तिविहे विहु चउलहुं तु अच्छिज्जे[14]।
साहारण-चोल्लग-जड्डुभेयओ तिविहमणिसिट्ठं ॥ २१ ॥
तिविहे वि तत्थ चउलहु[15] तत्तो अज्झोयरं वियणाहि।
जावंतिय-जइ-पासंडिमीसभेएण तिविकप्पं ॥ २२ ॥
मासलहु पढमभेए मासगुरुं जाण चरमभेयदुगे[16]।
इय उग्गमदोसाणं पायच्छित्तं मए वुत्तं ॥ २३ ॥–दारं।
धाईउ पंचखीराइभेयओ चउलहुं तु तप्पिंडे[1]।
चउलहु दूईपिंडे सगाम-परगामभिन्नंमि[2] ॥ २४ ॥
तिविहं निमित्तपिंडं तिकालभेएण तत्थ तीयंमि।
चउलहु अह चउगुरुयं अणागए वट्टमाणे य[3] ॥ २५ ॥
जाइ-कुल-सिप्प-गण-कम्मभेयओ पंचहा विणिद्दिट्ठो।
आजीवणाइपिंडो पच्छित्तं तत्थ चउलहुया[4] ॥ २६ ॥
चउलहु वणीमगपिंडे[5] तिगिच्छपिंडं दुहा भणन्ति जिणा।
बायर-सुहुमं च तहा चउलहु बायरचिगिच्छाए ॥ २७ ॥
सुहुमाए मासलहू[6] चउलहुया कोह[7]-माणपिंडेसु[8]।
मायाए मासगुरू[9] चउगुरु तह लोभपिंडंमि[10] ॥ २८ ॥
पुव्विं-पच्छासंथवमाहु दुहा पढममित्थ गुणथुणणे।
मासलहु तत्थ बीयं संबंधे तत्थ चउलहुयं[11] ॥ २९ ॥
विज्जा[12] मंते[13] चुण्णे[14] जोगे[15] चउसु वि लहेइ चउलहुयं।
मूलं च मूलकम्मे उप्पायणदोसपच्छित्तं ॥ ३० ॥–दारं।
संकियदोससमाणं आवज्जइ संकियंमि पच्छित्तं[1]।
दुविहं मक्खियमुत्तं सचित्ताचित्तभेएणं ॥ ३१ ॥
भूदगवणमक्खियमिह तिविहं सचित्तमक्खियं बिंति।
पुढवीमक्खियमित्थं चउविहं बिंति गीयत्था ॥ ३२ ॥

1 'दर्दरो वस्त्रचर्मादिबन्धनरूपः।' इति टिप्पणी।

परियट्टियपामिच्चे परभावकीए सगामामिहडे दद्दरोब्भिन्ने जहन्नमालोहडे पढम०भत्तपूरगे सुहुमतिगिच्छाए गुणसंथवकरणे मीसकद्दमेण लवणसेडियाइणा य मक्खिए पिट्ठाइमक्खिए कत्तगलोढगविरोलगपिंजगदायगेसु पत्तेयपरंपरट्ठवियाइसु मीसाणंतरट्ठवियाइसु य पु० । इत्तरट्ठविए सुहुमपाहुडियाए ससिणिद्धे ससरक्खमक्खिए मीसपरंपरठवियाइसु पत्तेयाणंतर्बीयट्ठवियाइसु य नि० । मूलकम्मे मूलं ।

§ ८३. विसेसओ पुण पिंडदोसपायच्छित्तं पिंडालोयणाविहाणाओ नेयं । तं चेमं –

कयपवयणप्पणामो सत्तालीसाइं पिंडदोसाणं ।
वोच्छं पायच्छित्तं कमेण जीयाणुसारेणं ॥ १ ॥
पणगं तह मासलहुं मासगुरुं चउलहुं च चउगुरुयं ।
सण्णाओ नि°पु°ए°आ°उ° जोगओ जाण कल्लाणं ॥ २ ॥
सोलस उग्गमदोसा सोलस उप्पायणाइ दोसाओ ।
दस एसणाइ दोसा संजोयणमाइ पंचेव ॥ ३ ॥
आहाकम्मे चउगुरु[1] दुविहं उद्देसियं वियाणाहि ।
ओहविभागेहिं तहिं मासलहू ओहनिद्देसो ॥ ४ ॥
बारसविहं विभागे बहु उद्दिट्ठं कडं च कम्मं च ।
उद्देस-समुद्देसा देससमा देसभेएणं ॥ ५ ॥
चउभेए उद्दिट्ठे लहुमासो अह चउविहंमि कडे ।
गुरुमासो चउलहुयं कम्मुद्देसे य नायव्वं ॥ ६ ॥
कम्मसमुद्देसाइसु तिसु चउगुरुयं भणंति समयण्णू[2] ।
दुविहं तु पूइकम्मं उवगरणे भत्तपाणे चा ॥ ७ ॥
उवगरणपूइमासलहु मासगुरु भत्तपाणपूइम्मि[3] ।
जावंतिय-जइ-पासंडि-मीसजायं भवे तिविहं ॥ ८ ॥
जावंतिमीस चउलहु चउगुरु पासंडि-सपरमीसंमि[4] ।
चिर-इत्तरभेएणं निद्दिट्ठा ठावणा दुविहा ॥ ९ ॥
चिरठविए लहुमासो इत्तरठवियंमि देसियं पणगं[5] ।
पाहुडिया विहु दुविहा बायर-सुहुमप्पयारेहिं ॥ १० ॥
बायरपाहुडियाए चउगुरु सुहुमाइ पावए पणगं[6] ।
पागड-पयासकरणं ति विंति पाओयरं दुविहं ॥ ११ ॥
मासलहु पयडकरणे पगासकरणे य चउलहुं लहइ[7] ।
अप्प-पर-दव्व-भावेहिं चउविहं कीयमाहंसु ॥ १२ ॥
अप्पपरदव्वकीए सभावकीए य होइ चउलहुयं ।
परभावकीए पुण मासलहुं पावए समणो[8] ॥ १३ ॥
अह लोउत्तर-लोइयभेएणं दुविहमाहु पामिच्चं ।
लोउत्तरि मासलहू चउलहुयं लोइए हवइ[9] ॥ १४ ॥
परियट्टियं पि दुविहं लोउत्तर-लोइयप्पयारेहिं ।
लोउत्तरि मासलहू चउलहुयं लोइए होइ[10] ॥ १५ ॥

चउगुरु अचित्तगुरु साहरिए[1] अह दायग त्ति थेराई ।
थेर-पहु-पंड-वेविर-जरियंधवत्त-मत्त-उम्मत्ते ॥ ४९ ॥
छिन्नकरचरणगुव्विणिनियलंदुयबद्धबालवच्छाए ।
खंडइ पीसइ भुंजइ जिमइ विरोलइ दलइ सजियं ॥ ५० ॥
ठवइ वलिं ओयत्तइ पिढराइ तिहा सपच्चवाया जा ।
साहारणचोरियगं देइ परक्कं परट्ठं वा ॥ ५१ ॥
दिंतेसु एसु चउलहु चउगुरु पगलंतपाउयारूढे ।
कत्तइ लोढइ पिंजइ विक्खिणइ[1] पमद्दए य मासलहू ॥ ५२ ॥
छक्कायवग्गहत्था समणट्ठा णिक्खिविज्जु ते चेव ।
घट्टंती गाहंती आरंभंतीइ[2] सट्ठाणं ॥ ५३ ॥
भू-जल-सिहि-पवण-परित्तघट्टणागाढगाढपरियावे ।
उद्दवणे वि य कमसो पणगं लहु-गुरुयमासं[3]-चउलहुया ॥ ५४ ॥
लहुमासाई चउगुरु अंतं विगलेसु तह अणंतवणे ।
पंचिंदिएसु गुरुमासाइ जाव कल्लाणगं एगं ॥ ५५ ॥
एगाइ दसंतेसुं एगाइ दसंतयं सपच्छित्तं ।
तेण परं दसगं[4] चिय बहुएसु वि सगल-विगलेसु[5] ॥ ५६ ॥
पुढवाइ जिउम्मीसे[6] चउलहु पणगं च बीयउम्मीसे ।
मिस्सपुढवाइ मीसे मासलहुं पावए साहू ॥ ५७ ॥
चउगुरु[6] सचित्तअणंतमीसिए मिस्सणंतओम्मीसे ।
मासगुरु दुविहं पुण अपरिणयं दव्व-भावेहिं ॥ ५८ ॥
ओहेण दव्वभावापरिणयभेएसु दुसु वि चउ लहुयं ।
दव्वापरिणामिए पुण जं नाणत्तं तयं सुणह ॥ ५९ ॥
अपरिणयंमि छकाए[7] चउलहु पणगं च बीयअपरिणए ।
मीसछक्कायापरिणयदोसे लहुमासमाहंसु ॥ ६० ॥
सचित्तणंतकाए अपरिणए चउगुरू मुणेयव्वं ।
मीसाणंत[8] अपरिणए गुरुमासो भासिओ गुरुणा[9] ॥ ६१ ॥
चउलहुयं लहइ मुणी लित्ते दहिमाइ लित्तकरमत्ते[7] ।
छड्डियमिह[9] पुढवाइसु अणंतर-परंपरं ति दुहा ॥ ६२ ॥
छड्डियसचित्तभू-दग-सिहि-पवण-परित्तवणसइ-तसेसु ।
चउलहुय-मासलहुया अणंतर-परंपरेसु कमा ॥ ६३ ॥
अइर[10]-तिरोछड्डियए मीसेसु य तेसु मासलहु पणगा ।
अइर-तिरोछड्डियए पणगं पत्तेयणंतबीएसु ॥ ६४ ॥

---

1 A विक्खिणइ । 2 'स्वस्थानमेवाह । 3 मासशब्दः प्रत्येकं अभिसम्बध्यते । 4 अनेनाऽभिप्रायेणान्येष्वपि प्रायश्चित्तस्थानेष्वयमेव न्यायः । 5 अत्रापि संहृतदोषवत् भेदाख्यानम् ।' इति B टिप्पणी । 6 A चउगुरु° । 7 एकमासे । 8 ह्रस्वत्वमीदं पदं । 9 एकमासे । 10 अचिर इति स्वरूपाद्, तिर इति परतः ।

ससरक्खमक्खियं तह सेडिय-ओसाइमक्खियं चेव।
निम्मीस-मीसकद्दममक्खियमिइ पुढविमक्खियं चउहा ॥ ३३ ॥
तत्थ कमेणं पणगं लहुमासो चउलहू य मासलहू।
दगमक्खियं पि चउहा पच्छाकम्मं पुरोकम्मं ॥ ३४ ॥
ससिणिद्धं उदउल्लं चउलहु चउलहु य पणग लहुमासा।
वणमक्खियं तु दुविहं पत्तेयाणंतभेएणं ॥ ३५ ॥
उक्कुट्ट-पिट्ठ-कुक्कुसभेया पत्तेयमक्खियं तिविहं।
तिविहे वि हु लहुमासो गुरुमासोऽणंतमक्खियए ॥ ३६ ॥
गरहियइयरेहिं अचित्तमक्खियं दुविहमाहु साहुवरा।
गरहियअचित्तमक्खियदोसेणं लहइ चउलहुयं ॥ ३७ ॥
अगरिहसंसत्तअचित्तमक्खियंमि वि लहेइ चउलहुयं[1]।
निक्खित्तं पुढवाइसु अणंतर-परंपरं ति दुहा ॥ ३८ ॥
ठविए सचित्तभू-दग-सिहि-पवण-परित्तवणसइ-तसेसु।
चउलहुय-मासलहुया अणंतर-परंपरेसु कमा ॥ ३९ ॥
अइरपरंपरठविए मीसेसु य तेसु[1] मासलहु-पणगा।
अइरपरंपरठविए पणगं पत्तेयणंतवीएसु ॥ ४० ॥
सचित्तणंतकाए अणंतर-परंपरेण निक्खित्ते।
चउगुरु मासगुरु कमा मीसे गुरुमास पणगाइं ॥ ४१ ॥
तह गुरुअचित्तपिहियं सचित्तपिहियं च मीसपिहियं च।
पिहियं तिहा अभिहियं चउगुरुयमचित्तगुरुपिहिए ॥ ४२ ॥
पिहिए सचित्तभू-दग-सिहि-पवण-परित्तवणसइ-तसेहिं।
चउलहुय-मासलहुया अणंतर-परंपरेहिं कमा ॥ ४३ ॥
अइरपरंपरपिहिए मीसेहिं य तेहिं मासलहु पणगा।
अइरपरंपरपिहिए पणगं पत्तेयणंतवीएहिं ॥ ४४ ॥
सचित्तअणंतेणं अणंतरपरंपरेण पिहियंमि।
चउगुरु-मासगुरू कमा मीसेणं मासगुरु पणगा[*] ॥ ४५ ॥
साहरिए[2] सजियभू-दग-सिहि-पवण-परित्तवणसइ-तसेसु।
चउलहुय-मासलहुया अणंतर-परंपरपरेण कमा ॥ ४६ ॥
अइरतिरोसाहरिए मीसेसु उ तेसु मासलहु पणगा।
अइरतिरोसाहरिए पणगं पत्तेयणंतवीएसु ॥ ४७ ॥
सचित्तअणंतेसुं अणंतर-परंपरेण साहरिए।
चउगुरु मासगुरु कमा मीसेसुं मासगुरु पणगा ॥ ४८ ॥

---

* 'उत्कृष्टं कालिंगाम्रवालुंकयादीनां श्लक्ष्णीकृतानि खंडानि अम्लिकापत्रसमुदायो वा उदूखलखण्डितमर्मिश्रितं पिष्टं श्रमतंदुलक्षोदादि।'–इति A B टिप्पणी।

1 पृथिव्यादिषु। 2 'संहृतदोष अतिशिप्तममानयो [illegible] भेदाप्यानम्'–इति B टिप्पणी।

दिवासयणे उ० । विपडपाणे उ० । पक्खाइरित्तं चाउम्मासाइरित्तं वा कोवं परिवासेइ उ० । दिणअप्पडिलेहिय-अप्पमज्जियथंडिल्ले वोसिरइ उ० । थंडिल्लअकरणे सज्झाय ५० । गुरुणो अणालोइए भत्तपाणे सज्झायअकरणे गुरुपायसंघट्टणे उ० । पक्खिए विसेसतवं अकरिंताणं खुड्डय-थविर-भिक्खु-उवज्झाय-सूरीणं जहसंखं नि० पु० ए० आं० उ० । चाउम्मासिए पु० ए० आं० उ० छट्ठाणि । संवच्छरिए ए० आं० उ० छट्ठ-अट्ठमाणि । निद्दापमाएण एगम्मि काउस्सग्गे वंदणए वा, गुरुणो पच्छाकए पुव्वं पारिए भग्गे वा, आलस्सेण सव्वहा अकए वा नि०, दोसु पु०, तिसु ए०, सव्वेसु आं० । सव्वावस्सयअकरणे उ० । कत्तियचउमासयपारणए अन्नत्थ अविहरंताणं आं० । खुरेण लोयं कारेइ पु०, कत्तरीए ए० । दीहद्धाणपडिवन्ने गिलाणकप्पावसाणे वरिसारंभं विणा सव्वोवहिधोवणे, पमाएण पउणपहरे मत्तगअपडिलेहणे, तहा चउम्मासिय-संवच्छरिएसु सुद्धस्स वि पंचकल्लाणं । कओववासस्स पढम-पच्छिमपोरिसीसु पत्तगअपडिलेहणे पडिलेहणाकाले य फिडिए अट्ठमयकरणे य एगकल्लाणं । सद्द-रूव-रस-फरिसेसु दोसे आं०, रागे उ० । गंधे राग-दोसेसु पु० । मयंतरे सद्द-रूव-रस-गंधेसु रागे आं०, दोसे उ० । फासे राग-दोसेसु पु० । अचित्तचंदणाइगंधग्घाणे पु० । अवग्गहाओ अद्धुट्ठहत्थप्पमाणाओ मुहणंतए फिडिए नि० । रयहरणे उ० । नवरमवग्गहो इत्थ हत्थप्पमाणो । मुहणंतए नासिए उ० । रयहरणे छट्ठं । मुहपोत्तियं विणा भासणे नि० । उवही जहण्णाइभेया तिविहो—मुहपोत्ती केसरिया गुच्छओ पायठवणं ति जहन्नो । पडला रयत्ताणं पत्ताबंधो चोलपट्टो मत्तओ रयहरणं ति मज्झिमो । पत्तं तिन्नि कप्पा य त्ति उक्कोसो । एस ओहिओ उवही । ओवग्गहिओ पुण जहन्नो पीढनिसिज्जादंडउंछणाई । मज्झिमो वासत्ताणपणगं, दंडपणगं, मत्तगतिगं, चम्मतिगं, संथारुत्तरपट्टो इच्चाई । उक्कोसो अक्खा पुत्थगपणगं इच्चाई । ओहिओवग्गहिए जहन्नओवहिम्मि चिचुयलद्धे अप्पडिलेहिए वा नि० । मज्झिमे पु० । उक्किट्ठे ए० । सव्वोवहिम्मि पुण आं० । जहन्ने उवहिम्मि नासिए, वरिसारंभं विणा धोविए उ० । गमिऊणं गुरुणो अणिवेदिए य ए० । मज्झिमे आं० । उक्किट्ठे उ० । आयरियाईहिं अदिन्नं जहन्नमुवहिं धारयंतस्स भुंजंतस्स वा गुरुमणापुच्छिय अन्नेसिं दिंतस्स य ए० । मज्झिमे आं० । उक्किट्ठे उ० । सव्वोवहिम्मि नासियाइगमेसु छट्ठं । ओसन्नपव्वावियस्स ओसन्नया विहारिस्स इत्थी-तिरिच्छीमेहुणसेविणो य मूलं । सावज्जसुविणे काउस्सग्गे उज्जोयगरचउक्कचिंतणं । माणुस-तिरिक्खजोणीए पडिमाए य पुग्गलनिसग्गाइमेहुणसुविणे पुण उज्जोयचउक्कं नमोक्कारो य चिंतिज्जइ । मयंतरेण सागरवरगंभीरा जाव । सुमिणे राइभोयणे उ० । निक्कारणं धावणे डेवणे, समसीसियागमणे, जमलियजाणे, चउरंग-सारि-जूयाइकीलाए, इंदजाल-गोलयाखिल्लणे, समस्सा-पहेलियाईसु उक्कुट्ठीए गीए सिंढियसद्दे मोर-अरहट्टाइ जीवाजीवरुए, सूइमाइलोहनासे उ० । उवविट्ठए पडिक्कमणे आं० । दगमट्टियागमणे आं० । वाघारे आं० । तसपायाइभंगे आं० । अपडिलेहियठवणायरियपुरओ अणुट्ठाणकरणे पु० । इत्थीए अवयवफासे आं० । वत्थप्फासे नि० । अंगसंघट्टे नि० । वत्थसंघट्टे अबहुवयणे य सज्झाय १०० । आवस्सियानिसीहिया अकरणे दंडगअप्पडिलेहणे समिइगुत्तिविराहणे गुणवंतनिंदणे नि० । वासावासग्गहियं पीढफलगाइ न समप्पेइ पु० । वरिसंतसमाणियभत्तादिपरिभोगे आं० । रुक्खपरिट्ठावणे पु० । सिणिद्धपरिट्ठावणे उ० । रयहरणस्स अपडिलेहणे पु० । मुहपोत्तीयाए नि० । दोरए पत्तबंधे तेप्पणए मुहणंतए य खरडिए उ० । गंतीजोयणगमणे गमणियाजोयणपरिभोगे जोयणमचक्खुविसए उ० । आभोगेणं जोयणमित्ते गंतीगमणे छट्ठं हट्ठाणं । गमणागमणं न आलोएइ, इरियावहियं न पडिक्कमइ, वियालवेलाए पाणगं न पच्चक्खाइ, उच्चारपासवणकालभूमीओ एगरत्तं न पडिलेहइ नि० । सीसदुवारियं करेइ पु० । गरुलपक्खं पाउणइ उ० । एगओ दुहओ वा कप्पअंचला खंधारोविया गरुलपक्खं । बोडिय-वुड्ढयाणं व उत्तरासंगे उ० । चोलपट्टपकच्छादाणे उ० । चउप्फलं मुक्कलं वा कप्पं खंधे करेइ पु० । दो वि बाहाओ छायंतो संजइपा-

सचित्तणंतकाए अणंतर-परंपरेण छड्डियए ।
चउगुरु-मासगुरु कमा मीसे गुरुमासपणगाइं[1] ॥ ६५ ॥ –दारं ।
इय एसणदोसाणं पायच्छित्तं निरूवियं[1] इत्तो ।
संजोयणाइ चउगुरू[1] अइप्पमाणंमि चउलहुयं[1] ॥ ६६ ॥
इंगाले चउगुरुया[1] चउलहु धूमे[1] अकारणाहारे[1] ।
घासेसणदोसाणं इय पायच्छित्तमक्खायं ॥ ६७ ॥
जं जीयदाणमुत्तं एयं पायं पमायसहियस्स ।
इत्तोचिय ठाणंतरमेगं वड्ढिज्ज दप्पवओ ॥ ६८ ॥
आउट्टियाइ ठाणंतरं च सट्ठाणमेव वा दिज्जा ।
कप्पेण पडिक्कमणं तदुभयमिह वा विणिद्दिट्ठं ॥ ६९ ॥
आलोयणकालंमि वि संकेस-विसोहिभावओ नाउं ।
हीणं वा अहियं वा तम्मत्तं वावि दिज्जाहि ॥ ७० ॥
पच्छित्तऊण अहियप्पयाणहेउं च इत्थ दवाई ।
अलमित्थ वित्थरेणं सुत्ताओ चेव जाणिज्जा ॥ ७१ ॥
इय पच्छित्तविहाणं जीयाओ पिंडदोससंबद्धं ।
जिणपहसूरीहिं इमं उद्धरियं आयसरणत्थं ॥ ७२ ॥
जं किंचि इत्थणुचियं अन्नाणाओ मए समक्खायं ।
तं मह काऊण दयं गुरुणो सोहिंतु गीयत्था ॥ ७३ ॥

॥ इति पिंडालोयणाविहाणं नाम[2] पयरणं समत्तं ॥

*

§ ८४. सेज्जायरपिंडे आं० । मयंतरे पु० । पमाएण कालद्धाणातीए कए नि०, पमायओ तब्भोगे नि०, अन्नहा उ० । उवओगस्स अकरणे अविहिणा वा करणे पु०, अहवा नि०, अहवा सज्झाय १२५ । उवओगमकाऊण सभत्तपाणविहरणे आं० । गोयरचरियअपडिक्कमणे पु० । काइयभूमीअप्पमज्जणे य नि० । सुत्तपोरिसिं अत्थपोरिसिं वा न करेइ पु०, तदुभयं न करेइ उ० । हरियकायं पमद्दइ पु० । झुसिरतणं सेवए पु० । निक्कारणदुप्पडिलेहियदूसपंचगं, अझुसिरतणपंचगं चम्मपंचगं पुत्थयपंचगं अपडिलेहियदूसपंचगं च सेवए कमेण नि० नि० नि० आं० ए० । गमणियापरिभोगे अचक्खुविसए वा दिणसंघाए पु० । मुत्तो-च्चारअसणाइपरिट्ठप्पं अविहिणा परिट्ठवइ, गिहिपच्चक्खं असुचं भासइ भुंजइ य, पडिमानियडे खेलमल्लगं धारेइ, गिलाणं न पडिजागरइ, अकाले सागारियहत्थेणं वा अंगं मद्दावेइ मक्खावेइ वा, उस्संघट्टसंथारए चडइ, नग्गगाइ झुसिरं परिभुंजइ, दारदेसे पवेस-निग्गमभूमिं न पमज्जइ, सज्झायमकाऊण भुंजइ, अवेलाए उच्चारभूमिं गच्छइ, सागारियस्स पिच्छंतस्स काइयसन्नाइ वोसिरइ – सव्वत्थ पु० । अपारिए भत्तं भुंजइ दवं वा पियइ पु०, अथवा सज्झाय १२५ । ठवणकुलेसु अणापुच्छाए पविसइ ए० । इत्थि-रायकहासु उ०, देस-भत्तकहासु आं० । कोह-माण-मायाकरणे आं०, लोभकरणे उ० । अणणुन्नाए संथारए आरोहइ आं० । मयंतरे पु० । संनिहिपरिभोगे आं० । कालवेलाए उदगपाणे पायधोवणे य आं० । अविहिदेववंदणे सव्वहाअवंदणे वा उ० । मयंतरे देवगिहे देवावंदणे पु० । पुप्फफलवंगाइभक्खणे उ० । निसियभणे सण्णाए च उ० ।

1 'इतः संयोजनादिदोषाणां प्रायश्चित्तनिरूपणं ।' इति B टिप्पनी । 2 A नास्ति 'नाम पयरणं' ।

चिंतंतस्स उ० २। गुरूणं आणाए विणा पयट्टंतस्स समईए संमचनासो। अणाभोगे उ० ३। वत्थधुवणे उ० ३। गायब्भंगे चलणब्भंगे सरीरधुवणे उ० ४। पारिट्ठावणियं सपत्ताई कारिंतस्स उ० ४। मग्गंमि नइलंघणे सामन्नेण उ० २। पच्चक्खाणअकरणे उवओगाकरणे अपमज्जिय वसहीए सज्झायकरणे विकहाकरणे दिवासुयणे परपरिवायकरणे गीयाइकरणे कोऊहलदंसणे समईए कुसत्थसवणं करिंते वक्खाणंते पढंते गुणंते उ० ३। एगागिणो गुरूणमाणाए विणा वियरंतस्स उ० ४। पत्तभंडाइभंगे उ० १। उवहिं हारवंतस्स उ० १। गुरूण आणाए कारणओ आहाकम्माइ अगिण्हंतस्स उ० ४। इंदियलोलुयाए संजोयणं करिंतस्स उ० ४। छप्पइयासंघट्टणे वासासु उवहिअधुवणे उ० ४। अकाले धुवंतस्स उ० ४। हासं खिड्डं कुणंतस्स उ० २। सुत्तं विणा जिणपूयाइकज्जेसु पवाहेण पयट्टंतस्स उ० ४। साहम्मियकज्जेसु जहासत्तीए अपयट्टमाणस्स उ० ४। **एवं संखेवेणं सव्वविरई भणिया।**

§ ९०. इयाणिं वसहिदोसपायच्छित्तं। कालाइक्कंताए पणगं। उवट्ठाणा अभिक्कंता अणभिक्कंता वज्जासु चउलहु। महावज्जाइसु चउगुरु। अतिविसुद्धिकोडिवसहीसु पट्टीवंसाइचउद्दससु चउगुरु। विसोहिकोडीसु दूसियाइसु चउलहुया। भणियं च–

आइएँ पणगं चउसु चउलहू वसहीसु खमणमन्नासु।
अविसुद्धासुं चउगुरु विसोहिकोडीसु चउलहुगा॥ १॥

§ ९१. अह थंडिल्लदोसपच्छित्तं–

आवाए संलोए झुसिरत्तसेसुं हवंति चउलहुया।
चउगुरु आसन्नबिले पुरिमं सेसेसु सव्वेसु॥ २॥

§ ९२. संपयं वंदणयदोसपच्छित्तं–

पडणीय दुट्ठ तज्जिय खमणं आयाम रुट्ठथद्धेसु।
गारव तेणिय हीलिय जुएसु पुरिमं च सेसेसु॥ ३॥

§ ९३. संपइ पव्वज्जाणरिहपव्वावणपच्छित्तं–

तेणे कीवे रायावयारिदुट्ठे य जुंगिए दोसे।
सेहे गुव्विणि मूलं सेसेसु हवंति चउगुरुगा॥ ४॥

सेहे इति सेहनिप्फेडिया। पव्वज्जाणरिहा य इमे–

बाले वुड्ढे नपुंसे य कीवे जड्डे य वाहिए।
तेणे रायावगारी य उम्मत्ते य अदंसणे॥ १॥
दासे दुट्ठे य मूढे य अणत्ते जुंगिए इय।
ओबद्धए य भयए सेहनिप्फेडिया इय॥ २॥
इय अट्ठारसभेया पुरिसस्स तहित्थियाइ ते चेव।
गुव्विणिसवालवच्छा दुन्नि इमे हुंति अन्ने वि॥ ३॥

संपयं साहूणं निव्विगइ-आयंबिल-उववास-सज्झाया चेव आलोयणा तवे पडंति, पुरिमड्ढो या। ण उण एगासणं। पुरिमड्ढो वि चउव्विहाहारपरिहारेणेवि त्ति।

*

§ ९४. इओ देसविरइपायच्छित्तसंगहो भण्णइ–देसओ संकाइसु अट्ठसु आं०। सव्वओ उ०। देवस्स वासकुंपिया-धूवायण-धुक्कियउम्मासअंचललग्गणे, पडिमापाडणे, सइ नियमे देवगुरुअवंदणे पु०।

उरणेणं पाउणइ आं०। गिहिलिंग-अन्नतित्थियलिंगकप्पकरणे मूलं। ओगुट्टिं चउफलकप्पं वा हत्थो-लित्तदंडएण वा सिरे कप्पं करेइ पु०। उत्तरासंगं न करेइ, अचित्तं लसुणं भक्खेइ, तण्णयाइ उम्मोयइ पु०। गंठिसहियं नासेइ उ०। कप्पं न पियइ उ०। सति सामत्थे अट्ठमि-चउद्दसि-नाणपंचमीसु चउत्थं न करेइ उ०। वत्थधोवणियाए पइकप्पं नि०। पमाएण पचक्खाणअग्गहणे पु०। वाणमंतराइ-पडिमाकोऊहलपलोयणे पु०। इत्थियालोयणे ए०। दंडरहियगमणे उ०। निसागमणे सोवाणहे कोस-दुगप्पमाणे आं०। अणुवाणहे नि०।

सिया एगइओ लद्धुं विविहं पाणभोयणं। भद्दगं भद्दगं भुच्चा विवण्णं विरसमाहरे॥

इच्चेवं मंडलीवंचणे उ०। **गयं उत्तरगुणाइयारपच्छित्तं॥ * ॥ समत्तं च चारित्ताइयारपच्छित्तं॥**

§ ८५. उववासभंगे आं० २, नि० ३, ए० ४, पु० ५। सज्झायसहस्सदुगं, नवकारसहस्समेगं। आयं-बिलभंगे आं० २, नि० ३, पु० ४। निव्विगइयभंगे पु० २। एकासणाइभंगे तद्दहियपचक्खाणं देयं। गंठिसहियाइभंगे दव्वाइअभिग्गहभंगे वा संखाए पु०। तवं कुणंताणं निंदाअंतरायाइकरणे पु०।

§ ८६. इयाणिं जोगवाहीणं अन्नाणपमायदोसा जहुत्ताणुट्ठाणे अकए पायच्छित्तं भण्णइ — उस्संघट्टं भुंजइ उ०। लेवाडयदव्वोवलित्तस्स पत्ताइणो परिवासे उ०। आहाकम्मियपरिभोगे उ०। सन्निहिपरिभोगे उ०। अकालसन्नाए उ०। थंडिले न पडिलेहेइ उ०। अपडिलेहियथंडिले उड्डं[1] करेइ उ०। असंसडं करेइ उ०। कोह-माण-माया-लोभेसु उ०। पंचसु वएसु उ०। अब्भक्खाण-पेसुन्न-परपरिवाएसु उ०। पुत्थयं भूमीए पाडेइ, कक्खाए करेइ, दुगंधहत्थेहिं लेइ, थुक्काहिं भरेइ, एवमाइसु उ०। रयहरणे चोल-पट्टए य उग्गहाओ फिडिए उ०। उब्भो न पडिक्कमइ, वेरत्तियं न करेइ उ०। कवाडं किडियं वा अप-मज्जियं उग्घाडेइ पु०। कालस्स न पडिक्कमइ, गोयरचरियं न पडिक्कमइ, आवस्सियं निसीहियं वा न करेइ नि०। छप्पयाओ संघट्टेइ अणागाढं पु०, गाढासु ए०। ओहियं न पडिलेहेइ उ०। उद्देस-समुद्देस-अणुन्ना-भोयण-पडिक्कमणभूमीओ न पमज्जेइ उ०। **गयं तवाइयारपच्छित्तं।**

§ ८७. तवोणुट्ठाणाइसु विरियगूहणे एगासणदुगं। **गयं विरियाइयारपच्छित्तं।**

§ ८८. इत्थ य छेयाइ[2] असद्दहओ भिउणो परियायगव्वियस्स गच्छाहिवइणो आयरियस्स कुलगणसंघाहि-वईणं च छेय-मूल-अणवट्टप्प-पारंचियमवि आवन्नाणं जीयववहारेण तवं चिय दिज्जइ।

§ ८९. भणियं साहुपायच्छित्तं। संपयं आयरणाए किंचि विसेसो भण्णइ — साहु-साहुणीणं राईभत्तविर-इभंगे असणे पंचवि भेया नि० पु० ए० आं० उ० पंचगुणा। खाइमे ते चउग्गुणा। साइमे तिगुणा। पाणे दुगुणा। सुक्कसन्निहीए उ० २, अल्लसन्निहीए उ० ४। सचित्तभोयणे कुरुडुयाईए उ० ३। अप्पउलियभक्खणे उ० ४। दुप्पउलभक्खणे उ० २। कारणओ आहाकम्मग्गहणे ते पंच वि पंचगुणा। निक्कारणे तहिं पंचवि वीसगुणा। आहाकडकीयगडाइदोसासेवणेसु उ० ३। अकालचारित्तणे कारणओ उ० ४। निक्कारणओ ते वि दुगुणा। अकालसन्नाकरणे उ० २। थंडिलउवहीणमपडिलेहणे उ० ३। वसहिअपमज्जणे कज्जगाईणं अणुद्धरणे अविहिपरिट्ठवणे उ० ३। जिण-पुत्थय-गुरुपमुहाणं आसायणाए उ० ४। अवरोप्परं वायाकलहे ते पंच। दंडादंडीए दस। उद्दवणे मूलं। पहारे जणनाए ते पंचवी-सगुणा। सागारियदिट्ठीए आहारनीहारं करिंते उ० ४। निंदियकुलेसु आहाराइगिण्हंतस्स उ० ४। सूयगभत्तं पढमगब्भमुगभत्तं गिण्हंतस्स उ० २। गणभेयं करिंतस्स उ० ४। निक्कारणं गिहिकज्जं

---

1 वमनं। 2 'आचार्यादयो हि छेदादिके दत्ते अपरिणामकादीनां माऽवज्ञास्पदमभूवन्निति तप एव दीयते'-इति B टिप्पणी।

जाणंतस्स पंचकल्लाणं। जइ इत्थी बलाकारं करेइ तया तीसे पंचकल्लाणं। इत्तरकालपरिग्गहियाए वि वयभंगे कल्लाणं, अहवा उ० १। वेसाए वयभंगे पमाएण असंभरंतस्स उ० २, अहवा उ० १। कुलवहूए वयभंगे मूलं। मिउणो पंचकल्लाणं। अहवा दप्पेणं परदारे पंचकल्लाणं। अइपसिद्धिपत्तस्स उत्तमकुलकलत्ते वयभंगेण मूलमवि आवन्नस्स पंच कल्लाणं। सकलत्ते वयभंगे पंचविसोवया पावं। वेसाए दस। कुलडाए पन्नरस। कुलंगणाए वीसं। दप्पेण परिग्गहपमाणभंगे पंचकल्लाणं। उक्किट्ठे सज्झायलक्खमसीइसहस्साहियं। दिसिपरिमाणवयभंगे उ०। भोगोवभोगमाणभंगे छट्ठं। अणाभोगेणं मज्ज-मंस-महु-मक्खणभोगे उ०, आउट्टीए पंचकल्लाणं, अट्ठमं वा। अणंतकायभोगोवद्दवणेसु उ०। अकारणं राईभोत्ते उ०। सचित्त-वज्जिणो सचित्तअंबगाइपत्तेयभोगे आं०। पनरसकम्मादाणनियमभंगे आं०, अहवा उ०, अहवा छट्ठं, एगकल्लाणमिति भावो। दव्वसचित्तअसण-पाण-खाइम-साइम-विलेवण-पुप्फाइपरिमाणभंगे पु०। अहियवि-गइभोगे नि०। ण्हाणनियमभंगे आं०, अहवा उ०। पंचुंबराइफलभक्खणवयभंगे, पच्चक्खाणवय-भंगे अट्ठमं। पच्चक्खाणनियमभंगे अट्ठमं। पच्चक्खाणनियमे सइ निक्कारणं तदकरणे उ०। अकारण-मुयणे उ०। नमोक्कारसहिय-पोरिसि-सड्ढपोरिसि-पुरमड्ढ-दोक्कासण-एक्कासण-विगइ-निव्विगइय-आयंबिल-उव-वासाणं भंगे तदहियपच्चक्खाणं देयं। उववासभंगे उ० २। वमिवसेण पच्चक्खाणभंगे पु०, अहवा ए०। मयंतरे नवकारसहिय-पोरिसि-गंठिसहियाईणं भंगे संखाए नवकार १०८, अहवा ए०। मयंतरे गंठिसहियभंगे सज्झाय २००। गंठिसहियनासे उ०। चरिमपच्चक्खाणअगहणे रत्तीए य संवरणे अकरणे पु०। अणत्थदंडे चउव्विहे उ०। मयंतरे आं०। पेसुन्न-अब्भक्खाणदाण-परपरिवाय-असब्भराडिकरणेसु आं०, अहवा उ०। नियमे सइ सामाइय-पोसह-अतिहिसंविभागअकरणे उ०। देसावगासिए भंगे आं०। वायणंतरेण सामाइय-पोसहेसु वि आं०। चाउम्मासिय-संवच्छरिएसु निरइयारस्सावि पचकल्लाणं। कारणे पासत्थाईणं किइकम्मअकरणे आं०। अभिग्गहभंगे आं०। इरियावहियमपडिक्कमिय सज्झायाइ करेइ पु०। इत्थीए नालयमउलणे एगकल्लाणं ति पुव्वाणं आएसो, न पुण कहिं पि दिट्ठं। बालं वुड्ढं असमत्थं नाऊण तइओ भागो पाडिज्जइ। आलोयणाए गहियाए अणंतरं जावंति वरिसा अंतरे जंति तावंति कल्लाणाणि दिज्जंति त्ति गुरूवएसो। महल्लयरे वि अवराहे छम्मासोववासपज्जंतमेव तवं दायव्वं। जओ वीर-जिणतित्थे इत्तियमेव च उक्कोसओ तवं वट्टइ। एगाइ नव जाव अवराहणट्ठाणसंखाए पायच्छित्तं दायव्वं। दसाइसु संखाईएसु वि दसगुणमेव देयं ति।

§ ९५. इयाणिं पोसहियस्स पायच्छित्तं भण्णइ – तत्थ पोसहिओ आवस्सियं निसीहियं वा न करेइ, उच्चार-पासवणाइभूमीओ न पडिलेहइ, अप्पमज्जिऊण कट्ठासणगाइ गिण्हइ मुंचइ वा, कवाडं अविहिणा उग्घा-डेइ पिहेइ वा, कायमपमज्जिय कंडुयइ, कुड्डमप्पमज्जिय अवट्ठंभं करेइ, इरियावहियं न पडिक्कमइ, गमणा-गमणं न आलोयइ, वसहिं न पमज्जइ, उवहिं न पडिलेहइ, सज्झायं न करेइ, नि०। पाडिय मुहपत्तियं लहइ नि०। न लहइ उ०। पुरिसस्स इत्थियाए य इत्थी-पुरिसवत्थसंघट्टे नि०। गायसंघट्टे पु०। कंबलिपावरणे, आउकाय-विज्जुजोइफुसणे नि०। कंबलिविणा पु०, अहवा आं०। कंबलिपावरणं विणा पईवफुसणे उ०। अपारावेऊण भोयणे पाणे पुंजयलुद्दरणे पु०। असज्झ त्ति अभणणे पु०। वमणे निसि सण्णाए गुरूणं वंदणयसंवरणअकरणे अणिमिचदिवासुवणे विगहासावज्जभासासु संथारयअसंदिसावणे संथारयगाहाओ अणुच्चारिऊण सयणे उवविट्ठपडिक्कमणे वायारे दगमट्टियागमणे य आं०। पुरिसस्स थीफासे आं०। इत्थीए पुरिसफासे उ०। संतरफासे पु०। अंचलफासे मज्जारीमाइतिरियफासे य नि०। तरुण पण्णतोडणे आं०। अप्पडिलेहियथंडिल्ले पासवणाइवोसिरणे आं०। वंदणकाउस्सग्गाणं गुरुणो पच्छा करणाइसु पुव्वाइसंघट्टणाइसु य साहुणो व पच्छित्तं देयं। एवं सामाइयत्थस्स वि जहासंभवं चिंतणीयं।

अविहिणा पडिमाउज्जालणे ए० । देवदव्वस्स असणाइआहार-दम्म-वत्थाइणो, गुरुदव्वस्स वत्थाइणो साहारणधणस्स य भोगे जावइयं दव्वं भुत्तं तावइयं तस्स अन्नस्स वा देवस्स गुरुणो य देयं । तवो य-देव-गुरुदव्वे जहन्ने भुत्ते आं० । मज्झिमे उ० । उक्किट्ठे एगकल्लाणं । एयं दुगमवि देयं । गुरुआसणमाइणो पायाइणा घट्टणे नि० । अंधयारमाइम्मि गुरुणो हत्थपायाइलग्गणे जहन्न-मज्झिम-उक्किट्ठे पु०, ए०, आं० । अट्ठवियस्स ठवणायरियस्स पायप्फंसे नि० । ठवियस्स पु० । पाडणे उभयं । ठवणायरियनासणे पवइयाणं आसणमुहपोत्तियाइ उवभोगे नि० । पाणासणभोगेसु ए०, आं० । वासकुंपियाए पडिमाअप्फालणे १, धोवत्तियं विणा देवच्चणे २, पमाएण भूमिपाडणे ३ । पुत्थय-पट्टिया-टिप्पणमाइणो वयणोत्थनिट्ठीवणालवप्फंसे १, चरणघट्टणनिट्ठीवणपट्टियाअक्खरमज्जणेसु २, भूमिपाडणे ३ । अणुट्ठवियठवणायरियस्स चालणे १, भूमिपाडणे २, पणासणे ३ । एवं जहन्न-मज्झिम-उक्किट्ठआसायणासु पु०, ए०, आं० । अप्पडिलेहियठवणायरियपुरओ अणुट्ठाणकरणे पु०, सज्झायसयं वा । अवयारणगाइबायरमिच्छत्तकरणे पंचकल्लाणं उ० १० । जवमालियानासणे ए० । केसिं चि ठवणायरिए गमिए जवमालियानिममणे य एगकल्लाणं, सज्झायपंचसहस्सं वा । कवाहलग्गहणे संडाइविवाहे आं० । घिउल्लियाइकरणे पु० ।

पडिमादाहे भंगे पलीवणाइसु पमायओ वावि ।
तह पुत्थ-पट्टियाईणहिणवकारावणे सुद्धी ॥

पुत्थयमाईण कक्खाकरणे दुगंधहत्थगहणे पायलग्गणे आं० । देवहरे निकारणं सयणे आं० २ । देवजगईए हत्थपायपक्खालणे उ० । ण्हाणे उ० २ । विकहाकरणे आं०, पु० । झगडयं जुज्झं वा करेइ उ०२, पु० २ । घरलेक्खयं पुत्तपुत्तियासंबंधं च करेइ उ० ३, पु० ३ । हत्थरुंडिं हासं चच्चरिं देवट्ठाणे परोप्परं पुरिसाणं करिंताणं उ० ३, पु० ३ । इत्थीहिं सह उ० ६, पु० ६ ।

पुढविमाइसु चउरिंदियावसाणेसु साहु व पच्छित्तं । पंचिंदिएसु पमाएण पाणाइवाए कल्लाणं । संकप्पेणं पंचकल्लाणं । दोण्हं विगलाणं वहे उ० २ । तिण्हं उ० ३ । जाव दसण्हं उ० १० । एकारसाइसु बहुसु वि उ० १० । मयंतरे बहुएसु विगलेसु पंचकल्लाणं । पभूयतरबेइंदियउद्दवणे उ० २०, पभूयतरतेइंदियउद्दवणे उ० ३० । पभूयतरचउरिंदियउद्दवणे उ० ४० । जीववाणिय-कोलियपुड-कीडियानगर-उद्देहियाइउद्दवणे पंचकल्लाणं । अगलियजलस्स एगवारं ण्हाणपाणतावणाइसु एगकल्लाणं । अगलियजलेण वत्थसमूहधुयणे पंचकल्लाणं । जित्तियवारं अगलियजलं वावरेइ तित्तिया कल्लाणगा । पत्तावेक्खाए उ० १ । जलोयामोयणे आं० । जीववाणियसंखारगउज्झणे एगकल्लाणं उ० २ । थोवे थोवतरमवि । अणंतकाइयकीडियानगरझुसिरवाडियाइसु ण्हाणजल-उण्हअवसावणाइवहणे संखारगसोसे अगलियजलवावारे गलेज्जंतस्स वा कित्तियस्स वि उज्झणे असोहियइंधणस्स अग्गिम्मि निक्खेवे केसविरलीकरणे सिरकंडूयणे कीलाए सरलेट्टुमाइक्खेवे पुरिमड्ढाईणि ।

मुसावाय-अदिन्नादाण-परिग्गहेसु जहन्नाइसु ए०, आं०, उ० । दप्पेण तिसु वि पंचकल्लाणं । अहवा मुसावाए जहण्णे पु०, मज्झिमे आं०, उक्किट्ठे पंचकल्लाणं । दप्पेणं जहन्न-मज्झिमेसु वि तं चेव । दव्वाइचउव्विहे अदिन्नादाणे जहन्ने पु०, मज्झिमे सघरे अन्नाए ए०, नाए आं० । अहवा उ० । उक्किट्ठे अन्नाए पंचकल्लाणं, नाए रायपज्जंतकलहसंपन्ने तं चेव, सज्झायलक्खं च ।

सदारे चउत्थवयभंगे अट्ठमं एगकल्लाणं च । अन्नाए परदारे हीणजणरूवे पंचकल्लाणं, नाए सज्झायलक्खं । उत्तमपरदारे अन्नाए सज्झायलक्खं, असीइसहस्साहियं । नाए मूलं । उत्तमपरकलत्ते वि । नपुंसगस्स अवंतपच्छायाविस्स कल्लाणं, पंचकल्लाणं वा । मयंतरे पमाएण असुमरंतस्स सदारे वयभंगे उ० १,

१ । तिविहाहारपच्चक्खाणभंगे उ० २ । चउविहाहारपच्चक्खाणभंगे उ० ४ । दुक्कासणभंगे उ० २ । इक्कासणभंगे उ० ३ । अहिगविगइगहणे आं० । अहिगदव्वसच्चित्तगहणे उ० १ । रसलोलओ उक्किट्ठदव्व-भोगे आं० । अहवा नि० । संकेयपच्चक्खाणभंगे उ० १ । निव्वियभंगे उ० २ । आयंबिलभंगे उ० ३, पुरिमड्ढ २ । —संखेवेणं देसविरई भणिया ।

*

कयसुयगुरुपयपूओ पियधम्माइगुणसंजुओ सण्णी ।
इरियं पडिकमिय करे दुवालसावत्तकीकम्मं ॥ १ ॥
सुगुरुस्स पायमूले लहुवंदण-संदिसाविय विसोही ।
मंगलपाढं काउं ओणयकाओ भणइ गाहं ॥ २ ॥
जे मे जाणंति जिणा अवराहे नाणदंसणचरित्ते ।
तेहं आलोएउं उवट्ठिओ सव्वभावेण ॥ ३ ॥
तो दाओं खमासमणं जाणुठिओ पुत्तिठइयमुहकमलो ।
सणियं आलोइज्जा चउवीसं सयमईयारे ॥ ४ ॥
पण संलेहण पनरस कम्म नाणाइ अट्ठ पत्तेयं ।
बारस तव विरिय तियं पण सम्मवयाइं पत्तेयं ॥ ५ ॥
मुत्तुं दड्ढतिहीओ अमावसं अट्ठमिं च नवमिं च ।
छट्ठिं च चउत्थिं वा बारसिं च आलोयणं दिज्जा ॥ ६ ॥
चित्ताणुराह रेवइ मियसिर कर उत्तरातियं पुस्सो ।
रोहिणि साइ अभीई पुणवसु अस्सिणि धणिट्ठा य ॥ ७ ॥
सवणो सयतारं तह इमेसु रिक्खेसु सुंदरे खित्ते ।
सणि-भोमवज्जिएसुं वारेसु य दिज्ज तं विहिणा ॥ ८ ॥
इत्थं पुण चउभंगो अरिहो अरिहंमि दलयइ कमेण ।
आसेवणाइणा खलु मंदं दवाइ सुद्धीए ॥ ९ ॥
कस्सालोयण १ आलोयओ य २ आलोइयव्वयं चेव ३ ।
आलोयणविहि ४ मुवरिं तद्दोसगुणे य ६ वोच्छामि ॥ १० ॥
अक्खंडियचारित्तो वयगहणाओ य जो भवे निच्चं ।
तस्स सगासे दंसण-वयगहणं सोहिगहणं च ॥ ११ ॥
*आयारवमाहार ववहारोऽवीलए पकुव्वे य ।
अपरिस्सावी निज्जव अवायदंसी गुरू भणिओ ॥ १२ ॥
आगम सुयं आणाँ धारणाँ य जीयं च होइ ववहारो ।
केवलिमणोहि-चउदस-दस-नवपुव्वाइं पढमोत्थ ॥ १३ ॥
कहेहि सव्वं जो वुत्तो जाणमाणो विगूहइ ।
न तस्स दिंति पच्छित्तं बिंति अन्नत्थ सोहय ॥ १४ ॥

* "आचारवान् पंचविधाचारवान् । आधारवान् आलोचितापराधानामवधारकः । व्यवहारो वक्ष्यमाणपंचविधव्यवहार-वान् । अपव्रीडको लज्जयाऽतीचारान् गोपयंतं विचित्रैर्वचनैर्विलज्जीकृत्य सम्यगालोचनाकारयिता । प्रकुर्वकः आलोचितापराधेषु सम्यक् प्रायश्चित्तदानतो विशुद्धिं कारयितुं समर्थः । अपरिश्रावी आलोचकदोषानन्यस्मै अकथकः । निर्यापकोऽसमर्थस्य तदुचितदानान्निर्वाहकः । अपायदर्शी अनालोचनतः पारलौकिकापायदर्शकः ।" इति A B आदर्शगता टिप्पणी ।

§ ९६. संपयं पत्ताविक्खाए सामायारीविसेसेण सावयपायच्छित्तं भण्णइ — देवजगईए मज्झे भोयणे उ० १, पाणे आं० १। जईणं भोयणे कए उ० ५, पाणे २। तेसिं नियडे निद्दाकरणे आं० २, उ० ३। देसओ पच्छा अद्धं, अप्पं ओघिज्जइ। देसओ ए० २, उ०। सव्वओ नि० ३। उस्सुत्तअणुमोयणे देसओ उ०, आं०; सव्वओ उ० ५, आं० ३, नि० ३, ए० ५। देवदव्वउवभोगे कए थोवे उ० ५, आं० ५, नि० ५, ए० ५, पु० ५। पउरे जणन्नाए एयं चउगुणं, अन्नाए दुगुणं। सव्वओ नाए पंचावि वीसगुणा। अन्नाए दसगुणा। उवेक्खणे पण्णाहीणे अन्नाए पंचावि सव्वओ तिगुणा, नाए चउगुणा। एवं साहम्मियधणोव-भोगे नाए चउग्गुणा, अन्नाए दुगुणा। साहम्मिएण सह कलहे अन्नाए थोवे उ०; आं०, नि०, पु०, ए०। पउरे नाए तिगुणा। साहम्मियअवमाणे थोवे अन्नाए उ०, आं०, नि०, पु०, ए०। पउरे नाए बिउणा। गिलाणअपालणे देसओ पंचावि दुगुणा। साहम्मियगिलाणअपालणे देसओ पंचगुणा, सव्वओ छग्गुणा।
१० सामन्नओ विसेसओ गिलाणअपालणे सव्वओ पंचवीसगुणा। देसओ सम्मत्ताइयारेसु अट्ठसु पंचावि एगगु-णाई जाव अट्ठगुणा, सव्वओ दुगुणाई जाव नवगुणा। — **सम्मत्तपच्छित्तं गयं।**

§ ९७. पाणाइवाए सुहुमे बायरे वा देसओ कए कप्पे ते पंच, पमाए बिउणा, दप्पे तिगुणा, आउट्टियाए चउग्गुणा। पुढवि-आउ-तेउ-वाउ-वणस्सईणं संघट्टणे पु०, परियावणे ए०, उद्दवणे उ०। तसकायसंघट्टणे आं०, परिआवणे आं० २, उद्दवणे पंच०। कप्पंमि उद्दवणे पंच-दुगुणाणि, पमाएण तिगुणाणि, आउट्टि-
१५ याए पंचगुणाणि। एवं देसओ। सव्वओ पुढविकायाईणं अट्ठण्हं संघट्टणे कमेण पु० २, नि० ३, ए० ४, आं० २, उ० २, उ० ३, उ० ४, उ० ५। नवमे पंचविहं एयं पंचगुणं। परियावणे एएसु एयं दुगुणं। उद्दवणे पंचगुणं। कप्पे संघट्टणपरियावणुद्दवणेसु सव्वओ आं० १, आं० २, आं० ३। पमाए उ० १, उ० २, उ० ३। दप्पे उ० २, उ० ३, उ० ४। आउट्टियाए संघट्टणाइसु उ० २, उ० ३, उ० ४। — **भणिओ पाणाइवाओ।**

२० सुहुमे मुसावाए देसओ जयणा। कयपोसहसामाइओ जइ भासइ सुहुमं मुसावायं तो उ० २। बायरं भासइ उ० ४। अकयसामाइओ बायरमुसावायं भासइ उ० ३। सव्वओ सुहुमे मुसावाए पंचविहं पि दुगुणं। बायरे पंचविहं पि पंचगुणं। — **मुसावाओ गओ।**

अदत्तगहणे सुहुमे देसओ जयणा। कयपोसहसामाइओ अदत्तं गेण्हइ सुहुमं तो पंच बिउणा। बायरं गेण्हइ पंच वि अट्ठगुणा। सव्वओ सुहुमे पंचगुणा बायरे दसगुणा। — **गयं अदत्तादाणं।**

२५ मेहुणपच्छित्तं पुव्वं व। विसेसो पुण इमो — देवहरे वेसाए सह पसंगे जाए उ० १०, आं० १०, नि० १०, ए० १०, सज्झायसहस्सतीसं ३०। सावियाहिं सद्धिं तं चेव तिगुणं देयं अन्नाए, नाए पंचगुणं। सावग-अज्जियाणं पसंगे जाए नाए य वीसगुणं, अन्नाए तेरसगुणं। संजय-सावियाणं अन्नाए पन्नरसगुणं, नाए तीसगुणं। संजय-अज्जियाणं अन्नाए सट्ठिगुणं, नाए सयगुणं। देवहरं विणा पुव्वोत्तेहिं वेसाईहिं सह पसंगे जाए नाए उ० ३०, आं० ३०, नि० १००, पु० ५००, ए० १०००, सज्झायलक्ख ३०;
३० अन्नाए एयद्धं। — **गयं मेहुणं।**

देसओ धणधन्नाइनवविहे परिग्गहपमाणाइक्कमे एगगुणाई पंच वि मेया जाव नवगुणा। सव्वओ उण कयपच्चक्खाणस्स परिग्गहे नवविहे वि विहिए चउग्गुणाई जाव बारसगुणा। — **गओ परिग्गहो।**

देसओ दिसिभोगाइसु सत्तसु जाए अइयारे जहक्कमं पंच वि मेया इक्कगुणाई जाव सत्तगुणा। देस-विरइयस्स असणाईनिसिभत्ते कप्पे उ० ३, पंचगुणा* जाव अट्ठगुणा। दुहाहारपच्चक्खाणभंगे उ०

---

* 'कल्पे पंचगुणाः, प्रमादे षड्गुणाः, दर्पे सप्तगुणाः, आकुट्यामष्टगुणाः।'–इति A टिप्पणी।

तह य परिग्गहमाणे खित्ताईणं तु भंगमालोए ।
दिसिमाणे आणयणं अन्नस्स य पेसणं जं वा ॥ ३२ ॥
सचित्तगं तु दव्वं पक्कासण-ण्हाण-पिवण-तंबोलं ।
राईभोयणबंभं पाणस्स य संवरं वियडे ॥ ३३ ॥
वियडे अणत्थविसयं तिल्लाईणं पमाणकरणं तु ।
पाओवएसं च तहा कंदप्पाई अवज्झाणं ॥ ३४ ॥
सामाइयफुसणाई दुप्पणिहाणाइ छिन्नणाईयं ।
दंडगचालणमविहाणकरणं सव्वं च आलोए ॥ ३५ ॥
देसावगासियंमी पुढविक्कायाइ संवरं न करे ।
जयणाइ चीरधुवणे वितहायरणे य अइयारो ॥ ३६ ॥
पोसहकरणे थंडिल्ल वितहकरणं च अविहिसुयणं च ।
बंभे य भत्तविसए देसे सव्वे य पत्थणया ॥ ३७ ॥
अतिहिविभागो य कओ असुद्धभत्तेण साहुवग्गम्मि ।
सद्दहणं चिय न कयं सद्दहण-परूवणावि तहा ॥ ३८ ॥
साहू साहुणिवग्गो गिलाणओसहनिरूवणं न कयं ।
तित्थयराणं भवणे अपमज्जणमाइ जं च कयं ॥ ३९ ॥
तवसंजमजुत्ताणं किच्चं उववूहणाइ जं न कयं ।
दोसुब्भावण मच्छर तं पिय सव्वं समालोए ॥ ४० ॥
तह अन्नधम्मियाणं तेसिं देवाण धम्मबुद्धीए ।
आरंभे य अजयणा धम्मस्स य दूसणा जाओ ॥ ४१ ॥
पायच्छित्तस्स ठाणाइं संखाइयाइं गोयमा ।
अणालोयंतो हु इक्किक्कं ससल्लं मरणं मरे ॥ ४२ ॥
आलोयणं अदाउं सइ अन्नमि य तहप्पणो दाउं ।
जे वि य करिंति सोहिं ते वि ससल्ला मुणेयव्वा ॥ ४३ ॥
चाउम्मासिय वरिसे दायव्वालोयणा व चउकन्ना । –दारं ३ ।
संवेगभाविएणं सव्वं विहिणा कहेयव्वं ॥ ४४ ॥
जह बालो जंपंतो कज्जमकज्जं च उज्जुयं भणइ ।
तं तह आलोइज्जा मायामयविप्पमुक्को उ ॥ ४५ ॥
छत्तीसगुणसमन्नागएण तेणवि अवस्स कायव्वा ।
परसक्खिया विसोही सुट्ठु विवहारकुसलेण ॥ ४६ ॥
जह सुकुसलो वि विज्जो अन्नस्स कहेइ अत्तणो वाहिं ।
एवं जाणंतस्स वि सल्लुद्धरणं परसगासे ॥ ४७ ॥
आयरियाइ सगच्छे संभोइय-इयरगीय-पासत्थे ।
पच्छाकडसारूवी-देवयपडिमा-अरिहसिद्धे ॥ ४८ ॥ –दारं ४ ।
अप्पं पि भावसल्लं अणुद्धियं राय-वणियतणएहिं ।
जायं कडुयविवागं किं पुण बहुयाइं पावाइं ॥ ४९ ॥

न संभरइ जो दोसे सब्भावा न य मायया।
पच्चक्खी साहए ते उ माइणो उ न साहई ॥ १५ ॥
आयारपगप्पाई सेसं सव्वं सुयं विणिद्दिट्ठं।
देसंतरट्ठियाणं गूढपयालोयणा आणा ॥ १६ ॥
गीयत्थेणं दिन्नं सुद्धिं अवहारिऊणं[1] तह चेव।
दिंतस्स धारणा सा उद्धियपयधरणरूवा वा ॥ १७ ॥
दव्वाइ चिंतिऊणं संघयणाईण हाणिमासज्ज।
पायच्छित्तं जीयं रूढं वा जं जहिं गच्छे ॥ १८ ॥
अग्गीओ नवि जाणइ सोहिं चरणस्स देइ ऊणहियं।
तो अप्पाणं आलोयगं च पाडेइ संसारे ॥ १९ ॥
तम्हा उक्कोसेणं खित्तम्मि उ सत्तजोयणसयाइं।
काले बारसवरिसा गीयत्थगवेसणं कुज्जा ॥ २० ॥
आलोयणापरिणओ सम्मं संपट्ठिओ गुरुसगासे।
जइ अंतरा वि कालं करिज्ज आराहओ तह वि ॥ २१ ॥ —दारं १।
जाइ-कुल-विणय-उवसम-इंदियजय-नाण-दंसणसमग्गो।
अणणुतावी[2] अमाई चरणजुया लोयगा भणिया ॥ २२ ॥ —दारं २।
मूलुत्तरगुणविसयं निसेवियं जमिह रागदोसेहिं।
दप्पेण पमाएण व विहिणालोएज्ज तं सव्वं ॥ २३ ॥
पढमं काले विणए बहुमाणुवहाण तह अणिण्हवणे।
वंजण-अत्थ-तदुभये अट्ठविहो नाणमायारो ॥ २४ ॥
नाणपडणीय निण्हव अच्चासायण तहन्तरायं च।
कुणमाणस्सइयारो पढियपुत्थाइपडणीयं ॥ २५ ॥
निस्संकिय निक्कंखिय निव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठी य।
उववूह थिरीकरणे वच्छल्लपभावणे अट्ठ ॥ २६ ॥
चेइयसाहू सावय विण उववूह उचियकरणिज्जं।
जं न कयं तं निंदे मिच्छत्तं जं कयं तं च ॥ २७ ॥
बेइंदिया य जलुया सिमिया किमिया य हुंति पुंअरया।
तेइंदिय मंकोडा जूवा मंकुणग उद्देही ॥ २८ ॥
चउरिंदिय मच्छिय विच्छिया य मसया तहेव तिड्डाय।
पंचिंदिय मंडुक्का पक्खी मूसा य सप्पा य ॥ २९ ॥
अलिये अब्भक्खाणं दिट्ठीवंचणमदत्तदाणंमि।
मेहुणसुमिणासेवण कीडा अंगस्स संफासे ॥ ३० ॥
भत्तारअघपुरिसे केली गुज्झंगफासणा चेव ॥
इत्थी पुरिसाणं पुण वीवाहण-पीडकरणाई ॥ ३१ ॥

---

1 'अवराहिऊण' इति B पाठः। 2 किमिदं मयाऽऽलोचितमिति।

§ ९८. जत्थ य गुरुणो दूरदेसे तत्थ ठवणायरियं ठवित्तु इरियं पडिक्कमिय दुवालसावत्तवंदणं दाउं सोहिं संदिसाविय गाहं भणिय, तद्दिणाओ आरब्भ आलोयणातवं कुणइ । पच्छा गुरूणं समागमे आलोयणं गिण्हइ । सावएणं आलोयणातवे पारद्धे फासुयाहारो सचित्तवज्जणं बंभं अविभूसा कम्मादाणच्चाओ विकहोवहास-कलह-भोगाइरेग-परपरीवाय-दिवासुयणवज्जणं, तिकालं जहसत्ती वि चीवंदणं जिणसाहुपूयणं, रुद्दट्टज्झाणपरिहारो तिविहाहारपच्चक्खाणं पुरिमड्ढे चउविहाहारपरिच्चाओ निव्वीए उस्सग्गेणं उक्कोसदव्वपरीभोगो, निसाए चउविहाहारपच्चक्खाणं कायव्वं । तहा पुप्फवईए कयं चित्तासोयसियसत्तमट्ठमीनवमीकयं च आलोयणातवे पडइ ।

इक्कासणाइ पंचसु तिहीसु जस्सत्थि सो तवं गुरुयं ।
कुणइ इह निव्वियाई पविसइ आलोयणाइतवे ॥ १ ॥
जइ तं तिहिभणियतवं अन्नत्थदिणे करिज्ज विहिसज्जो ।
अह न कुणइ जो सो गुरुतवो वि जं तिहितवे पडइ ॥ २ ॥
पइदिवसं सज्झाए अभिग्गहो जस्स सयसहस्साई ।
सो कम्मक्खयहेऊ अहिगो आलोयणाइतवे ॥ ३ ॥

सज्झाओ य इरियं पडिक्कमिय कालवेलाचउक्कं चित्तासोयसियसत्तमट्ठमीनवमीओ य वज्जिय, मुहे मुहणंतयं वत्थंचलं वा दाउं कायव्वो । न उण पुत्थिओवरि । नवकाराणं च मोणगुणियाणं सहस्सेणं दोण्णि सहस्सा सज्झाओ पविसइ त्ति सामायारी ॥

॥ आलोयणविही समत्तो ॥ ३४ ॥

॥ प्रतिष्ठाविधिः ॥

§ ९९. मूलगुरुंमि पुरंदरपुराभरणीभूए सो अहिणवसूरी पइट्ठापमुहकज्जाइं सयं चिय करेइ । अओ संपयं **पइट्ठाविही** भण्णइ । सो य सक्कयभासाबद्धमंतबहुलो त्ति सक्कयभासाए चेव लिहिज्जइ ।

प्रतिष्ठास्थाने जघन्यतोऽपि हस्तशतप्रमाणक्षेत्रे शोधिते विचित्रवस्त्रोल्लोचे पूर्वोत्तरदिगभिमुखस्य नव्यबिम्बस्य स्थापना । तदनन्तरं श्रीखंडरसद्रवेण ललाटे 'ओं ह्रीं' हृदये 'ओं क्ष्मं' इति बीजानि न्यसनीयानि । गन्धोदकपुष्पादिभिर्भूमिसत्कारः, अमारिघोषणम्, राजप्रच्छनम्, वैज्ञानिकसन्माननम्, संघाह्वानम्, महोत्सवेन पवित्रस्थानाज्जलानयनम्, वेदिकारचना, दिक्पालस्थापनम्, स्नपनकाराश्च समुद्राः सकंकणाः अक्षताङ्गा दक्षा अक्षतेन्द्रियाः कृतकवचरक्षा अखण्डितोज्ज्वलवेषा उपोषिता धर्मबहुमानिनः कुलजाश्चत्वारः करणीयाः । तत्रैव मंगलाचारपूर्वकम्, अविधवाभिश्चतुःप्रभृतिभिर्जीवत्पितृमातृश्वशुरश्वश्रूश्वशुरादिभिः प्रधानोज्ज्वलनेपथ्याभरणाभिर्विशुद्धशीलाभिः सकंकणहस्ताभिर्नारीभिः पञ्चरत्नकषायमृत्तिका-मांगल्यमूलिका-अष्टवर्गसर्वौषध्यादीनां वर्तनं कारणीयं क्रमेण । ततो भूतबलिपूर्वकं[1] विधिना पूर्वप्रतिष्ठितप्रतिमास्नानं क्रियते । ततः सूरिः प्रत्यग्रवस्त्रपरिधानः स्वाङ्गकारक्षुक्तः शुचिरुपोषितो भूत्वा पूर्वप्रतिष्ठितप्रतिमाप्रगचतुर्विधश्रीश्रमणसंघसहितो अधिकृतजिनस्तुत्या देववन्दनं करोति । ततः श्रीशान्तिनाथ-श्रुतदेवी-शासनदेवी-अम्बिका-अच्छुप्ता-समस्तवैयावृत्त्यकराणां कायोत्सर्गकरणम् । ततः सूरिः कङ्कणमुद्रिकादानः प्रदत्तवस्त्रपरिधान आत्मनः सकलीकरणं शुचिविद्यां चारोपयति । तद्यथा—'ओं नमो अरहंताणं हृदये, ओं नमो सिद्धाणं शिरसि, ओं नमो आयरियाणं शिखायाम्, ओं नमो उवज्झायाणं कवचम्, ओं नमो सव्वसाहूणं अस्त्रम् ।

१ 'ओं नमो [illegible]' – इति टिप्पणी ।

लज्जाइ गारवेण व बहुस्सुयमएण वावि दुच्चरियं ।
जे न कहंति गुरूणं न हु ते आराहगा हुंति ॥ ५० ॥
न वि तं सत्थं च विसं च दुप्पउत्तो व कुणइ वेयालो ।
जं कुणइ भावसल्लं अणुद्धियं सव्वदुहमूलं ॥ ५१ ॥
[1]आकंपइत्ता अणुमाणइत्ता जं दिट्ठं बायरं च सुहुमं वा ।
छण्णं सद्दाउलयं बहुजणअव्वत्ततस्सेवी ॥ ५२ ॥
एयदोसविमुक्कं पइसमयं वड्ढमाणसंवेगो ।
आलोइज्ज अकज्जं न पुणो काहं ति निच्छइओ ॥ ५३ ॥
जो भणइ नत्थि इर्णिह पच्छित्तं तस्स दायगो वावि ।
सो कुव्वइ संसारं जम्हा सुत्ते विणिद्दिट्ठं ॥ ५४ ॥
सव्वं पि य पच्छित्तं नवमे पुव्वंमि तइयवत्थुंमि ।
तत्तो चि य निज्जूढो कप्प-पकप्पो य ववहारो ॥ ५५ ॥
ते चिय धरंति अज्जवि तेसु धरंतेसु कह तुमं भणसि ।
वुच्छिन्नं पच्छित्तं तद्दायारो य जा तित्थं ॥ ५६ ॥ –दारं ५ ।
कयपावो वि मणुस्सो आलोइय निंदिय गुरुसगासे ।
होइ अइरेगलहुओ ओहरियभरो व भारवहो ॥ ५७ ॥
आलोइए गुणा खलु वियाणओ मग्गदंसणा चेव ।
सुहपरिणामो य तहा पुणो अकरणम्मि ववहारो ॥ ५८ ॥
निट्ठवियपावपंका सम्मं आलोइउं गुरुसगासे ।
पत्ता अणंतजीवा सासयसुक्खं अणाबाहं ॥ ५९ ॥ –दारं ६ ।
आलोयणमिइ दाउं पडिच्छिउं गुरुविइन्नपच्छित्तं ।
दाऊण खमासमणं भूनिहियसिरो इमं भणइ ॥ ६० ॥
छउमत्थो मूढमणो कित्तियमित्तं पि संभरइ जीवो ।
जं च न सरामि अहं मिच्छामि दुक्कडं तस्स ॥ ६१ ॥
तत्तो गुरुभणियतवं पच्छित्तविसोहणत्थमणुचरइ ।
उववासंबिलनिव्वियं-एगासणपुरिमकाउस्सग्गेहिं ॥ ६२ ॥
इगभत्तपुरिमनिव्वियंबिलेहिं चउ वार ति दुहिं उववासो ।
सज्झायदुसहस्सेहि य काउस्सग्गे य उज्जोया ॥ ६३ ॥
आलोयणगहणविही पुव्वायरियप्पणीयगाहाहिं ।
इय एस गिहत्थाणं जिणपहसूरीहिं अक्खाओ ॥ ६४ ॥

---

[1] "आकम्प्य आराध्य आचार्यं स्तोकं प्रायश्चित्तं मे दास्यति–इत्याचार्यं वैयावृत्त्यादिनाऽऽकम्प्य आलोचयति । अनुमान्य अनुमानं कृत्वा लघुतरापराधनिवेदनादिना मृदुदण्डप्रदायकत्वादिस्वरूपमाचार्यस्याकलय्य, एवं यदाचार्यादिनाऽदृष्टमपराधजातं तदालोचयति, नान्यम् । बादरमेव वाऽऽलोचयति न सूक्ष्मम् । तदवज्ञापरत्वात् सूक्ष्ममेवाऽऽलोचयति न बादरम् । यः किल सूक्ष्ममेवालोचयति स कथं बादरं नालोचयतीत्याचार्यस्य प्रत्ययनार्थम् । छन्नं प्रच्छन्नमालोचयति लज्जालुतादिना, यथा स्वयमेव शृणोति न गुरुः । स्वैरस्वप्नवचनेनालोचयतीत्यर्थः । शब्दाकुलं यथा भवत्येवमगीतार्थं शृणोति तथा पठति । बहुजनं एकस्यापराधस्य बहुभ्यो निवेदनम् । अव्यक्तमिति अव्यक्तस्यागीतार्थस्य गुरोर्दोषाणामालोचनम् । तत्सेवीति यमर्थं विचिन्त्य अगीतार्थस्य आलोचयिष्यामि तत्सेविनो यो गुरुस्तस्मै आलोचनम् ।

सहदेव्यादिसदौषधिवर्ग्गेणोद्वर्त्तितस्य बिम्बस्य ।
तन्मिश्रं बिम्बोपरि पतज्जलं हरतु दुरितानि ॥ ७ ॥

मयूरशिखा-विरहक-अंकोल-लक्ष्मणा-शंखपुष्पी-शरपुंखा-विष्णुक्रान्ता-चक्रांका-सर्प्पाक्षी-महानीलीमूलिकास्नानम् ७ –

सुपवित्रमूलिकावर्ग्गमर्दिते तदुदकस्य शुभधारा ।
बिम्बेऽधिवाससमये यच्छतु सौख्यानि निपतन्ती ॥ ८ ॥

कुष्टं प्रियंगु वचा रोध्रं उशीरं देवदारु दूर्वा मधुयष्टिका ऋद्धिवृद्धिप्रथमाष्टवर्गस्नानम् ८ –

नानाकुष्टाद्यौषधिसन्मृष्टे तद्युतं पतन्नीरम् ।
बिम्बे कृतसन्मन्त्रं कर्मौघं हन्तु भव्यानाम् ॥ ९ ॥

मेद-महामेद-कंकोल-क्षीरकंकोल-जीवक-ऋषभक-नखी-महानखी-द्वितीयाष्टकवर्गस्नानम् ९ –

मेदाद्यौषधिभेदोऽपरोऽष्टवर्ग्गः सुमन्त्रपरिपूतः ।
निपतन् बिम्बस्योपरि सिद्धिं विदधातु भव्यजने ॥ १० ॥

ततः सूरिरुत्थाय गरुडमुद्रया मुक्ताशुक्तिमुद्रया वा परमेष्ठिमुद्रया वा प्रतिष्ठाप्य देवताह्वाननं तदग्रतो भूत्वा ऊर्ध्वः सन् करोति । ओँ नमोऽर्हत्परमेश्वराय चतुर्मुखपरमेष्ठिने त्रैलोक्यगताय अष्टदिग्विभागकुमारीपरिपूजिताय देवाधिदेवाय दिव्यशरीराय त्रैलोक्यमहिताय आगच्छ आगच्छ स्वाहा – इत्यनेन अपरदिक्पालाश्चाहूयन्ते । ओँ इन्द्राय सायुधाय सवाहनाय इह जिनेन्द्रस्थापने आगच्छ आगच्छ स्वाहा । १ । ओँ अग्नये सायुधायेत्यादि आगच्छ आगच्छ स्वाहा । २ । ओँ यमाय सायुधायेत्यादि । ३ । ओँ नैऋतये सायुधायेत्यादि । ४ । ओँ वरुणाय सायुधायेत्यादि । ५ । ओँ वायवे सायुधायेत्यादि । ६ । ओँ कुबेराय सायुधायेत्यादि । ७ । ओँ ईशानाय सायुधाय सवाहनायेत्यादि । ८ । ओँ नागाय सायुधायेत्यादि । ९ । ओँ ब्रह्मणे सायुधायेत्यादि । १० । ततः पुष्पांजलिक्षेपः ।

ततो हरिद्रा-वचा-शोफ-वालक-मोथ-ग्रन्थिपर्णक-प्रियंगु-मुरवास-कर्चूरक-कुष्ट-एला-तज-तमालपत्र-नागकेसर-लवंग-कंकोल-जातीफल-जातिपत्रिका-नख-चन्दन-सिल्हक-प्रभृतिसर्वौषधिस्नानम् १० –

सकलौषधिसंयुक्तया सुगंधया घर्षितं सुगतिहेतोः ।
स्नपयामि जैनबिम्बं मन्त्रिततन्नीरनिवहेन ॥ ११ ॥

अत्र दीपदर्शनमित्येके । ततः 'सिद्धा जिनादि'मन्त्रः सूरिणा दृष्टिदोषघाताय दक्षिणहस्तामर्षेण तत्काले बिम्बे न्यसनीयः । स चायम् – 'इहागच्छन्तु जिनाः सिद्धा भगवन्तः स्वसमयेनेहानुग्रहाय भव्यानां भः स्वाहा' । 'हुं क्षां ह्रीं क्ष्वीं क्ष्वीं ओँ भः स्वाहा' – इत्ययं वा । ततो लोहेनास्पृष्टश्वेतसिद्धार्थरक्षापोट्टलिका करे बन्धनीया तदभिमन्त्रेण । मन्त्रोऽयम् – 'ओँ क्ष्रां क्ष्रीं क्ष्वीं स्वाहा' इत्ययम् । ततश्चन्दनटिक्ककम् । ततो जिनपुरतोऽञ्जलिं बद्ध्वा विज्ञप्तिकावचनं कार्यम् । तच्चेदम् – 'स्वागता जिनाः सिद्धाः प्रसाददाः सन्तु प्रसादं धिया कुर्वन्तु अनुग्रहपरा भवन्तु भव्यानां स्वागतमनुस्वागतम्' ।

ततोऽञ्जलिमुद्रया स्वर्णभाजनस्थार्घं मन्त्रपूर्वकं निवेदयेत् । स च – ओँ भः अर्घं प्रतीच्छन्तु पूजां गृह्णन्तु जिनेन्द्राः स्वाहा । सिद्धार्थदध्यक्षतघृतदर्भरूपश्चार्घ उच्यते । ततः –

---

१ दाग्रेण ग्रहन ।

इति सकलीकरणं। ततः—'ॐ नमो अरिहंताणं, ॐ नमो सिद्धाणं, ॐ नमो आयरियाणं, ॐ नमो उवज्झायाणं, ॐ नमो सव्वसाहूणं, ॐ नमो आगासगामीणं, ॐ हः क्षः नमः'—इति शुचिविद्या। अनया त्रि-पञ्च-सप्तवारान् आत्मानं परिजपेत्। ततः स्नपनकारान् अभिमन्त्र्य अभिमन्त्रितदिशाबलिप्रक्षेपणं धूमसहितं सोदकं क्रियते। 'ॐ ह्रीं क्ष्वीं सर्वोपद्रवं बिम्बस्य रक्ष रक्ष स्वाहा—इत्यनेन बल्यभिमन्त्रणम्। ततः कुसुमांजलिक्षेपः। नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः।

अभिनवसुगन्धिविकसितपुष्पौघभृता सुधूपगन्धाढ्या।
बिम्बोपरि निपतन्ती सुखानि पुष्पाञ्जलिः कुरुताम्॥ १॥

तदनन्तरं आचार्येण मध्याङ्गुलीद्वयोर्ध्वीकरणेन बिम्बस्य तर्जनीमुद्रा रौद्रदृष्ट्या देया। तदनन्तरं वामकरे जलं गृहीत्वा आचार्येण प्रतिमा आच्छोटनीया। ततश्चन्दनतिलकं पुष्पैः पूजनं च प्रतिमायाः। ततो मुद्गरमुद्रादर्शनम्, अक्षतभृतस्थालदानम्, वज्रगरुडादिमुद्राभिर्बिम्बस्य चक्षूरक्षामन्त्रेण 'ॐ ह्रीं क्ष्वीं०' इत्यादिना कवचं करणीयम्, दिग्बन्धश्च अनेनैव। ततः श्रावकाः सप्तधान्यं सण-लाज-कुलत्थ-यव-कंगु-उडद-सर्षपरूपं प्रतिमोपरि क्षिपन्ति। ततो जिनमुद्रया कलशाभिमन्त्रणम्। जलाद्यभिमन्त्रणमन्त्राश्चैते—ॐ नमो यः सर्वं शरीरावस्थिते महाभूते आ ३ आप ४ ज ४ जलं गृह्ण गृह्ण स्वाहा। **जलाभिमन्त्रणमन्त्रः।** ॐ नमो यः शरीरावस्थिते पृथु पृथु गन्धान् गृह्ण गृह्ण स्वाहा। **गन्धाधिवासनमन्त्रः।** सर्वौषधिचन्दनसमालभनमन्त्रश्च—ॐ नमो यः सर्वतो मे मेदिनि पुष्पवति पुष्पं गृह्ण गृह्ण स्वाहा। **पुष्पाभिमन्त्रणमन्त्रः।** ॐ नमो यः सर्वतो बलिं दह दह महाभूते तेजाधिपति धुधु धूपं गृह्ण गृह्ण स्वाहा। **धूपाभिमन्त्रणमन्त्रः।** ततः पञ्चरत्नकषायग्रन्थिर्बिम्बस्य दक्षिणकराङ्गुल्यां बध्यते।

ततः सूत्रधारेणैककलशेन प्रतिमायां स्थापितायां पञ्चमङ्गलपूर्वकं मुद्रामन्त्राधिवासितैर्जलादिद्रव्यैर्गीततूर्यपूर्वकं सकुशलस्नात्रकारैः स्नात्रकरणमारभ्यते। तद्यथा, सहिरण्यकलशचतुष्टयस्नानम् १—

सुपवित्रतीर्थनीरेण संयुतं गन्धपुष्पसन्मिश्रम्।
पततु जलं बिम्बोपरि सहिरण्यं मन्त्रपरिपूतम्॥ २॥

सर्वस्नात्रेष्वन्तरा शिरसि पुष्पारोपणं चन्दनटिक्कं धूपोत्पाटनं च कर्त्तव्यम्।

ततः प्रवालमौक्तिकसुवर्णरजतताम्रगर्भं पञ्चरत्नजलस्नानम् २—

नानारत्नौघयुतं सुगन्धिपुष्पाधिवासितं नीरम्।
पततात् विचित्रवर्णं मन्त्राढ्यं स्थापनाबिम्बे॥ ३॥

ततः प्लक्षअश्वत्थउदुम्बरशिरीषवटांतरच्छल्लीकषायस्नानम् ३—

प्लक्षाश्वत्थोदुम्बरशिरीषछल्ल्यादिकल्कसन्मृष्टे।
बिम्बे कषायनीरं पततादधिवासितं जैने॥ ४॥

ततो गजवृषभविषाणोद्धृतपर्वतवल्मीकमहाराजद्वारनदीसङ्गमोभयतटपद्मतडागोद्भवमृत्तिकास्नानम् ४—

पर्वतसरोनदीसंगमादिमृद्भिश्च मन्त्रपूताभिः।
उद्धृत्य जैनबिम्बं स्नपयाम्यधिवासनासमये॥ ५॥

ततश्छगणमूत्रघृतदधिदुग्धदर्भरूपगवांगदर्भोदकेन पञ्चगव्यस्नानम् ५—

जिनबिम्बोपरि निपततु घृतदधिदुग्धादिद्रव्यपरिपूतम्।
दर्भोदकसन्मिश्रं पञ्चगवं हरतु दुरितानि॥ ६॥

सहदेवी-बला-शतमूली-शतावरी-कुमारी-गुहा-सिंही-व्याघ्रीसदौषधिस्नानम् ६—

दर्शनं च। ततः प्रियंगुकर्पूरगोरोचनाहस्तलेपो हस्ते दीयते। अधिवासनामंत्रेण करे पार्श्वत ऋद्धिवृद्धिसमेत-विद्धमदनफलाख्यकंकणबन्धनम्। स चायम्—'ॐ नमो खीरासवलद्धीणं, ॐ नमो महुयासवलद्धीणं, ॐ नमो संभिन्नसोईणं, ॐ नमो पयाणुसारीणं, ॐ नमो कुट्ठबुद्धीणं, जमियं विज्जं पउंजामि सा मे विज्जा पसिज्जउ, ॐ अवतर अवतर सोमे सोमे कुरु कुरु ॐ वग्गु वग्गु निवग्गु सुमणे सोमणसे महुमहुरे कविल ॐ कक्षः स्वाहा'—अधिवासनामंत्रः। यद्वा—'ॐ नमः शान्तये हूं क्षूं हूं सः'—कंकणमंत्रः। अधिवासना-मंत्रेणैव—'ॐ स्थावरे तिष्ठ तिष्ठ स्वाहा'—इति स्थिरीकरणमंत्रेण वा मुक्ताशुक्त्या बिम्बे पञ्चांगस्पर्शः। मस्तक १ स्कन्ध २ जानु २ वारसप्त सप्त चक्रमुद्रया वा। धूपश्च निरंतरं दातव्यः। परमेष्ठिमुद्रां सूरिः करोति। पुनरपि जिनाह्वानम्। ततो निषद्यायामुपविश्यासनमुद्रया मध्यात्प्रभृति नन्द्यावर्त्तनामकर्पूरेण पूजयेत्। वक्ष्यमाणक्रमेण सदशाव्यंगवस्त्रेण तमाच्छादयेत्। तदुपरि नालिकेरप्रदानम्। तदुपरि संकल्प-मात्रेण प्रतिष्ठाप्य बिम्बस्थापनं चलप्रतिष्ठाख्यापनाय। ततः प्रधानफलैर्नन्द्यावर्त्तस्य पूजनं चतुर्विंशत्या पत्रैः पूरैश्च पूजनीयः। ततो विचित्रबलिविधानम्। यथा—जंबीर-बीजपूरक-पनसाम्र-दाडिमेक्षुवृक्ष—इत्यादिफल-ढौकनम्। ततश्चतुःकोणकेषु वेदिकायाः पूर्वं न्यस्तायाश्चतुस्तन्तुवेष्टनम्, चतुर्दिशं श्वेतवारकोपरि गोधूम-व्रीहि-यवानां यववारकाः स्थाप्याः। ततो द्राक्षा-खर्जूर-वर्पोलक-ऊतती-अक्षोटक-वायम्ब-इत्यादिढौकनम्। ततो बाट्ठ-खीरि-करंबुउ-कीसरि-कूर-सींधँवडि-पूयली-सरावु ७ दीयन्ते। काकरिया मुगसत्का ५, यवसत्क ५ गोहू ५ चिणा ५ तिलसत्क ५ सुंहाली खाजा लाड्डू मांडी मुरकी इत्यादि प्रचूरबलिढौकनम्। पुनः सूत्र-सहितसहिरण्यचंदनचर्चितकलशाश्चत्वारः प्रतिमानिकटे स्थाप्यन्ते। घृतगुडसमेतमंगलप्रदीप ४ स्वस्तिक-पट्टस्य चतसृष्वपि दिक्षु सकपर्दक-सहिरण्य-सजल-सधान्य-चतुर्वारकस्थापनम्। तेषु च सुकुमालिकाकंकणानि करणीयानि, यववाराश्च स्थाप्याः। पूर्णकौसुम्भरक्तवस्त्रसूत्रेण चतुर्गुणं वेष्टनं वारकाणाम्। ततः शक्रस्तवेन चैत्यवन्दनं कृत्वा अधिवासनालग्नसमये कण्ठे कुसुम्भसूत्रेण पुष्पमालासमेतऋद्धिवृद्धियुतमदनफलारोपणपूर्वकं चन्दनयुक्तेन पुष्पवासधूपभृत्यग्राधिवासितेन वस्त्रेण सदशेन वदनाच्छादनं माइसाडी चारोप्यते। तदुपरि चन्दनच्छटा सूरिणा सूरिमंत्रेणाधिवासनं च वारत्रयं कार्यम्। ततो गन्धपुष्पयुक्तसप्तधान्यस्नपनमञ्जलिभिः। तच्चेदम्—शालि-यव-गोधूम-मुद्ग-वल्ल-चणक-चवला इति। ततः पुष्पारोपणं धूपोत्पाटनम्। ततस्त्रीभिर-विधवाभिश्चतसृभिरधिकाभिर्वा प्रोक्षणकम्, यथाशक्ति हिरण्यदानं च। ताभिरेव पुनः प्रचुरलड्डुकादिबलि-करणम्। ततः पुटिका ३६० दीयन्ते। साम्प्रतं क्रयाणकानि ३६० संमील्य एकैव पुटिका शरावे कृत्वा प्रतिमाग्रे दीयते, इति दृश्यते। ततः श्राद्धा आरत्रिकावतारणं मंगलप्रदीपं च कुर्वन्ति। चैत्यवन्दनं कायो-त्सर्गोऽधिवासनादेव्याश्चतुर्विंशतिस्तवचिन्तनम्। तस्या एव स्तुतिः—

विश्वाशेषेषु वस्तुषु मन्त्रैर्याऽजस्रमधिवसति वसतौ।
सेमामवतरतु श्रीजिनतनुमधिवासनादेवी॥ १॥

यद्वा—**पातालमन्तरिक्षं भवनं वा या समाश्रिता नित्यम्।**
साऽत्रावतरतु जैनीं प्रतिमामधिवासनादेवी॥ २॥

ततः श्रुतदेवी १ शान्ति २ अम्बा ३ क्षेत्र ४ शासनदेवी ५ समस्तवैयावृत्त्य ६ कायोत्सर्गः।

या पाति शासनं जैनं सद्यः प्रत्यूहनाशिनी।
साऽभिप्रेतसमृद्ध्यर्थं भूयाच्छासनदेवता॥ १॥

पुनरपि धारणोपविश्य कार्या सूरिणा—'स्वागता जिनाः सिद्धा—' इत्यादिनेति। अधिवासनाविधिरयम्।

---

1 'तिलतंदुलमाषाः समराद्याः।' 2 'चूरिमानी पींडी' इति टिप्पणी।

इन्द्रमग्निं यमं चैव नैऋतं वरुणं तथा ।
वायुं कुबेरमीशानं नागान् ब्रह्माणमेव च ॥ १२ ॥

'ॐ इन्द्राय आगच्छ आगच्छ अर्घं प्रतीच्छ प्रतीच्छ पूजां गृह्ण गृह्ण स्वाहा' – एवमेव शेषाणामपि नवानां आह्वानपूर्वकं अर्घनिवेदनं च । ततः कुसुमस्नानम् ११ –

अधिवासितं सुमन्त्रैः सुमनः किंजल्कराजितं तोयम् ।
तीर्थजलादिसु पृक्तं कलशोन्मुक्तं पततु विम्बे ॥ १३ ॥

ततः सिह्लक-कुष्ट-सुरमांसि-चंदन-अगरु-कर्पूरादियुक्तगन्धस्नानिकास्नानम् १२ –

गन्धाङ्गस्नानिकया सन्मृष्टं तदुदकस्य धाराभिः ।
स्नपयामि जैनविम्बं कर्म्मौघोच्छित्तये शिवदम् ॥ १४ ॥

गन्धा एव शुक्लवर्णा वासा उच्यन्ते, त एव मनाक् कृष्णा गन्धा इति । ततो वासस्नानम् १३–

हृद्यैराल्हादकरैः स्पृहणीयैर्मन्त्रसंस्कृतैर्जैनम् ।
स्नपयामि सुगतिहेतोर्बिम्बं अधिवासितं वासैः ॥ १५ ॥

ततश्च चन्दनस्नानम् १४ –

शीतलसरससुगन्धिर्मनोमतश्चन्दनद्रुमसमुत्थः ।
चन्दनकल्कः सजलो मन्त्रयुतः पततु जिनविम्बे ॥ १६ ॥

ततः कुंकुमस्नानम् १५ –

काश्मीरजसुविलिप्तं विम्बं तन्नीरधारयाऽभिनवम् ।
सन्मन्त्रयुक्तया शुचि जैनं स्नपयामि सिद्ध्यर्थम् ॥ १७ ॥

तत आदर्शकदर्शनं शंखदर्शनं च विम्बस्य । ततस्तीर्थोदकस्नानम् १६ –

जलधिनदीह्रदकुण्डेषु यानि तीर्थोदकानि शुद्धानि ।
तैर्मन्त्रसंस्कृतैरिह विम्बं स्नपयामि सिद्ध्यर्थम् ॥ १८ ॥

ततः कर्पूरस्नानम् १७ –

शशिकरतुषारधवला उज्वलगन्धा सुतीर्थजलमिश्रा ।
कर्पूरोदकधारा सुमन्त्रपूता पततु विम्बे ॥ १९ ॥

ततः पुष्पाञ्जलिक्षेपः १८ –

नानासुगन्धपुष्पौघरञ्जिता चञ्चरीककृतनादा ।
धूपामोदविमिश्रा पततात् पुष्पाञ्जलिर्बिम्बे ॥ २० ॥

ततः शुद्धजलकलश १०८ स्नानम् १९–

चक्रे देवेन्द्रराजैः सुरगिरिशिखरे योऽभिषेकः पयोभि-
र्नृत्यन्तीभिः सुरीभिर्ललितपदगमं तूर्यनादैः सुदीप्तैः ।
कर्तुं तस्यानुकारं शिवसुखजनकं मन्त्रपूतैः सुकुम्भै-
र्जैनं विम्बं प्रतिष्ठाविधिवचनपरः स्नापयाम्यत्र काले ॥ १९ ॥

तत आचार्यमंत्रेणाधिवासनामंत्रेण वाऽभिमंत्रितचन्दनेन सूरिर्वामकरधृतदक्षिणकरेण प्रतिमां सर्वाङ्ग-मालेपयति, कुसुमारोपणं धूपोत्पाटनं वासनिक्षेपः सुरभिमुद्रादर्शनम् । पद्ममुद्रा ऊर्ध्वा दर्श्यते, अञ्जलिमुद्रा-

जिणघरनिवासिणो नियनिलयट्ठिया पवियारिणो सन्निहिया असन्निहिया य ते सव्वे विलेवणधूवपुप्फफलसणाहं बलिं पडिच्छंता तुट्ठिकरा भवन्तु पुट्ठिकरा भवन्तु सिवकरा संतिकरा भवन्तु, सत्थयणं कुवन्तु, सव्वजिणाणं सन्निहाणपभावओ पसन्नभावत्तणेण सव्वत्थ रक्खं कुव्वंतु, सव्वत्थ दुरियाणि नासिंतु, सव्वासिवमुवसमन्तु, संतितुट्ठिपुट्ठिसिवसत्थयणकारिणो भवन्तु स्वाहा' । ततः संघसहितः सूरिश्चैत्यवन्दनं करोति । कायोत्सर्गाः श्रुतदेव्यादीनां पर्यन्ते प्रतिष्ठादेव्याश्च । 'यदधिष्ठिताः' प्रतिष्ठास्तुतिश्च दातव्या । शक्रस्तवपाठः, शान्तिस्तवभणनम् । ततोऽखंडाक्षताञ्जलिभृतलोकसमेतेन मंगलगाथापाठः कार्यः । नमोऽर्हत्सिद्धेत्यादिपूर्वकम्, यथा—

जह सिद्धाण पइट्ठा तिलोयचूडामणिम्मि सिद्धिपए ।
आचंदसूरियं तह होउ इमा सुप्पइट्ठ त्ति ॥ १ ॥
जह सग्गस्स पइट्ठा समत्थलोयस्स मज्झियारम्मि । आचंद० ॥ २ ॥
जह मेरुस्स पइट्ठा दीवसमुद्दाण मज्झियारम्मि । आचंद० ॥ ३ ॥
जह जम्बुस्स पइट्ठा जंबुद्दीवस्स मज्झियारम्मि । आचंद० ॥ ४ ॥
जह लवणस्स पइट्ठा समत्थउदहीण मज्झियारम्मि । आचंद० ॥ ५ ॥

इति पठित्वा अक्षतान् निक्षिपेत् पुष्पाञ्जलींश्च क्षिपेत् । ततः प्रवचनमुद्रया सूरिणा धर्मदेशना कार्या । ततः संघाय दानं मुखोद्घाटनं दिनत्रयं पूजा अष्टाह्निका पूजा वा । तत्रापि प्रशस्तदिने तृतीये पञ्चमे सप्तमे वा स्नात्रं कृत्वा जिनबलिं विधाय भूतबलिं प्रक्षिप्य चैत्यवन्दनं विधाय कंकणमोचनार्थं कायोत्सर्गः, नमस्कारस्य चिन्तनं भणनं च । प्रतिष्ठादेवताविसर्जनकायोत्सर्गः । चतुर्विंशतिस्तवचिन्तनं तस्यैव पठनं श्रुतदेवता १, शान्ति० २,—

उन्मृष्टरिष्टदुष्टग्रहगतिदुःस्वप्नदुर्निमित्तादि ।
संपादितहितसम्पन्नामग्रहणं जयति शान्तेः ॥

क्षेत्रदेवतासमस्तवैयावृत्यकरकायोत्सर्गाः । ततः सौभाग्यमंत्रन्यासपूर्वकं मदनफलोत्तारणम् । स च— 'ॐ अवतर अवतर सोमे'—इत्यादि । ततो नन्द्यावर्त्तपूजनं विसर्जनं च । 'ॐ विसर विसर स्वस्थानं गच्छ गच्छ स्वाहा' —नन्द्यावर्त्तविसर्जनमंत्रः । 'ॐ विसर विसर प्रतिष्ठादेवते स्वाहा' — इति प्रतिष्ठादेवताविसर्जनमंत्रः । ततो घृतदुग्धदध्यादिभिः स्नानं विधाय अष्टोत्तरशतेन वारकाणां स्नानम् । प्रतिष्ठावृत्तौ द्वादशमासिकस्नपनानि कृत्वा पूर्णे वत्सरेऽष्टाह्निकां विशेषपूजां च विधाय आयुर्ग्रन्थिं निबन्धयेत् । उत्तरोत्तरपूजा च यथा स्यात्तथा विधेयम् ।

लिप्पाइमए वि विही बिंबे एसेव किंतु सविसेसं ।
कायव्वं ण्हवणाई दप्पणसंकंतपडिबिंबे ॥ १ ॥

'ॐ क्षि नमः' अंबिकादीनामधिवासनामंत्रः । 'ॐ ह्रीं क्ष्रूं नमो वीराय स्वाहा' —तेषामेव प्रतिष्ठामंत्रः । यद्वा 'ॐ ह्रीं क्ष्मीं स्वाहा' प्रतिष्ठामंत्रः । अंजल्याकारहस्तोपरि हस्त आसनमुद्रा, चप्पुटिका प्रवचनमुद्रा ।

थुइदाणमंतनासो आहवणं तह जिणाण दिसिबंधो ।
नेत्तुम्मीलणदेसण गुरु अहिगारा इहं कप्पो ॥ १ ॥
राया बलेण वड्ढइ जसेण धवलेइ सयलदिसिभाए ।
पुण्णं वड्ढइ विउलं सुपइट्ठा जस्स देसम्मि ॥ २ ॥
उवहणइ रोगमारी दुब्भिक्खं हणइ कुणइ सुहभावे ।
भावेण कीरमाणा सुपइट्ठा सयललोयस्स ॥ ३ ॥

-§ १००. अधिवासना रात्रौ दिवा प्रतिष्ठा प्रायशः कार्या । इतरथापि किञ्चित्कालं स्थित्वा विभिन्ने प्रतिष्ठालग्ने प्रतिष्ठा विधेया । तत्र प्रथमं शान्तिदेवतामंत्रेणाभिमंत्र्य शान्तिबलिः । शान्तिदेवतामंत्रश्चायम्–'ॐ नमो भगवते अर्हते शान्तिनाथस्वामिने सकलातिशेषमहासम्पत्समन्विताय त्रैलोक्यपूजिताय नमो नमः शान्तिदेवाय सर्वामरसमूहस्वामिसंपूजिताय भुवनजनपालनोद्यताय सर्वदुरितविनाशनाय सर्वाशिवप्रशमनाय सर्वदुष्टग्रहभूत-पिशाचमारिशाकिनीप्रमथनाय नमो भगवति जये विजये अजिते अपराजिते जयन्ति जयावहे सर्वसंघस्य भद्रकल्याणमंगलप्रदे साधूनां श्रीशान्तितुष्टिपुष्टिदे च स्वस्तिदे च भव्यानां सिद्धिवृद्धिनिर्वृत्तिनिर्वाणजनने सत्त्वानामभयप्रदानरते भक्तानां शुभावहे सम्यग्दृष्टीनां धृतिरतिमतिबुद्धिप्रदानोद्यते जिनशासनरतानां श्रीसम्प-त्कीर्त्तियशोवर्द्धनि रोगजलज्वलनविषविषधरदुष्टज्वरव्यन्तरराक्षसरिपुमारिचौरइतिश्वापदोपसर्गादिभयेभ्यो रक्ष रक्ष शिवं कुरु कुरु शान्तिं कुरु कुरु तुष्टिं कुरु कुरु पुष्टिं कुरु कुरु ॐ नमो नमः ह्रूं ह्रः यः क्षः ह्रीं फुट् स्वाहा' । ततश्चैत्यवन्दनम् । प्रतिष्ठादेवतायाः कायोत्सर्गः, चतुर्विंशतिस्तवचिन्तनम् । ततः स्तुतिदानम्–

यदधिष्ठिताः प्रतिष्ठाः सर्वाः सर्वास्पदेषु नन्दन्ति ।
श्रीजिनबिम्बं सा विशतु देवता सुप्रतिष्ठमिदम् ॥ १ ॥

शासनदेवी – क्षेत्रदेवी – समस्तवैयावृत्त्य० धूपमुत्क्षिप्याच्छादनमपनयेत् लग्नसमये । ततो घृतभाजनमग्रे कृत्वा सौवीरकं घृतमधुशर्करागजमदकर्पूरकस्तूरिकाभृतरूप्यवर्त्तिकायां[1] सुवर्णशलाकया 'अर्हं अर्हं' इति वा बीजेन नेत्रोन्मीलनं वर्णन्यासपूर्वकम्; यथा–ह्रां ललाटे, श्रीं नयनयोः, ह्रीं हृदये, रैं सर्वसन्धिषु, क्ष्रौं प्राकारः । कुम्भकेन न्यासः । शिरस्यभिमंत्रितवासदानम्, दक्षिणकर्णे श्रीखण्डादिचर्चिते आचार्यमंत्रन्यासः । प्रतिष्ठामंत्रेण त्रि ३ पञ्च ५ सप्तवारान् सर्वाङ्गं प्रतिमां स्पृशेत् चक्रमुद्रया । सामान्ययतिं प्रति मंत्रो यथा–'वीरे वीरे जयवीरे सेणवीरे महावीरे जये विजये जयन्ते अपराजिए ॐ ह्रीं स्वाहा' अयं प्रतिष्ठामंत्रः । ततो दधिभाण्डदर्शनम्, आदर्शकदर्शनम्, शंखदर्शनम्, दृष्टेश्चक्षूरक्षणाय सौभाग्याय स्थैर्याय च समुद्रा मंत्रा न्यसनीयाः । 'ॐ अवतर अवतर सोमे सोमे कुरु कुरु वग्गु वग्गु' इत्यादिकाः । ततः सौभाग्यमुद्रादर्शनं १, सुरभिमुद्रा २, प्रवचनमुद्रा ३, कृतांजलिः ४, गुरुडा पर्यन्ते । पुनरप्यवमिननं[2] स्त्रीभिः । इह च स्थिरप्रतिमाऽधो घृतवर्त्तिका श्रीखंडं तंदुलयुतपञ्चधातुकं कुम्भकारचक्रमृत्तिकासहितं पूर्वमेव बिम्बनिवेशसमये न्यसेत् । ततः–'ॐ स्थावरे तिष्ठ तिष्ठ स्वाहा'–इति स्थिरीकरणमंत्रो ऽवमिननोर्ध्वं न्यसनीयः । चलप्रतिष्ठायां तु नैषः । नवरं चलप्रतिमाऽधः सशिरस्कदर्भो वालिका[3] च प्रथमत एव वामांगे [4]न्यसनीया । तत्र च–'ॐ जये श्रीं ह्रीं सुभद्रे नमः'–इति मंत्रश्च प्रतिष्ठानन्तरं न्यस्यः । ततः पद्ममुद्रया रत्नासनस्थापनं कार्यमिदं वदता, यथा–इदं रत्नमयमासनमलंकुर्वन्तु, इहोपविष्टा भव्यानवलोकयन्तु, हृष्टदृष्टा जिनाः स्वाहा । ॐ इये[5] गंधान्यः प्रतीच्छतु स्वाहा । ॐ इये पुष्पाणि गृह्णन्तु स्वाहा । ॐ इये धूपं भजंतु स्वाहा । ॐ इये भूतबलिं जुषन्तु स्वाहा । ॐ इये सकलसत्त्वालोककर अवलोकय भगवन् अवलोकय स्वाहा–इति पठित्वा पुष्पांजलित्रयं क्षिपेत् । ततो वस्त्रालंकारादिभिः समस्तपूजा, माढसाडी-कंकणिकारोपश्च, पुष्पारोपणं बल्यादिश्च । मोरिंडा-सुहालीप्रभृतिका दीयते । ततो लवणावतारणम्, आरत्रिकावतारणम्, मंगलप्रदीपः कार्यः । अत्रापि भूतबलिप्रक्षेप इत्येके । भूतबल्यभिमंत्रणमंत्रस्त्वयम्–'ॐ नमो अरिहंताणं, ॐ नमो सिद्धाणं, ॐ नमो आयरियाणं, ॐ नमो उवज्झायाणं, ॐ नमो लोए सव्वसाहूणं, ॐ नमो आगासगामीणं, ॐ नमो चारणाइलद्धीणं, जे इमे नरकिंनरकिंपुरिसमहोरगगुरुलसिद्धगंधव्वजक्खरक्खसपिसायभूयपेयडाइणिपभियओ

1 वाटली । 2 प्रोक्षणं । 3 वेलू । 4 न्यसैव बिम्बं निवेशयम् । 5 'क्वचिदिदं कूटं सानुस्वारं द्विमात्रं (इय) दृश्यते ।' इति B टिप्पणी ।

सव्वविलेवणसूरी पुप्फाइं धूववासमयणफलं ।
सुरही पउमा पउमा अंजलिमुद्दाओ हत्थलेवो य ॥ १० ॥
अहिवासणमंतेणं कंकण तेणेव चक्कमुद्दाए ।
पंचंगफास पुण जिणआह्वणं नंदपूया य ॥ ११ ॥
सत्त सरावा चंदणचच्चियकलसा सतंतुणो चउरो ।
घयगुलदीवा चउरो चउकलसा नंदवत्तस्स ॥ १२ ॥
सक्कत्थयअहिवासणसमए छाएहि माइसाडीए ।
सूरिमंताहिवासण-ण्हवणंजलि सत्तधन्नस्स ॥ १३ ॥
पुंखणयकणयदाणं वलिलड्डुयमाइ पुडिय आरतियं ।
चिइअहिवासण देवयथुइधारण सागयाईहिं ॥ १४ ॥

॥ अधिवासनाधिकारः समाप्तः ॥

*

अथ प्रतिष्ठाधिकारः–

संतिवलि चिइपइट्ठा उस्सग्गो थी य भायणं नित्ते ।
वन्नसिरि वास कन्ने मंतो सव्वंगफास चक्केणं ॥ १५ ॥
दहिभंड मंत मुद्दा पुंखण पुप्फंजलीउ मंतेणं ।
भूयवलि लवणरत्तिय चिइ अक्खय धम्मकह महिमा ॥ १६ ॥
तइय पण सत्तमदिणे जिणवलि भूयवलि वंदिउं देवे ।
कंकणमोयणहेउं पइट्ठ उस्सग्ग मंत नसे ॥ १७ ॥
काउं पूयविसग्गो नंदावत्तस्स कंकणच्छोडे ।
पंचपरमेट्ठिथुयं मंगलगाहाओ पढमाणो ॥ १८ ॥

*

§ १०१. अथ नन्द्यावर्त्तस्थापना लिख्यते–कर्पूरसन्मिश्रेण प्रधानश्रीखण्डेन लोहेनास्पृष्टैकखण्डश्रीपर्ण्यादिपट्टके सप्तलेपाः क्रमेण दीयन्ते उपर्यधश्च । कर्पूर-कस्तूरिका-गोरोचना-कुंकुम-केसररसेन जातिलेखिन्या प्रथमं नन्द्यावर्त्तो लिख्यते प्रदक्षिणया नवकोणः । ततस्तन्मध्ये प्रतिष्ठाप्यजिनप्रतिमा, तत्पार्श्वे एकत्र शक्रः, अन्यत्रेशानः, अधः श्रुतदेवता । ततो नन्द्यावर्त्तस्योपरिवलके गृहाष्टकरचिते 'नमोऽर्हद्भ्यः, नमः सिद्धेभ्यः, नम आचार्येभ्यः, नम उपाध्यायेभ्यः, नमः सर्वसाधुभ्यः, नमो ज्ञानाय, नमो दर्शनाय, नमश्चारित्राय' । ततः पूर्वादिषु चतुर्द्वारेषु तुंबरप्रतीहारः; तथा सोमः, यमः, वरुणः, कुबेरः; तथा धनुः-दण्ड-पाश-गदाचिह्नानि । इति प्रथमवलकः । तस्योपरि द्वितीयवलके पूर्वादिप्रतोल्यन्तरेषु आग्नेयादिषु गृहषट्क-षट्कविरचितेषु क्रमेण प्रतिगृहं मरुदेव्यादिजिनमातरो लिख्यन्ते–मरुदेवि १, विजया २, सेना ३, सिद्धत्था ४, मंगला ५, सुसीमा ६, पुहवी ७, लक्खणा ८, रामा ९, नंदा १०, विण्हू ११, जया १२, सामा १३, सुजसा १४, सुव्वया १५, अइरा १६, सिरी १७, देवी १८, पभावई १९, पउमा २०, वप्पा २१, सिवा २२, वम्मा २३, तिसला २४ ।–इति द्वितीयः । तृतीयवलके पूर्वाद्यन्तरालेषु गृहचतुष्टय-चतुष्टयविरचितेषु षोडशविद्यादेव्यो लिख्यन्ते–रोहिणी १, पन्नत्ती २, वज्जसिंखला ३, वज्जंकुसी ४, अपडिचक्का ५, पुरिसदत्ता ६, काली ७, महाकाली ८, गोरी ९, गांधारी १०, सव्वत्थमहाजाला ११, माणवी १२, वइरोट्टा १३,

जिणबिंबपइट्ठं जे करिंति तह कारविंति भत्तीए।
अणुमन्नइ पइदियहं सव्वे सुहभायणं हुंति ॥ ४ ॥
दव्वं तमेव मन्नइ जिणबिंबपइट्ठणाइकज्जेसु।
जं लग्गइ तं सहलं दुग्गइजणणं हवइ सेसं ॥ ५ ॥
एवं नाऊण सया जिणवरबिंबस्स कुणह सुपइट्ठं।
पावेह जेण जरमरणवज्जियं सासयं ठाणं ॥ ६ ॥ –इत्येते प्रतिष्ठागुणाः।

कमलवने पाताले क्षीरोदे संस्थिता यदि स्वर्गे।
भगवति कुरु सांनिध्यं बिम्बे श्रीश्रमणसंघे च ॥ १ ॥

प्रतिष्ठानन्तरमिमां गाथां पठता वासा अक्षताश्च देवशिरसि दीयन्ते। 'ॐ विद्युत्पुलिङ्गे महाविद्ये सर्वकल्मषं दह दह स्वाहा'–कल्मषदहनमंत्रः। 'ॐ हूं क्ष्रूं फुट् किरीटि किरीटि घातय घातय परविघ्नान् स्फोटय स्फोटय सहस्रखण्डान् कुरु कुरु परमुद्रां छिन्द छिन्द, परमंत्रान् भिन्द भिन्द क्षः फुट् स्वाहा'–सिद्धार्थानभिमंत्र्य सर्वदिक्षु प्रक्षिपेत्। विघ्नशान्तिः प्रतिष्ठाकाले। ॐ ह्रां ललाटे, ॐ ह्रीं वामकर्णे, ॐ हुं दक्षिणकर्णे, ॐ हुं शिरःपश्चिमभागे, ॐ हुं मस्तकोपरि, ॐ क्ष्मीं नेत्रयोः, ॐ क्ष्मीं मुखे, ॐ क्ष्मीं कण्ठे, ॐ क्ष्मीं हृदये, ॐ क्ष्मः बाह्वोः, ॐ क्रौं उदरे, ॐ ह्रीं कटौ, ॐ हूं जंघयोः, ॐ क्ष्मूं पादयोः, ॐ क्षः हस्तयोरिति कुंकुमश्रीखंडकर्पूरादिना चक्षुःप्रतिस्फोटनिवारणाय प्रतिमायां लिखेत्।

अथोक्तप्रतिष्ठाविधिसंग्रहगाथाः संक्षेपार्थं लिख्यन्ते–

पुव्वं पडिमण्हवणं चिइ उस्सग्ग थुइ अप्पण्हवणयारेसु।
रक्खा कुसुमाणंजलि तज्जणिपूयं च तिलयं वा ॥ १ ॥
मोग्गरमक्खयथालं वज्जं गुरुडो पली [ॐ ह्रीं क्ष्वीं] समंतेणं।
कवयं दिसिबंधो चिय पक्खिवणं सत्तधन्नस्स ॥ २ ॥
कलसहिमंतणसघोसहिचंदणचच्चियमंतेणं।
पंचरयणस्स गंठी परमेट्ठीपंचगं ण्हवणं ॥ ३ ॥
पढमं हिरण्णसह'-पंचरयणं-सकसायमट्टियाण्हवणं।
दब्भोदयमीसं पंचगव्वण्हवणं च पंचमयं ॥ ४ ॥
महदेवाईमयोसहीण 'वग्गो य मूलियावग्गो'।
पढमट्ठवग्ग' बीयट्ठवग्ग' ण्हवणं तहा नवमं ॥ ५ ॥
जिणदिसपालाह्वणं कुसुमंजलिसयओसहीण्हवणं'।
दाहिणकरमरिसेणं जिणमंगो मरिसयोद्दलिया ॥ ६ ॥
तिलयंजलिमुद्दाए विसत्ती हेममायणत्थग्घो।
पुण दिसपालाह्वणं परमेट्ठी-गरुडमुद्दाए ॥ ७ ॥
कुसुमजेह गंधण्हेगिण वासेहिं' चंदणेण' घुसिणेण'।
पत्तरमण्हाणेहिं कणसु दप्पणदंसणं पुरओ ॥ ८ ॥
तित्थोदएण ण्हाणं' कप्पूरेण' य पुप्फअंजलिया।
अट्ठारसमं ण्हाणं सुद्धगंधद्धसरसेणं ॥ ९ ॥

ॐ वृषभेभ्यः स्वाहा १५। ॐ कामचारेभ्यः स्वाहा १६। ॐ निर्माणेभ्यः स्वाहा १७। ॐ दिशान्तरक्षितेभ्यः स्वाहा १८। ॐ आत्मरक्षितेभ्यः स्वाहा १९। ॐ सर्वरक्षितेभ्यः स्वाहा २०। ॐ मरुद्भ्यः स्वाहा २१। ॐ वसुभ्यः स्वाहा २२। ॐ अश्वेभ्यः स्वाहा २३। ॐ विश्वेभ्यः स्वाहा २४॥ पञ्चमवलके—ॐ सौधर्मादीन्द्रादिभ्यः स्वाहा १। तद्देवीभ्यः स्वाहा २। ॐ चमरादीन्द्रादीभ्यः स्वाहा ३। तद्देवीभ्यः स्वाहा ४। ॐ चन्द्रादीन्द्रादिभ्यः स्वाहा ५। तद्देवीभ्यः स्वाहा ६। ॐ किन्नरादीन्द्रादिभ्यः स्वाहा ७। तद्देवीभ्यः स्वाहा ८॥ षष्ठवलके—ॐ इन्द्राय स्वाहा १। ॐ अग्नये स्वाहा २। ॐ यमाय स्वाहा ३। ॐ नैर्ऋतये स्वाहा ४। ॐ वरुणाय स्वाहा ५। ॐ वायवे स्वाहा ६। ॐ कुबेराय स्वाहा ७। ॐ ईशानाय स्वाहा ८ इति॥ एके त्वाहुः—ॐ नागाय स्वाहा १। ॐ ब्रह्मणे स्वाहा २। इति नागब्रह्माणौ पुनरप्यमीशानदलयोः पूजयेत्। पुनः प्रथमवलके ग्रहपूजा—ॐ आदित्याय स्वाहा १। ॐ सोमाय स्वाहा २। ॐ भूमिपुत्राय स्वाहा ३। ॐ बुधाय स्वाहा ४। ॐ बृहस्पतये स्वाहा ५। ॐ शुक्राय स्वाहा ६। ॐ शनैश्चराय स्वाहा ७। ॐ राहवे स्वाहा ८। ॐ केतवे स्वाहा ९। इति नन्द्यावर्त्तलिखितोच्चारणेन पूजा कार्या। ततः सदशाव्यंगवस्त्रेणेत्यादिक्रमः प्रागुक्त एव। नन्द्यावर्त्ते च बहुषु प्रतिष्ठाचार्येषु मुख्य एव प्रतिष्ठाचार्यः पूजयति।

§ १०३. अथ जलानयनविधिः—महामहोत्सवेन जलाशयतीरमुपगम्य पूर्वप्रतिष्ठितप्रतिमास्नात्रं विधाय दिक्पालेभ्यो बलिं प्रदाय दिक्षु प्रक्षेपबलिः प्रक्षिप्यते। ततश्चैत्यवन्दनं श्रुत-शान्ति-देवतासमस्तवैयावृत्त्यकरकायोत्सर्गाः स्तुतयश्च। ततो वरुणदेवताकायोत्सर्गः स्तुतिश्च।

मकरासनमासीनः शिवाशयेभ्यो ददाति पाशशयः।
आशामाशापालः किरतु च दुरितानि वरुणो नः॥ १॥

ततो जलाशये पूजार्थं पुष्पफलादिक्षेपः। ततो वस्त्रपूतेन जलेन कुम्भाः पूर्यन्ते। पुनर्महोत्सवेन देवगृहे आगमनम्। जलानयनविधिः।

अपरे त्वित्थमाहुः—धूपवेलापूर्वं पार्श्वे बलिं विकीर्य सदशवस्त्रकंकणमुद्रिकां परिधाय देवस्याग्रे धृत्वा रिक्तकलशांश्चतुरोऽधिवासयेत्। तान् शिरस्यधिरोप्याविधवाः कलशधरस्त्रियः साधःप्रतिमं छत्रं स्नातोधनादं गृहीतवति स्नात्रकारे जलाशयं गच्छन्ति। तत्र च पार्श्वे बलिं क्षिप्त्वा फलेन धूपादिना च जलाशयं पूजयित्वा तज्जलमानीय तेनापूर्य कलशान् छत्राधोधृतप्रतिमाग्रतो न्यसेत्। ततः प्रतिमां परिधाप्य देवान् वन्देत, श्रुतदेव्यादिकायोत्सर्गान् कुर्यात्, स्फीत्या चैत्यमागच्छेदिति।

*

§ १०४. अथातः कलशारोपणविधिः—तत्र भूमिशुद्धिः गन्धोदकपुष्पादिसत्कारः, आदित एव कलशाधःपद्यरत्नकं सुवर्ण-रूप्य-मुक्ता-प्रवाल-लोहकुम्भकारमृत्तिकारहितं न्यसनीयम्। पवित्रस्थानाज्जलानयनं प्रतिमास्नात्रं शान्तिबलिः सोदकसर्वौषधिवर्त्तनं स्त्रीभिः ४ स्नात्रकाराभिमन्त्रणं सकलीकरणं शुचिविद्यारोपणं चैत्यवन्दनं शान्तिनाथादिकायोत्सर्गाः। श्रुत १ शान्ति २ शासन ३ क्षेत्र ४ समस्तवै० ५। कलशे कुसुमांजलिक्षेपः। तदनन्तरमाचार्येण मध्यांगुलीद्वयोर्ध्वीकरणेन तर्जनीमुद्रा रौद्रदृष्ट्या देया। तदनु वामकरे जलं गृहीत्वा कलश आच्छोटनीयः। तिलकं पूजनं च। मुद्गरमुद्रादर्शनम्। ओँ ह्रीँ क्ष्वीँ सर्वोपद्रवं रक्ष रक्ष स्वाहा। पक्षरक्षा कलशस्य सप्तधान्यकप्रक्षेपः हिरण्यकलशचतुष्टयस्नानं सर्वौषधिस्नानं मूलिकास्नानं गं० था० चं० कुं० कर्पूरकुसुमजलकलशस्नानं पंचरत्नसिद्धार्थकसमेतग्रन्थिबन्धः। वामभूनदक्षिणकरेण चन्दनेन सर्वाङ्गमालिप्य पुष्पसमेतमदनफलकादिवृद्धियुतारोपणम्। कलशपंचाङ्गस्पर्शः, धूपदानं, कंकणबंधः, स्त्रीभिः प्रोंखणं, सुर-

अच्छुत्ता १४, माणसी १५, महामाणसी १६। — इति तृतीयवलकः। तत उपरि चतुर्थवलके पूर्वादिषन्तरालेषु गृहपट्क-पट्कविरचितेषु सारस्वतादयो लिख्यन्ते — सारस्वत १, आदित्य, २, वह्नि ३, अरुण ४, गर्दतोय ५, तुषित, ६, अव्याबाध ७, अरिष्ट ८, अग्न्याभ ९, सूर्याभ १०, चन्द्राभ ११, सत्याभ १२, श्रेयस्कर १३, क्षेमंकर १४, वृषभ १५, कामचार १६, निर्माण १७, दिशान्तरक्षित १८, आत्मरक्षित १९, सर्वरक्षित २०, मरुत् २१, वसु २२, अश्व २३, विश्व २४ — इति चतुर्थवलकः। तदुपरि पंचमवलके पूर्वादिषन्तरालेषु गृहद्वय-द्वयविरचितेऽमी लिख्यन्ते — ॐ सौधर्मादीन्द्रादिभ्यः स्वाहा १, तद्देवीभ्यः स्वाहा २, ॐ चमरादीन्द्रादिभ्यः स्वाहा ३, तद्देवीभ्यः स्वाहा ४, ॐ चन्द्रादीन्द्रादिभ्यः स्वाहा ५, तद्देवीभ्यः स्वाहा ६, ॐ किन्नरादीन्द्रादिभ्यः स्वाहा ७, तद्देवीभ्यः स्वाहा ८ — इति पंचमवलकः। तदुपरि षष्ठवलके पूर्वादिषन्तरालेषु गृहद्वय-द्वयविरचिते दिक्पाला लिख्यन्ते — ॐ इन्द्राय स्वाहा १, ॐ अग्नये स्वाहा २, ॐ यमाय स्वाहा ३, ॐ नैर्ऋतये स्वाहा ४, ॐ वरुणाय स्वाहा ५, ॐ वायवे स्वाहा ६, ॐ कुबेराय स्वाहा ७, ॐ ईशानाय स्वाहा ८। अधः — ॐ नागेभ्यः स्वाहा ९। उपरि — ॐ ब्रह्मणे स्वाहा १०।

इति नन्द्यावर्त्तलेखनविधिः।

§ १०२. प्रतिष्ठादिनात् पूर्वमेवेत्थं लिखित्वा प्रधानवस्त्रेण वेष्टयित्वा एकान्ते नन्द्यावर्त्तपट्टो धारणीयः। ततो देवाधिवासनानन्तरं पूर्वं वा कर्पूरवासप्रधानश्वेतकुसुमैराचार्येण नामोच्चारणमन्त्रपूर्वकं नन्द्यावर्त्तः पूजनीयः क्रमेण। तद्यथा, प्रथमवलके — ॐ नमोऽर्हद्भ्यः स्वाहा, ॐ नमः सिद्धेभ्यः स्वाहा, ॐ नम आचार्येभ्यः स्वाहा, ॐ नम उपाध्यायेभ्यः स्वाहा, ॐ नमः सर्वसाधुभ्यः स्वाहा, ॐ नमो ज्ञानाय स्वाहा, ॐ नमो दर्शनाय स्वाहा, ॐ नमश्चारित्राय स्वाहा॥ ततो द्वितीयवलके — ॐ मरुदेव्यै स्वाहा १, ॐ विजयादेव्यै स्वाहा २, ॐ सेनादेव्यै स्वाहा ३, ॐ सिद्धार्थादेव्यै स्वाहा ४, ॐ मंगलादेव्यै स्वाहा ५, ॐ सुसीमादेव्यै स्वाहा ६, ॐ पृथ्वीदेव्यै स्वाहा ७, ॐ लक्ष्मणादेव्यै स्वाहा ८, ॐ रामादेव्यै स्वाहा ९, ॐ नन्दादेव्यै स्वाहा १०, ॐ विष्णुदेव्यै स्वाहा ११, ॐ जयादेव्यै स्वाहा १२, ॐ श्यामादेव्यै स्वाहा १३, ॐ सुयशादेव्यै स्वाहा १४, ॐ सुव्रतादेव्यै स्वाहा १५, ॐ अचिरादेव्यै स्वाहा १६, ॐ श्रीदेव्यै स्वाहा १७, ॐ देवीदेव्यै स्वाहा १८, ॐ प्रभावतीदेव्यै स्वाहा १९, ॐ पद्मादेव्यै स्वाहा २०, ॐ वप्रादेव्यै स्वाहा २१, ॐ शिवादेव्यै स्वाहा २२, ॐ वामादेव्यै स्वाहा २३, ॐ त्रिशलादेव्यै स्वाहा २४॥ तृतीयवलके — ॐ रोहिणीदेव्यै स्वाहा १, ॐ प्रज्ञप्तीदेव्यै स्वाहा २, ॐ वज्रशृंखलादेव्यै स्वाहा ३, ॐ वज्रांकुशीदेव्यै स्वाहा ४, ॐ अप्रतिचक्रादेव्यै स्वाहा ५, ॐ पुरुषदत्तादेव्यै स्वाहा ६, ॐ कालीदेव्यै स्वाहा ७, ॐ महाकालीदेव्यै स्वाहा ८, ॐ गौरीदेव्यै स्वाहा ९, ॐ गांधारीदेव्यै स्वाहा १०, ॐ महाज्वालादेव्यै स्वाहा ११, ॐ मानवीदेव्यै स्वाहा १२, ॐ वैरोट्यादेव्यै स्वाहा १३, ॐ अच्छुप्तादेव्यै स्वाहा १४, ॐ मानसीदेव्यै स्वाहा १५, ॐ महामानसीदेव्यै स्वाहा १६। मतांतरे तु — ॐ रोहिणीए स्वात्म्यं स्वाहा १। ॐ पन्नत्तीए रां क्षां २। ॐ वज्जसिंखलाए हां ह्रं ३। ॐ वज्जंकुसाए क्ष्मां वां ४। ॐ अप्पडिचक्काए हूं ५। ॐ पुरिसदत्ताए क्ष्मां ६। ॐ कालीए सां ह्रैं ७। ॐ महाकालीए ॐ क्षीं ८। ॐ गोरीए यूं हूं ९। ॐ गंधारीए रां क्ष्मां १०। ॐ सव्वत्थमहाजालाए सूं मां ११। ॐ माणवीए यूं क्ष्मां १२। ॐ वइरुट्टाए रूं मां १३। ॐ अच्छुत्ताए यूं मां १४। ॐ माणसीए रूं मां १५। ॐ महामाणसीए हूं सूं १६। सर्वे स्वाहान्ता वाच्याः॥ चतुर्थवलके — ॐ सारस्वतेभ्यः स्वाहा १। ॐ आदित्येभ्यः स्वाहा २। ॐ वह्निभ्यः स्वाहा ३। ॐ वरुणेभ्यः स्वाहा ४। ॐ गर्दतोयेभ्यः स्वाहा ५। ॐ तुषितेभ्यः स्वाहा ६। ॐ अव्याबाधेभ्यः स्वाहा ७। ॐ रिष्टेभ्यः स्वाहा ८। ॐ आग्नाभेभ्यः स्वाहा ९। ॐ सूर्याभेभ्यः स्वाहा १०। ॐ चन्द्राभेभ्यः स्वाहा ११। ॐ सत्याभेभ्यः स्वाहा १२। ॐ श्रेयस्करेभ्यः — । ॐ क्षेमंकरेभ्यः स्वाहा १४।

जिणमुद्द-कलसे-परमेट्ठि-अंगे-अंजेलि-तहासणा-चक्का ।
सुरभी-पवयण-गरुडा-सोहग्गे-कयंजली चेव ॥ १ ॥
जिणमुद्दाए चउकलसठावणं तह करेइ थिरकरणं ।
अहिवासमंतनसणं आसणमुद्दाइ अन्ने उ ॥ २ ॥
कलसाए कलसन्हवणं परमेट्ठीए उ आहवणमंतं ।
अंगाइ समालभणं अंजलिणा पुप्फरुहणाई ॥ ३ ॥
आसणयाए पट्टस्स पूयणं अंगफुसण चक्काए ।
सुरभीइ अमयमुत्ती पवयणमुद्दाइ पडिवूहो ॥ ४ ॥
गरुडाइ दुट्ठरक्खा सोहग्गाए य मंतसोहग्गं ।
तह अंजलीइ देसण मुद्दाहिं कुणह कज्जाइं ॥ ५ ॥

*

§ १०६. अथ प्रतिष्ठोपकरणसंग्रहः — स्नपनकार ४। मूलशतवर्त्तनकारिका ४ अधिका वा । तासां गुड-युतसुहाली ४। दानं पर्वणिदानं च। दिशाबलिः । अक्षतपात्रम् । सण १ लाज २ कुलत्थ ३ यव ४ कंगु ५ माष ६ सर्षप ७ इति सप्तधान्यम् । गंध १, धूप पुप्प वास सुवर्ण रूप्य रावट प्रवाल मौक्तिक पंच रत्न ८, हिरण्य चूर्णादिस्नानं १८, कौसुंभ कंकण २०, श्वेतसर्षप रखोटली ८, सिद्धार्थ दधि अक्षत घृत दर्भरूपोऽर्घः । आदर्श शंख ऋद्धिवृद्धिसमेत मदनफल ८, कंकण ३, वेदि ४ मंडपकोणचतुष्टये एकैका । जवारा १०, माटीवारा १०, माटीकलश १३२, रूपावाटुली १, सुवर्णशलाका १, नन्द्यावर्त्तपट्ट १, आच्छादनपाट ६, वेदीयोग्य ४, नन्द्यावर्त्तयोग्य १, प्रतिमायोग्य १, माइसाडी २, अधिवासना प्रतिष्ठा-समययोग्य काकरिया द्वितीयनाम मोरिंडा २५, कथं मुद्ग ५ यव ५ गोधूम ५ चिणा ५ तिल ५, मोदक-सरावु १, वाटसरावु १, खीरिसरावु १, करंबासराव १, कीसरिसराव १, कूरसरावु १, चूरिमापूयडीसरावु १, एवं ७; नालिकेर फोफल उत्तती खर्जूर द्राक्षा वरसोलां फलोहलि दाडिम जंबीरी नारंग बीजपूरक आम्र इक्षु रक्तसूत्र तर्कु कांकणी ५, अवमिननाथ पउंखणहारी ४। तासां कांचुलीदेया । मंडासरावु १, सात धनउं सण बीज कुलत्थ मसूर वल्ल चणा व्रीहि चवला । मंगलदीप ४। गुडघनसमेतक्रियाणा ३६० । पुडी १। प्रियंगु-कर्पूर-गोरोचनाहस्तलेपः । घृतभाजनम् । सौवीराञ्जनघृतमधुशर्करारूपनेत्रा-ञ्जनम्-इत्यादि ।

अव्यङ्गामञ्जलिं दत्त्वा कारयेदधिवासनम् ।
द्वितीयां भक्तितो दत्त्वा प्रतिष्ठां च विधापयेत् ॥ १ ॥
गुरुपरिधापनापूर्वमन्यसाधुजनाय सः ।
दद्यात् प्रवरवस्त्राणि पूजयेच्छ्रावकांस्ततः ॥ २ ॥

*

§१०७. अथ कूर्मप्रतिष्ठाविधिः — कूर्मस्थापनाप्रदेशे पूर्वप्रतिष्ठितप्रतिमायात्रं पूजनं च । आरात्रिकं मंगल-प्रदीपं च कृत्वा चैत्यवंदनं शान्तिस्तवभणनं च कार्यम् । ततो यत्र कूर्मस्थितिर्भविष्यति तत्र कूर्मगृहमाने चतुरस्रे क्षेत्रे चतुर्ष्वपि कोणेषु चत्वारि इष्टकासंपुटानि अथवा पाषाणसंपुटानि कार्याणि । गर्भे पञ्चमं कार्यम्, यत्र बिम्बं स्थाप्यते । नंदा भद्रा जया विजया पूर्णा इति पंचानामपि नामानि भवन्ति । ततोऽधस्तनगर्त्ताः सुगर्त्ताः कृत्वा पंचरत्नानि सप्तधान्यसहितचारकमध्ये निक्षेप्तव्यानि । मध्यपुटे सुवर्णमयः १ कूर्मोऽधो-

म्यादिमुद्रादर्शनं, सूरिमन्त्रेण वारत्रयमधिवासनम्। ॐ स्थावरे तिष्ठ तिष्ठ स्वाहा—वस्त्रेणाच्छादनं, जंबीरादिफलोहलिकाभिर्निक्षेपः। तदुपरि सप्तधान्यकस्य च आरत्रिकावतारणं चैत्यवन्दनम्। अधिवासनादेव्याः कायोत्सर्गः। चतुर्विंशतिस्तवचिन्ता। तस्याः स्तुतिः—

पातालमन्तरिक्षं भुवनं वा या समाश्रिता नित्यम्।
साऽत्रावतरतु जैने कलशे अधिवासनादेवी॥—इति पाठः।

शां० १ अं० २ समन्नवै०। तदनु शान्तिबलिं क्षिप्त्वा शक्रस्तवेन चैत्यवन्दनं शान्तिमजनं प्रतिष्ठादेवताकायोत्सर्गः। चतुर्विंश०। यदधिष्ठिता० प्रतिष्ठास्तुतिदानं। अक्षतांजलिभृतलोकसमेतेन मंगलगाथापाठः कार्यः। नमोऽर्हत्सिद्धा०।

जह सिद्धाण पइट्ठा०॥ जह सग्गस्स पइट्ठा०॥ जह मेरुस्स पइट्ठा०॥ जह लवणस्स पइट्ठा समत्थ उदहीण मज्झयारम्मि०॥ जह जंबुस्स पइट्ठा, जंबुदीवस्स मज्झयारम्मि॥ आचंद०॥

पुष्पांजलिक्षेपः। धर्मदेशना।—कलशप्रतिष्ठाविधिः।

§ १०५. अथ ध्वजारोपणविधिरुच्यते—भूमिशुद्धिः, गन्धोदकपुष्पादिसत्कारः। अमारिघोषणम्। संघाह्वाननम्। दिक्पालन्यासनम्। वेदिकाविरचनम्। नन्द्यावर्त्तलेखनम्। ततः सूरिः कंकणमुद्रिकाहस्तः सदशवस्त्रपरिधानः सकलीकरणं शुचिविद्यां चारोपयति। स्नपनकारानभिमन्त्रयेत्। अभिमन्त्रितदिशावलिक्षेपेणं भूतबलिं सोदकं क्रियते। ॐ ह्रीं क्ष्वीं सर्वोपद्रवं रक्ष रक्ष स्वाहा—इति वस्त्राभिमन्त्रणम्। दिक्पालाह्वाननम्—ॐ इन्द्राय सायुधाय सवाहनाय सपरिजनाय ध्वजारोपणे आगच्छ आगच्छ स्वाहा। एवं—ॐ अग्नये—ॐ यमाय—ॐ नैर्ऋतये—ॐ वरुणाय—ॐ वायवे—ॐ कुबेराय—ॐ ईशानाय—ॐ नागाय—ॐ ब्रह्मणे आगच्छ आगच्छ स्वाहा। शान्तिबलिपूर्वकं विधिना मूलप्रतिमास्नानम्। तदनु चैत्यवन्दनं संघसहितेन गुरुणा कार्यम्। ततो कुसुमांजलिक्षेपः, तिलकं पूजनं च। हिरण्यकलशादिस्नानानि पूर्ववत्। कनक' पंचरत्न' कषाय' मृत्तिका' मूलिका' अष्टवर्ग' सर्वौषधि' गन्ध' वास' चन्दन'' कुंकुम'' तीर्थोदक'' कर्पूर'' [illegible] कुसुम'' घृत-दुग्ध-दधि-स्नानम्''। अंगस्य घर्षणम्। पुष्पारोपणम्। स्नात्रसमये मदनवस्त्रेणाच्छादनम्। मुद्रान्यासः।

कुम्भानामभिमन्त्रणं जिनपतेः सन्मुद्रया मन्त्र्यते
नीरं गन्धमहौषधी मलयजं पुष्पाणि धूपस्ततः ।
अङ्गुल्यामथ पञ्चरत्नरचना स्नानं ततः काञ्चनं
पुष्पारोपणधूपदानमसकृत् स्नात्रेषु तेष्वन्तरा ॥ ३ ॥
रत्नस्नानकषायमज्जनविधिर्मृत्पञ्चगव्ये ततः
सिद्धौषध्यथ मूलिका तदनु च स्पष्टाष्टवर्गद्वयम् ।
मुक्ताशुक्तिसुमुद्रया गुरुरथोत्थाय प्रतिष्ठोचितं
मन्त्रैर्दैवतमाह्वयेद् दशदिशामीशांश्च पुष्पाञ्जलिः ॥ ४ ॥
सर्वौषध्यथ सूरिहस्तकलनाद् दृग्दोषरक्षोन्मृजा
रक्षापुट्टलिका ततश्च तिलकं विज्ञप्तिकाथाञ्जलिः ।
अर्घोऽर्हत्यथ दिग्धवेषु कुसुमस्नानं ततः स्नापनिका
वासश्चन्दनकुङ्कुमे मुकुरदृक् तीर्थाम्बु कर्पूरवत् ॥ ५ ॥
निक्षेप्यः कुसुमाञ्जलिर्जलघटस्नानं शतं साष्टकं
मन्त्रावासितचन्दनेन वपुषो जैनस्य चालेपनम् ।
वामस्पृष्टकरेण वाससुमनो धूपः सुरभ्यम्बुजा-
ञ्जल्यस्मात्करलेपकङ्कणमथो पञ्चाङ्गसंस्पर्शनम् ॥ ६ ॥
धूपश्च परमेष्ठी च जिनाह्वानं पुनस्ततः ।
उपविश्य निषद्यायां नन्द्यावर्त्तस्य पूजनम् ॥ ७ ॥

॥ श्रीचन्द्रसूरिकृतप्रतिष्ठासंग्रहकाव्यानि ॥

*

घोसाविज्ज अमारिं रण्णो संघस्स तह य वाहरणं ।
विण्णाणियसंमाणं कुज्जा खित्तस्स सुद्धिं च ॥ १ ॥
तह य दिसिपालठवणं तक्किरियंगाण संनिहाणं च ।
दुविहसुई पोसहिओ वेईए ठविज्ज जिणबिंबं ॥ २ ॥
नवरं सुमुहुत्तंमी पुधुत्तरदिसिमुहं सउणपुव्वं ।
वज्जंतेसु चउविहमंगलतूरेसु पउरेसु ॥ ३ ॥
तो सघसंघसहिओ ठवणायरियं ठवित्तु पडिमपुरो ।
देवे वंदइ सूरी परिहियनिरुवाहिसुइवत्थो ॥ ४ ॥
संतिसुयदेवयाणं करेइ उस्सग्गं थुइपयाणं च ।
सहिरण्णदाहिणकरो सयलीकरणं तओ कुज्जा ॥ ५ ॥
तो सुद्धोभयपक्खा दक्खा खेयष्णुया विहियरक्खा ।
ण्हवणगराओ खिवंती दिसासु सव्वासु सिद्धबलिं ॥ ६ ॥
तयणंतरं च मुद्दिय कलसचउक्केण ते ण्हवंति जिणं ।
पंचरयणोदगेणं कसायसलिलेण तत्तो य ॥ ७ ॥

मुखः स्थापनीयः प्रधानत्रिरेखकपर्दकसहितः। प्रधानपरिधापनिका चोपरि कर्त्तव्या। बल्यादिसमस्तं विधेयम्। संपुटकेषु मुद्रितकलशैः स्नानं कार्यम्—भृंगारैरित्यर्थः। लग्नसमये च वासक्षेपं कृत्वा संपुटानि निवेश्यन्ते। अथवा लग्नसमये छडिका उत्सार्यते दर्भसत्का या अधः क्षिप्ताऽऽसीत्। मंत्रश्चायम्—'ॐ ह्रां श्रीं कूर्म्म तिष्ठ तिष्ठ रथशालां देवगृहं वा धारय धारय स्वाहा'। ततो मुद्रान्यासः सर्वत्र कार्यः। पश्चा- चैत्यवंदनं कृत्वा मंगलस्तुतिं भणित्वाऽक्षतांजलिनिक्षेपः कार्यः संघसमेतैः। मंगलस्तुतयश्च प्रतिष्ठाकल्पे 'जह सिद्धाण पइट्ठा' इत्यादिकाः पठित्वा, कूर्मोपरि अक्षता निक्षेप्याः। पुष्पाञ्जलिं श्रावकाः क्षिपन्ति। इति कूर्म्मप्रतिष्ठाविधिः समाप्तः।

*

अथ शास्त्रोदितस्थाने पीठं शास्त्रोक्तलक्षणम्।
संस्थाप्य निश्चलं तत्र समीपं प्रतिमां नयेत्॥ १॥
सौवर्णं राजतं ताम्रं शैलं वा चतुरस्रकम्।
रम्यं पत्रं विनिर्माप्य सदलं मसृणं तथा॥ २॥
एवं विलिख्य संस्थाप्य पत्रं क्षीरेण चाम्बुना।
सुगन्धिद्रव्यमिश्रेण चन्दनेनानुलेपयेत्॥ ३॥
सत्पुष्पाक्षतनैवेद्यधूपदीपफलैर्जपेत्।
सुगन्धप्रसवैस्तत्र जाप्यमष्टोत्तरं शतम्॥ ४॥
संस्थाप्य मातृकावर्णं मालामन्त्रेण तत्त्वतः।
ॐ अर्हं अ आ इ ई इत्यादि शषसहान् यावत्—ॐ ह्रीं क्ष्वीं क्रौं स्वाहा।
पत्रमध्ये च यत्पद्मं पीठे गन्धेन तल्लिखेत्।
कर्पूरकुङ्कुमं गन्धं पारदं रत्नपञ्चकम्॥ ५॥
क्षिप्त्वा च पत्रमारोप्य प्रतिमां स्थापयेत्ततः।
पृथ्वीतत्त्वं च धातव्यमित्याम्नाय इति ध्रुवम्॥ ६॥

स्थिरप्रतिमाऽधो यंत्रम्—ॐ ह्रीं श्रां श्रीपार्श्वनाथाय स्वाहा। जातीपुष्प १०००० जापः उपोषितेन कार्यः। इदं यंत्रं ताम्रपात्रे उत्कीर्य देवगृहे मूलनायकबिम्बस्याधो निधापयेत्। बिम्बस्य सकलीकरणं, शान्तिं पुष्टिं च करोति। यस्याधस्तनविभागे मूलनायकस्य क्षिप्यते तस्य नाम मध्ये दीयते। मूलनायकस्य यक्ष-यक्षिण्यौ चालिख्येते। अत्र तु श्री पार्श्वनाथ-तद्यक्षयक्षिणीनां नामन्यासो निदर्शनमात्रमिति॥

*

भूतानां बलिदानमग्निमजिनस्नानं तदग्रे स्वयं
चैत्यानामथ वन्दनं स्तुतिगणः स्तोत्रं करे मुद्रिका।
स्वस्य स्नात्रकृतां च शुद्धसकली सम्यक् शुचिप्रक्रिया
धूपाम्भःसहितोऽभिमन्त्रितबलिः पश्चाच पुष्पाञ्जलिः॥ १॥
मुद्रा मध्यमाङ्गुलीभ्यामतिकुपितदृशा वामहस्ताम्भसोच्चै-
र्बिम्बस्याच्छोटनं सत्सतिलककुसुमं मुद्गरस्याक्षपात्रम्।
मुद्राभिर्वज्रताक्ष्योदिभिरथ कवचं जैनबिम्बस्य सम्यग्
दिग्बन्धः सप्तधान्यं जिनवपुरुपरि क्षिप्यते तत्क्षणं च॥ २॥

तो वंदिज्जा देवे पइट्ठदेवीइ कायउस्सग्गं ।
दिज्ज थुई तीए चिय ठविज्ज पुरओ उ घयपत्तं ॥ २५ ॥
सोवण्णवट्टियाए कुज्जा महुसक्कराहिं भरियाए ।
कणगसलागाए विंबनयणउम्मीलणं लग्गे ॥ २६ ॥
सम्मं पइट्ठमंतेण अंगसंधीणु अक्खरन्नासं ।
कुणमाणो एगमणो सूरी वासे खिविज्ज तहा ॥ २७ ॥
पुप्फक्खयंजलीहिं तो गुरुणा घोसणा ससंवेगं ।
थिज्जत्थ कायव्वा मंगलसद्देहिं विंबस्स ॥ २८ ॥
जह सिद्ध-मेरु-कुलपव्वयाण पंचत्थिकाय-कालाणं ।
इह सासया पइट्ठा सुपइट्ठा होउ तह एसा ॥ २९ ॥
जह दीव-सिंधु-ससहर-दिणयर-सुरवास-वासखित्ताणं ।
इह सासया पइट्ठा सुपइट्ठा होउ तह एसा ॥ ३० ॥
इत्थं सुहभावकए अक्खयखेवे कयंमि विंबस्स ।
सविसेसं पुण पूया किच्चा चिइवंदणा य तहा ॥ ३१ ॥
मुहउग्घाडणसमणंतरं च पूयाइ समणसंघस्स ।
फासुयघय-गुड-गोरस-णंतगमाईहिं कायव्वा ॥ ३२ ॥
सोहणदिणे य सोहग्गमंतविन्नासपुव्वयमवस्सं ।
मयणहलकंकणं करयलाओ विंबस्स अवणिज्जा ॥ ३३ ॥
जिणविंबस्स य विसए नियनियठाणेसु सव्वमुद्दाओ ।
गुरुणा उवउत्तेणं पउंजियव्वाओ ताओ इमा ॥ ३४ ॥
जिणमुद्दकलस० .... ॥ गाहा ॥ ३५ ॥
जिणमुद्दाए० .... ॥ गाहा ॥ ३६ ॥
कलसाए० .... ॥ गाहा ॥ ३७ ॥
आसणयाए० .... ॥ गाहा ॥ ३८ ॥
गरुडाए० .... ॥ गाहा ॥ ३९ ॥

॥ इति प्रतिष्ठाविधिः ॥

घोसिज्जए अमारी दीणाणाहाण दिज्जए दाणं ।
पउणीकिज्जइ चंसो धयजुग्गो सरलसुसिणिद्धो ॥ ४० ॥
वट्टंतचारुपव्वो अपुचडो कीडएहिं अक्खद्धो ।
अद्दड्ढो वण्णड्ढो अणुहसुफो पमाणजुओ ॥ ४१ ॥
काऊण मूलपडिमाण्हाणं चाउद्दिसं च भूसुद्धिं ।
दिसिदेवयआह्वणं वंसस्स विलेवणं तह य ॥ ४२ ॥
अहियासियकुसुमारोवणं च अहियासणं च वंसस्स ।
मयणफलरिद्धिविद्धी सिद्धत्थारोवणं चेव ॥ ४३ ॥

मट्टियजलेण तो अट्ठवग्गसव्वोसहीजलेणं च ।
गंधजलेणं तह पवरवाससलिलेण य ण्हवंति ॥ ८ ॥
चंदणजलेण कुंकुम-जलकुंभेहिं च तित्थसलिलेणं ।
सुद्धकलसेहिं पच्छा गुरुणा अभिमंतिएहिं तहा ॥ ९ ॥
ण्हाणाणं सव्वाण वि जलधारापुप्फधूवगंधाई ।
दायव्वमंतराले जावंतिमकलसपत्थावो ॥ १० ॥
एवं ण्हविए बिंबे नाणकलानाससमाचरिज्ज गुरू ।
तो सरससुयंधेणं लिंपिज्जा चंदणदवेणं ॥ ११ ॥
कुसुमाइसुगंधाइं आरोवित्ता ठविज्ज बिंबपुरो ।
नंदावत्तयपट्टं पूइज्जइ चारुदव्वेहिं ॥ १२ ॥
चंदणच्छडुब्भडेणं वत्थेणं छायए तओ पट्टं ।
अह पडिसरमारोवे जिणबिंबे रिद्धिविद्धिजुयं ॥ १३ ॥
तो सरससुयंधाइं फलाइं पुरओ ठविज्ज बिंबस्स ।
जंबीरबीजपूराइयाइं तो दिज्ज गंधाइं ॥ १४ ॥
मुद्दामंतन्नासं बिंबे हत्थंमि कंकणनिवेसं ।
मंतेण धारणविहिं करिज्ज बिम्बस्स तो पुरओ ॥ १५ ॥
बहुविहपक्कन्नाणं ठवणा वरवेहिगंधपुडियाणं ।
वरवंजणाण य तहा जाइफलाणं च सविसेसं ॥ १६ ॥
साणिक्खूचरसोलयखंडाईणं वरोसहीणं च ।
संपुन्नबलीइ तहा ठवणं पुरओ जिणिंदस्स ॥ १७ ॥
घयगुडदीवो सुकुमारियाजुओ चउ जवारय दिसीसु ।
बिंबपुरओ ठविज्जा भूयाण बलिं तओ दिज्जा ॥ १८ ॥
आरत्तियमंगलदीवयं च उत्तारिऊण जिणनाहं ।
वंदिज्जऽहिवासणदेवयाइ उस्सग्गथुइदाणं ॥ १९ ॥
अह जिणपंचंगेसु ठावेइ गुरू थिरीकरणमंतं ।
वाराउ तिन्नि पंच य सत्त य अचंतमपमत्तो ॥ २० ॥
मयणहलं आरोवइ अहिवासणमंतनाससमवि कुणइ ।
झायइ य तयं बिंबं सजियं व जहा फुडं होइ ॥ २१ ॥
एवमहिवासियं तं बिंबं ठाइज्ज सदसवत्थेणं ।
चंदणछडुब्भडेणं तदुवरि पुप्फाइं खिविज्जा ॥ २२ ॥
ण्हाविज्ज सत्तधन्नेण तयणु जीवंतउभयपक्खाहिं ।
नारीहिं चउहिं समलंकियाहिं विज्जंतनाहाहिं ॥ २३ ॥
पडिपुण्णवत्तसुत्तेणं वेढणं चउगुणं च काऊण ।
ओमिणणं कारिज्जा तुट्ठेहिं हिरण्णदाणजुयं ॥ २४ ॥

प्रसारिताधोमुखाभ्यां हस्ताभ्यां पादांगुलीतलामस्तकस्पर्शान्महामुद्रा १. अन्योऽन्यग्रथितांगुलीषु कनिष्ठिकानामिकयोर्मध्यमातर्जन्योश्च संयोजनेन गोस्तनाकारा धेनुमुद्रा २. दक्षिणहस्तस्य तर्जनीं वामहस्तस्य मध्यमया संदधीत, मध्यमां च तर्जन्याऽनामिकां कनिष्ठिकया कनिष्ठिकां चानामिकया, एतच्चाधोमुखं कुर्यात्। एषा धेनुमुद्रेत्यन्ये विशिषन्ति। हस्ताभ्यामञ्जलिं कृत्वा प्राकामामूलपर्वांगुष्ठसंयोजनेनावाहनी ३. इयमेवाधोमुखा स्थापनी ४. संलग्नमुष्ट्युच्छ्रितांगुष्ठौ करौ संनिधानी ५. तावेव गर्भगांगुष्ठौ निष्ठुरा ६. उभयकनिष्ठिकामूलसंयुक्तांगुष्ठाग्रद्वयमुत्तानितं संहितं पाणियुगमावाहनमुद्रा ७. तदेव तर्जनीमूलसंयुक्तांगुष्ठद्वयावाङ्मुखं स्थापनमुद्रा ८. मुष्टिप्रसृतया तर्जन्या देवतामभितः परिभ्रमणं निरोधमुद्रा ९. शिरोदेशमारभ्याप्रपदं पार्श्वाभ्यां तर्जन्योर्भ्रमणमवगुंठनमुद्रेत्येके। एता आवाहनादिमुद्राः ९।

बद्धमुष्टेर्दक्षिणहस्तस्य मध्यमातर्जन्योर्विस्फारितप्रसारणेन गोवृषमुद्रा १। बद्धमुष्टेर्दक्षिणहस्तस्य प्रसारिततर्जन्या वामहस्ततलताडनेन त्रासनीमुद्रा १। नेत्रास्त्रयोः पूजामुद्रे। अंगुष्ठे तर्जनीं संयोज्य शेषांगुलिप्रसारणेन पाशमुद्रा १. बद्धमुष्टेर्वामहस्तस्य तर्जनीं प्रसार्य किंचिदाकुंचयेदित्यंकुशमुद्रा २. संहतोर्ध्वांगुलिवामहस्तमूले चांगुष्ठं तिर्यग् विधाय तर्जनीचालनेन ध्वजमुद्रा ३. दक्षिणहस्तमुत्तानं विधायाधःकरशाखाः प्रसारयेदिति वरदमुद्रा ४। एवा जयादिदेवतानां पूजामुद्राः।

वामहस्तेन मुष्टिं बद्ध्वा कनिष्ठिकां प्रसार्य शेषांगुलीरंगुष्ठेन पीडयेदिति शंखमुद्रा १. परस्पराभिमुखहस्ताभ्यां वेणीबन्धं विधाय मध्यमे प्रसार्य संयोज्य च शेषांगुलीभिर्मुष्टिं बन्धयेत्—इति शक्तिमुद्रा २. हस्तद्वयेनांगुष्ठतर्जनीभ्यां वलके विधाय परस्परान्तःप्रवेशनेन शृंखलामुद्रा ३. वामहस्तस्योपरि दक्षिणकरं कृत्वा कनिष्ठिकांगुष्ठाभ्यां मणिबन्धं संवेष्ट्य शेषांगुलीनां विस्फारितप्रसारणेन वज्रमुद्रा ४. वामहस्ततले दक्षिणहस्तमूलं संनिवेश्य करशाखाविरलीकृत्य प्रसारयेदिति चक्रमुद्रा ५. पद्माकारौ करौ कृत्वा मध्येऽङ्गुष्ठौ कर्णिकाकारौ विन्यसेदिति पद्ममुद्रा ६. वामहस्तमुष्टेरुपरि दक्षिणमुष्टिं कृत्वा गोत्रेण सह किंचिदुन्नामयेदिति गदामुद्रा ७. अधोमुखवामहस्तांगुलीर्घण्टाकाराः प्रसार्य दक्षिणकरेण मुष्टिं बद्ध्वा तर्जनीमूर्ध्वां कृत्वा वामहस्ततले नियोज्य घण्टावच्चालनेन घण्टामुद्रा ८. उन्नतपृष्ठहस्ताभ्यां संपुटं कृत्वा कनिष्ठिके निष्कास्य योजयेदिति कमण्डलुमुद्रा ९. पताकावत् हस्तं प्रसार्य अंगुष्ठसंयोजनेन परशुमुद्रा १०. यद्वा पताकाकारं दक्षिणकरं संहतांगुलिं कृत्वा तर्जन्यंगुष्ठाक्रमणेन परशुमुद्रा द्वितीया ११. ऊर्ध्वदंडौ करौ कृत्वा पद्मवत् करशाखाः प्रसारयेदिति वृक्षमुद्रा १२. दक्षिणहस्तं संहतांगुलिमुन्नमय्य सर्पफणावत् किंचिदाकुंचयेदिति सर्पमुद्रा १३. दक्षिणकरेण मुष्टिं बद्ध्वा तर्जनीमध्यमे प्रसारयेदिति खड्गमुद्रा १४. हस्ताभ्यां संपुटं विधायांगुलीः पद्मवद्विकास्य मध्यमे परस्परं संयोज्य तन्मूललग्नांगुष्ठौ कारयेदिति ज्वलनमुद्रा १५. बद्धमुष्टेर्दक्षिणकरस्य मध्यमांगुष्ठतर्जन्यौ मूलात् क्रमेण प्रसारयेदिति श्रीमणिमुद्रा १६। एताः षोडशविद्यादेवीनां मुद्राः।

दक्षिणहस्तेन मुष्टिं बद्ध्वा तर्जनीं प्रसारयेदिति दण्डमुद्रा १. परस्परोन्मुखौ मणिबन्धाभिमुखकरशाखौ करौ कृत्वा ततो दक्षिणांगुष्ठकनिष्ठाभ्यां वाममध्यमानामिके तर्जनीं च तथा वामांगुष्ठकनिष्ठाभ्यामितरस्य मध्यमानामिके तर्जनीं समाक्रमयेदिति पाशमुद्रा २. परस्पराभिमुखमूर्ध्वांगुलीकौ करौ कृत्वा तर्जनीमध्यमानामिका विरलीकृत्य परस्परं संयोज्य कनिष्ठांगुष्ठौ पातयेदिति शूलमुद्रा ३. यद्वा पताकाकारं करं कृत्वा कनिष्ठिकामंगुष्ठेनाक्रम्य शेषांगुलीः प्रसारयेदिति शूलमुद्रा द्वितीया। एताः पूर्वोक्ताभिः सह दिक्पालानां मुद्राः।

मस्तकोपरि हस्तं प्रसार्य कनिष्ठिकादि-तर्जन्यन्तानामङ्गुलीनां क्रमसंकोचनेनाङ्गुष्ठमूलानयनात् संहारमुद्रा। विसर्जनमुद्रेयम्। उत्तानहस्तद्वयेन वेणीबन्धं विधायांगुष्ठाभ्यां कनिष्ठिके तर्जनीभ्यां च मध्यमे

धूवक्खेवं मुद्दानासं चउसुंदरीहिं ओमिणणं।
अहिवासणं च सम्मं महद्धयस्सिदुधवलस्स ॥ ४४ ॥
चाउद्दिसिं जवारय फलोहलीढोयणं च वंसपुरो।
आरत्तियायवयारणमह विहिणा देववंदणयं ॥ ४५ ॥
वलिसत्तधन्नफलवासकुसुमसकसायवत्थुनिवहेणं।
अहिवासणं च तत्तो सिहरे तिपयाहिणीकरणं[1] ॥ ४६ ॥
कुसुमंजलिपाडणपुरस्सरं च ण्हवणं च मूलकलसस्स।
खेत्तदसद्धामलरयणधयहरा इट्ठसमयंमि ॥ ४७ ॥
सुपइट्ठपइट्ठाणंतखित्तवासस्स तयणु वंसस्स।
ठवणं खिवणं च तओ फलोहलीभूरिभक्खाणं ॥ ४८ ॥
तत्तो उज्जुगईए धयस्स परिमोयणं सजयसद्दं।
पडिमाइ दाहिणकरे महद्धयस्सावि बंधणयं ॥ ४९ ॥
विसमदिणे उस्सयणं[2] जहसत्तीए य संघदाणं च।
इय सुत्तत्थविहीए कुणह धयारोवणं धन्ना ॥ ५० ॥

॥ इति ध्वजारोपणविधिः कथारत्नकोशात् ॥

*

॥ इति प्रसङ्गानुप्रसङ्गसहितः प्रतिष्ठाविधिः समाप्तः ॥ ३५ ॥

§ १०८. अथ स्थापनाचार्यप्रतिष्ठा–

चोक्खंसुयकरचलणो आरोवियसयलिकरणसुइविज्जो।
गरुडाइदलियविग्घो मलयजघुसिणेहिं लिंपित्ता ॥ १ ॥
अक्खं फलिहमणिं वा सुहकट्ठमयं च ठावणायरियं।
काऊणं पंचपरमिट्ठिटिकए चंदणरसेण ॥ २ ॥
मंतेण गणहराणं अहवा वि हु वद्धमाणविज्जाए।
काऊण सत्तखुत्तो वासक्खेवं पइट्ठिज्जा ॥ ३ ॥

॥ ठवणायरियपइट्ठाविही समत्तो ॥ ३६ ॥

*

§ १०९. अथ मुद्राविधिः—तत्र दक्षिणांगुष्ठेन तर्जनीमध्यमे समाक्रम्य पुनर्मध्यमामोक्षणेन नाराचमुद्रा १. किंचिदाकुंचितांगुलीकस्य वामहस्तस्योपरि शिथिलमुष्टिदक्षिणकरस्थापनेन कुम्भमुद्रा २.—शुचिमुद्राद्वयम्। बद्धमुष्ट्योः करयोः संलग्नसंमुखांगुष्ठयोर्हृदयमुद्रा १. तावेव मुष्टी समीकृतौ ऊर्ध्वांगुष्ठौ शिरसि विन्यसेदिति शिरोमुद्रा २. पूर्ववन्मुष्टी बद्धा तर्जन्यौ प्रसारयेदिति शिखामुद्रा ३. पुनर्मुष्टिबन्धं विधाय कनीयसंगुष्ठौ प्रसारयेदिति कवचमुद्रा ४. कनिष्ठिकामंगुष्ठेन संपीड्य शेषांगुलीः प्रसारयेदिति क्षुरमुद्रा ५—नेत्रत्रयस्य न्यासोऽयम्। दक्षिणकरेण मुष्टिं बद्धा तर्जनीमध्यमे प्रसारयेदिति अस्त्रमुद्रा। हृदयादीनां विन्यसनमुद्रा।

---

1 A पयक्खिणीकरणं। 2 B उस्सवणं।

लंबोष्ठी ४८ भद्रा ४९ सुभद्रा ५० काली ५१ रौद्री ५२ रौद्रमुखी ५३ कराली ५४ विकराली ५५ साक्षी ५६ विकटाक्षी ५७ तारा ५८ सुतारा ५९ रजनीकरा ६० रंजनी ६१ श्वेता ६२ भद्रकाली ६३ क्षमाकरी ६४ ।

चतुःषष्टि समाख्याता योगिन्यः कामरूपिकाः ।
पूजिताः प्रतिपूज्यन्ते भवेयुर्वरदाः सदा ॥

अमुं श्लोकं पठित्वा योगिनीभिरधिष्ठिते क्षेत्रे पट्टकादिषु नामानि टिक्कानि वा विन्यस्य नामोच्चारणपूर्वं गन्धाद्यैः पूजयित्वा नन्दिप्रतिष्ठादिकार्याण्याचार्यः कुर्यात् ।

॥ चउसट्ठिजोगिणीउवसमप्पयारो ॥ ३८ ॥

*

§१११. सो य अहिणवसूरी तित्थजत्ताए सुविहियविहारेण कयाइ गच्छइ; अववायओ संघेणावि समं वच्चइ । सो य संघो संघवइप्पहाणो त्ति तस्स किंचं भण्णइ । तत्थ जाइकम्माइअदूसिओ उचियण्णू रायसम्मओ नाओवज्जियदविणो जणमाणणिज्जो पुज्जपूयापरो जम्म-जीविय-वित्ताणं फलं गिण्हिउकामो सोहणतिहीए गुरुपायमूले गंतूण अप्पणो जत्तामणोरहं विन्नवेज्जा । गुरुणा वि तस्स उववूहणं काउं तित्थजत्ताए गुणा दंसेयव्वा । ते य इमे—

अन्नोन्नसाहु-सावयसामायारीइ दंसणं होइ ।
सम्मत्तं सुविसुद्धं हवइ हु तीए य दिट्ठाए ॥ १ ॥
तित्थयराण भयवओ पवयण-पावयणि-अइसइड्ढीणं ।
अभिगमण-नमण-दरिसण-कित्तण-संपूयणं थुणणं ॥ २ ॥
सम्मत्तं सुविसुद्धं तु तित्थजत्ताइ होइ भव्वाणं ।
ता विहिणा कायव्वा भवेहिं भवविरत्तेहिं ॥ ३ ॥

तित्थं च तित्थयरजम्मभूमिमाइ । जओ भणियं आयारनिज्जुत्तीए—

जम्माभिसेय-निक्खमण-चरण-नाणुप्पया य निव्वाणे ।
तियलोय-भवण-वंतर-नंदीसर-भोमनगरेसु ॥ ४ ॥
अट्ठावय-उज्जिंते गयग्गपयए य धम्मचक्के य ।
पासरहावत्तनगं चमरुप्पायं च वंदामि ॥ ५ ॥

एवं गुरुणा वड्ढिउच्छाहो पत्थाणदिणनिच्छयं काऊण बहुमाणपुव्वं साहम्मियाणं जत्ताए आहवणत्थं लेहे पट्ठविज्जा । तओ वाहण-गुलइणी-कोस-पाइक्क-जुगजुगाइ-सगडंग-सिप्पिवग्ग-जलोवगरण-छत्त-दीवियापारि-सुवार-धन्न-भेसज्ज-विज्जाइसंगहं चेइयसंघपूयत्थं चंदण-अगरु-कप्पूर-कुंकुम-कत्थूरी-वत्थाइसंगहं च काउं, सुमुहुत्ते जिणिंदस्स ण्हवणं पूयं च काऊण, तप्पुरओ निसन्नस्स तस्स सुपुरिसस्स गुरुणा संघाहिवत्तदिक्खा दायव्वा । तओ दिसिपालाण मंतपुव्विं बलिं दाउं मंतमुद्दापुव्वं पुप्फवासाइपूइए रहे महूसवेण देवं सयमेव आरोविज्जा । तओ गुरुं पुरो काउं संघसहिओ चेइयाइं वंदिय कवडिजक्ख-अंबाइसम्मदिट्ठिदेवयाणं काउस्सग्गे कुज्जा । खुद्दोवद्दवनिवारणमंतज्झाणपरेण गुरुणा तस्स अहिमंतरं कवयं आउहाणि य कायव्वाणि । तओ जयजयसद्दधवलमंगलज्झुणिमीसेहिं तूरनिग्घोसेहिं अंबरं बहिरेंतो दाणसम्माणपूरियमग्गयजणमणोरहो पुरपरिसरे पत्थाणमंगलं कुज्जा । तओ णागादागागए साहम्मिए सक्कारिय

संगृह्यानामिके समीकुर्यात्—इति परमेष्ठिमुद्रा १. यद्वा वामकरांगुलीरूर्ध्वीकृत्य मध्यमां मध्ये कुर्यादिति द्वितीया २. पराङ्मुखहस्ताभ्यां वेणीबन्धं विधायाभिमुखीकृत्य तर्जन्यौ संश्लेष्य शेषांगुलिमध्येऽङ्गुष्ठद्वयं विन्यसेदिति पार्श्वमुद्रा । एता देवदर्शनमुद्राः ।

इदानीं प्रतिष्ठाद्युपयोगिमुद्राः—उत्तानौ किंचिदाकुंचितकरशाखौ पाणी विधारयेदिति अंजलिमुद्रा १. अभयाकारौ समश्रेणिस्थितांगुलीकौ करौ विधायाङ्गुष्ठयोः परस्परग्रथनेन कपाटमुद्रा २. चतुरंगलमग्रतः पादयोरन्तरं किंचिन्न्यूनं च पृष्ठतः कृत्वा समपादः कायोत्सर्गेण जिनमुद्रा ३. परस्पराभिमुखौ ग्रथितांगुलीकौ करौ कृत्वा तर्जनीभ्यामनामिके गृहीत्वा मध्यमे प्रसार्य तन्मध्येऽङ्गुष्ठद्वयं निक्षिपेदिति सौभाग्यमुद्रा ४. अत्रैवांगुष्ठद्वयस्याधः कनिष्ठिकां तदाक्रान्ततृतीयपर्विकां न्यसेदिति सबीजसौभाग्यमुद्रा ५. वामहस्तांगुलितर्जन्या कनिष्ठिकामाक्रम्य तर्जन्यग्रं मध्यमया कनिष्ठिकाग्रं पुनरनामिकया आकुंच्य मध्येऽङ्गुष्ठं निक्षिपेदिति योनिमुद्रा ६. ग्रथितानामंगुलीनां तर्जनीभ्यामनामिके संगृह्य मध्यपर्वस्थांगुष्ठयोर्मध्यमयोः सन्धानकरणं योनिमुद्रेत्यन्ये । आत्मनोऽभिमुखदक्षिणहस्तकनिष्ठिकया वामकनिष्ठिकां संगृह्याधःपरावर्तितहस्ताभ्यां गरुडमुद्रा ७. संलग्नौ दक्षिणांगुष्ठाक्रान्तवामांगुष्ठौ पाणी नमस्कृतिमुद्रा ८. किंचिद्गर्भितौ हस्तौ समौ विधाय ललाटदेशयोजनेन मुक्ताशुक्तिमुद्रा ९. जानुहस्तोत्तमांगादिसंप्रणिपातेन प्रणिपातमुद्रा १०. संमुखहस्ताभ्यां वेणीबन्धं विधाय मध्यमांगुष्ठकनिष्ठिकानां परस्परयोजनेन त्रिशिखामुद्रा[1] ११. पराङ्मुखहस्ताभ्यामंगुली विदर्भ्य मुष्टिं बद्ध्वा तर्जन्यौ समीकृत्य प्रसारयेदिति भृंगारमुद्रा[2] १२. वामहस्तमणिबन्धोपरि पराङ्मुखं दक्षिणकरं कृत्वा करशाखा विदर्भ्य किंचिद्वामचलनेनाधोमुखांगुष्ठाभ्यां मुष्टिं बद्ध्वा समुत्क्षिपेदिति योगिनीमुद्रा १३. ऊर्ध्वशाखं वामपाणिं कृत्वाऽङ्गुष्ठेन कनिष्ठिकामाक्रमयेदिति क्षेत्रपालमुद्रा १४. दक्षिणकरेण मुष्टिं बद्ध्वा कनिष्ठिकांगुष्ठौ प्रसार्य डमरुकवच्चालयेदिति डमरुकमुद्रा १५. दक्षिणहस्तेनोर्ध्वांगुलिना पताकाकरणादभयमुद्रा १६. तेनैवाधोमुखेन वरदमुद्रा १७. वामहस्तस्य मध्यमांगुष्ठयोजनेन अक्षसूत्रमुद्रा १८. पद्ममुद्रैव प्रसारितांगुष्ठसंलग्नमध्यमांगुल्यग्रा बिंबमुद्रा १९। एताः सामान्यमुद्राः ।

दक्षिणांगुष्ठेन तर्जनीं संयोज्य शेषाङ्गुलीप्रसारणेन प्रवचनमुद्रा २०. हस्ताभ्यां संपुटं कृत्वा अंगुलीः पत्रवद्विकास्य मध्यमे परस्परं संयोज्य तन्मूललग्नावंगुष्ठौ कारयेदिति मंगलमुद्रा २१. अंजल्याकारहस्तस्योपरिहस्त आसनमुद्रा २२. वामकरधृतदक्षिणकरसमालभने अंगमुद्रा २३. अन्योऽन्यान्तरिताङ्गुलिकोशाकारहस्ताभ्यां कुक्ष्युपरि कूर्परस्थाभ्यां योगमुद्रा २४. उभयोः करयोरनामिकामध्यमे परस्परानभिमुखे ऊर्ध्वीकृत्य मीलयेच्छेषांगुलीः पातयेदिति पर्वतमुद्रा २५. करस्य परावर्तनं विस्मयमुद्रा २६. अंगुष्ठरुद्धेतरांगुल्यग्रायास्तर्जन्या ऊर्ध्वीकारो नादमुद्रा २७. अनामिकयांगुष्ठाग्रस्पर्शनं बिन्दुमुद्रा २८।

॥ इति मुद्राविधिः ॥ ३७ ॥

§११०. वाराही १ वामनी २ गरुडी ३ इन्द्राणी ४ आग्नेयी ५ याम्या ६ नैर्ऋती ७ वारुणी ८ वायव्या ९ सौम्या १० ईशानी ११ ब्राह्मी १२ वैष्णवी १३ माहेश्वरी १४ विनायकी १५ शिवा १६ शिवदूती १७ चामुंडा १८ जया १९ विजया २० अजिता २१ अपराजिता २२ हरसिद्धि २३ कालिका २४ चंडा २५ सुचंडा २६ कनकनंदा २७ सुनंदा २८ उमा २९ घंटा ३० सुघंटा ३१ मांसप्रिया ३२ आशापुरा ३३ लोहिता ३४ अंबा ३५ अस्थिभक्षी ३६ नारायणी ३७ नारसिंही ३८ कौमारी ३९ वामरता ४० अंगा ४१ वंगा ४२ दीर्घदंष्ट्रा ४३ महादंष्ट्रा ४४ प्रभा ४५ सुप्रभा ४६ लंबा ४७

---

1 A त्रिशिखिमुद्रा । 2 B शृंगमुद्रा ।

तया वि पण्णासइमे दिणे, न उण कालचूलाविक्खाए असीइमे । 'सवीसइराए मासे वइक्कंते पज्जोसवेंति'त्ति वयणाओ । जं च 'अभिवड्ढियंमि वीस'त्ति वुत्तं तं 'जुगमज्झे दो पोसा जुगअंते दोन्नि आसाढ'त्ति सिद्धंतटिप्पणयाणुरोहेण चेव घडइ । ते य संपयं न वट्टंति त्ति जहुत्तमेव पज्जुसणादिणं ति सामायारी ।

॥ इति तिहिविही ॥ ४० ॥

§ ११३. संपयं अंगविज्जासिद्धिविही जहासंपदायं भण्णइ । भगवइए अंगविज्जाए सट्ठिअज्झायमईए महापुरिसदिण्णाए भूमिकम्मविज्जा किण्हचउद्दसीए चउत्थं काऊण गहियव्वा । तीए उवयारो उंबररुक्खच्छायाए उवविसिय मासाइकालं जाव अट्ठमभत्तेण खीरन्नपारणेण उडिदिन्नाइ आहारेण वा कायव्वो ॥ १ ॥ तओ अन्ना विज्जा छट्ठेण गहिया अहयवत्थेण कुससत्थरोवविट्ठेण छट्ठभत्तं काउं अट्ठसयजावेण साहियव्वा ॥ २ ॥ अवरा य छट्ठेण गहिया अट्ठमभत्तेण अट्ठसयं जावेण साहियव्वा ॥ ३ ॥ एवं साहिओ दंडपरीहारविज्जं पउंजिउं चउविहाहारनिसेहं काउं एगंते पवित्तदेसे इत्थीणं अदंसणट्ठाणे तिक्कालं आमकप्पूरेणं पुत्थयं पूइय अगरुधूवमुग्गाहिय मण-वयण-कायसुद्धबंभचेरपरायणो पवित्तदेहवत्थो इत्थीणं मुहमणवलोइंतो तासिं सद्दं च असुणिंतो तइयअज्झायउवक्खायगुणगणालंकिओ गुरुसमीवे सयं वा अविच्छिन्नं मुहपोत्तियाठइयमुहकमलो वाइज्जा । एवं सिद्धा संती भगवई अंगविज्जा एगूणसोलसआएसे अवितहे करिज्ज त्ति । अविहिवायणे उम्मायाई दोसा परमपुरिसाणं च आसायणाकया होइ त्ति ।

विहिणा पुण आराहिय एयं सिज्झंत अवितहाएसो ।
छउमत्थो वि हु जायइ भुवणेसु जिणप्पभायरिओ[1] ॥

अंगविज्जाराहणाविही सिद्धंतियसिरिविणयचंदसूरिउवएसाओ लिहिओ ।

॥ अंगविज्जासिद्धिविही ॥ ४१ ॥

*

सम्म[1]-गिहिवय[2]-समइयारोवण[3]-तग्गहण[4]-पारणविही य[5] ।
उवहाण[6]-मालरोवणविहि[7]-उवहाणप्पइट्ठा य[8] ॥ १ ॥
पोसह[9]-पडिकमण[10]-तवाइ[11]-नंदिरयणाविही[12] सखुड्डखुत्तो ।
पवज्जा[13] लोयविही[14] उवओगा[15]-इल्लुअडणविही[16] ॥ २ ॥
मंडलितव[17]-उवठावण[18]-जोगविही[19]-कप्पतिप्प[20]-वायणया[21] ।
कमसो वाणायरिओ[22]-वज्झाया[23]-परियपयठवणा[24] ॥ ३ ॥
महयर[25]-पवत्तिणिपयट्ठवण[26]-गणाणुन्न[27]-अणसणविही य[28] ।
महपारिट्ठावणिया[29] पच्छित्तं[30] साहु-सड्ढाणं ॥ ४ ॥
जिणबिंबपइट्ठाविहि[31]-कलस[32]-धयारोवणं[33] च सपसंगं ।
कुम्मपइट्ठा[34] जंतं[35] ठवणायरियप्पइट्ठाओ[36] ॥ ५ ॥
मुद्दाविही[37] य चउसट्ठिजोगिणीउवसमप्पयारो य[38] ।
जत्ताविहि[39]-तिहिविहि[40]-अंगविज्जसिद्धि[41] त्ति इह दारा ॥ ६ ॥

*

---

1 'जिनप्रभसूरिः' इति टिप्पणी ।

तेसिं पूयं पडिच्छिय सहजत्तिए धणेहिं धणत्थिणो वाहणेहिं वाहणत्थिणो सहाएहिं असहाए पीणंतो, बंदिगायणाई असण-वसण-दविणेहिं तोसंतो, मग्गे चेइयाइं पूयंतो मग्गाणि य उद्धरंतो, तक्कम्मकारिसु वच्छल्लं कुणंतो, तक्कज्जाइं चिंतंतो, दुत्थियधम्मिए सक्कारेंतो, दाणेण दीणे पमोयंतो, भीयाणमभयं देंतो, बंधणट्ठिए मोयंतो, पंकमग्गं भग्गं च सगडाइयं सिप्पीहिं उद्धारेंतो, छुहिय-तिसिय-वाहिय-खिन्ने अन्न-जल-भेसज्ज-वाहणेहिं सुत्थी कुणंतो, धम्मियजणाणं खुद्दोवद्दवे निवारेंतो, जिणपवयणं पभावेंतो, बंभचेरतवजुत्तो तित्थाइं पाविऊण सत्तीए उववासं काउं ण्हाओ कयबलिकम्मो परिहियसुद्धनेवत्थो पुप्फवासकुंकुमाइमीसेणं तित्थोदगेणं कलसे भरित्ता, संघं गंधवियवग्गं च कुंकुमचंदणाईहिं चच्चित्ता, अच्चब्भुयइंदविमाणाइविभूईए मूलनायगस्स ण्हवणं काउं, जगई जिणबिंबाइं वेयावच्चगरे य ण्हवित्ता, तओ पंचामयण्हवणं काउं चंदण-कत्थूरीकप्पूराईहिं विलेवणं सुवण्णाभरणमल्लवत्थाईहिं अच्चणं कप्पूरागरुपभिईहिं धूवणं पिक्खणयं महद्ध-यारोवणं चलिरचमरभिंगारजलधाराकुंकुमवुट्ठिविसिट्ठं कप्पूरारत्तियं च काउं, देवे वंदिज्जा । तओ देवसेवए सक्कारिय अट्ठाहियं अवारियसत्तं वहाविज्जा । तओ मुहोग्घाडणे मालाउग्घडणे अक्खयनिहिक्खेवे भूमिभं-डाइनिकए य देवस्स कोसं संवड्ढिय दीणाई अणुकंपिय तिलोयनाहं पूइय सगगरगिरं आपुच्छिय पुणो दंसणं मग्गिय पणमिय सहजत्तिए सक्कारिय तित्थे अणुज्झायंतो पडिनियत्तिज्जा । कमेण सनगरं पत्तो महया ऊसवेणं रहसालाए देवालयं पवेसिय पडिमं गेहमाणिज्जा । तओ साहम्मिय-मित्त-नाइ-नागराई भोयणाईहिं सम्माणिय संघं पूइज्जा । तओ गुरुणा देसणा कायव्वा । जहा—

> **तं अत्थं तं च सामत्थं तं विन्नाणं सुउत्तमं ।**
> **साहम्मियाण कज्जम्मि जं विचंति सुसावया ॥ १ ॥**
> **अन्नन्नदेसाण समागयाणं अन्नन्नजाईइ समुब्भवाणं ।**
> **साहम्मियाणं गुणसुट्ठियाणं तित्थंकराणं वयणे ठियाणं ॥ २ ॥**
> **वत्थन्नपाणासणखाइमेहिं पुप्फेहिं पत्तेहिं य पुप्फलेहिं ।**
> **सुसावयाणं करणिज्जमेयं कयं तु जम्हा भरहाहिवेणं ॥ ३ ॥**
> **राया देसो नगरं तं भवणं गिहवई य सो धन्नो ।**
> **विहरन्ति जत्थ साहू अणुग्गहं मन्नमाणाणं ॥ ४ ॥**
> **इणमेव महादाणं एयं चिय संपयाण मूलं ति ।**
> **एसेव भावजन्नो जं पूया समणसंघस्स ॥ ५ ॥**

तओ सो संघवई सिद्धंताइपुत्थलेहणत्थं नाणकोसं साहारणसंबलयं च संवड्ढारिज्ज त्ति ॥

॥ तित्थजत्ताविही समत्तो ॥ ३९ ॥

§ ११२. **संपयं तिहिविही**—पक्खिय-चाउम्मासिय-अट्ठमि-पंचमी-कल्लाणयाइतिहीसु तवपूयाईए उदइयतिही अप्पयरभुत्ता वि घेत्तव्वा न बहुतरभुत्ता वि इयरा । जया य पक्खियाइपव्वतिही पडइ तया पुव्वतिही चेव तब्भुत्तिबहुला पच्चक्खाणपूयाइसु घिप्पइ न उत्तरा । तब्भोगे गंधस्स वि अभावाओ । पव्वतिहिवुड्ढीए पुण पढमा चेव पमाणं संपुण्ण त्ति काउं । नवरं चाउम्मासिए चउद्दसीहासे पुण्णिमा जुज्जइ । तेरसीगहणे आगमआयरणाणं अन्नयरं पि नाराहियं होज्जा । संवच्छरियं पुण आसाढचाउम्मासियाओ नियमा पण्णासइमे दिणे कायव्वं, न इक्कपंचासइमे । जया वि लोइयटिप्पणयाणुसारेण दो सावणा दो भद्दवया भवंति,

परिशिष्टम् ।

श्रीजिनप्रभसूरिकृतो

देवपूजाविधिः ।

संपयं जहासंपदायं **देवपूयाविही** भण्णइ—तत्थ सावओ बंभमुहुत्ते पंचनमोक्कारं सुमरंतो सिज्जं मुत्तूण अप्पणो कुलधम्मवयाइं संभरिय, सरीरचिंताइ काऊण, फासुएणं अफासुएणं वा गलियजलेणं देसओ सव्वओ वा ण्हाणं काऊण, कडिल्लवत्थं चइय परिहियधोयवत्थजुगलो निसीहियातिगपुव्वं घरदेवालए पविसेज्जा । तत्थ मुह-कर-चरणपक्खालणं देसण्हाणं, सिरमाइसव्वंगपक्खालणं सव्वण्हाणं । तओ भगवओ आलोयमित्तो चेव भालयले अंजलिमउलियग्गहत्थो 'नमो जिणाणं' ति पणामं काउं जय जय सद्दं भणिय मुहकोसं काऊण, गिहपडिमाओ निम्मल्लमवणित्तु उवउत्तो लोमहत्थयाइणा निमज्जिय, जलेण पक्खालिय सरसमुरहिचंदणेण देवस्स दाहिणजाणु—दाहिणखंध—निलाड—वामखंध—वामजाणुलक्खणेसु पंचसु, हियएण सह छसु वा अंगेसु पूयं काऊण पच्चग्गकुसुमेहिं च पूइय, तओ वामहत्थेण घंटं वाइयंतो दाहिणकरगहियधूवकडुच्छुओ कालागुरु-पवरकुंदुरुक्क-तुरुक्क-मलयजमीससुगंधधूवं देवस्स पुरोभागादारब्भ **'असुरिंदसुरिंदाणं'** इच्चाइधूमावलीगाहाओ पढंतो सिट्ठीए दसदिसं उग्गाहिय पुरो धारेइ । तओ चंदणवासक्खयाहि वासियं कुसुमंजलिं करयलसंपुडेण गिण्हित्ता **'नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः'** इति भणिय, **'ओसरणे जिणपुरओ'** इच्चाइवित्तेण देवस्सं उवरि खिवेइ । तओ **'लोणत्त'**इच्चाइवित्तं पढंतो सिट्ठीए ओयारिय दाहिणपासधरियपडिग्गहियाठियजलणे खिवेइ । एवं अन्ने वि दो वारे वित्तदुगेणं । तओ धाराघडियाओ जलं घेत्तूण **'उन्नयपयपब्भट्ठस्स'** इच्चाइवित्ततिगेणं तेणेव कमेण भगवओ ओयारिय तहेव जलणे खिवेइ । तओ थालयम्स उवरि पंच-सत्ताइविसमवट्टिवोहियदीवसीहावमालियमारत्तियं दोहिं हत्थेहिं गहिय **'गीयत्थगणाइण्णं'** इच्चाइवित्ततिगं भणिय वारे तिण्णि आरत्तियमुत्तारेइ । एगो य दाहिणपासट्ठिओ आरत्तियंमि उत्तरंते तिण्णिवारे जलधाराओ पडिग्गहियाठियजलणे देइ । अन्नाभावे आरत्तियउत्तारणाणंतरं सयमेव वा धाराओ देइ । उत्तरंते आरत्तिए उभओ पासेसु सावयनियचेलंचलेहिं चामरेहिं वा भगवओ चामरुक्खेवं कुणंति । एयं च लवणाइउत्तारणं पालित्तयसूरिमाइपुव्वपुरिसेहिं संहारेण अणुण्णायं वि संपयं सिट्ठीए कारिज्जइ । विरामो उ गड्डरियापवाहो । तओ पडिग्गहियाठियंगारजलाइ बाहिं उज्झिय थालियं पक्खालिय, तत्थ चंदणेण सत्थियं नंदावत्तं वा काउं तस्सुवरि पुप्फक्खयवासे खिविय ओसग्गओ अविहवनारीवोहियं तदभावे सयं वा पवोहियं रत्तवट्टि-मंगलदीवयं ठाविय चंदणपुप्फवासाईहिं पूइय मंगलछप्पयाइ पढणाणंतरं **'नमोऽर्हत्सिद्धाचार्यो०'** इच्चाइ भणिय, **'जेणेगो जिणनाहो'** इच्चाइवित्ततिगं पढित्ता मंगलदीवं उज्जालिय, सव्वेसु तदुवरिं कुसुमाइं खिवंतेसु पंचसरे वज्जंते अभिमिंतो भगवओ पुरो धारेइ । तओ सक्कत्थयं भणित्ता वामग्गेवं काउं मंगलदीवयमणुज्जालिय एगदेसे मुंचइ, न उण आरत्तियं व छिवेइ त्ति—**घरपडिमापूया[विही]समत्तो ॥ १ ।**

अथ ग्रन्थप्रशस्तिः ।

वहुविहसामायारीओ दट्ठु मा मोहमिंतु सीस त्ति ।
एसा सामायारी लिहिया नियगच्छपडिवद्धा ॥ ७ ॥
आगमआयरणाहिं जं किंचि विरुद्धमित्थ मे लिहियं ।
तं सोहिंतु सुयधरा अमच्छरा मह किवं काउं ॥ ८ ॥
जिणदत्तसूरिसंताणतिलयजिणसिंहसूरिसीसेण ।
गुत्ति-रसं-किरियंठाणप्पमिए विक्कमनिवइवरिसे ॥ ९ ॥
विजयदसमीइ एसा सिरिजिणपहसूरिणा समायारी ।
सपरोवयारहेउं समाणिया कोसलानयरे ॥ १० ॥
सिरिजिणवल्लह-जिणदत्तसूरि-जिणचंद-जिणवइमुणिंदा ।
सुगुरुजिणेसर-जिणसिंहसूरिणो मह पसीयंतु ॥ ११ ॥
वाइयसयलसुएणं वाणायरिएण अम्ह सीसेण ।
उदयाकरेण गणिणा पढमायरिसे कया एसा ॥ १२ ॥
जीए पसायाओ नरा [1]सुकई सरसत्थवल्लहा हुंति ।
सा सरसई य पउमावई य मे दिंतु सुयरिद्धिं[2] ॥ १३ ॥
ससि-सूरपईवा जाव भुवणभवणोदरं पभासेंति ।
एसा सामायारी सफलिज्जउ ताव सूरीहिं ॥ १४ ॥
पच्चक्खरगणणाए पाएण कयं पमाणमेईए ।
चउहत्तरी समहिया पणतीससया सिलोयाणं ॥ १५ ॥
विहिमग्गपवा नामं सामायारी इमा चिरं जयइ ।
पल्हायंती हिययं सिद्धिपुरीपंथियजणाणं ॥ १६ ॥

॥ अङ्कतोऽपि ग्रन्थाग्रं ३५७४ ॥

*

॥ इति विधिमार्गप्रपा सामाचारी संपूर्णा ॥

---

1 सुकवयः सरसार्थवल्लभाः, पक्षे सुकृतिनः ईश्वरसार्थे वल्लभाः । 2 श्रुतं सुताश्च शिष्याः ।

कलियं पावयं निव्वेयणगब्भं पणिहाणसारं विचित्तसद्दत्थं पवरथोत्तं भणित्ता, मुत्तासुत्तिमुद्दाए 'जयवीयराय' इच्चाइ पणिहाणगाहादुगं पढइ । तओ आयरियाइ वंदिज्ज त्ति । इत्थ पक्खे दंडगा पंच, थुईओ चत्तारि एएण जुयलेण मज्झिम त्ति नेयं ।

> चत्तारि अंगुलाइं पुरओ ऊणाइं जत्थ पच्छिमओ ।
> पायाणमंतरालं एसा पुण होइ जिणमुद्दा ॥ १ ॥
> अन्नोन्नंतरि अंगुलि कोसागारेहिं दोहिं हत्थेहिं ।
> पिट्टोवरि कुप्परसंठिएहिं तह जोगमुद्द त्ति ॥ २ ॥
> मुत्तासुत्तिमुद्दा समा जहिं दो वि गब्भिया हत्था ।
> ते पुण निलाडदेसे लग्गा अन्ने अलग्ग त्ति ॥ ३ ॥

एसा वि मज्झिमा चीवंदणा । उक्कोसा पुण सक्कत्थयपणगेणं । सा चेवं – पढमं सिलोगाइरूवे नमोक्कारे भणित्ता, सक्कत्थयं भणिय उट्ठिय इरियावहियं पडिक्कमिय, पुव्वं व नमोक्कारे सक्कत्थयं च भणिय उट्ठिय, 'अरहंतचेइआणं' इच्चाइदंडगेहिं पुणरवि चउरो थुई दाउं पुणो सक्कत्थयं पढिय 'जावंति चेइआइं' इच्चाइ गाहादुगं भणित्ता 'नमोऽर्हत्सिद्धा०' इच्चाइभणणपुव्वं, थोत्तं भणिय पुणो सक्कत्थयं पढिय पणिहाणगाहादुगं तहेव भणइ त्ति चीवंदणाविही ।

एवमलयराए चीवंदणाए देवे वंदिय तओ आयरियाईण खमासमणे, देवस्स पुरओ गीयवाइयनट्टाइभावपूयं काऊण दट्ठूण वा चेइयवंदणत्थमागएसु विहिए वंदिय, सइ पत्थावे तेसिं समीवे धम्मोवएसं सुणिय, जिणभवणकज्जाणं देवदव्वस्स य तत्तिं काऊण, धोवत्तियं मुत्तूण, सुकयत्थमप्पाणं मन्नंतो पूयासु कयमणुमोइंतो जहोचियं दीणदाणं दिंतो नियघरमागच्छिज्जा । तओ वाणिज्जाइववहारं काउं, भोयणकाले तहेव घरपडिमाओ पूइय, तासिं पुरो निवेज्जं ढोइय, तओ वसहिं गंतु फासुयएसणिज्जेण भत्तपाणओसहभेसज्जवत्थपत्ताइणा अणुग्गहो कायव्वो त्ति खमासमणं दाउं आगम्म सुविहियाणं संविभागं काउं, अब्भितरबाहिरं परिवारं गवाइयं च संभालिय, तेसिं अन्नपाणाइचिंतं काउं सयं भुंजिज्जा । तओ घरवाणिज्जाइवावारं काउं, दिणट्ठमभागे वियाले पुणरवि भुंजिय, पुणरवि घरे वा जिणहरे वा पूयं पुव्वभणियनीईए करेइ । नवरं तत्थ चंदणपूयं न करेज्ज त्ति ।

जो उण निव्वाणकलियाए पूयाविही दीसइ सो तारिसं नागविन्नाणकुलसंपहाणपुरिसमविक्खइ, न उण सव्वसामन्नो त्ति न इत्थ भण्णइ ।

पूया य दुविहा निच्चा नेमित्तिया य । तत्थ निच्चा पइदिणकरणिज्जा सा य भणिया । नेमित्तिया पुण अट्ठमि-चउद्दसि-कल्लाणतिहि-अट्ठाहिया-संवच्छरियाइपव्वभाविणी । सा य ण्हवणपहाणा, अओ संपयं ण्हवणविही दंसिज्जइ । सा य सक्कयभासाबद्धगीइकव्व-अज्झयाबद्धवित्तबहुल त्ति सक्कयभासाए चेव लिहिज्जइ –

तत्र प्रथमं पूर्वोक्तस्नानादिक्रमेण देवगृहं प्रविश्य धौतपोतिकां परिधाय, देवस्य पुष्पवेलां धूपावलीपुष्पांजलिस्नपनजलारात्रिकावतारणमङ्गलदीपोद्दापनारूपां कृत्वा शक्रस्तवं भणित्वा, स्नापूजनविधये, स्नात्रपीठं प्रक्षाल्य, चन्दनेन तत्र स्वस्तिकं विधाय, पुष्पदामादिभिश्च संपूज्य, प्रतिमाया अग्रतः स्थित्वा, सविशेषकृतकुसुमकोशो 'नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः' इति नमनपूर्वं 'श्रीमत्पुण्यं पवित्र'-मित्यादिवृत्तपंचकं पठित्वा, स्नात्रपीठस्योपरि कुसुमांजलिं स्नात्रकारः क्षिपेत् । स्नात्रकाराश्च द्रुपदगो ज्ञातिम-

पुणो नियविविच्छेयं रयरांतो ण्हाओ सविसेसं वत्थाभरणाइ सिंगारं काऊण पविवच्छमायकवि सुरहिपवरअमंदरमयकुसुमचंदणफलाइपूयाहत्थो महिड्ढीए जिणिंदभवणे गच्छइ । तम्म संदुवारदेसे चरण-सुद्धोयं काउं सचित्तदव्वाईणि पुप्फ-तंबोल-हय-गयमाईणि अचित्तदव्वाणि य मउड-छुरिया-खग्ग-छत्ताइह-चामर-जंपाणाईणि मुत्तूण एगसाडियं उत्तरासंगं काउं अग्गदुवारमज्झदेसेसु कमेण उच्चरंतो ति निसीहीओ उच्चरंतो जगगुरुणो आलोए चेव भालयलमिलियकरकमलकउलजुयलो 'नमो जिणाणं' भणिय अयरहियमुयलो जिणभवणं पविसइ । एगसाडियं नाम असीविवमसांडियं च, एवं च एगं हिट्ठिमवत्थं एगं च उवरिमवत्थं ति वत्थजुयलेण धोयत्तिया कीरइ । न उण पुव्वदेसिच्चाणं विव अहोई मयं ति रूढं एगमेव वत्थं उवरिं हिट्ठा य जिणभवणे हुज्ज त्ति । न य कंचुयं विणा संकुलकच्छगं व साविया जिण-गुरुभवणेसु वच्चइ त्ति, अलं पसंगेण । तओ देवस्स दाहिणबाहाओ आरब्भ तिण्णि पयाहिणाओ देइ । पयाहिणं च दिंतो जया देवस्स अग्गे उवणमइ तया पणामं करेइ । एवं तिण्हि पणामे करेइ । तओ नाण-दंसण-चारित्तपूयाहेउं अक्खयमुट्ठितिगं सेढीए देवस्स पुरओ अक्खयपट्टाइसु पक्खिवेइ मुंचइ । तओ कयमुहकोसो पुव्वुत्तनिम्मल्लावणयणनिमज्जणाइविहिणा एगग्गमणो मंगलदीवपज्जंतं पूयं करेइ । नवरं जहासंभवं सव्वजिणबिंबाणं सम्मदिट्ठिदेवयाणं च करेइ । तओ उक्कोसेणं देवाओ सट्ठिहत्थमित्ते जहण्णेणं नवहत्थमित्ते मज्झिमओ अंतराले उचियअवग्गहे ठाऊण निरवुत्तो वत्थाइ पमज्जिय भूमिभागे छउमत्थ-समोसरणत्थ-सुवसत्थ-रूवावत्थातिगं भावेंतो जिणबिंबे निवेसियनयणमाणसो पए पए गुणाणुसरिपरायणो जहाजोगं मुद्दातियं पउंजंतो उक्कोस-मज्झिम-जहण्णाहिं चीवंदणाहिं जहासंभवं देवे वंदइ । तासिं च विभागो इमो—

नवकारेण जहण्णा दंडथुइजुयलमज्झिमा नेया ।
उक्कोसा चीवंदण सक्कत्थयपंचनिम्माया ॥ १ ॥

तत्थ नवकारो सीसनमणमेत्तं पंचंगपणिवाओ वा । अहिगयजिणस्स गुणसुरूव-सिलोगाइरूवो वा नमोक्कारो तेण जहण्णा चीवंदणा होइ । तहा दंडगो सक्कत्थयरूवो, थुई य थुत्तसरूवा एएण जुयलेण मज्झिमा चीवंदणा । अहवा—दंडगो 'अरिहंतचेइआणं करेमि काउस्सग्गं' इच्चाइ । तओ काउस्सग्गं अट्ठोस्सासं काउं पारिय एगा थुई दिज्जइ । पणिहाणगाहाओ य मुत्तासुत्तीए पढिज्जंति । इत्थमवि मज्झिमा हवइ । अहवा—इरियावहियं पडिक्कमिय वत्थंतेण भूमिं पमज्जिय तत्थ वामजाणुं अंचिय दाहिणजाणुं धरणितले साहट्टु जोगमुद्दाए सिलोगाइरूवं नमोक्कारं पढिय, नमोत्थुणं इच्चाइ पणिवायदंडगं भणिय, पच्छा पयाहिणं उट्ठिय जिणमुद्दं निरइय 'अरहंतचेइयाणं'ति ठवणारिहंतत्थयदंडगं पढिय, अट्ठोस्सासं काउस्सग्गं करिय, अरिहंतनमोक्कारेण पारिय, अहिगयजिणथुइं दाउं 'लोगस्सुज्जोयगरे' इच्चाइ नमोरिहंतत्थयदंडगं पढिऊण 'सव्वलोए अरहंतचेइयाणं'ति दंडगं भणिय तहेव उस्सग्गे कए, पारिय सव्वजिणथुई दिज्जइ । तओ 'पुक्खरवरदीवड्ढे' इच्चाइ सुयत्थयं पढिऊण 'सुयस्स भगवओ करेमि काउस्सग्गं वंदणवत्तीयाए' इच्चाइ भणिय, तहेव उस्सग्गे कए पारिए य सिद्धंतथुई दिज्जइ । 'तओ सिद्धाणं बुद्धाणं' इच्चाइ सिद्धत्थवं पढिऊणं 'वेयावच्चगराणं' इच्चाइ भणिय तहेव उस्सग्गे कए पारिए य सरस्सई-कोहंडिमाइवेयावच्चगराणं थुई दिज्जइ । इत्थ पत्ता मज्झत्थुइओ 'नमोऽर्हत्सिद्धा०' इच्चाइ भणिऊणं दिज्जंति, इत्थीओ य एयं न भणंति । तओ जाणूहिं ठाउं जोगमुद्दाओ सक्कत्थयदंडगं भणिय, पंचंगपणिवाए कए 'जावंति चेइआइं' इच्चाइ गाहं पढित्ता, खमासमणं दाउं 'जावंत के वि साहू' इच्चाइ गाहं भणिय, 'नमोऽर्हत्सिद्धा०' इच्चाइ पढिय, जोग-मुद्दाए महाकइनिबद्धं गंभीरत्थं [illegible] करेइ

त्र्यं चैतत्—उदिन्नादाणमुणियेत्यादि १, 'पाणयदसमे'त्यादि २, 'वायासीदिणेहिं' इत्यादि ३। ततः सप्रतिमं छत्रं दक्षिणदिग्गूहलिकां नीत्वा तत्रोत्साहद्वयं 'वित्तचलक्खे'त्यादि, 'मेरुसिरुम्मी'त्यादि च पठित्वाऽक्षतपुंजिकात्रयं पूपिकाश्च दद्यात्। एवं पश्चिमदिशि 'जम्मि जिणिंदवंदे'त्यादि 'गुरुवहुमाणे'त्यादि चोत्साहद्वयम्, तथैवोत्तरस्याम्—'उत्तरफाल्गुणीसु'—'रयणवण्णे'त्यादिचोत्साहद्वयं पठेत्। ततः पुनरग्रगूहलिकामागते छत्रे 'वरपावापुरीइ' इत्यादि 'ता सक्कीसाणचमरे'त्यादिना चोत्साहद्वयेन पुष्पांजलिं प्रक्षिप्य, लवणपानीयारात्रिकावतारणं विधाय, जलधारादानातोद्यवादनापूर्वकं छत्रप्रतिमां स्नात्रपीठमानयेत्। पीठे संस्थाप्य ततः 'सद्वेद्यां०' इत्यादि प्रागुक्तक्रमेण स्नपनं कुर्यात्। इति **छत्रभ्रमणविधिः।**

अथ **पञ्चामृतस्नात्रविधिः**—तच्च छत्रभ्रमणकृते वा **'जंमममज्जणे'**ति वृत्तपंचकेन प्रथमं गन्धोदकस्नानपर्यन्तं विधिं कृत्वा, **'मीनकुरंगमदे'**ति धूपं दत्त्वा, ततो 'नमोऽर्हत्सिद्धे'ति भणनपूर्वं **'महुरो सुर होइ'**ति गाथयेक्षुरसस्नानं विदध्यात्। ततो **'मीनकुरंगमदे'**ति धूपः। एवं वक्ष्यमाणसर्वस्नानान्तरालेष्वनेनैव धूपं दद्यात्। ततः **'पायात् स्निग्धमर्पी'**त्यार्यया घृतस्नानं, ततः पिष्टादिभिः स्नेहमुत्सार्य **'उचितमभिषेके'**त्यार्यया **'वहइ सिरिं तियसगणे'**ति गाथया वा दुग्धस्नानम्। तत **'उवणेउ मंगलं वो'** इत्यादि गाथाद्वयेन दधिस्नानम्। तत एकोनविंशत्या **'अभिषेकपयोधारे'**त्यादिभिर्वृत्तैराद्यान्त्यवृत्तयोर्नमोऽर्हत्सिद्धाचार्येत्युच्चारयन्नेकोनविंशतिगन्धोदकेन धारा देवशिरसि दद्यात्। ततः पंचधारकं तत्र प्रथमं **'सर्वजित०'** इति वृत्तेन सर्वौषधिस्नानम्। ततः **'स्वामिन्नित्य'**मिति वृत्तेन जातीफलादिसौगन्धिकस्नानम्। ततः **'स्वच्छतये'**ति वृत्तेन शुद्धजलस्नानम्। ततः **'कथमय'**मिति वृत्तेन कुङ्कुमस्नानम्। ततश्च **'भवती लघोरपी'**ति वृत्तेन कुङ्कुमचन्दनस्नानम्—इति पंचधारकम्। ततः **'कुंकुमहृद्यं द्यो'**मिति वृत्तेन चन्दनविलेपनः। ततः **'उपनयतु भवांत'**मिति वृत्तेन कस्तूरिकामयपट्टं कुर्यात्। ततो **'भाति भवतो ललाटे'** इति वृत्तेन गोरोचनया सर्पपैश्च देवस्य तिलकं कुर्यात्। ततो **'मेरौ नन्दनपारिजाते'**त्यादिवृत्तसप्तकेन क्रमात् सप्त कुसुमांजलीन् क्षिपेत्। ततः पूजाकारोऽधिवासिते कलशचतुष्टये स्नपनकारैर्गृहीते सत्येकं प्रतिमायाः पुरतः स्थित्वा **'कर्पूरस्फुटभिन्ने'**त्यादिवृत्तद्वयेन कुसुमांजलिद्वयं प्रक्षिपेत्। पश्चात् कलशचतुष्टयेन स्नपनकाराः स्नानं कुर्युः। तदनन्तरमाहारस्थालं भगवतः पुरो दध्यात्। ततः परिधापनिकां लवणजलारात्रिकावतारणं मङ्गलप्रदीपं च प्रागवत् कुर्यात्—इति **पञ्चामृतस्नानम् १।**

एतच्च विशेषपर्वसु विघ्नशान्त्यै निरुपाधिवासनामात्रेण वा कुर्यात्। इदं च प्रायो दिक्पालादिस्थापनं विना न भवतीत्यष्टाह्निकाद्युपयोगी तद्विधिः प्रदर्श्यते—**'सद्वेद्यां भद्रपीठे'** इति वृत्तद्वयेन कुसुमांजलिप्रक्षेपपर्यन्तं विधिं विधाय, पट्टकं प्रक्षाल्य, देवपादपीठाग्रे निश्चलीकृत्य **'ज्ञानदर्शनचारित्रे'**त्यादि वृत्तत्रयेण तत्र पट्टके पंचविंशतिं पुंजिकाः कुर्यात्। पुंजिकाशब्देन कुंकुममिश्रचन्दनटिक्का ज्ञेयाः। क्रमश्चायम्—ज्ञान १ दर्शन २ चारित्र ३; वासव १ सोम २ यम ३ वरुण ४ कुवेर ५; शासनयक्ष १ शासनयक्षिणी २; आदित्य १ सोम २ मंगल ३ बुध ४ बृहस्पति ५ शुक्र ६ शनैश्चर ७ राहु ८ केतु ९; साधर्मिकदेवता १............मद्रकदेवता ३ क्षेत्रदेवता ४ देशदेवता ५ आगंतुकदेवता ६—एवं २५। **स्थापना चेयम्**—

```
∘ ज्ञा  द  चा ∘
•  •   •   •  •
•  ∘   य   ∘  ∘
•  सो  वा  व • ∘
•••     कु   ∘∘∘
```

एवं पंचविंशतिं पुंजिकाः कृत्वा वलिपुष्पधूपवासपूपिकादधिदुर्वाभिः प्रपूज्य, पुंजिकासु **'वये देवा'** इति वृत्तेनाखण्डितं जलधारादानं कुर्यात्। तत एकः फालिपत्रपर्पटादिमिश्रवकुलादिमद्धे पत्रलिभाजनं गृह्णीयात्, अन्यो धारादानार्थं धारघटीम्, अपरश्च धूपदानम्, अन्यश्च पुष्पादीनि यथासंभवं वा। ततः प्रतिमाभिमुख्यां दिशं पूर्वां परिभाव्य तत्संमुखं गत्वा **'ऐरावतसमारूढ'** इति वृत्तं पठित्वा प्रक्षेरवलिं प्रक्षिपेत्। **'एकं सदा बह्निदशेने'**-

दन्ता अधिकाः स्युः । ततश्चलप्रतिमां स्नपनपीठे स्थापयेत् सुष्ठा च प्रतिमाया जलधारां भ्रामयेच्चन्दनेन च पूजयेत् । ततः शक्रस्तवभणन-साधुवन्दने कुर्यात् । स्थिरप्रतिमानां तु स्थानस्थितानामेव कुसुमांजल्यादिसर्वं कर्त्तव्यम् । ततः कुसुमांजलिं गृहीत्वा **'प्रोद्भूतभक्तिभरे'**त्यादिवृत्तपंचकं भणित्वा प्रतिमायास्तं क्षिपेत् । ततो निर्माल्यमपनीय प्रतिमां प्रक्षाल्य पूजयेत् । ततः **'सद्देवां भद्रपीठे'** इत्यादिवृत्तद्वयेन कुसुमांजलिं क्षिपेत् । ततः सर्वौषधिं गृहीत्वा **'मुक्तालंकारे'**त्यार्यया पुष्पालंकारावतारणे कृते सर्वौषधिस्नानं कारयेत् । ततः प्रक्षाल्य संपूज्य च प्रतिमाया **'भव्यानां भवसागरे'** इतिवृत्तेन धूपमुत्क्षिपेत् । ततः एकं पुष्पं समादाय **'किं लोकनाथे'**ति वृत्तं भणित्वा उष्णीषदेशे पुष्पमारोपयेत् । ततः कलशद्वयं कलशचतुष्टयादि वा प्रक्षाल्य धूपपुष्पचन्दनवासाद्यैरधिवास्य कुङ्कुमकर्पूरश्रीखण्डादिसंपृक्तसुरभिजलेन भृत्वा पिहितमुखं पट्टके चन्दनकृतस्वस्तिके संस्थापयेत् । ततः कुसुमांजलिपंचकं क्रमेण **'बहलपरिमले'**त्यादि मात्रावृत्तपंचकं पठित्वा क्षिपेत् । नवरमाद्यान्त्यवृत्तयोर्नमोऽर्हत्सिद्धेत्यादि भणेत् । वृत्तान्ते तु शङ्खभेरीझल्लर्यादिठणत्कारं मन्द्रं दधुः श्राद्धिकाद्याः कलशान् भृत्वा कुसुमांजलिपंचकं क्षिपेत्, क्षिप्त्वा वा कलशान् भरेदुभयथाऽप्यदोषः । तत इन्द्रहस्तान् प्रक्षाल्य हस्तयोर्भाले च चन्दनतिलकान् कृत्वा, स्नपनक्रियद्रव्यनिक्षिप्ते सकलसंघानुमत्या कलशानुत्थाप्य, नमोऽर्हत्सिद्धेत्यधीत्य **'जम्ममज्जणि जिणइयीरस्से'**त्यादि कलशवृत्तेषु जन्माभिषेककलशवृत्तान्तरेषु वाऽन्यैः पठितेषु तदभावे स्वयं वा भणितेषु, कुम्भपिधानान्यपनीय, पंचशब्दे वाद्यमाने श्राविकासु जिनजन्माभिषेकगीतानि गायन्तीषूभयतोऽप्यखण्डधारं स्नपनं कुर्वन्ति, द्रष्टारश्च जिनमज्जनप्रतिबद्धछन्दयानि पठन्ति, मुहुर्मुहुर्मूर्द्धानं नमयन्ति । यच स्नात्रे जलं मूर्द्धाचक्षुषु केचिल्लगयन्ति तद् गतानुगतिकं मन्यन्ते गीतार्थाः । श्रीपादलिप्ताचार्यैस्तन्निषेधात् । तथा च तद्वचः—'निर्माल्यभेदाः कथ्यन्ते—देवस्वं देवद्रव्यं नैवेद्यं निर्माल्य चेति । देवसंनन्धिग्रामादि देवस्वम्, अलंकारादि देवद्रव्यम्, देवार्थमुपकल्पितं नैवेद्यम् । तदेवोत्सृष्टं निवेदितं बहिः निक्षिप्तं निर्माल्यं पंचविधमपि निर्माल्यं न जिघ्रेन्न च लंघयेन्न च दद्यान्न च विक्रीणीत । दत्त्वा कव्यादो भवति, भुक्त्वा मातंगः, लंघने सिद्धिहानिः, आघ्राणे वृक्षः, स्पर्शने स्त्रीत्वम्, विक्रये शबरः । पूजायां दीपालोकनधूपामात्रादिगन्धे न दोषः । नदीप्रवाहनिर्माल्ये चे'ति कृतं प्रसंगेन । ततः शुद्धोदकेन प्रक्षालं कृत्वा धूपितवस्त्रखण्डेन प्रतिमां रूक्षयित्वा चन्दनेन समभ्यर्च्य समालभ्य वा पुष्पपूजां विधाय **'मीनकुरंगमदे'**ति वृत्तेन धूपमुद्ग्राहयेत् । तत आहारस्थालं दद्यात् । ततः परिधापनिकां प्रतिलिख्य करयोरुपरि निवेश्यैकस्मिन् धूपमुद्ग्राहयति सति पुष्पचन्दनवासैरधिवास्य 'नमोऽर्हत्सिद्धाचार्ये'त्यादि भणित्वा, **'शक्रो यथा जिनपते'**रिति वृत्तद्वयमधीत्य सोत्सवं देवस्योपरिष्टादुभयतो लम्बमानां निवेशयेत् । ततः कुसुमांजलिवर्जं लवणजलारात्रिकावतारणं मङ्गलदीपान् प्राग्वत् कुर्यात् । नवरं लवणाद्यवतारणेषु तथैव प्रतिवृत्तं वादित्रमत्रध्वनिं कुर्यात् । ततो यथासंभवं गुरुदेशनां श्रुत्वा स्वगृहमेत्य स्नपनकारादिसाधर्मिकान् भोजयेदित्योघतः **स्नपनविधिः** ।

यस्य पुनर्विशेषपर्वापेक्षया छत्रभ्रमणं प्रति भावना भवति, स प्राग्वत् स्नपनमारभ्य यावत् **'प्रोद्भूतभक्ती'**त्यादिवृत्तैः कुसुमांजलिं प्रक्षिप्य निर्माल्यमपनीय पूजां च कृत्वा, स्नपनपीठस्थाया एकस्याः प्रतिमायाः पुरतः **'सरसगुपंध'** इति वृत्तेन कुसुमांजलिं क्षिपेत् । ततस्तस्याः प्रतिमाया **'हियपाइं पडंत'**मिति गाथया स्नानं कुर्यात् । तदनन्तरं स्थाले चन्दनेन स्वस्तिकं कृत्वा, तत्र पीठात् तां प्रतिमां धारयेत् । ततश्च पुरतः स्थाल एवाक्षतपुंजिकात्रयं न्यसेत् । अनन्तरं जलधारादानपूर्वमातोद्यवादनापूर्वं च छत्रतले प्रतिमां नयेत् । ततो देवस्याग्रभागादारभ्य प्रथमाभ्रम(१) कृते गूंहलिकेति रूढे गोमयगोमूत्रचतुष्टये प्रथमगूंहलिकायामक्षतपुंजिकात्रयं पूपिकाश्च दद्यात् । ततः पुष्पांजलिमुपादाय क्रमेणोत्साहत्रयं पठित्वा, एकैकं कुसुमांजलिं प्रक्षिपेत् । उत्साह-

दण्डकमगनादिविधिपूर्वं चतस्रो वर्द्धमानाक्षरस्वराः स्तुतीर्दत्त्वा, ततः श्रीशान्तिनाथाराधनार्थं कायोत्सर्गमष्टोच्छ्वासं कृत्वा, पारयित्वा श्रीशान्तिनाथस्य स्तुतिमेको दद्यात्, शेषाः कायोत्सर्गस्थाः शृणुयुः। ततः क्रमेण श्रीशान्तिदेवता-श्रुतदेवता-भवनदेवता-क्षेत्रदेवता-अम्बिका-पद्मावती-चक्रेश्वरी-अच्छुप्ता-कुबेरा-ब्रह्मशान्ति-गोत्रदेवता-शक्रादिसमस्तवैयावृत्त्यकराणां कायोत्सर्गान्ते प्राग्वत् सामाचारीदर्शिताः स्तुतीस्तेषामेव दद्यादन्या वा प्राकृतभाषानिबद्धाः। ततः शासनदेवताकायोत्सर्गे उद्योतकरचतुष्टयं चिन्तयित्वा तस्याः स्तुतिं दत्त्वा श्रुत्वा वा, चतुर्विंशतिस्तवं भणित्वा, पंचमङ्गलं त्रिः पठित्वा, ततो जानुभ्यां स्थित्वा, शक्रस्तवं भणित्वा, 'जावंति चेइआइं' इत्यादिगाथाद्वयमधीत्य, परमेष्ठिस्तवं शान्तिस्तवं वा भणित्वा प्रणिपत्य, ततो मुक्ताशुक्त्या प्रणिधानगाथाद्वयं भणेयुः। इति **चैत्यवन्दना समाप्ता।**

ततो द्वौ धौतपोतिकौ श्रावकेन्द्रौ कलशोदकेन भृङ्गारद्वयं भृत्वोभयतस्तिष्ठेताम्। एकः स्थालके कृत्वा पुष्पचंदनवासान् गृह्णीयादपरश्च धूपायनं पाणिप्रणयीकुर्यात्। ततस्त एव श्रावका सप्तनमस्कारान् पठित्वा सप्तधाराः कलशे निक्षिप्य 'नमोऽर्हत्सिद्धा०' इत्युच्चार्य आदौ—**'अजियं जियसव्वभयं'** इति स्तवेनान्यैः स्वयं वा पठितेन शान्तिं घोषयेयुः। सर्वपद्यानां प्रान्ते एकैकां धारां कलशे भृङ्गारग्राहिणौ समकालं दद्याताम्। एकश्च पुष्पादीन् क्षिपेदपरश्च धूपं दद्यात्। स्तवसमाप्तौ पुनर्भृङ्गारौ भृत्वा **'उल्लासिकम'**-स्तोत्रेण शान्तिं घोषयेयुः। तथैव पुनर्भयहरस्तवेन, ततः—**'तं जयउ जये तित्थं'** तदनु **'भयरहिय'**मिति स्तवेन तदनन्तरं **'सिग्घमवहरउ विग्घ'**मिति स्तवेन, शान्तिं घोषयेयुः। सर्वत्र पद्यसमाप्तौ कलशे धारादानपुष्पादिक्षेपाः प्राग्वत्। नवरं सर्वस्तवानामन्त्यवृत्तं त्रिर्भणेयुः। ततश्च सप्तकृत्व उपसर्गहरस्तोत्रं भणित्वा धारादानपुष्पादिक्षेपविधिना शान्तिं घोषयेयुः। शान्तौ च घोष्यमाणायां साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका उपयुक्तास्तुमुलं निवार्य शान्तिं शृणुयुः। इति शान्तिघोषणं कृत्वा मङ्गलदीपमनुज्ञाप्य प्राग्वद्दिक्पालग्रहादीन् विसृज्य, प्रक्षाल्य, ततः प्रथमं कलशग्राहिण्यै शान्त्युदकं पूगफलादि च समर्प्य, क्रमात् सकलसंघाय समर्पयेयुः। तच्च सर्वेषु उत्तमाङ्गाद्यङ्गेषु लगयेयुर्गृहादि च तेनाभिषिंचेयुः। इति **शान्तिपर्वविधिः।**

देवाहिदेवपूजाविही इमो भवियणुग्गहट्ठाए।
उपदर्शितो श्रीजिनप्रभसूरिभिराम्नायतः सुगुरोः॥

॥ ग्रन्थाग्रं० २६९ ॥

॥ इति देवपूजाविधिः समाप्तः ॥

त्यादिभिर्नवभिर्वृत्तैर्नवस्वपि दिक्षु तं क्षिपेत्। नवरमायान्त्यवृत्तयोर्नमोऽर्हत्सिद्धेत्यादि भणेत्। ततो ब्रह्मशान्त्यायसंगृहीतदेवतातोषणार्थं शेषबलिभाजनमधोमुखी कुर्यात्। अत एव केचिद्देहलीदेशे ब्रह्मशान्त्यादीनपि स्थापयन्ति। ततश्च दिक्पालयोग्यं प्रक्षालितं पट्टकं देवस्य दक्षिणबाहौ स्थापयित्वा 'भो भो सुरे'ति वृत्तद्वयेन दिक्पालपट्टकोपरि कुसुमांजलिं क्षिपेत्। तद् 'इन्द्रमग्नियमं चैवे'ति वृत्तेन क्रमेण दिक्पालान् कुङ्कुमचन्दनटिक्केषु स्थापयेत्। स्थापना चेयम्। तेषु दशपूपिका धूपसुरभिता दधिदूर्वाक्षतपुष्पयुक्ताः 'प्राचीदिग्वधूवरे'त्यादिवृत्तदशकं [इ० ब्र० अ० / कु० ई० य० / व० / वा० ना० नै०] पठित्वा क्रमेण दद्यात्। एकैकां पूपिकामेकैकेन वृत्तेन एकैकस्मिटिक्के दध्यात्। अत्राप्याद्यान्त्यवृत्तयोर्नमोऽर्हत्सिद्धाचार्य इति भणेत्। 'तदिति' – 'दिग्धिपे'ति वृत्तेन दिक्पालानामुपरि पुष्पांजलिं प्रक्षिपेत्। तदनन्तरं चैत्यवन्दनं साधुवन्दनं च कुर्यात्। अनन्तरं 'मुक्तालंकारविकारे'त्यादिविधिः प्रागुक्त एव। यावन्मङ्गलप्रदीपे कृते शक्रस्तवानन्तरं मङ्गलप्रदीपमनुज्ञाप्य ततो धूपमुत्क्षिपेत्। नमोऽर्हत्सिद्धेति गृणन् 'चोलोरक्षेपै'रिति वृत्तद्वयेन दिक्पालान् विसर्जयेत्। दिक्पालपट्टिकायामीशानदिक्पूपिकां मुक्त्वाऽन्यो नवदिक्पूपिका उत्तारयेत्। अंचलं वावतारयेत्। एवं 'शक्राद्या लोकपाल' इति वृत्तेन गृहपट्टिकादेवतान् विसृज्यांचलावतारणं कुर्यात्। केचित् प्रथममेतान् विसृज्य पश्चाद्दिक्पालान् विसृजन्ति।

अष्टाह्निकासु प्रथमदिनादारभ्य शान्तिपर्वदिनं यावन्मूलप्रतिमां दिक्पालपट्टिकां च न चालयेत्; ग्रहपट्टिकां तुलाष्टकदेशे मुद्येत्। अष्टाह्निकाप्रारम्भश्च यद्यपि चैत्राश्विनयोः शुक्लाष्टमीत आरम्य सर्वत्र रूढस्तथापि पूज्यश्रीजिनदत्तसूरीणामाम्नाये संघस्य चन्द्रबलाद्यपेक्षया तथा कर्त्तव्यो यथा सप्तम्यष्टमीनवम्यः क्षुद्रदेवतादिनतया रौद्रा अष्टाह्निकामध्ये आयान्तीति गुरवः। अष्टाह्निकायदेवपूजा देवद्रव्योत्पत्तिसाधर्मिकभोजनगीतनृत्यवादित्रादिप्रभावनाभिर्यथोत्तरमारोहत्प्रकर्षाः कर्त्तव्याः।

एवमष्टाह्निकासु सम्पूर्णासु नवमदिने संघस्य चन्द्रबलाद्यभावे विरुद्धदिनमद्वैत(?) दिनांतरे वा शान्तिपर्व कुर्यात्। तस्य चायं विधिः – चन्द्रबलाद्युपेतशुभवेलायां जीवन्मातापितृश्वश्रूश्वशुरभर्तृका निःशल्या नायिका साधर्मिकस्त्रीजनं सवेदमन्याहूय तस्मै ताम्बूलाद्युपचारं यथाशक्ति कृत्वा, शुभमाषाकोर्चीर्णं तं·············
·············पूगफलहिरण्यगर्भं कण्ठावद्धसुगन्धिकुसुममाल्यं चतुर्दिग्न्यस्तनागवल्लीदलं पिधानस्थगिताननं कलशं मूर्द्धानमारोप्य वितनायमाने चारूलोचे पंचशब्दे वाद्यमाने गायन्तीषु शुभवनितासु शाह्निकमार्दङ्गिकपाणविकादिभ्यो दानं ददानाः पेशलनेपथ्यप्रधानाः, देवगृहसिंहद्वारं प्राप्य तद्द्वारभित्तौ चन्दनपिष्टकादिपञ्चाङ्गुलिजानि दत्त्वा विधिना देवगृहं प्रविश्य गंहुलिकायां मुसिनाद्युपरि कलशं स्थापयेत्। एतावता कलशस्य स्थापना जाता। ततः सा साध्वी गृहमागत्य स्नपनेप्सितामयमाहारस्थालं प्रदीपबलिं पूपिकाश्च सज्जीकुर्यात्। ततः शान्तिपोषका इन्द्राः कलशस्योपर्याकाशे वंशादिषट्ट्यां पीगुंभचीरिकावेष्टितां तिर्यक् कृत्य, तत्र पुष्पमालां लम्बमानां कुम्भमुखं यावद्धारयेयुः। ततः संघमाहूय प्रागुक्तरीत्या देवस्य धूपवेलां मङ्गलप्रदीपान्तं कृत्वा ततः प्राग्वद् दिक्पालग्रहपट्टिके स्थापयित्वा प्रदीपबलिपूपिकादिविधिं च तथैव विधाय, ततः कलशाधोभागे यदि किंचित् शान्त्युदकग्रहणाय निक्षयत्, आदितः कलशमाहिर्णीनमानवसु संपाद्य गृहीत्वा कलशाग्रे स्नपनेप्सितादास्थालं दत्त्वा कलशस्य परिधापनिकां 'शक्रो यथा जिनपते'रिति वृत्तद्वयेन गुरुः। पंचवर्णादि परिधापनिकां कुम्भगलीयं मावलम्बयेयुः। ततः कुङ्कुमद्रवेण कलशोदकं मिश्रयेयुः। ततः कुसुमाक्षतनिस्तनोदकाभिषेकारात्रिकाणि मङ्गलप्रदीपं च कलशस्योपरि गुरुः। मङ्गलप्रदीपश्च तारकपर्यन्तो यावत् चैत्यवन्दनं शान्तिस्तोत्रं च यावद् दीप्यते, तावन्नर्योऽपि निर्वाति। इत्थं हि संघस्य श्रेय इति।
ततः पेषीणिपिकी प्रतिक्रम अनुज्ञां प्राप्य च्छित्त्वा गलद्धारान् प्रक्षाल्य च मर्दित्वा, उत्थाय स्नात्रार्हस्थ-

श्रीजिनप्रभसूरिकृताः स्तुतित्रोटकाः ।

—[१]—

ते धन्नपुन्नसुकयत्थनरा, जे पणमहि सामिउं भत्तिभरा ।
फलवद्धिपुरट्ठियपासजिणं, अससेणह नंदण भयहरणं ॥ १ ॥
वामाइविराणीउयरसरे, उप्पन्नउ सामिउ हंसपरे ।
तुम्हि वंदहु भवियहु भाउधरे, जिम दुत्तरु भउ संसार तरे ॥ २ ॥
इहि दूसम समइ महच्छरियं, फलवद्धिपासु जं अवयरियं ।
भवियणहं मणिच्छिय देउ सुहं, सो इक जीह वंनियइ कहं ॥ ३ ॥
झणझणण झणकहिं घग्घरियं, तद्धुनकटि नाकट्ठि तिविल झणियं ।
लकुटारस नच्चहि इकमणी, भवियण आणंदिहिं जिणभवणी ॥ ४ ॥

—[२]—

नियजंमु सफलु रावणहं सुयं, दिवराय जु तित्थहं जत्त कियं ।-
निचलव(म?)णि वेंचिउ नियधणं, विमलग्गिरि वंदिउ आदिजिणं ॥ १ ॥
दिवराय सरिसु नहु अंनु कली, जिणि दूसमसमइहिं माणु मली ।
सुपवित्त सुखित्तिहि वरिउ धणं, उज्जिलगिरि पणमिउ नेमिजिणं ॥ २ ॥
महिमंडलि हुय संघवइ घणा, दिवराय सरिस नहु अंनु जणा ।
जिणि ढिल्लियनयरहं मज्झि सयं, देवालउ कड्डिउ जत्त कियं ॥ ३ ॥
फालिहमणिससिहरकरविमले, जसकलसु चडाविउ जेण कुले ।
मग्गण जण तोसिय धणवरिसे, अवयरिउ कंनु दिवरायमिसे ॥ ४ ॥
सिरिसूरिजिणप्पहभत्तिभरे, सुताणिहि मंनिउ विविह परे ।
पउमावइ सानिधि सयल जए, चिरु नंदउ देल्हिगु संघवए ॥ ५ ॥

॥ त्रोटकाः समाप्ताः ॥

श्रीजिनप्रभसूरिकृता प्राभातिकनामावली।

*

सौभाग्यभाजनमभङ्गुरभाग्यभङ्गीसङ्गीतधामनिजधाम निराकृतार्कम्।
अर्चामि कामितफलं हतिकल्पवृक्षं श्रीमन्तमस्तवृजिनं जिनसिंहसूरिम्॥

केवलज्ञानी १ निर्वाणी २ [इत्यादि] २४ अतीतजिननामानि।
ऋषभ १ अजित २ [इत्यादि] २४ वर्तमानजिननामानि।
पद्मनाभ १ सूरदेव २ [इत्यादि] २४ भविष्यज्जिननामानि।
सीमंधर स्वामी १ युगंधर स्वामी २ [इत्यादि] २० विहरमानजिननामानि।
ॐ नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं [इत्यादि] पंचनमस्काराः।
इंद्रभूति १ अग्निभूति २ [इत्यादि] ११ गणधरनामानि।
रोहिणी १ प्रज्ञप्ति २ [इत्यादि] १६ विद्यादेवीनामानि।
अप्रतिचक्रा १ अजितबला २ [इत्यादि] २४ जिनयक्षिणीनामानि।
गोमुख १ महायक्ष २ [इत्यादि] २४ जिनयक्षनामानि।
नाभि १ जितशत्रु २ [इत्यादि] २४ जिनपितृनामानि।
मरुदेवा १ विजया २ [इत्यादि] २४ जिनमातृनामानि।
भरत १ सगर २ [इत्यादि] १२ चक्रवर्तिनामानि।
त्रिपृष्ठ १ द्विपृष्ठ २ [इत्यादि] ९ अर्द्धचक्रिनामानि।
अचल १ विजय २ [इत्यादि] ९ बलदेवनामानि।
अश्वग्रीव १ तारक २ [इत्यादि] ९ प्रतिवासुदेवनामानि।
समुद्रविजय १ अक्षोभ २ [इत्यादि] १० दशार्हनामानि।
युधिष्ठिर १ भीम २ [इत्यादि] ५ पांडवनामानि।

ब्राह्मी। सुन्दरी। रोहिणी। दवदंती। सीता। अंजना। राजीमती [इत्यादि] सतीनामानि।

बाहुबली। सुग्रीव। विभीषण। हनूमंत। दशार्णभद्र। प्रसन्नचन्द्र [इत्यादि] सत्पुरुषनामानि।

सिद्धार्थ। जंबूस्वामि। प्रभव। शय्यंभव। यशोभद्र। संभूतविजय। भद्रबाहु। स्थूलभद्र। आर्यसुहस्ति। सिंहगिरि। धनगिरि। आर्यसमित। वैरस्वामि। आर्यरक्षित। दुर्बलिकापुष्यमित्र। घृतपुष्यमित्र। वस्त्रपुष्यमित्र। वज्रसेन। नागेन्द्र। चन्द्र। निर्वृति। उद्देहिक। कोट्याचार्य। जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण। सिद्धसेन दिवाकर। उमास्वाति वाचक। आर्यश्याम वाचक। गोविंद वाचक। रेवती। नागार्जुन। आर्यखपट। यशोभद्रसूरि। मल्लवादी। वृद्धवादी। बप्पहट्टि। कालकसूरि। शीलांकसूरि। हरिभद्रसूरि। सिद्धऋषि। पादलिप्तसूरि। देवसूरि। नेमिचंद्रसूरि। उद्योतनसूरि। वर्द्धमानसूरि। जिनेश्वरसूरि। जिनचंद्रसूरि। जिनभद्रसूरि (?) अभयदेवसूरि। जिनवल्लभसूरि। जिनदत्तसूरि। जिनचंद्रसूरि। जिनपतिसूरि। जिनेश्वरसूरि। श्रीजिनसिंहसूरि। श्रीजिनप्रभसूरि। श्रीजिनदेवसूरि।

॥ इति प्राभातिकनामावली समाप्ता। विरचितेयं श्रीमज्जिनप्रभसूरिभट्टारकमिश्रैः॥

श्रीजिनप्रभसूरिकृतं मथुरायात्रास्तोत्रम् ।

सुराचलश्रीजिति देवनिर्मिते स्तूपेऽभिरूपे वरदो(दे) कृतास्पदौ ।
सुवर्णनीलोपलकोमलच्छवी सुपार्श्व-पार्श्वौ मुदित[ः] स्तवीमि वाम् ॥ १ ॥
पृथ्वीसुतोऽपि त्रिजगज्जनानां क्षेमंकरस्त्वं भगवान् सुपार्श्व ! ।
अपि प्रतिष्ठाङ्गरुहस्तमीश कथं च लोके जनितप्रतिष्ठः ॥ २ ॥
पार्श्वप्रभो येऽत्र मनोभिरामत्वन्नाममन्त्रस्मरणैकतानाः ।
उच्चञ्चलचञ्चलतागुणाया भवन्ति ते मन्दिरमिन्दिरायाः ॥ ३ ॥
महीतलास्फालनघृष्टमालः सुपार्श्व ! सर्पत्पुलकैर्विशालः ।
कदा त्वदंह्रि प्रणिपातकर्मप्रमोदमेदस्विमना [नमा]मि ॥ ४ ॥
यात्रोत्सवेषु प्रभुपार्श्व ! तेऽत्रागतस्य संघस्य चतुर्विधस्य ।
उत्क्षिप्यमाणागुरुधूपधूमव्याजेन निर्यान्ति तमःसमूहाः ॥ ५ ॥
समुच्चरद्धूमशिखप्रदीपच्छलेन वां सेवितुमागता अमी ।
शिरश्चकाशन्मणयः फणाभृतो निजं कृतार्थाः प्रतियान्ति मन्दिरम् ॥ ६ ॥
रुजा भुजङ्गार्णवदावदन्तिनो मृगाधिपस्तेन नरेन्द्रसंयुगाः ।
पिशाचशाकिन्यरयश्च तन्वतो भियं न तस्य स्मरतीह यो युवाम् ॥ ७ ॥
पादारविन्दं सुरवृन्दवन्द्यं वन्दारवो ये युवयोरनिन्द्यम् ।
देवी कुबेरा विपदस्तदीया समूलकाषं कषति प्रसन्ना ॥ ८ ॥
यौष्माकवीक्षारसमग्ननेत्रप्रसारिहर्षाश्रुभिराम्भसीकाः ।
ज्वलन्तमन्तर्निचिताघवह्निं निर्वापयन्ते जगतीह धन्याः ॥ ९ ॥
इति स्तुतिं श्रीमथुरापुरीस्थयोः पठन्ति ये वां शठतां विनाकृताः ।
सुपार्श्वतीर्थेश्वर पार्श्वनाथ वा जिनप्रभद्रं पदमाप्नुवन्ति ते ॥ १० ॥

॥ इति श्रीमथुरायात्रास्तोत्रं समाप्तम् ॥

श्रीजिनप्रभसूरिकृता मथुरास्तूपस्तुतयः ।

श्रीदेवनिर्मितस्तूपशृङ्गारतिलकश्रियौ । सुपार्श्व-पार्श्वतीर्थेशौ क्लेशं नाशयतां सताम् ॥ १ ॥
प्रमोदसंमदं पादपीठी लुठदधीश्वराः । कर्मालिनलिनीचन्द्राः......संभवंतु वः ॥ २ ॥
मिथ्यात्वविषविक्षेपदक्षं सुमनसां प्रियम् । जिनास्यजलदे......जीयात् प्रवचनामृतम् ॥३॥
विमौघघातने निघ्ना मधूपमशिरस्थिता । कुबेरा नरमारूढा मूढभावं भिनत्तु नः ॥ ४ ॥

॥ श्रीदेवनिर्मित [स्तूप] स्तुतयः ॥

श्रीजिनप्रभसूरिकृतं तीर्थयात्रास्तोत्रम् ।

सिरिसत्तुंजयतित्थे रिसहजिणं पणिवयामि भत्तीए ।
उज्जितसेलसिहरे जायवंकुलमंडलं (णं) नेमिं ॥ १ ॥
सेरीसयपुरतिलयं पासजिणमणेयबिंबपरियरियं ।
फलवद्धी-संखेसर-थंभणयपुरेसु तह वंदे ॥ २ ॥
पाडलनयरे नेमिं नमिमो तारणगिरिंमि अजियजिणं ।
भरुयच्छे मुणिसुव्वयजिणेसरं सवलियविहारे ॥ ३ ॥
जीवंतसामिपडिमं वायडनयरंमि सुव्वयजिणस्स ।
चंदप्पहसामिं तह हरपट्टणभूसणं थुणिमो ॥ ४ ॥
अहिपुर-जालउरेसुं पल्हणपुर-भीमपल्लि-सिरिमाले ।
अणहिलपुर-सिरिखिजे आसावल्ली य धवलक्के ॥ ५ ॥
धंधुकय-खंभाइत्त जिंन (जिन्न) दुग्गाइसुं च ठानेसु ।
सव्वेसु जिणवराणं पडिमाओ पणिवयामि सया ॥ ६ ॥
तेरहँसय छावत्तँर विक्कमसंवच्छरंमि जिट्ठस्स ।
बहुलाइ तेरसीए नमिओ सित्तुजतित्थपहू ॥ ७ ॥
जिट्ठस्स पुंनिमाए नमंसिओ रेवयंमि जिणे ।
सिरिदेवरा[य] संघाहिवस्स संघेण विहिपुव्वं ॥ ८ ॥
सिरिजिणपहसूरीहिं रइयमिणं जे पढंति संथवणं ।
पावंति तित्थजत्ताकरणफलं ते विमलपुन्ना ॥ ९ ॥

॥ इति तीर्थयात्रास्तोत्रं समाप्तं ॥ छ ॥

विधिप्रपाग्रन्थान्तर्गत-अवतरणात्मक-पद्यानामकारादिक्रमेण सूचिः ।

विधिप्रपाग्रन्थान्तर्गतानां विशेषनाम्नां अकारादिक्रमेण सूचिः ।

विधिप्रपाग्रन्थान्तर्गतानां विशेषनाम्नां अकारादिक्रमेण सूचिः ।

अथार्जय्यं रिपुर्मत्वा, कुमारं मारविक्रमम् । निःशूको दन्दशूकास्त्रं, साक्षेपः क्षिप्रमक्षिपत् ॥ १६९ ॥
ततोऽहिपाशनाशाय, मन्त्रमत्रस्तमानसः । कुमारः शारदादत्तं, वैरिघस्मरमस्मरत् ॥ १७० ॥
तयोरित्यस्त्रमस्त्रेण, विनिवारयतोर्मिथः । शारदामन्त्रमाहात्म्यादङ्गस्तम्भो रिपोरभूत् ॥ १७१ ॥
ततः कुमारमाहात्म्याद्, विस्मितोऽसौ गतस्मयः । मलं ममार्ज दौर्जन्यजनितं वचनामृतैः ॥ १७२ ॥
तदाऽवदानमालोक्य, त्रैलोक्योपरिवर्ति तत् । परोपकारव्यापारसज्जितं च तदूर्जितम् ॥ १७३ ॥
रूपं चानन्यसामान्यं, तच्च सौभाग्यमद्भुतम् । सा कन्या विस्मयोत्तानमानसैवमचिन्तयत् ॥ १७४ ॥
॥ युग्मम् ॥

स एव यदि राजेन्दुनन्दनोऽयमिहागमत् । उपचक्रे ममैतर्हि, तर्हि विद्याधराधमः ॥ १७५ ॥
तदाऽरिविद्मनैर्यावत्, कुमारस्य प्रसेदुषः । विमुक्तस्तम्भनः शत्रुर्दान्तः पादान्तमागमत् ॥ १७६ ॥
तावदाविर्बभूवाग्रे, कोऽप्युत्तीर्य विमानतः । भास्वरोदारनेपथ्यधरो विद्याधरोत्तमः ॥ १७७ ॥
कुमारस्य पुरः सोऽपि, विस्फुरत्करकोरकः । जगाद सुगबाहो ! त्वं, सुस्थितः शृणु मे वचः ॥ १७८ ॥
तथास्थिते कुमारे च, पुरुषे च पुरःसरे । कथां प्रस्तावयामास, विद्याधरधुरन्धरः ॥ १७९ ॥
भरतक्षेत्रसीमन्तवैताढ्योत्तरदिग्गतम् । अस्त्यपास्तामरपुरं, पुरं गगनवल्लभम् ॥ १८० ॥
मणिचूडाभिधस्तत्र, पतिर्विद्याधरेश्वरः । प्रिया च तस्य पूर्णेन्दुवदना मदनावली ॥ १८१ ॥
कुलदेवतया दत्ता, सुताऽनङ्गवती तयोः । जज्ञेऽद्वैतचतुष्षष्टिकलाकौशलशालिनी ॥ १८२ ॥
आरूढयौवना सा च, प्रतिज्ञामिति निर्ममे । यः कोऽपि दास्यति प्रश्नचतुष्केऽपि ममोत्तरम् ॥ १८३ ॥
स एव भावी भर्ता मे, खेचरो भूचरोऽथवा । ततः श्रुत्वा प्रतिज्ञां तां, विद्याधरनराधिपाः ॥ १८४ ॥
गर्वतः सर्वतोऽभ्येत्य, प्रश्नोत्तरबहिर्मुखाः । वृथाऽभवन्नपुण्यानामिव लक्ष्मीमनोरथाः ॥ १८५ ॥
ततश्चार्त्तेन भूभर्त्रा, पृष्टो नैमित्तिकोत्तमः । सुगबाहुं शशंसास्या, भाविनं भूचरं वरम् ॥ १८६ ॥
ततः प्रभृति सा तत्र, लक्ष्मीरिव मुरद्विषि । बद्धभावाऽभवत् कामं, गुणैः श्रुतिपथागतैः ॥ १८७ ॥
पूर्वेद्युः प्रातरेवास्य, समासीनस्य भूभुजः । आगात् पवनवेगाख्यः, खगः शङ्खपुरेश्वरः ॥ १८८ ॥
पुत्रीमुद्वोढुकामोऽयमकृतप्रश्ननिर्णयः । विलक्षो हृतवानेतां, द्विको मुक्तालतामिव ॥ १८९ ॥
ततोऽनुपदिनस्तस्याः, खेचराः सर्वतो ययुः । अस्यास्तु मातुलः सोऽहमिहायातोऽस्मि देवलः ॥ १९० ॥
पुरः पवनवेगोऽयं, जामेयी च ममाप्यसौ । प्राणप्रदस्य सर्वेषां, किं ते प्रतिकरोमि तत् ? ॥ १९१ ॥
रत्नचूडाभिधे तस्मिन्नेवं वदति खेचरे । मणिचूडनृपोऽप्यागात्, तत्रैव सपरिच्छदः ॥ १९२ ॥
उवाच च महाबाहो !, सुतेयं मम जीवितम् । सर्वस्वमपि चैतन्मे, तत् त्वयैवाऽऽत्मसात् कृतम् ॥ १९३ ॥
मम नैमित्तिकेनास्याः, कथितस्त्वं पतिः पुरा । साम्प्रतं ज्ञापितश्चासि, मम विद्याधरेश्वरैः ॥ १९४ ॥
तत् त्वां प्रतिप्रदानेऽस्याः, का नाम प्रभुता मम ? ।
किन्तु प्रतिज्ञानिर्वाहोऽप्यस्यास्त्वय्येव तिष्ठति ॥ १९५ ॥
निष्कारणोपकर्तारः, क नाम स्युर्भवादृशाः ? । दृष्टः किं विष्टपोज्जीवी, यदि वा न दिवाकरः ? ॥ १९६ ॥
एवं वदति सानन्दं, विद्याधरनरेश्वरे । ज्ञात्वा वृत्तान्तमाजग्मे, तत्र विक्रमबाहुना ॥ १९७ ॥
सङ्गमस्तत्र चान्योन्यमुभयोरपि भूभुजोः । प्रशस्यः समभूद् गङ्गा-कालिन्दीस्रोतसोरिव ॥ १९८ ॥

---

१ 'अर्यं रि' संता० २ 'धातिगैः ॥ संता० ॥ ३ 'स्यास्तु सोऽप्यतिष्ठते पाता० ॥

महात्मन् ! पूर्वदुष्कर्मनिर्मूलनसमीहया । युज्यते तपसाऽऽराद्धुं, ततस्ते ज्ञानपञ्चमी ॥ १३७ ॥
तावज्जाड्यज्वरोद्गारैर्जीयन्ते हन्त ! जन्तवः । यावन्नाविर्भवत्युच्चैस्तपस्तपनवैभवम् ॥ १३८ ॥
येषां तपःकुठारोऽयं, कठोरः स्फुरति स्फुटम् । मूलादुच्छेदमायान्ति, तेषां दुष्कर्मवीरुधः ॥ १३९ ॥
भावेनाराधितो येन, तपोधर्मोऽतिनिर्मलः । एतेनाराधितौ दान-शीलधर्मावपि ध्रुवम् ॥ १४० ॥
सम्पन्नानन्यसामान्यतपःसन्दोहदोहदः । वितनोति फलस्फातिं, मनोरथमहीरुहः ॥ १४१ ॥
तत् ते क्षीणान्तरायस्य, पञ्चमीतपसाऽमुना । मनोरथतरुः सर्वं, वाञ्छितार्थं फलिष्यति ॥ १४२ ॥
इत्युक्तो मुनिना तेन, सैष निष्पुण्यपूरुषः । निवृत्य मृत्योरागत्य, गृहं चक्रे तपोऽद्भुतम् ॥ १४३ ॥
स पूजनं जिनेशस्य, प्रथयन् विभवोचितम् । वरिवस्यन् गुरूंश्चापि, निन्ये जन्म कृतार्थताम् ॥ १४४ ॥
अथायं परिपूर्णायुः, संजज्ञे नृपतेः सुतः । युगबाहुरिति ख्यातः, स त्वं सत्त्वनिकेतनम् ॥ १४५ ॥
तत् त्वया तोषिताऽस्म्युच्चैर्धर्ममाराध्यता पुरा । निःशङ्कितमतो ब्रूहि, वत्स ! वाञ्छितमात्मनः ॥ १४६ ॥
देव्या प्रसादादित्युक्ते, शस्त्रे शास्त्रे च कौशलम् । लोकोत्तरं मयाऽयाचि, प्रतिपन्नं तया च तत् ॥१४७॥
प्रतिपक्षप्रतिक्षेपक्षममेकं परं पुनः । महामन्त्रं ददौ देवी, कलाकौशलदायिनम् ॥ १४८ ॥
यावद् गृहीतमन्त्रोऽहं, नमामि परमेश्वरीम् । अपश्यं तावदात्मानं, नदीपुलिनगामिनम् ॥ १४९ ॥
प्रमोदविस्मयस्मेरवदनस्तदनन्तरम् । उत्सुकोऽहं जवादेव, देवपादान्तमागमम् ॥ १५० ॥
नृपस्तदा तदाकर्ण्य, सुतस्य महिमाद्भुतम् । यौवराज्यं ददौ सर्वपुरोत्सवपुरःसरम् ॥ १५१ ॥
कुमारोऽपि श्रियं प्राप्य, सहकार इवाद्भुताम् । गमयामासिवान् काममर्थिसार्थं कृतार्थताम् ॥ १५२ ॥
अर्द्धरात्रेऽन्यदा वासगृहे पर्यङ्कवर्तिनः । युवराजस्य शिश्राय, श्रवणं रुदितध्वनिः ॥ १५३ ॥
जिज्ञासुः प्रभवं तस्य, कुमारः करुणामयः । कृपाणपाणिर्निर्गत्य, गतवानध्वनि ध्वनेः ॥ १५४ ॥
असावन्तर्वणं यानस्तत्र वित्रस्तलोचनाम् । ग्लानीभवन्मुखाम्भोजां, सायमम्भोजिनीमिव ॥ १५५ ॥
लावण्यपुण्यतन्वङ्गीं, प्रातःशशिकलामिव । रुदतीं सुदतीमेकामपश्यद् विस्मयाञ्चितः ॥ १५६ ॥ युग्मम् ॥
नरेण दिव्यरूपेण, पुरःप्रोल्लासितासिना । तामर्थ्यमानामालोक्य, स तस्थौ विटपान्तरे ॥ १५७ ॥
स नरश्चाटुकारोऽपि, रोपिताचञ्चमीक्षितः । सुमुखीं विमुखीमेतां, रूक्षाक्षरमदोऽवदत् ॥ १५८ ॥
मयि प्रपन्नदास्येऽपि, दाम्यते यदि नोत्तरम् । तदसिर्दर्श्यतामेष, स्मर्यतामिष्टदैवतम् ॥ १५९ ॥
ऊचेऽथ कन्या रे मूढ !, स्मरामि कमिथापरम् ! । युगबाहुकुमारोऽस्ति, हृदि मेऽद्वैतदैवतम् ॥ १६० ॥
यद्यत्र मन्दभाग्याया, नैव दैवेन दर्शितः । भवान्तरेऽपि मे भूयात्, प्राणनाथस्तथापि सः ॥ १६१ ॥ युग्मम् ॥
हृष्टः स्वनामश्रवणान्नामसाम्याच्च शङ्कितः । विस्मितो वनितारूपाज्जुगुप्सुः क्रूरकर्मणा ॥ १६२ ॥
कुमारः प्रह्वमाकृष्य, ततः कोपादधावत । स्त्रीघातपातकिन् ! क्रूर !, क्व रे ! यासीति तर्जयन् ॥ १६३ ॥
॥ युग्मम् ॥

अथासौ पुरुषः प्राह, भद्र ! द्रुतमितः सर । रजकन्याऽऽयुषि क्षीणे, मरवन् म्रियसे कथम् ! ॥ १६४ ॥
कुमारोऽप्यब्रवीत् प्राणैरपि सत्त्वशालिनः । यत्र पुण्यमयप्रार्थपरं मां धिक्करोषि किम् ! ॥ १६५ ॥
क्रियानिकृष्टेनेदं ते, निर्मातुं कर्म नोचितम् । लोकद्वयविरुद्धं हि, विदधाति सुधीः कुतः ! ॥ १६६ ॥
नरोऽप्युवाच माभैस्त्वं, किमहो ! मद्गृहे नर । हितोपदेष्टा येनागूर्पुन्नुरपि मन्मनि ! ॥ १६७ ॥
इत्युक्त्वा धाविते तस्मिन्, नरे रणरणातुरे । मह्वामह्वि चिरं युद्धं, युद्धमुद्धनयोनयोः ॥ १६८ ॥

पुण्यपात्राय पुत्राय, दत्त्वा राज्यश्रियं स्वयम् । नृपेणान्यैः सुदुष्प्रापा, संयमश्रीरुपाददे ॥ २२६ ॥
युगबाहुमहीनाथो, विद्यासिद्धयाऽतिदुर्धरः । नृपांह्रिपान् नतिं निन्ये, हेलयैव महाबलः ॥ २२७ ॥
तथा मनोरथारामसफलीकारकारणम् । धर्ममाराधयामास, मनो-वचन-कर्मभिः ॥ २२८ ॥
मणिचूडनृपेणापि, स्वयं दीक्षां जिघृक्षुणा । युगबाहुनृपश्चक्रे, सर्वविद्याधरेश्वरः ॥ २२९ ॥
इति जन्मान्तरोपात्ततपःसम्भूतवैभवः । आराधयदिदं राज्यद्वयं लोकद्वयं च सः ॥ २३० ॥

इति नृपयुगबाहोः सच्चरित्रं पवित्रं,
तव सचिवशचीश ! स्पष्टमेतत् प्रदिष्टम्[2] ।
सततमपि निषेव्यं सिद्धिकामैः प्रकामं,
निरुपमसुखलक्ष्मीकेलिदीपस्तपस्तत् ॥ २३१ ॥

॥ इति श्रीविजयसेनसूरिशिष्यश्रीमदुदयप्रभसूरिविरचिते श्रीधर्माभ्युदयनाम्नि श्रीसङ्घपतिचरिते लक्ष्म्यङ्के महाकाव्ये तपःप्रभावोपवर्णनो युगबाहुचरितं[3] नाम नवमः सर्गः ॥

मुष्णाति प्रसभं वसु द्विजपते[4]र्गौरीगुरुं लङ्घयन्,
नो धत्ते परलोकतो भयमहो ! हंसापलापे कृती ।
उच्चैरास्तिकचक्रवालमुकुट ! श्रीवस्तुपाल[5] ! स्वयं,
भेजे नास्तिकतामयं तव यशःपूरः कुतस्त्यामिति ? ॥ १ ॥
आयाताः कति नैव यान्ति कति नो यास्यन्ति नो वा कति,
स्थानस्थाननिवासिनो भवपथे पान्थीभवन्तो जनाः ? ।
अस्मिन् विस्मयनीयबुद्धिजलधि[6]र्विध्वंस्य[7] दस्यून् करे,
कुर्वन् पुण्यनिधिं[8] धिनोति वसुधां श्रीवस्तुपालः परम् ॥ २ ॥
॥ ग्रन्थाग्रम्[9] २४७ । उभयम् २७९१ ॥

---

१ °मश्रीः समाददे संता० पाता० ॥ २ °मेवोपदि° संता० ॥ ३ °रितनामा नव° पाता० ॥ ४ °पतेर्गौरी° संता० पाता० ॥ ५ °ल ! स्फुटं, भेजे संता० पाता० ॥ ६ °लधेर्वि° पाता० ॥ ७ °स्यलङ्° पाता० ॥ ८ °निधेर्धिनो° पाता० ॥ ९ सर्गग्रन्था° संता० ॥

ततः पवनवेगोऽपि, नृपं नत्वेदमब्रवीत् । भृत्योऽस्मि विक्रमक्रीतस्ताताहं युगबाहुना ॥ १९९ ॥
मणिचूडादयस्तत्र, सर्वे विद्याधरेश्वराः । राज्ञा समर्प्य सौधानि, सत्कृता वसना-ऽशनैः ॥ २०० ॥
पुरीपरिसरे रम्ये, तत्र संसूत्र्य मण्डपम् । सुधर्मायाः सधर्माणं, कार्मणं विश्वचक्षुषाम् ॥ २०१ ॥
परितः कारयामास, मांसलान् भूमिवासवः । मञ्चान् विमानसन्तानमानमुद्रामलिम्लुचान् ॥ २०२ ॥
॥ युग्मम् ॥

सकौतुकप्रपञ्चेषु, मञ्चेष्वथ यथायथम् । भूचराः खेचराः सर्वे, निषेदुर्मेदुरश्रियः ॥ २०३ ॥
ततो विक्रमबाहुश्च, मणिचूडश्च पार्थिवौ । निविष्टौ मण्डपे तत्र, चन्द्रा-ऽर्काविव पर्वणि ॥ २०४ ॥
सप्रागल्भ्येषु सभ्येषु, स्थितेषु स्मेरविस्मयम् । आसीनेषु ससम्मर्दं, कोविदानां गणेषु च ॥ २०५ ॥
स्वदेश-परदेशेभ्योऽभ्यागतेषु सकौतुकम् । अपरेष्वपि लोकेषु, निषण्णेषु यथायथम् ॥ २०६ ॥
एत्य लक्ष्मी-सरस्वत्योरिव जङ्गमसङ्गमः । आसाञ्चक्रे कुमारोऽसौ, पादपद्मान्तिके पितुः ॥ २०७ ॥
॥ विशेषकम् ॥

ततोऽनङ्गवती तत्र, मूर्त्तेवाज्ञा मनोभुवः । क्षीरोदनिर्गतेव श्रीः, कलाकेलिरिवाङ्गिनी ॥ २०८ ॥
याप्ययानात् समुत्तीर्य, प्रतीहारीभिरावृता । सानन्दमिन्दुलेखेव, तारकानिकराञ्चिता ॥ २०९ ॥
प्रणम्य चरणौ पित्रोः, पादाङ्गुष्ठार्पितेक्षणा । निषसादाग्रतो लोकलोचनाञ्चलवीजिता ॥ २१० ॥
॥ विशेषकम् ॥

राजात्मजागुरुः प्राह, कुमार ! क्रियतामयम् । राजपुत्रीकृतप्रश्नचतुष्टयविनिर्णयः ॥ २११ ॥
अभ्यधान्नृपपुत्रोऽथ, पित्रोरानन्दमुद्गिरन् । उच्चैर्वाचंयमीभूय, जनैः साक्षेपमीक्षितः ॥ २१२ ॥
याऽग्रेऽस्ति स्वर्णपाञ्चाली, निर्वाचालीकृतानना । कर्त्री मद्वचनादेषा, समस्तप्रश्ननिर्णयम् ॥ २१३ ॥
ततः सा बालिका पाञ्चालिका साऽप्यार्ययैकया । उच्चैरुच्चेरतुः प्रश्नमुत्तरं च क्रमादिदम् ॥ २१४ ॥

तद्यथा—

कः सकलः ? सुकृतरुचिः, कः सद्बुद्धिर्विधेयकरणगणः ।
कः सुभगः ? शुभवादी, को विश्वजयी ? जितक्रोधः ॥ २१५ ॥

ततस्तुष्टेषु सभ्येषु, स्तुवत्सु गुणवत्सु च । कुमारी सचमत्कारं, कुमारमपि च दृशा ॥ २१६ ॥
तं वधू-वरसम्बन्धबन्धं विदधतो विधेः । तदाऽनौचित्यकारित्ववाच्यमुन्मूलितं जनैः ॥ २१७ ॥
विप्राणां मन्त्रनिर्घोषैर्जनानां हर्षनिःस्वनैः । बन्दिकोलाहलैस्तूर्यैः, शब्दाद्वैतं तदाऽभवत् ॥ २१८ ॥
अथ मौहूर्त्तिकादिष्टे, लग्ने सर्वग्रहेक्षिते । क्षितेरधिपती पाणिं, ग्राहयामासतुः सुतौ ॥ २१९ ॥
वधू-वरं च हस्त्यश्व-रथा-ऽलङ्करणांशुकैः । अर्चयामासतुः स्नेह-विभव-प्राभवोचितैः ॥ २२० ॥
पाठसिद्धाश्च साध्याश्च, तत्तत्कर्मसु कर्मठाः । जामात्रे प्रददौ विद्या, विद्याधरनरेश्वरः ॥ २२१ ॥
समपद्यमहामध्यमुदारद्वार-तोरणम् । उत्पताकं विशामीशस्ततः प्रावीविशत् पुरम् ॥ २२२ ॥
सम्मान्य मणिचूडादीन्, विद्याधरधराधवान् । राजधानीं निजनिजां, राजा हृष्टो विसृष्टवान् ॥ २२३ ॥
नृपः पवनवेगोऽपि, गोपिनाविनयस्ततः । सत्कृत्य कृत्यदक्षेण, प्रैषि विक्रमबाहुना ॥ २२४ ॥
आपृच्छ्य पौरधौरेयानभ्यर्च्य पुरदैवतान् । विमोच्य बन्धनक्षिप्तान्, दीनादीननुकम्प्य च ॥ २२५ ॥

१ स्तुतिपरत्सु गुणोच्चयम् । कुमा॰ माता॰ ॥

क्षेमोऽस्ति पाटलीपुत्रपतेः सिंहमहीभुजः ? । कार्येण केन प्राप्तोऽसि, झटित्येवं निवेदय ॥ २६ ॥
स वचस्वी ततः प्राह, तस्याक्षेमः कुतो भवेत् ? । श्रीविक्रमधनो यस्य, मित्रमत्रैस्तुमानसः ॥ २७ ॥
परमस्यां तु वेलायां, शीघ्रं यदहमागतः । कारणं शृणु तत्र त्वं, प्रयोजनमिदं तव ॥ २८ ॥
कलत्रे विमलानाम्नि, स्वामिन्! सिंहमहीभुजः । आस्ते धनवती पुत्री, सौन्दर्यस्येव देवता ॥ २९ ॥
तत्र चित्रकरं कञ्चिद्, दिव्यचित्रधरं नरम् । एषा रेखाविशेषज्ञाऽपश्यद् भूपस्य नन्दनी ॥ ३० ॥
व्यलोकयच्च तच्चित्रे, कञ्चिन्नृपतिनन्दनम् । हृदयानन्दनं राज्यलक्षणैः शुभशंसिभिः ॥ ३१ ॥
तमथ प्राह सा चित्रं, यत् त्वयैतद् विनिर्ममे । तत् कलास्थापनायैव ?, प्रतिच्छन्दोऽथ कस्यचित् ? ॥ ३२ ॥
सोऽप्युवाच कुमारी तच्चित्रं यद् वर्ण्यते मम । विज्ञानाद्भुतमप्येतद्, विशेषककरं परम् ॥ ३३ ॥
प्रतिच्छन्दो हि यस्यायमसौ सोमसमाकृतिः । यदि दृग्गोचरं गच्छेत्, तच्चित्रं स्यान्न चित्रकृत् ॥ ३४ ॥
सतां चित्ते कृतावासः, स यशःकुसुमेषुभिः । वशीकरोति त्रैलोक्यं, द्वितीय इव मन्मथः ॥ ३५ ॥
समाकर्ण्येति तद्वाचं, सा चन्द्रवदनाऽवदत् । स कुत्र ? कस्य वा पुत्रस्तस्य किंनाम नाम वा ? ॥ ३६ ॥

सोऽपि प्राहाऽचलपुरे, श्रीविक्रमधनात्मजः ।
धनोऽस्ति मूर्तिस्तस्यैषा, मयाऽलेखि स्वकौतुकात् ॥ ३७ ॥

श्रुत्वेति तत्प्रभृत्येषा, विशेषात् त्वयि रागिणी । क्रीडां पीडामिव ज्ञात्वा, कन्यान्तःपुरमाययौ ॥ ३८ ॥
त्वदेकतानचित्तेयमपि व्यापारितेन्द्रिया । त्वया व्याप्तं जगद् वेत्ति, योगिनीव परात्मना ॥ ३९ ॥
एकं विहाय त्वां देव!, सा महीपतिनन्दनी । स्त्रीरूपमथवा क्लीबं, मन्यते जगदप्यदः ॥ ४० ॥
देवीमुखादिदं सर्वं, वृत्तान्तं मेदिनीपतिः । विज्ञाय गुणविज्ञाय, भवते मां व्यसर्जयत् ॥ ४१ ॥
मामत्रागामुकं मत्वा, मेदिनीपतिनन्दनी । अमुं लेखप्रतीहारं, हारं दूतमिवाऽऽर्पयत् ॥ ४२ ॥
उक्त्वेति दूतो लेखेन, सहितं चरणान्तिके । कुमारस्यामुचन्मुक्ताहारं तत्प्राभृतीकृतम् ॥ ४३ ॥
छोटयित्वा ततो लेखमेष वेपजितस्मरः । जवादवाचयत् तोषचयपोषचमत्कृतः ॥ ४४ ॥
भवन्मूर्तिनिरस्तेन, कामेन ज्वालितं मम । मानसं त्वत्कृतावासं, सिक्तं नेत्राम्बुबिन्दुभिः ॥ ४५ ॥
न शान्तिं याति तन्नाथ!, शान्तिं नय दयां कुरु । दृढारम्भपरीरम्भदम्भपीयूषनिर्झरैः ॥ ४६ ॥
परितः परितप्ताङ्गीं, मदनज्वलनार्चिषा । वर्धिष्णुप्रेमकल्लोले, क्षिप मां त्विज्जमानसे ॥ ४७ ॥
इति लेखार्थसम्भारं, हारं च हृदये दधौ । स्निग्धोज्ज्वलस्फुरद्वर्णं, कुमारः कारणं मुदाम् ॥ ४८ ॥
विमृश्याथ कुमारोऽपि, प्रतिलेखं लिलेख सः । शृङ्गारेणेव मूर्त्तेन, मृगनाभिमयाम्भसा ॥ ४९ ॥
रतिरूपसपत्नीं त्वां, दधानस्य ममोरसि । रुषा रतिपतिः शङ्के, किरत्यविरतं शरान् ॥ ५० ॥
गुणैः श्रवणमार्गेण, तवाध्यासितमेव मे । मनो विविशुरक्षाणि, सर्वाण्यपि सुखेप्सया ॥ ५१ ॥
इति लेखेन दानेन, मानेन च कृतार्थितः । कुमारेण चरः प्रैषि, सम्भृतप्राभृतोच्चयः ॥ ५२ ॥
सत्कथाभिरथैतस्य, भूपो भूपसुताऽपि सा । कलयामासतुस्तोषं, कुमारागमकाङ्क्षया ॥ ५३ ॥
विनीतः सोऽपि निर्णीतलग्नस्योपरि भूपभूः । प्रयाणैः कैश्चन प्राप, तत् पुरं सपरिच्छदः ॥ ५४ ॥
सम्मुखाभ्यागतेनाथ, सिंहेन सह भूभुजा । प्रविवेश पुरीं वीरो, नृत्यन्तीमिव केतुभिः ॥ ५५ ॥
पुरे प्रतिगृहं रत्नस्तम्भेषु प्रतिबिम्बितः । क्षिप्यमाणो मृगाक्षीभिः, क्षणं गलितचेतनम् ॥ ५६ ॥

१ 'प्रस्तमा' संता० पाता० ॥ २ 'दत्तपी' संता० ॥

दशमः सर्गः ।

कार्मणं शर्मलक्ष्मीणां, मूलं धर्ममहीरुहः । आस्पदं सम्पदामेकमिदं दीनानुकम्पनम् ॥ १ ॥
श्रीमन्नेमिजिनेनेव, तदिदं बुद्धिशालिना । पालनीयं प्रयत्नेन, लोकोत्तरफलार्थिना ॥ २ ॥

दीनानुकम्पायां श्रीनेमिजिनचरितम्

इहैव भरतक्षेत्रे, जम्बूद्वीपविभूषणे । अस्ति स्वर्गोपमं धाम्ना, नाम्नाऽचलपुरं पुरम् ॥ ३ ॥
गृहान् सप्तक्षणान् यत्र, वीक्ष्य सप्ताश्वसप्तयः । क्षणं स्खलन्ति मध्याह्ने, स्फुटं कृतकुटीभ्रमाः ॥ ४ ॥
श्रीविक्रमधनो नाम, तत्रासीदीशिता भुवः । यदसौ यमुनाधाम्नि, मग्ना यान्ति द्विषो दिवि ॥ ५ ॥
रेजे रणाजिरं यस्य, भिन्नेभरद-मौक्तिकैः । छिन्नवैरियशोवृक्षशाखाकुसुमसन्निभैः ॥ ६ ॥
शम्भोरुमेव रम्भोरुरम्भोरुहविलोचना । धारिणीति प्रिया तस्य, बभूव सहचारिणी ॥ ७ ॥
अन्यदाऽसौ निशाशेषे, सुखसुप्ता व्यलोकयत् । स्वप्नान्तर्मञ्जरीमञ्जुसहकारकरं नरम् ॥ ८ ॥
जगाद सोऽप्यसौ देवि !, सहकारमहीरुहः । कल्पपादपकल्पश्रीरारोप्यस्त्वद्गृहाङ्गणे ॥ ९ ॥
ततश्चोद्धारमुद्धारमयमारोपितो मया । आम्रो नवमवेलायां, फलिताऽनवमं फलम् ॥ १० ॥
अत्रान्तरे स्फुरद्घोषैः, पेठे मङ्गलपाठकैः । प्रभाते भाषया पक्वरसालरससारया ॥ ११ ॥
अद्वितीयफलोद्भासिभास्वदुद्गमकारणम् । विभात्यभिनवश्चूतद्रुरिवायं प्रगेक्षणः ॥ १२ ॥
अथोत्थाय महीनाथवल्लभा विकसन्मुखी । राज्ञे विज्ञपयामास, स्वप्नवृत्तान्तमद्भुतम् ॥ १३ ॥
नृपोऽप्यूचे सुतो भावी, भवत्याः कश्चिदुत्तमः । न जानीमस्तु यत्तस्य, वारानारोपणं नव ॥ १४ ॥
अथ गर्भं बभारैषा, निर्भरानन्दशालिनी । शस्यदोहदसन्दोहसूचिताद्भुतलक्षणम् ॥ १५ ॥
वासरेष्वथ पूर्णेषु, पूर्णेन्दुमिव सुन्दरम् । असूतासौ सुतं पूर्णमासीवासीमतेजसम् ॥ १६ ॥
दशाहानन्तरं तस्य, सुतस्य जगतीपतिः । आनन्दवर्द्धितोत्साहो, धन इत्यभिधां व्यधात् ॥ १७ ॥
वर्द्धमानवपुर्लक्ष्मीर्नूतनेन्दुरिव क्रमात् । सकलाः स कलाः प्राप, स्पष्टदृष्टाष्टधीगुणः ॥ १८ ॥
असौ भाग्योचतश्रीकः, सौभाग्यरुचिरद्युतिः । अद्वितीयकलाशाली, द्वितीयमभजद् वयः ॥ १९ ॥
यौवराज्याभिषेकेऽथ, निर्वृत्ते नृपनन्दनः । नानाविधाभिः क्रीडाभिश्चिक्रीड सुखलालसः ॥ २० ॥
सवयोभिर्महामात्यपुत्रैर्मित्रैः समन्वितम् । धनं वनगतं कश्चिदेवमेत्य व्यजिज्ञपत् ॥ २१ ॥
आज्ञापितोऽस्मि देवेन, यद् दूतं सिंहभूभुजः । मेलयामुं कुमारस्य, मान्यमस्य च वाचिकम् ॥ २२ ॥
उद्यानस्य बहिः सोऽयं, विद्यतेऽद्यापि सुप्रभो ! । समादिश समायातु, यातु वा साम्प्रतं किमु ! ॥ २३ ॥
स राजपुरुषो राजकुमारानुमतादथ । प्रावेशयदमुं दूतमन्तःसममुरुत्वरः ॥ २४ ॥
विशिष्टे वेत्रिणाऽऽदिष्टे, निविष्टमथ विष्टरे । सविस्मयं वचोऽवादीज्जगतीपतिनन्दनः ॥ २५ ॥

१ दिवम् खंता० पाना० ॥ २ 'गुणाः खंता० ॥ ३ 'मेयं व्य' खंता० ॥

जीवो धनकुमारस्य, पुण्याविष्टस्त्रिविष्टपात् । जातश्चित्रगतिर्नाम, हंसचित्रगतिः सुतः ॥ ८७ ॥
॥ विशेषकम् ॥

विद्यावैदग्ध्यदुग्धाब्धिकेलिकल्लोलितैरयम् । विद्याधराणामानन्दकन्दं कन्दलितं व्यधात् ॥ ८८ ॥

किञ्चात्रैव गिरौ व्याप्तव्योम्नि वैताढ्यनामनि । दक्षिणश्रेणिकोटीरे, नगरे शिवमन्दिरे ॥ ८९ ॥

अनङ्गसेनसंज्ञस्य, मेदिनीहृदयेशितुः । पत्न्यां शशिप्रभानाम्न्यां, शशिप्रभमुखत्विषि ॥ ९० ॥

च्युत्वा धनवतीजीवः, सोऽपि सौधर्मतस्ततः । धाम्ना रत्नवतीवामून्नाम्ना रत्नवती सुता ॥ ९१ ॥
॥ विशेषकम् ॥

कलाकलापकुशलां, क्रमादाक्रान्तयौवनाम् । उत्सङ्गसङ्गिनीमेनां, विधाय वसुधाधवः ॥ ९२ ॥

पङ्कजिन्या इवामुष्याः, कः स्यादर्क इव प्रियः ? । दैवज्ञमित्यभाषिष्ट, निविष्टं विष्टरे पुरः ॥ ९३ ॥
॥ युग्मम् ॥

अथागदत सद्यस्कज्ञानामृतभृताऽमुना । अगाधज्योतिषग्रन्थसिन्धुमन्थानभूभृता ॥ ९४ ॥

प्रौढप्रधनपाथोधितरणैकतरण्डकम् । रणे कृपाणमाच्छिद्य, यस्ते हस्ते ग्रहीष्यति ॥ ९५ ॥

श्रीसिद्धायतने यस्य, मूर्धनि स्वर्धुनीनिभा । स्तुतिं प्रस्तुवतो दिव्या, पुष्पवृष्टिर्भविष्यति ॥ ९६ ॥

स एव भवितैतस्याः, श्रीपतिप्रतिमः पतिः । शुद्धपक्षद्वयो हंस्या, राजहंस इवामलः ॥ ९७ ॥
॥ विशेषकम् ॥

इत्याकर्ण्य कृतप्रीतिः, स खेचरशिरोमणिः । प्रैषीज्ज्योतिषिकाग्रण्यं, प्रीणयित्वा विभूतिभिः ॥ ९८ ॥

कदाचिद् भरतक्षेत्रे, व्योम्ना चित्रगतिश्चरन् । आर्त्तं किञ्चित् पुरं वीक्ष्य, मङ्क्षूत्तीर्णो भुवं दिवः ॥९९॥

तत्र भद्राकृतिं कञ्चिदपृच्छत् खेचरो नरम् । केयं पुरी ? नृपः कोऽस्यां ?, दुःखं किमिदमप्यहो ! ? ॥१००॥

ज्ञाताशेषकथो वाचमथोवाच स पूरुषः । अलङ्कृतमहीचक्रमिदं चक्रपुरं पुरम् ॥ १०१ ॥

प्रभुरत्रास्ति सुग्रीवः, प्रग्रीवः क्षितिपश्रियः । प्रिये यशोमती-भद्रे, तस्य स्याते उभे शुभे ॥ १०२ ॥

सुमित्रः सूनुरेकस्या, जगन्मित्रमजायत । द्वितीयस्याः पुनः पद्मश्छद्मनः सद्म जङ्गमम् ॥ १०३ ॥

जीवत्यस्मिन् न मे सूनोर्भावि भूपालवैभवम् । भद्रेति सुचरित्राय, सुमित्राय विषं ददौ ॥ १०४ ॥

विषे ध्वान्त इवोदीर्णे, चरितैः श्यामया तया । सुमित्रो व्यसनं प्रापच्चित्रं पद्मे ननु स्मितम् ॥ १०५ ॥

म्लानिं गते सुमित्रेऽस्मिन्, मित्रवत् तेजसां निधौ । युक्तं चक्रपुरस्यास्य, दुःखं दुःसहतां गतम् ॥१०६॥

इति चित्रगतिः श्रुत्वा, तमुज्जीवयितुं जवात् । परोपकारव्यसनी, विवेश नृपवेश्मनि ॥ १०७ ॥

स मन्त्राम्भः सुमित्राङ्गे, बन्धुदृग्भिः सहाक्षिपत् ।
स्मितं चक्षुः सुमित्रस्य, तद्बान्धवमुखैः समम् ॥ १०८ ॥

पुनरुज्जीविते जाते, सुमित्रे नेत्रपात्रताम् । दुःखवाष्पाम्बु बन्धूनां, प्रमोदाश्रुपदं ययौ ॥ १०९ ॥

अथ सोमे सुमित्रेऽस्मिंस्तापं हरति देहिनाम् । पद्मे सङ्कुचिते भद्रा, भृङ्गीव क्वचिदप्यगात् ॥ ११० ॥

अथ जीवितदातारं, तदा तारं यशोभरैः । तं विद्याधरमानन्दी, ववन्दे नृपनन्दनः ॥ १११ ॥

ततः पितृभ्यां पादान्तप्रणतः स्नपितः सुतः । नेत्रकुम्भमुखोद्गीर्णैरानन्दाश्रुजलप्लवैः ॥ ११२ ॥

विद्याधरकुमारोऽपि, ताभ्यामालिङ्ग्य निर्भरम् । अनिच्छन्नपि सच्चक्रे, वसना-ऽऽभरणादिभिः ॥ ११३ ॥

स्नेहादप्रेषितेनाथ, स चित्रगतिना सह । सुमित्रः कुरुते क्रीडां, विष्णुनेव पुरन्दरः ॥ ११४ ॥

मनस्सु पुरनारीणां, मनोभूनगरेष्विव । एककालं विशन् विद्यां, दर्शयन् बहुरूपिणीम् ॥ ५७ ॥
स रत्नभित्तितेजोभिरस्फुटद्वारभूमिकम् । प्रविवेश नृपावासं, दौवारिकगिरा परम् ॥ ५८ ॥ विशेषकम् ॥
स क्रमेणाथ भूपालसौधमूर्धानमासदत् । पूर्वपर्वतशृङ्गाग्रविभागमिव भानुमान् ॥ ५९ ॥
अथ नारीजने भूरिभूषणद्विगुणद्युतौ । धवलध्वनिपीयूषसञ्जीवितमनोभवे ॥ ६० ॥
वेदोच्चारचमत्कारसप्रतापत्रयीतनौ । ब्राह्मणानां गणे स्पर्धनिरुद्धसदनाङ्गणे ॥ ६१ ॥
काहलानलयन्त्रोत्थकिङ्करानन्मारुतैः । दीपिते जनचित्तेषु, मकरध्वजपावके ॥ ६२ ॥
अद्भुतं वाद्यमानेषु, मृदङ्गेषु मुहुर्मुहुः । अम्भोधरध्वनिभ्रान्त्या, नृत्याकुलकलापिषु ॥ ६३ ॥
कुमारी च कुमारश्च, योजयित्वा कराम्बुजे । ततः पुरोधसा वह्नेः, कारितौ तौ प्रदक्षिणाम् ॥ ६४ ॥
॥ पञ्चभिः कुलकम् ॥

आसीदश्रु न चित्राय, होमधूमे विसर्पति । तदाऽऽसन्ने तयोर्वह्नौ, कम्पो विस्मयभूरभूत् ॥ ६५ ॥
परस्परं तयोः पाणिस्पर्शे पीयूषवर्षिणि । अमुञ्चदङ्कुरान् क्षेत्रे, शृङ्गारः पुलकच्छलात् ॥ ६६ ॥
सर्वाङ्गपूर्णयोः कामरसेन भृशमेतयोः । पाणिपीडनतः स्वेदच्छलात् किञ्चिद् बहिः स्थितम् ॥ ६७ ॥
तदा कुमारवक्त्रेन्दुः, कोऽप्यपूर्वः स्मयं दधौ । कुमारीवदनाम्भोजसमुल्लासनलालसकः ॥ ६८ ॥
नमश्चक्रे क्रमेणाथ, गुरुवर्गं नृपाङ्गजः । तया दयितया साकं, वस्त्राञ्चलविलग्नया ॥ ६९ ॥
कतिचिद् वासरांस्तत्र, स्थित्वा नृपतिनन्दनः । प्रयातः स्वपुरीं रेमे, समं वनितया तया ॥ ७० ॥
मुनिर्वसुन्धरो नाम, पवित्रितवसुन्धरः । अन्येद्युराजगामात्र, चतुर्ज्ञानधरः पुरे ॥ ७१ ॥
नमस्कर्तुममुं राजा, कुमारेण समं ततः । ययौ पुरवनीखण्डमखण्डगुरुभक्तिकः ॥ ७२ ॥
मुदा वसुन्धराधीशो, वसुन्धरमुनीश्वरम् । प्रणम्य पादपीठाग्रे, क्षितिपीठे निविष्टवान् ॥ ७३ ॥
नवस्थानरसालद्रुन्यासस्वप्नविचारणाम् । अपृच्छद् पृथिवीभर्ता, प्रेयसीप्रेरितस्ततः ॥ ७४ ॥
सर्वज्ञं मनसा पृष्ट्वा, समाचष्ट मुनीश्वरः । कुमारोऽयं जिनो भूत्वा, फलिता नवमे भवे ॥ ७५ ॥
श्रुत्वेति प्रीतिमान् भूपो, मुनिं नत्वा पुरं गतः । वाहव्यूहखुरोद्धूतधूलिधूसरवासरः ॥ ७६ ॥
स कुमारोऽन्यदा केलिशाली गत्वा वनावनौ । चिरं चिक्रीड सखिभिः, कलभैरिव कुञ्जरः ॥ ७७ ॥
अथाऽपश्यदसौ कश्चिद्, भूमौ निपतितं मुनिम् । निरालम्बवियद्भ्रान्तिखिन्नं रविमिवाचिरात् ॥ ७८ ॥
आश्वास्य चन्दनाम्भोभिरनिलैश्चानुलोमिकैः । चक्रे कुमारः सच्छायं, मुनिं धर्मद्रुमोपमम् ॥ ७९ ॥
उत्तारितः कुमारेण, विपदम्भोनिधेर्मुनिः । तमुत्तारयितुं सोऽपि, तत् प्रारेभे भवान्तरात् ॥ ८० ॥
तत्कालं च समारोप्य, तच्चित्ते वाक्सुधारसैः । सम्यक्त्वपादपस्तेन, शतशाखो व्यतन्यत ॥ ८१ ॥
कुमारस्योपरोधेन, स्थित्वाऽथ स्तोकवासरान् । कृतावग्रहपरीहारो, विहारं विदधे मुनिः ॥ ८२ ॥
बन्धुना धनदेवेन, धनदत्तेन चान्वितः । सवधूको धनोऽन्येद्युर्व्रतं प्राप वसुन्धरात् ॥ ८३ ॥
तप्त्वा तपांसि भूयांसि, क्षीणायुःकर्मबन्धनाः । सौधर्मकल्पे सर्वेऽपि, श्रायसीं श्रियमाश्रयन् ॥ ८४ ॥
अत्रैव भरतक्षेत्रे, वैताढ्यगिरिमूर्धनि । उत्तरश्रेणिरोचिष्णुसूरतेजोऽभिधे पुरे ॥ ८५ ॥
अरातिध्वान्तसूरस्य, सूरस्य पृथिवीपतेः । विद्युन्मत्यभिधानाया, देव्याः कुक्षिसरोरुहे ॥ ८६ ॥

१ °हालस्यः संघा० ॥ २ तदा द° संघा० ॥ ३ °रणम् संघा० पाता० ॥ ४ कुमारोऽप्यन्यदा पाता० ॥ ५ °धार्णयाम् संघा० पाता० ॥ ६ °रं स समा° पाता० ॥

अथ स्वस्वपुरं प्रापुः, प्रीताः सर्वेऽपि खेचराः । हर्षमुत्कर्षयन्तोऽन्तः, स्तुत्वा चित्रगतेस्तया ॥ १४६ ॥
श्रीसूरा-ऽनङ्गसेनाभ्यामादिष्टो गणकस्ततः । निश्चिकाय विवाहाय, रागिणोर्दिनमेतयोः ॥ १४७ ॥
विवाह्य रत्नवत्याऽथ, सूरश्चित्रगतिं सुतम् । राज्ये न्यस्य समं विद्युन्मत्या व्रतमुपाददे ॥ १४८ ॥
स जीवं धनदेवस्य, बन्धुं नाम्ना मनोगतिम् । धनदत्तस्य चपलगतिं च मुदमानयत् ॥ १४९ ॥
मृतस्य मणिचूडस्य, स्वसामन्तस्य नन्दनौ । विभज्य विभवं राज्ञा, शशि-सूरौ च तोषितौ ॥ १५० ॥
एकद्रव्याभिलाषेण, कदाचिद् युध्यतोस्तयोः । मृतयोर्वार्तया राजा, वैराग्यं हृदि भेजिवान् ॥ १५१ ॥
सार्द्धं स्वकीयबन्धुभ्यां, वध्वा च वसुधाधवः । सूरेर्दमधराद् भेजे, व्रतं खड्गाभतीव्रतम् ॥ १५२ ॥
पुरं पुरन्दरो नाम, पुरन्दरपराक्रमः । अपालयन्नृपालस्य, तस्य सूनुरनूनधीः ॥ १५३ ॥
पादपोपगमं कृत्वा, प्राप चित्रगतिः कृती । माहेन्द्रकल्पे देवत्वमृभुप्रभुनिभप्रभः ॥ १५४ ॥

अस्ति प्रत्यग्विदेहेषु, देशः पद्माख्यया महान् ।
यत्र ग्रामाऽऽकराशीनां, शैलानामपि नान्तरम् ॥ १५५ ॥

पुरं सिंहपुरं तत्र, विद्यते विदितं भुवि । सौधाग्रस्त्रीमुखाब्जानां, यत्रेन्दुर्दासवत् पुरः ॥ १५६ ॥
हरिणन्दीति तत्रासीदवनीपालपुङ्गवः । विभाति यत्प्रतापस्य, तप्तांशुः प्रतिहस्तकः ॥ १५७ ॥
स भेजे वल्लभामर्थिप्रियदः प्रियदर्शनाम् । यस्याः शस्यौ रति-प्रीत्योः, केलिशैलरुचौ कुचौ ॥ १५८ ॥
सोऽयं चित्रगतेर्जीवश्च्युत्वा माहेन्द्रकल्पतः । अपराजितनामाऽभूदुग्रधामा तदङ्गजः ॥ १५९ ॥
सखा विमलबोधाख्यस्तस्याभवदमात्यभूः । सहचारी सदा भानोरिव रश्मिसमुच्चयः ॥ १६० ॥
वाहाभ्यां वाहितावेतौ, वाह्यालीक्रमणेऽन्यदा । देशे दवीयसि गतावरण्ये पुण्यविक्रमौ ॥ १६१ ॥
तत्रावतीर्य तौ वीर्यविनिर्जितपुरन्दरौ । निन्यतुस्तोयतीरेषु, तृषार्तं तुरगद्वयम् ॥ १६२ ॥
अथ श्लथीकृतावन्धौ, विपन्नौ तौ तुरङ्गमौ । देशान्तरविहारश्रीनेत्रे इव तदा तयोः ॥ १६३ ॥
अथ तत्र स्थितावेतौ, निराशौ गलितश्रियौ । कलुषौ कलिमाहात्म्यात्न्यायधर्माविवाङ्गिनौ ॥ १६४ ॥
अत्रान्तरे नरः कोऽपि, हन्ये हन्ये वदन्निदम् । प्रदत्ताभयदानेन, कुमारेण स्थिरीकृतः ॥ १६५ ॥
स्थितो यावदसौ तत्र, तावदारक्षकाः क्षणात् । हत हतेति जल्पन्तोऽभ्याययुर्ययुवेगतः ॥ १६६ ॥
ततः समं कुमारेण, वधवारणकारिणा । तदाऽऽरक्षकसैन्यं तत्, प्रारेभे युद्धमुद्धतम्[१] ॥ १६७ ॥
करवालः कुमारस्य, ततो दलयतो रणे । बलस्यास्य प्रभावाब्धिमगस्तिरिव पीतवान् ॥ १६८ ॥
अथ ते व्यथितास्तेन, कुमारेणोद्भटा भटाः । आशु विज्ञापयामासुर्वलित्वा भूभुजं निजम् ॥ १६९ ॥
तदाऽऽरक्षप्रतिक्षेपोद्दीप्रकोपः स भूपतिः । सनाथां दण्डनाथेन, प्राहिणोदसमां चमूम् ॥ १७० ॥
खड्गलेखा कुमारस्यावलेपजलधेस्ततः । इमां पराङ्मुखीचक्रे, वाहिनीमतुलत्वराम् ॥ १७१ ॥
अथ स्वयमयं राजा, समारुह्य मतङ्गजम् । सङ्ग्रामाय समारेभे, संरम्भं क्रोधदुर्धरः ॥ १७२ ॥
मन्त्रिपुत्रं कुमारोऽपि, व्यापार्य नररक्षणे । आरुरोह रणायोग्रमभिमानमतङ्गजम् ॥ १७३ ॥
नृपाङ्गजभुजेनाभादसिलेखा विकम्पिता । शिखेव मुक्ता यातास्ता, विरोधिवधसम्भया ॥ १७४ ॥
तद्भुजस्य यमस्येव, रोमाञ्चैर्मेचकद्युतेः । संहरन्ती रिपून् क्रुद्धा, जिह्वेवासिलता बभौ ॥ १७५ ॥
मनो मन्त्री भुजे मित्रं, मानो धनमसिर्बलम् । इति वीरो विजग्राह, स युक्तं सह भूभुजा ॥ १७६ ॥

१ °द्धमद्भुतम् संता० ॥

अन्येद्युः सुयशा नाम, केवली प्राप तत् पुरम् । जगाम तं नमस्कर्तुं, सुग्रीवः सह बान्धवैः ॥ ११५ ॥
तं प्रणम्योपविश्याथ, देशनान्ते विशांपतिः। पप्रच्छ क्व नु सा भद्रा, परित्रस्य ययाविति? ॥ ११६ ॥
सा नश्यन्ती हृता चौरैर्विक्रीता वणिजो गृहे। नष्टा ततोऽपि दावाग्निदग्धा दुर्गतिमभ्यगात् ॥ ११७ ॥
अतिशोच्यमनन्तं सा, संसारं विचरिष्यति । इत्थं स कथयामास, केवली नृपतिं प्रति ॥ ११८ ॥
तदाकर्ण्य नृपो दध्यौ, यत्कृते साऽकृतेदृशम्। सोऽस्त्यत्र नरके सा तु, गता वत्सलता हहा! ॥ ११९ ॥
इत्थं खिन्नः सुमित्राय, दत्त्वा राज्यं भुवो विभुः। कश्चिद् देशं च पद्माय, निर्मायो व्रतमग्रहीत् ॥ १२० ॥
ततः सुमित्रधात्रीशमापृच्छ्य कथमप्यमुम् । गतश्चित्रगतिस्तेन, सत्कृतो नगरं निजम् ॥ १२१ ॥
इतो रत्नवतीभ्राता, कमलोऽनङ्गसेनभूः। सुमित्रभगिनीं कूटात्, कलिङ्गस्याहरत् प्रियाम् ॥१२२॥
स्वमित्रस्य सुमित्रस्य, तामानेतुं सहोदराम् । वेगाच्चित्रगतिः प्राप, नगरं शिवमन्दिरम् ॥ १२३ ॥
तं स्वमित्रस्वसुर्दीनवक्त्रायाश्चाटुकारिणम् । उद्यानेऽत्रासयच्चित्रगतिः कमलमाकुलम् ॥ १२४ ॥
कोपादनङ्गसेनोऽपि, पुत्राभिभवसम्भवात् । योद्धुं चित्रगतिं सैन्यैरदैन्यैर्निरगात् पुरात् ॥ १२५ ॥
उद्यन्महाः सहानेन, चक्रे चित्रगतिर्युधम् । क्रमभ्रष्टाखिलास्त्रेण, वैलक्ष्यमुपगच्छता ॥ १२६ ॥
अनङ्गसेनभूपालः, खड्गरत्नमथास्मरत् । योद्धुमुद्धुरधैर्योऽसौ, समं सूनुविरोधिना ॥ १२७ ॥
अथ चित्रगतिर्मायातमःश्यामलिताम्बरः । राज्ञः कृपाणमाच्छिद्य, गृहीत्वा मित्रसोदराम् ॥ १२८ ॥
गत्वा चक्रपुरे तूर्णं, सुमित्रस्य समर्प्य च । आजगाम स वैताढ्यं, पूर्वाद्रिमिव भानुमान् ॥ १२९ ॥
॥ युग्मम् ॥

प्रौढपुत्रः सुमित्रोऽपि, विरक्तः संसृतौ कृती । व्रतमासाद्य जैनेन्द्रं, विचचार चिरं क्षितौ ॥ १३० ॥
आखेटकगतेनायमथ पद्मेन बन्धुना । पूर्वविद्वेषतः शस्यहतो निपतितः क्षितौ ॥ १३१ ॥
असावनन्तसंसारी, मत्तो भवति बान्धवः । शोचन्नेवं स्वमात्मानं, विपन्नः स महामुनिः ॥ १३२ ॥
बभूव ब्रह्मलोकेऽसौ, शक्रसामानिकः सुरः । अगण्यपुण्यनैपुण्यपण्याद्वैतनिकेतनम् ॥ १३३ ॥
दुष्टाहिदष्टः पद्मोऽपि, सप्तमं नरकं ययौ। मन्येऽसौ चरणे धृत्वा, कृष्टः कालेन कौतुकात् ॥ १३४ ॥
एकदाऽगमदानन्दी, नन्दीश्वरवरं प्रति । विद्याधरगणो विभ्रदहम्पूर्विकया त्वराम् ॥ १३५ ॥
अथापूज्यन्त निःशेषगीतवाद्यादिकौतुकैः । विद्याधरकदम्बेन, भक्तिविभ्राजिना जिनाः ॥ १३६ ॥
कैः पुण्यैः पदमीदृक्षं, दुःखत्रासदमासदम्? । इदमत्रान्तरे दध्यौ, सुमित्रः स्वर्गितां गतः ॥ १३७ ॥
इति चिन्तयतश्चित्ते, मित्रं चित्रगतिः कृती। अतिप्रेम्णाऽवदातस्य, तदा तस्य स्मृतिं गतः ॥ १३८ ॥
नन्दीश्वरे स तं वीक्ष्य, कुर्वाणं जिनपूजनम् । आगाद् वेगेन तत्रैव, मित्रस्नेहेन मोहितः ॥ १३९ ॥
विद्याधरेषु शृण्वत्सु, स देवः कुर्वतः स्तुतिम् । मूर्ध्नि चित्रगतेर्हृष्टः, पुष्पवृष्टिं विसृष्टवान् ॥ १४० ॥
अथ चित्रगतिं सर्वे, गर्वमुन्मुच्य खेचराः । विस्मिताः पुष्पवर्षेण, नमश्चक्रुर्गुणाधिकम् ॥ १४१ ॥
बुबुधेऽनङ्गसेनोऽपि, स्मृत्वा गणकभाषितम् । पुष्पवृष्ट्याऽसियष्ट्या च, हृतया तं सुतापतिम् ॥ १४२ ॥
रत्नवत्यपि तं प्राप्य, पपावविरतं दृशा । मरुस्थलपथे पान्थाः, पाथःपूरमिवादरात् ॥ १४३ ॥
सोऽपि चित्रगतिर्वीक्ष्य, कैरवाक्षीमिमां तदा । ममामुदधरत् कष्टं, तल्लावण्यह्रदे दृशम् ॥ १४४ ॥
परस्परमथैताभ्यां, गताभ्यामेकतामिव । स्वं मनः प्रेमसर्वस्वकोशाध्यक्ष इवार्पितम् ॥ १४५ ॥

१ युग्मम् संता० ॥ २ सुमि° संता० ॥

असावसोढा तन्मित्रविरहं निरहङ्कृतिः । चिरं बभ्राम कान्तारे, यूथभ्रष्ट इव द्विपः ॥ २०८ ॥
अथ भ्रमन् गतो नन्दिपुरोपान्त्यसुरालये । एत्य खेचरयुग्मेन, स प्रोचे दुःखदुर्मनाः ॥ २०९ ॥
आकारयति मित्रं ते, भूपभूरपराजितः । तदा चापहृतः सोऽयमावाभ्यां विपिनान्तरात् ॥ २१० ॥
प्रभुः कमलमानुर्नौ, हारयामास खेचरः । कुमुदिन्याः कृते पुत्र्याः, कमलिन्याश्च तं यतः ॥ २११ ॥
अयमेवानयोर्बाल्ये, न्यवेदि ज्ञानिना वरः । प्रभुणा निर्मिते सोऽस्ति, प्रासादे त्वद्विनाऽर्दितः ॥ २१२ ॥
विवाहेऽपि निरुत्साहः, स भवन्तं विनाऽभवत् । तदेहि देहि तस्याद्य, मुदमब्धेरिवोडुपः ॥ २१३ ॥
इत्याकर्ण्य हृदि प्रीतः, स ताभ्यां सह जग्मिवान् । तत्राप्तिमुदितः कन्ये, वीरः पर्यणयच्च ते ॥ २१४ ॥

अथ श्रीमन्दिरपुरे, तौ गत्वा सत्त्वदुःसहौ । स्थितौ कामलतानाम्न्या, वारनार्या निकेतने ॥ २१५ ॥
पुरेऽस्मिन्नेकदा कश्चिदभूत् कोलाहलो महान् । रथघण्टापथत्यागव्याकुलार्केतुरङ्गमः ॥ २१६ ॥
तत् परम्परया ज्ञात्वा, निहतं घातकैर्नृपम् । वेश्यायै मन्त्रिसूरास्यदथ सञ्जीवनौषधम् ॥ २१७ ॥
तद् भूभृन्मन्त्रिणे तूर्णं, वेश्ययाऽपि निवेदितम् । अयं मद्गृहवास्तव्यः, किञ्चिद् वेत्ति महौषधम् ॥ २१८ ॥
मन्त्रिणा भक्तियुग्मेन, तत् तदाऽऽकारिताविमौ । औषधेन धराधीशं, क्षणाच्चक्रतुरक्षतम् ॥ २१९ ॥
हरिणन्दितनूजोऽयमिति मत्वाऽथ भूभुजा । रम्भानाम्नः स्वनन्दन्याः, प्रदानेनैव सत्कृतः ॥ २२० ॥
तत्रैव तामपि त्यक्त्वा, पुनः प्रचलिताविमौ । कञ्चित् केवलिनं वीक्ष्य, पुरे कुण्डपुरे स्थितौ ॥ २२१ ॥
नत्वा केवलिनं भक्तिभावितः सुहृदा सह । अपराजितवीरोऽयं, निविष्टः क्षितिविष्टरे ॥ २२२ ॥
पप्रच्छ स्वच्छधीर्भाविशुभा-ऽशुभमथाऽऽत्मनः । मित्रस्य च स्वकीयस्य, मेदिनीनाथनन्दनः ॥ २२३ ॥
द्वाविंशस्तीर्थकृद् भावी, नेमिस्त्वं पञ्चमे भवे । अयं सुहृच्च प्रथमो, गणभृत् ते भविष्यति ॥ २२४ ॥
वाचं सम्यग् निशम्येति, प्रथितां मुनिनाऽमुना । स प्राप प्रमदं भाविमुक्त्यानन्दानुवादिनम् ॥ २२५ ॥
मुनौ कृतविहारेऽथ, केवलज्ञानभास्करे । तौ कुतूहलिनौ देशान्, द्रष्टुमभ्रमतां पुनः ॥ २२६ ॥

इतश्चास्ति जनानन्दे, लङ्काशङ्काकरे पुरे । जितशत्रुर्धरित्रीशो, धारिणी चास्य वल्लभा ॥ २२७ ॥
सोऽपि रत्नवतीजीवश्च्युत्वा माहेन्द्रकल्पतः । देव्याः कुक्षिसरोहंसी, जज्ञे प्रीतिमती सुता ॥ २२८ ॥
अथासौ यौवनं प्राप्ता, प्रतिज्ञामिति निर्ममे । विजयता मां विजेता यः, स मे भर्ता भविष्यति ॥ २२९ ॥
स्वयंवरार्थमुर्वीशस्ततो निर्माय मण्डपम् । पत्त्रपुरोचितो भूरीनमीमिलदिलाधिपान् ॥ २३० ॥
सपाञ्चालीप्रपञ्चेषु, ते मञ्चेषु निषादिनः । किरन्ति रागं प्रत्यङ्गं, भूषामणिविभानिभान् ॥ २३१ ॥
अत्रान्तरे नरेशस्य, सचिवस्य च तौ सुतौ । पश्यन्तौ काश्यपीखण्डमखण्डस्मयमीयतुः ॥ २३२ ॥
विधाय गुलिकायोगादन्यं वेषमुभौ ततः । मूले मञ्चस्य कस्यापि, स्थितावुचालकौतुकौ ॥ २३३ ॥

कस्याश्चिन्मञ्चपाञ्चाल्या, मूर्ध्नि न्यस्तकराम्बुजः ।
कुमारस्तस्थिवान् पश्यन्, भूभुजस्तृणवत् तदा ॥ २३४ ॥

अथ रङ्गपथक्रोडं, प्राप प्रीतिमती तदा । पुरोवर्तिप्रतिहारीप्रथिताग्रपथान्तरा ॥ २३५ ॥
समालोक्य समायान्तीमथ ते पृथिवीभृतः । चेष्टान्तराणि तत्कालं, चक्रिरे चलचेतसः ॥ २३६ ॥
परिभ्राम्यति लीलाब्जे, चक्षुश्चिक्षेप कश्चन । इह तद्वक्त्रशोभाऽस्ति, न वेतीव विलोकयन् ॥ २३७ ॥

---

१ °धराधीशो, खंता° ॥

भग्ने सैन्ये प्रणिधितो, ज्ञात्वा तं नृपनन्दनम् । रणं निर्मुच्य पप्रच्छ, कुशलं कोशलेश्वरः ॥ १७७ ॥
पितृमित्रं कुमारोऽपि, तं मत्वा मन्त्रिणो गिरा । नमश्चकार तत्कालाहङ्कारभ्रंशभासुरः ॥ १७८ ॥
सुता कनकमालाऽस्मै, कुमाराय महीभुजा । दत्ता प्रमथनाथाय, पार्वतीव हिमाद्रिणा ॥ १७९ ॥
अथ देशान्तरालोककौतुकायत्तचेतसौ । निशि निःसृत्य मन्त्रीश-धात्रीशतनुजौ गतौ ॥ १८० ॥
अथ तौ कानने क्वापि, कामिन्याः करुणारवम् । आकर्ण्य कालिकादेव्या, मन्दिरे जग्मतुर्जवात् ॥ १८१ ॥
समीपे वह्निकुण्डस्य, रुदतीं कामपि स्त्रियम् । वीरो व्यलोकयत् तत्र, कान्तां केनापि खड्गिना ॥ १८२ ॥
अथ तं प्रथितोत्साहः, कुमारः प्राह खड्गिनम् । न वेत्सि क्रूर ! रे ! मूर्ख, मया सस्वामिकामिति ॥ १८३ ॥
विधत्ते यदि ते शक्तिर्विधेहि प्रधनं ततः । इत्याकर्ण्य द्रुतं सोऽपि, चलितः कलितः क्रुधा ॥ १८४ ॥
समुल्लासितनिस्त्रिंशौ, रणाय स्फुरितौ ततः । एतावुत्पाटितोद्दण्डशुण्डादण्डाविव द्विपौ ॥ १८५ ॥
खड्गेन धारया धारां, वारयन्तौ मुहुर्मिथः । युयुधातेतरामेतौ, दन्ताभ्यामिव दन्तिनौ ॥ १८६ ॥
तमजेयतमं मत्वा, कुमारमसिना पुरः । क्रीडया पीडयामास, नागपाशप्रबन्धतः ॥ १८७ ॥
वल्लीबन्धानिव गजः, स जगत्कौतुकप्रदः । नृपसूनुर्बलेनैव, नागपाशानतुत्रुटत् ॥ १८८ ॥
लोचने वञ्चयित्वाऽथ, कुमारेण रणाङ्गणे । कालिन्दीस्रोतसेव द्रुरातिः पातितोऽसिना ॥ १८९ ॥
मूर्च्छा निमील्यामास, तस्येन्द्रियगणं ततः । समुल्लसत्तमःस्तोमा, पद्मखण्डमिव क्षपा ॥ १९० ॥
अथ पानीयमानीय, तं निषिच्य नृपाङ्गजः । चलच्चेलाञ्चलोन्मीलन्मारुतैरुदजीवयत् ॥ १९१ ॥
सम्प्रीतः सोऽपि मूर्च्छान्ते, भूपसूनुमभाषत । विघृष्य मूलिकामेतां, लेपं घातेषु देहि मे ॥ १९२ ॥
श्रुत्वेति भूपपुत्रोऽपि, चक्रे तस्य वचः क्षणात् । नीरे रेखेव तत्खड्गक्षतिर्देहे तदाऽमिलत् ॥ १९३ ॥
अथोत्थितः स वीरेण, काऽसौ ? कोऽसीति भाषितः । उद्गृद्वदनाम्भोजमरन्दमधुरं वचः ॥ १९४ ॥
आस्ते पुरश्रियां सीमा, पुरं श्रीरथनूपुरम् । तस्मिन्नमृतसेनाख्यः, क्षितिपः खेचरेश्वरः ॥ १९५ ॥
अस्ति कीर्तिमती नाम, तस्य कीर्तिमती प्रिया । रत्नमालाऽभिधा बाला, रतिरूपा तयोरियम् ॥ १९६ ॥
हरिणन्दिधराधीशतनुभूरपराजितः । अस्या भविष्यति पतिर्ज्ञानिनेति निवेदितम् ॥ १९७ ॥
श्रीषेणनन्दनः शूरकान्तनामाऽस्मि खेचरः । लावण्यलहरीसिन्धुमेनां याचितवानहम् ॥ १९८ ॥
अपराजित एव स्यात्, प्रियो मे हरिणन्दिभूः । प्रविशाम्यथवा वह्निं, चक्रे निश्चयमित्यसौ ॥ १९९ ॥
अपहृत्य ततः कोपादानीतेयं मया वने । भक्तिभिः शक्तिभिश्चापि, चापलादर्थिता भृशम् ॥ २०० ॥
पूरयिष्यामि ते वह्निप्रवेशनियमं ततः । इत्युक्त्वा कृष्टनिस्त्रिंशो, मयि वीर ! त्वमागतः ॥ २०१ ॥
वितन्वति कथामित्थं, तत्र विद्याधरे तदा । पितरौ रत्नमालायाः, पुत्रीमीक्षितुमागतौ ॥ २०२ ॥
मन्त्रिपुत्रगिरा ताभ्यां, मत्वाऽयमपराजितः । रत्नमालां रतिमिव, प्रद्युम्नः परिणायितः ॥ २०३ ॥
विद्याधरैः कुमाराय, व्रणसंरोहणौषधीम् । चिन्तितार्थकरीं दत्त्वा, गुलिकां च क्वचिद् ययौ ॥ २०४ ॥
अथो यथागतं सर्वे, जग्मुस्तौ तु महाशयौ । चिरकालं वने भ्रान्तौ, दिवीन्दु-तपनाविव ॥ २०५ ॥
कुमारः सहकारस्य, तलेऽथ तृषितः स्थितः । ययौ सचिवसूनुस्तु, वारिग्रहणहेतवे ॥ २०६ ॥
कुतोऽपि तोयमादाय, यावत् सोऽप्यमुपागतः । तावदाम्रतरोर्मूले, न पश्यति नृपाङ्गजम् ॥ २०७ ॥

१ तं मित्रनन्द° संता० ॥ २ 'घनं य' संता० ॥ ३ अपदद् वदना° संता० ॥
४ निर्देशितम् संता० ॥ ५ 'धरकुमारोऽथ, व्रण' संता० ॥

ततस्तत्र स्थितं श्रुत्वा, कुमारमपराजितम् । आययौ पैतृको मन्त्री, समाकारयितुं रयात् ॥ २६९ ॥
सर्वेऽपि परिणीतस्त्रीपितरोऽपि तमाययुः । सरिदोघा इवाम्भोधिं, विद्याधरधराधिपाः ॥ २७० ॥
मित्रेण मन्त्रिणा धात्रीशैर्विद्याधरैश्च तैः । ऋक्षैरिव तुषारांशुः, कुमारः परिवारितः ॥ २७१ ॥
कम्पिनीं सैन्यचारेण, स्विन्नां गजमदाम्बुभिः । भेजे निजपुरीमेष, दयितामनुरागिणीम् ॥ २७२ ॥
बभौ पितरमालोक्य, वृक्षोऽम्बुदमिवाथ सः । प्रीतः प्रेक्ष्य च तं राजा, राजानमिव वारिधिः ॥ २७३ ॥
रोमाञ्चमेचकश्रीकः, प्रसरद्भुजपक्षतिः । पितृपादाम्बुजोत्सङ्गे, वीरो भृङ्ग इवापतत् ॥ २७४ ॥
अथो कुमारमुत्थाप्य, बाहुभ्यां प्रीतिविह्वलः । राजा हृदि दधौ मूर्ध्नि, वर्षन् हर्षाश्रुबिन्दुभिः ॥ २७५ ॥
अथोद्दधार नो मौलिं, न्यस्य मातृपदद्वये । नखोष्णीषमणीनां तु, रश्मिभिर्ग्रथितं मिथः ॥ २७६ ॥
मात्रा कथञ्चिदुत्थाप्य, मुदा मूर्धनि चुम्बितः । कुमारः शैशवसुखं, सस्मार सुरदुर्लभम् ॥ २७७ ॥
तौ **मनोगति-चपलगति**जीवौ प्रणेमतुः । सोदरौ **सूर-सोमा**ख्यौ, कुमारस्य पदद्वयम् ॥ २७८ ॥
समर्थमथ मत्वा तं, निधाय स्वपदे सुतम् । व्रतं विश्वस्तहरिणं, **हरिणन्दी** मुदा दधौ ॥ २७९ ॥
तपस्तपनविस्तारध्वस्तकर्मतमस्ततिः । **हरिणन्दी**मुनिपतिस्तत् प्राप परमं पदम् ॥ २८० ॥
महिषीपदविद्योतमानप्रीतिमतीयुतः । शशास **सूर-सोमा**भ्यां, सहोर्वीमपराजितः ॥ २८१ ॥
मित्रं **विमलबोधो**ऽपि, तस्य मन्त्रिपदेऽभवत् । दीप्ततेजःप्रदीपैकसदनं सदनन्तधीः ॥ २८२ ॥
कुर्वन्नुर्वीपतिस्तीर्थ-रथयात्रामहोत्सवम् । ददर्शाऽनङ्गदेवाख्यमिभ्यमुद्भिन्नयौवनम् ॥ २८३ ॥
एतस्यैव द्वितीयेऽह्नि, मरणं परिभावयन् । धिक्! संसृतिरसारेयमिति सारां धियं दधौ ॥ २८४ ॥
इहान्तरे पुरोपान्ते, केवलज्ञानवान् मुनिः । आययौ यः कुमारत्वे, दृष्टः **कुण्डपुरे** पुरा ॥ २८५ ॥
पद्मं प्रीतिमतीपुत्रं, कृत्वा राज्येऽथ पार्थिवः । मुनेस्तस्माद् व्रतं प्राप, सकान्ता-ऽमात्य-बान्धवः ॥ २८६ ॥
स तपो निबिडं तप्त्वा, पूर्णायुः सपरिच्छदः । समभूदारणे कल्पे, शक्रसामानिकः सुरः ॥ २८७ ॥
जम्बूद्वीपाभिधे द्वीपे, क्षेत्रे **भरत**नामनि । **कुरुदेश**शिरोमाल्ये, **श्रीहास्तिनपुरे** पुरे ॥ २८८ ॥
श्रीषेणनृपतेः पत्न्यां, **श्रीमत्यां शङ्ख** इत्यभूत् । जीवोऽपराजितस्याथ, पूर्णेन्दुस्वमतः सुतः ॥ २८९ ॥
॥ युग्मम् ॥

जीवो विमलबोधस्य, मतिप्रभ इति श्रुतः । आसीद् गुणनिधेर्मन्त्रिकिरीटस्याङ्गजो गुणी ॥ २९० ॥
क्रीडां वितनुतो मित्रीभूय तौ पूर्ववत् ततः । यौवनस्य वशं यातौ, वसन्तौ जनचेतसि ॥ २९१ ॥
चौर्यदावाग्निदग्धाङ्गः, सीमादेशजनोऽन्यदा । आगत्य क्षितिनेतारं, विजेतारं व्यजिज्ञपत् ॥ २९२ ॥
विशालशृङ्गः स गिरिः, सा **चन्द्रशिशिरा** नदी । दुर्गेऽस्मिन् दुर्ग्रहः पल्लीपतिः **समरकेतनः** ॥ २९३ ॥
हरत्येव सदेशस्थः, स देशस्य श्रियं सदा । दोषा दोषाकरोऽम्भोजवनस्येव समापतन् ॥ २९४ ॥
गिरं जनपदस्येति, दुःखदाहसगद्गदाम् । समाकर्ण्याभवद् भूपः, कोपवह्निहसन्तिका ॥ २९५ ॥
कटकाय कटुस्वान्तः, समारम्भं विभावयन् । आदिदेश नृपः पत्ति-द्विप-वाह-रथाधिपान् ॥ २९६ ॥
अथ विज्ञापयामास, कुमारः क्षितिवासवम् । अन्तः स्फुरति कोपेऽपि, निर्विकारमुखाकृतिः ॥ २९७ ॥
स्वर्गेशो नागतः स्वर्गान्न पातालाद् बलिर्बली । कथमित्थं प्रभो! पल्लीपतिमात्रे प्रकुप्यसि? ॥ २९८ ॥
मा कोपीरहमेवामुं, निग्रहीष्यामि हेलया । व्यापारं हि कुठारस्य, नखच्छेद्ये करोति कः? ॥ २९९ ॥

---

१ °तं मत्वा, खंता० ॥ २ °तिस्तत्र, रथ° खंता० ॥ ३ °निधिर्मं° खंता० ॥

अङ्गुलिभ्यां भ्रमयतः, करात् कस्यापि चम्पकम् । क्षितौ पपात तत्कान्तिविजितं नु ! विलज्जितम् ॥ २३८ ॥
विमलं केतकीपत्रं, नखैः कश्चिददारयत् । तदीयदशनोन्मीलन्मयूखश्रीमलिम्लुचम् ॥ २३९ ॥
तदीयाङ्गपरिष्वङ्गतिरोधानविधायिनम् । कश्चिदभ्रमयत् पाणेराक्रष्टुमिव कङ्कणम् ॥ २४० ॥
जगतीपतिषु स्पष्टमिति तेषु विलासिषु । पुरः प्राह प्रतीहारी, मुदा श्रीतिमतीं प्रति ॥ २४१ ॥
एते देवि ! मुदे विश्वविजयोज्ज्वलविक्रमाः । आजग्मुस्त्वत्कृते भूपाः, स्मररूपा गुणाव्धयः ॥ २४२ ॥
यः कश्चित् ते मुदं चित्ते, दत्तेऽमीषु विशेषतः । वृणु तं भाग्यसौभाग्यप्रसादसदनं नृपम् ॥ २४३ ॥
असौ मौक्तिकताडङ्कहंसोत्तंसमुखाम्बुजः । राजा भुवनचन्द्राख्यः, शौर्य-धैर्य-धियां निधिः ॥ २४४ ॥
अयं हाराङ्कितग्रीवो, राजा समरकेतनः । स्मरे हरभयोद्भ्रान्ते, रूपश्रीरमुमाश्रिता ॥ २४५ ॥
भूपः कुबेरनामाऽयं, सल्लुर्मुहुःसमवेक्षते । उत्तीर्णो भुवि चेतोभूर्दिवः शिवभयादिव ॥ २४६ ॥
अयं सोमप्रभो राजा, करोद्यत्केलिकन्दुकः । प्रविष्टो हृदि नारीणां, स्यादसावेव मन्मथः ॥ २४७ ॥
भूपः शूराभिधः सोऽयं, लीलानीलारविन्दवान् । अमुं भेजे रतिर्नित्यं, प्रियेऽनङ्गे तदाशया ॥ २४८ ॥
भीमः श्रीमानसौ राजा, कुण्डले कुरुते करम् । स्मरं रतिरतं मत्वा, यं प्रीतिस्तद्वदाश्रिता ॥ २४९ ॥
क्ष्माधवो धवलः सोऽयं, स्मेरनीलाब्जशेखरः । यत्कान्तिकिङ्करः कामो, भुवनेषु विजृम्भते ॥ २५० ॥
इति ज्ञात्वा प्रतीहारीवचनेन नृपानिमान् । क्रमेण प्रष्टुमारेभे, कन्या विद्यासु कौशलम् ॥ २५१ ॥
अथ जित्वा कुमारी,ताननुप्रश्नं निरुत्तरान् । वरं नरेभ्यो नारीति, ज्ञात्वा प्रीतिपराऽभवत् ॥ २५२ ॥
तामथ व्यथमानात्मा, कुमारो जितकाशिनीम् । तयैव मञ्चपाञ्चाल्या, मणिस्पर्शादवीवदत् ॥ २५३ ॥
चमत्कारकरी पुंसां, प्राह पाञ्चालिका ततः । आक्षिप्य क्ष्मापतेः पुत्रीं, मूर्त्तमानमृता गिरा ॥ २५४ ॥
किमु गर्जसि वामाक्षि !, विजित्य नृपशून् नृपान् ? । न किं जानासि मामत्र, पुरः स्फुरितकौतुकाम् ? ॥२५५॥
भवत्या यदि जीयेऽहं, तद् गुरुर्लज्जते मम । मन्मौलौ न्यस्तहस्तोऽयं, हरिणन्दिनृपात्मजः ॥ २५६ ॥
चमत्कृतेति पाञ्चालीवाचा सा चारुलोचना । शारदेव स्वयं वादसादरा मुदमुद्दधौ ॥ २५७ ॥
कन्या पप्रच्छ कः शूरो ?, जितात्मेति जगाद सा । को दक्षः ? साऽवदत् प्रोक्तं, तया श्रीभिरवञ्चितः ॥२५८॥
को दुःखीति तया प्रोक्तं, स्पृहा यस्येति साऽब्रवीत् । तयोक्तं को धनी ? यस्य, सुकृतानीत्युवाच सा ॥२५९॥
इति प्रश्नोत्तरगिरा, पाञ्चाल्या विजिता सती । मुदा कण्ठे कुमारस्य, बाला मालामयोजयत् ॥ २६० ॥
अथ पृथ्वीभृतः सर्वे, कुमारं प्रति कोपिनः । सममेव समीकायानीकिनीः समनीनहन् ॥ २६१ ॥
बलानि बलवान् राज्ञां, तानि जित्वा नृपात्मजः । भूपैः प्रत्येकमेकाकी, सार्द्धं युद्धविधिं दधौ ॥ २६२ ॥
हेलयैव महीपालानन्यान् निर्जित्य भूपम् । केसरीव समारूढः, सोमप्रभनृपद्विपम् ॥ २६३ ॥
स्वस्रीयो मातुलेनायं, विस्फुरन्नपराजितः । राज्ञा सोमप्रभेणाथ, लक्षणैरुपलक्षितः ॥ २६४ ॥
गलदश्रुजलो वीरमथ सोमप्रभो नृपः । भागिनेयं महाहर्षपूरितः परिरब्धवान् ॥ २६५ ॥
हरिणन्दिननूजं मे, जामेयमपराजितम् । अमुं जानीथ भूपानामिति सोमप्रभोऽदिशत् ॥ २६६ ॥
जग्मुः प्याजन्यमुर्वीशाः, सर्वेऽपीति प्रमोदिनः । मध्ये भूत्वा कुमारस्तैः, सोत्साहैश्च विवाहितः ॥ २६७ ॥
अथ सम्मानिना राज्ञा, सर्वेऽपि जितशत्रुणा । ययुर्निजनिजं स्थानं, नृपाः सोमप्रभादयः ॥ २६८ ॥

१ °तुकम् संता० ॥ २ °या पृष्टं, स्पृ° संता० ॥ ३ °किनीं सम° संता० ॥ ४ °भोऽप्यदद् संता० ॥ ५ सर्वे प्रीतिप्रमो° संता० ॥

[1]विघाटितकपाटोग्रप्रतोलीमुखनिःसृतैः । सौधांशुभिर्विहसितामिव चम्पां विवेश सः ॥ ३३१ ॥
यशोधरो गुणधरः, कुमारस्य सहोदरौ । सम्मुखौ द्वावपि प्राप्तौ, तौ जीवौ[2] सूर-सोमयोः ॥ ३३२ ॥
बाहुभ्यामिव बन्धुभ्यां, वाम-दक्षिणपक्षयोः । चतुर्बाहुरिवादर्शि, कुमारो नागरैस्तदा ॥ ३३३ ॥
अथासौ[3] पितरौ नत्वा, कृतार्थम्मन्यमानसः । बभूव विपुलप्रीतिवल्लीप्रोल्लासपादपः ॥ ३३४ ॥
वसुन्धराधुरौधुर्यं[4], राज्ये कृत्वाऽथ तं सुतम् । राजा गुणधराचार्यपादान्ते जगृहे व्रतम् ॥ ३३५ ॥
वनीमिवावनीमेनां, सेचं सेचं नयाम्बुभिः । मालाकार इव क्ष्मापः, स यशोभिरपुष्पयत् ॥ ३३६ ॥
अन्यदा केवलज्ञाननिधिर्विबुधसेवितः । श्रीषेणः क्षीणदुष्कर्मा, प्रासस्तस्याः पुरः पुरः ॥ ३३७ ॥
परीवारपरीतोऽयमथ शङ्खः क्षमापतिः । मुनीन्द्रं पितरं नत्वा, देशनान्ते व्यजिज्ञपत् ॥ ३३८ ॥
स्वामिन्! प्रेम्णा यशोमत्यासत्यासक्तिः कुतो मम ? । ऊचे मुनिरथानेकभवसम्बन्धितामिह ॥ ३३९ ॥
आगामिनि भवे भावी, नेमिनामा जिनो भवान् । मन्त्री च बान्धवौ[5] चैतौ, गणेशास्तव भाविनः ॥ ३४० ॥
इयं राजीमती भूत्वा, त्वदेकमयमानसा । अनूढैव व्रतं त्वत्तः, प्राप्य निर्वृतिमाप्स्यति ॥ ३४१ ॥
निशम्येति मुनेर्वाचं, शङ्खः शङ्खोज्ज्वलाननः । कुमारं पुण्डरीकाख्यं, राज्ये व्यधित दुर्धरम् ॥ ३४२ ॥
ततः समं यशोमत्या, बन्धुभ्यां सचिवेन च । अवाप क्ष्मापतिर्दीक्षां, वीक्षां मुक्तिस्त्रिया इव ॥ ३४३ ॥
सोऽर्हद्भक्त्यादिभिः स्थानैस्तीर्थकृत्कर्म निर्ममे । विधायाऽऽराधनां चान्ते, पादपोपगमं व्यधात् ॥ ३४४ ॥
परीषहोपसर्गाद्यैः, स परैरपराजितः । अपराजितसंज्ञेऽभूद्, विमाने भासुरः सुरः ॥ ३४५ ॥

तस्मिन्नखण्डितसुखामृतपानपीनः,
सोऽयं सुरः स्फुरदनुत्तररूपसम्पत् ।
हर्षप्रकर्षमयमद्भुतभूरिभाग्य-
लक्ष्मीमयं च समयं गमयाम्बभूव ॥ ३४६ ॥

॥ इति श्रीविजयसेनसूरिशिष्यश्रीमदुदयप्रभसूरिविरचिते श्रीधर्माभ्युदयनाम्नि श्रीसङ्घपतिचरिते लक्ष्म्यङ्के महाकाव्ये श्रीनेमिनाथप्राच्य-भववर्णनो नाम दशमः सर्गः ॥

पीयूषादपि पेशलाः शशधरज्योत्स्नाकलापादपि,
स्वच्छा नूतनचूतमञ्जरिभरादप्युल्लसत्सौरभाः ।
वाग्देवीमुखसामसूक्तविशदोद्गारादपि प्राञ्जलाः,
केषां न प्रथयन्ति चेतसि मुदं श्रीवस्तुपालोक्तयः ? ॥ १ ॥
॥ ग्रन्थाग्रम् ३५२ । उभयम् ३१४५ ॥

---

१ अथ श्वसुरमापृच्छ्य, परिवारैः समं निजैः । पित्रोरुत्कण्ठितः प्राप, कुमारो हस्तिनापुरम् ॥ ३२१ ॥ इतिरूपः श्लोकः खंता० ॥ २ °वौ शशि-सूरयोः वता० ॥ ३ °थायं पित° पाता० ॥ ४ °राधौर्य पाता० ॥ ५ °न्धवावेतौ खंता० ॥

इत्याकर्ण्य नरेन्द्रेण, समादिष्टः प्रमोदिना । कुमारः शत्रुसंहारहेतवे कटकं व्यधात् ॥ ३०० ॥
कृत्वा शून्यमथो दुर्गं, कतिचित्पत्तिपालितम् । तस्थौ दूरेण पल्लीशश्छलाय सह सैनिकैः ॥ ३०१ ॥
इति मत्वा कुमारोऽपि, समारोपितसैनिकः । प्रेरितैः पत्तिभिर्दुर्गं, ग्राहयामास कैश्चन ॥ ३०२ ॥
जगामान्तः समं सैन्यैः, शङ्खोऽयमिति शङ्कया । बलैरनर्गलैर्दुर्गं, पल्लीपतिरवेष्टयत् ॥ ३०३ ॥
अथ संरुद्धदुर्गे तं, वल्गन्तं विक्रमोर्जितैः । पल्लीशं वेष्टयामास, कुमारः परितो बलैः ॥ ३०४ ॥
अन्तर्बहिर्बलस्तोमैर्दुर्गान्ते वध्यतां गतम् । मत्वाऽऽत्मानमथो मानममुचत् पक्कणाधिपः ॥ ३०५ ॥
मूर्त्तं मदमपीपिण्डमिवायातं हृदो बहिः । वहन् कण्ठे कुठारं स, कुमारमनुनीतवान् ॥ ३०६ ॥
वलमानः सहानेन, वीरोऽथ कटकान्तिके । अर्धमार्गेऽर्धरात्रे स, शुश्राव रुदितं स्त्रियाः ॥ ३०७ ॥
अथ शब्दानुसारेण, तां जगाम नृपाङ्गजः । एकः खड्गलतोद्रेकभ्राजिष्णुभुजभूरुहः ॥ ३०८ ॥
कुमारस्तामथोवाच, किमिदं भीरु! रुद्यते? । इति साऽपि तदाकारविश्वस्ता दुःखिताऽवदत् ॥ ३०९ ॥
अङ्गदेशेषु चम्पायां, जितारिनृपतेः सुता । कीर्तिमत्यामभूद् भूरिपुत्रोपरि यशोमती ॥ ३१० ॥
गुणश्रवणमात्रेण, शङ्खे श्रीषेणनन्दने । अनुरागोऽभवत् तस्याः, सरोजिन्या रवाविव ॥ ३११ ॥
स्वाजन्याय ततो राजा, श्रीषेणनृपतिं प्रति । विशिष्टं प्रेषयामास, वाक्पीयूषपयोनिधिम्[1] ॥ ३१२ ॥
समयेऽस्मिन्निमां बालां, मणिशेखरखेचरः । जह्रे मया सह महस्तिरस्कृतसहस्ररुक् ॥ ३१३ ॥
अटव्यामिह मुक्ताऽहं, निन्ये कन्या तु साऽन्यतः । तस्याः श्रीमन्नहं धात्री, तद्वियोगेन रोदिमि ॥ ३१४ ॥
किंवदन्तीं कुतस्तस्या, लभेयमिति चिन्तयन् । इमामाश्वासयामास, कुमारः काम्यया गिरा ॥ ३१५ ॥
अथ तद्वीक्षणपरे, वीरे शौर्यसखः स्वयम् । पूर्वाशापतिरुष्णांशुं, शैले दीपमिवामुचत् ॥ ३१६ ॥
तदटवटवीगर्भे, कन्यावीक्षणसत्वरः । शैले विशालशृङ्गाख्ये, कन्दरामन्दिरोदरे ॥ ३१७ ॥
शङ्ख एव मम स्वामी, वदन्तीमिति बालिकाम् । खेचरं चाटुकारं च, सोऽपश्यन्मणिशेखरम् ॥ ३१८ ॥
॥ युग्मम् ॥
क्रोधादभिमुखं धावन्, पश्यन् कन्यां च सस्पृहम् । कुमारः खेचरेन्द्रेण, तत्प्रियत्वेन निश्चितः ॥ ३१९ ॥
समायातः प्रियोऽयं ते, शङ्खः पश्यैष हन्यते । तां प्रतीति प्रतिज्ञाय, प्रचचाल स खेचरः ॥ ३२० ॥
तन्निष्कृपकृपाणाग्रसङ्ग्रामेण नृपाङ्गजः । खेचरं विगलद्दर्पं, दासं चक्रे विजित्य तम् ॥ ३२१ ॥
स्मित्वा व्यलोकयद्[2] बाला, तं कुमारं जितद्विषम् । प्रभाते परिभूतेन्दुं, पद्मिनीव दिवाकरम् ॥ ३२२ ॥
अथ व्योम्नो मनोवेगा, मणिशेखरपत्तयः । पेतुर्नृपसुतोपान्ते, सरसीव सितच्छदाः ॥ ३२३ ॥
उभौ पुरे च सैन्ये च, प्रैषीद् भूपाङ्गजः खगौ । एकं यशोमतीधात्र्याः, समानयनहेतवे ॥ ३२४ ॥
निकाममुपरोधेन, कुमारः खेचरेशितुः । प्रणमन् सिद्धचैत्यानि, कन्यया साकमेतया ॥ ३२५ ॥
आयातः कनकपुरे, विद्याधरपुरे ततः । भूमिभालाभवैताढ्यविशेषककलाभृति ॥ ३२६ ॥ युग्मम् ॥
दिनानि कतिचित् तत्र, तस्थौ भूजानिनन्दनः । खेचरश्रेणिसौजन्यक्षीरनीरेशकेशवः ॥ ३२७ ॥
अथ तस्मै ददौ पुत्रीं, खगेशो मणिशेखरः । ददिरे खेचरैरन्यैरपि विद्या निजा निजाः ॥ ३२८ ॥
अथ विद्याधरैः सर्वैः, परितः परिवारितः । द्विपद्व्यादकम्पायां, चम्पायां पुरि यातवान् ॥ ३२९ ॥
यशोमत्यादिकाः कन्याः, स तत्र परिणीतवान् । रोहिणीप्रभृतीः शीतद्युतिर्दाक्षायणीरिव ॥ ३३० ॥

---

१ 'निधिः' संता० पाता० ॥ २ स्मिता व्य' संता० पाता० ॥

तदगदत भूपेन, जरासन्धनृपः कथम् । सुतामपि बलिष्ठाय, वणिक्पुत्राय दास्यति ? ॥ २७ ॥
अवादि वसुदेवेन, मन्ये नासौ वणिक्सुतः । जानामि विक्रमेणेति, तत्पिताऽऽकार्य पृच्छ्यते ॥ २८ ॥
अथाऽऽहूय सुभद्रोऽयं, कंसोचितसितसन्निधिः । राज्ञा सशपथं पृष्टः, सुतोऽयं ते किमौरसः ? ॥ २९ ॥
इत्युक्ते भूभृताऽवोचत्, सुभद्रोऽपि यथातथम् । गतोऽहमेकदा शौचहेतवे यमुनामनु ॥ ३० ॥
अदर्शि कांस्यमञ्जूषा, तत् तरन्ती रयान्मया । आकृष्योद्घाटिता तस्यां, दृष्टोऽयं महसांनिधिः ॥ ३१ ॥
मुद्रिकायुगभाजोऽस्य, गृहीतस्य शिरस्तले । लब्धेयमिति भूपाङ्घ्रिपुरः पत्रीं मुमोच सः ॥ ३२ ॥
उग्रसेनसुतेऽमुष्मिन्, धारिण्याः कुक्षिवर्तिनि । पूरितश्छद्मनाऽमात्यैः, पत्यन्त्रस्वाददोहदः ॥ ३३ ॥
पितृवैरीति सञ्चिन्त्य, पुत्रः प्राणप्रियोऽप्यसौ ।
मात्राऽतिनिन्द्यः कालिन्द्याः, प्रवाहेऽस्मिन् प्रवाहितः ॥ ३४ ॥ युग्मम् ॥
पत्रिकां वाचयित्वेति, मुमुदे मेदिनीश्वरः । निजगोत्रावतंसं तं, कंसं विज्ञाय तत्क्षणात् ॥ ३५ ॥
जरासन्धमुपस्थाय, समुद्रविजयस्ततः । कंसस्य शौर्यमाख्याय, तं सिंहरथमार्पयत् ॥ ३६ ॥
दत्त्वा सुतां नृपोऽपृच्छद्, देशमिष्टमनेन तत् । पितृद्विषा ययाचे सा, कंसेन मथुरापुरी ॥ ३७ ॥
तज्जरासन्धदत्तोग्रबलोऽयं मथुरां गतः । उग्रसेननृपं कंसः, काष्ठपञ्जरकेऽक्षिपत् ॥ ३८ ॥
मया त्यक्तोऽसि नो वेत्ति, वार्तामपि पिता तव । एवमुक्तेऽपि धारिण्या, नोग्रसेनं मुमोच सः ॥ ३९ ॥
कंसानुजोऽतिमुक्ताख्यः, पितृदुःखाकुलस्ततः । कृती व्रतं स जग्राह, मुक्तिमार्गैकपल्वलम् ॥ ४० ॥
समुद्रविजयः सोऽपि, स्वामिना सत्कृतस्ततः । ययौ शौरिपुरे शूरसमुच्चयशिरोमणिः ॥ ४१ ॥

वसुदेवहिण्डिः

वसुदेवाङ्गसौभाग्याकृष्टस्त्रीविप्लवाकुलैः । नृपः कदाऽपि विज्ञप्तो, नागरैर्नयसागरैः ॥ ४२ ॥
समुद्रविजयेनाथ, तादृग्विप्लवभीरुणा । अभापि वसुदेवोऽयमुत्सङ्गारोपपूर्वकम् ॥ ४३ ॥
अहर्निशं बहिर्भ्रान्त्या, दुर्बलोऽसि ततस्त्वया । स्थेयं सदा मदावासे, कलाभ्यासविनोदिना ॥ ४४ ॥
गुरोर्गिरं शिरस्येष, शेषामिव निधाय ताम् । सौध एव स्थितश्चक्रे, कलाभ्यासमहर्निशम् ॥ ४५ ॥
स कदाऽपि शिवादेव्या, प्रेषितं भूपतिं प्रति । चन्दनोद्वर्तनं चेटीहस्ताज्जग्राह नर्मणा ॥ ४६ ॥
उक्तश्चेटिकया सोऽपि, वसुदेवः सहासया । राज्ञा स्त्रीनर्मदोषेण, त्वमनेनासि यन्त्रितः ॥ ४७ ॥
इत्यसौ परमार्थेन, निजं मत्वा निर्यन्त्रणम् । देशान्तरविलोकाय, निःससार पुरान्निशि ॥ ४८ ॥
रचयित्वा चितामेष, श्मशानभुवि भूरिधीः । निक्षिप्य मृतकं किञ्चिदन्तरज्वालयन्मुदा ॥ ४९ ॥
स्तम्भं न्यस्य तटे तस्य, पत्रिकायां लिलेख सः । गुरुभिर्दूषितगुणो, वसुदेवोऽनलेऽविशत् ॥ ५० ॥
इति कृत्वा व्रजन् दृष्टः, कयाऽपि पथि कान्तया । आरोपितो रथे खिन्न, इति ब्राह्मणवेषभृत् ॥ ५१ ॥
तद्ग्रामे तद्गृहे स्नात-भुक्तो यक्षालयस्थितः । शुश्रावाग्नौ मृतोऽशोचि, वसुदेवः स्वकैरिति ॥ ५२ ॥
अथाऽऽत्मज्ञाननिर्भीकः, प्रचलन्नग्रतो बली । कयाऽपि किल कामिन्या, रथमारोपितो निजम् ॥ ५३ ॥
पुरे विजयखेटाख्ये, सुग्रीवक्ष्मापतेः सुते । श्यामा-विजयसेनाख्ये पर्यणैषीत् कलाजिते ॥ ५४ ॥
ततो विजयसेनायामसूतासाऽक्रूरमङ्गजम् । अटन्नटव्यां तस्थौ स, जलावर्ताख्यपल्वले ॥ ५५ ॥

---

१ °पाङ्घ्रेः, पु° पाता० ॥ २ °प्ययम् खंता० पाता० ॥ ३ °नीपतिः खंता० ॥ ४ °भुक्तोऽपि खंता० ॥ ५ °यन्त्रितम् खंता० ॥

एकादशः सर्गः ।

इतश्च मथुरापुर्यां, यदुनामा नृपोऽभवत् । बृहद्रथाङ्गजो भूरिभूपान्ते हरिवंशभूः ॥ १ ॥
शूरो[1] जातस्ततः शौरि-सुवीरौ तस्य चाऽऽत्मजौ । शूरः[2] शौरिं नृपं कृत्वा, व्रते प्रवव्रते कृती ॥ २ ॥
सुवीरं स्वपदे न्यस्य, शौरिः सोदरवत्सलः । स्वयं कुशार्तदेशेषु, चक्रे शौरिपुरं पुरम् ॥ ३ ॥
शौरेरन्धकवृष्ण्याद्या, बभूवुः किल सूनवः । सुवीरस्य महावीरा, भोजवृष्ण्यादयः पुनः ॥ ४ ॥
भूपमन्धकवृष्णिं तत्, कृत्वा शौरिर्धराधिपः । सुप्रतिष्ठान्मुनेः प्राप्य, व्रतं निर्वृतिमासदत् ॥ ५ ॥
सुवीरस्तनुजं राज्ये, भोजवृष्णिं विधाय च । विदधे सिन्धुषु स्वस्मै, सौवीरं नाम पत्तनम् ॥ ६ ॥
मथुराम्भोजसूर्यस्य, भोजवृष्णेर्महीभुजः । जाग्रदुग्रगुणग्राम, उग्रसेनः सुतोऽभवत् ॥ ७ ॥
आसन्नन्धकवृष्णेस्तु, सुभद्रायां सुता दश । समुद्रविजयो जिष्णुरक्षोभ्यः क्षोभितद्विषन् ॥ ८ ॥
स्तिमितः शमिताराति:, सागरः सागरोपमः । हिमवान् हिमवत्कीर्तिरचलोऽचलनिश्चयः ॥ ९ ॥
धरणो धरणीभूपा, पूरणः शत्रुचूरणः । अभिचन्द्रो वितन्द्रात्मा, वसुदेवश्च विश्वजित् ॥ १० ॥
॥ विशेषकम् ॥

समुद्रविजयं न्यस्य, स्वपदेऽन्धकवृष्णिना । सुप्रतिष्ठान्मुनेरेव, प्रव्रज्य प्रापि निर्वृतिः ॥ ११ ॥
राज्ये न्यस्योग्रसेनं च, भोजवृष्णिर्महाभुजः । सुप्रतिष्ठस्य पादान्ते, दान्तात्मा व्रतमग्रहीत् ॥ १२ ॥
कंसेन तु सुभद्राख्यरसविक्रयि[3]सूनुना । पठतो वसुदेवस्य, मैत्री सौरिपुरे[4]ऽभवत् ॥ १३ ॥
ततश्चिक्रीडतुः कंस-वसुदेवौ सदैव तौ । मिथश्चैतन्यवत्कायप्रतिच्छायनिभावुभौ ॥ १४ ॥
समुद्रविजयस्योर्वीभृतोऽन्येद्युः समाजुषः । अर्द्धचक्रिजरासन्धराजादेशः समाययौ ॥ १५ ॥
अस्मद्द्वंद्वयोऽस्ति वैताढ्यतटे सिंहरथो नृपः । एनं बद्ध्वोद्धतक्रोधं, यः कश्चन समानयेत् ॥ १६ ॥
इष्टो दीयेत देशोऽस्मै, तथा जीवयशाः सुता । राजादिष्टं तदित्येतन्मेने मानवपुङ्गवः ॥ १७ ॥
समुद्रविजयाद् राजादेशार्थैकसमर्थधीः । ययाचे स्वयमादेशं, वसुदेवः प्रतिज्ञया ॥ १८ ॥
नरेन्द्रादेशतः कंससारथिः सारसैनिकः । वीरो जगाम वैताढ्यमद्वैताढ्यपराक्रमः ॥ १९ ॥
अथो सिंहरथो युद्धदुःसहः सहसाऽभ्यगात् । वसुदेवं प्रति जवात्, किरिः केसरिणं यथा ॥ २० ॥
अथ युद्धप्रबन्धेन, भग्ने सैन्यसमुच्चये । वसुदेवः समं सिंहरथेन युयुधे स्वयम् ॥ २१ ॥
ततः परिघमुद्यम्य, कंसस्तं सहसा द्विपम् । आहत्य वसुदेवस्य, पुरो बद्धमढौकयत् ॥ २२ ॥
अथैत्य दैत्यविक्रान्तः, क्रान्तसिंहरथो रयात् । समुद्रविजयस्यांह्री, वसुदेवोऽनमन्मुदा ॥ २३ ॥
वसुदेवमथावादीन्नृपस्तुभ्यं प्रदास्यति । राजा तुष्टो जरासन्धस्तां जीवयशसं सुताम् ॥ २४ ॥
पति-तातकुलोच्छित्त्यै, सा तु ज्ञातमिदं मया । क्रोष्टुकिज्ञानिवचसा, तैत्[5] तत्त्यागे मतिं कुरु ॥ २५ ॥
ध्यात्वाऽथ वसुदेवोऽपि, जगाद नृपतिं प्रति । युद्धे कंसेन बद्धोऽयं, तद् यशोऽस्यैव दीयताम् ॥ २६ ॥

---

१ सूरो पाता० ॥ २ सूरः पाता० ॥ ३ °क्रयस्°संता० पाता० ॥ ४ शौरि° संता० पाता० ॥
५ तत्त्यागे सन्मतिं संता० ॥

दृष्टेन चारुदत्तेन, स गृहे जगृहे मुदा। ततो विवाहदीक्षायां, पृष्टे गोत्रादिकेऽहसत् ॥ ८६ ॥
वणिक्पुत्रीयमिति मा, हासीः पृष्टे कुले सति। चरितं श्रव्यमस्त्यस्यास्तमित्यूचे तदा वणिक् ॥ ८७ ॥
अथ तां परिणीयासौ, श्यामाख्य-विजयाह्वये। पर्यणैषीद् यशोग्रीव-सुग्रीवतनये अपि ॥ ८८ ॥

चारुदत्त-गन्धर्वसेनयोश्चरितम्

अथ गन्धर्वसेनाया, वृत्तं कथयितुं वणिक्। अपरेद्युः समारेभे, वसुदेवं प्रति स्मितः ॥ ८९ ॥
पुराऽहं जीवतोः पित्रोः, सुभद्रा-भानुसञ्ज्ञयोः। अगां सुहृज्जनैः साकं, हेलया सिन्धुरोधसि ॥ ९० ॥
तत्र स्त्री-पुंसयोः पादप्रतिबिम्बानुसारतः। सञ्चरन्नहमद्राक्षं, सतल्पं कदलीगृहम् ॥ ९१ ॥
तरुणं तरुणा साकं, कीलितं तत्र दृष्टवान्। ओषधीमूलिकास्तिस्रस्तथा तत्खड्गकोशगाः ॥ ९२ ॥
ताभिरप्युपरिन्यस्तपत्रीज्ञानप्रभावतः। निष्कीलमव्रणं मुक्तमूर्च्छं च तमहं व्यधाम् ॥ ९३ ॥

अथोन्मीलितनेत्राब्जः, प्राप्तसञ्ज्ञोऽवदत् स माम्।
किं निष्कारणबन्धोस्ते, विदधामि किल प्रियम्? ॥ ९४ ॥

अहं वैताढ्यकोटीरे, नगरे शिवमन्दिरे। महेन्द्रविक्रमक्ष्मापसुतोऽमितगतिः श्रुतः ॥ ९५ ॥
सुतां हिरण्यरोमाख्यमातुलस्य तपस्यतः। यथार्थनामानमहं, व्यवहं सुकुमारिकाम् ॥ ९६ ॥
अभिलाषी मया तस्यां, सखा धूमशिखाभिधः। ज्ञातः स तु न दाक्षिण्यान्मुक्तो मित्रं हि दुस्त्यजम् ॥ ९७ ॥

सहाऽऽयातेन तत् तेन, च्छलाद् विश्वस्तघातिना।
कीलितोऽस्मि द्रुमेऽमुष्मिन्, हृत्वा च दयितां गतः ॥ ९८ ॥

तत् तवाहं जीवितव्यदातुर्मातुरिवाधुना। अनृणः करुणासार!, भविष्यामि भवे कथम्? ॥ ९९ ॥
अथ त्वद्दर्शनेनैव, कृतकृत्योऽस्मि सर्वथा। इत्युक्ते स मया मैत्र्यं, प्रतिपद्य खमुद्ययौ ॥ १०० ॥
मातुलस्याथ सर्वार्थनाम्नो मित्रवतीं सुताम्। [१]अतुच्छेनोत्सवेनाहं, पितृभ्यां परिणायितः ॥ १०१ ॥
कलासक्तमथो मुक्तभोगं मत्वा पितेव माम्। लीलाललितगोष्ठीषु, प्रमोदनिधिषु न्यधात् ॥ १०२ ॥
अहं कलिङ्गसेनायास्तनयामभजं ततः। वेश्यां वसन्तसेनाख्यां, प्रमोदमधुपद्मिनीम् ॥ १०३ ॥
वर्षैर्द्वादशभिः स्वर्णकोटीः षोडश तद्गृहे। भुक्तवान् निर्धनीभूतस्तत् तयाऽहं बहिष्कृतः ॥ १०४ ॥
गतो गृहं मृतौ मत्वा, पितरौ दुःखितश्चिरम्। तत् कान्ताभूषणान्येव, नीवीं रचितवानहम् ॥ १०५ ॥
मातुलेन सहोशीरवर्तेऽहं नगरे गतः[२]। क्रीतः कर्पासराशिश्च, दग्धः सोऽपि कृशानुना ॥ १०६ ॥
मातुलेनापि निर्भाग्य, इति मुक्तोऽपरां दिशम्। गच्छन् पथि मृते वाहे, पदातिश्चलितोऽस्म्यहम् ॥ १०७ ॥
तत् प्रियङ्गुपुरे कष्टाद्, गतस्तत्र स्थिरीकृतः। नाम्ना सुरेन्द्रदत्तेन, पितृमित्रेण सम्मदात् ॥ १०८ ॥
द्रव्यलक्षं गृहीत्वाऽहं, वणिग्भ्यस्तत् कलान्तरात्। अब्धौ गतागतैरष्ट, स्वर्णकोटीरुपार्जयम् ॥ १०९ ॥
स्वदेशे चलितो भग्ने, पोतेऽथ फलकमहात्। उदुम्बरावतीवेलातीरेऽगां सप्तमेऽह्नि ॥ ११० ॥
अथ राजपुरोपान्तवने दिनकराभिधम्। त्रिदण्डिनं मणम्याहं, पुरः श्रान्तो निविष्टवान् ॥ १११ ॥

---

१ अतुच्छमुत्सवं कृत्वा, पितृ° पाता० ॥ २ °र्ते गत्वा पुरे ततः। क्रीतः कर्पासभारस्त-द्दग्धः खंता० ॥

द्विपं मत्तमिहायातं, वशीकुर्वन्नसौ वशी । खगाऽर्चिमालि-पवनञ्जयाभ्यां सहसा हृतः ॥ ५६ ॥
उद्याने कुञ्जरावर्ते, नीतस्यास्य मुदा ददौ । खेचरोऽशनिवेगाख्यः, श्यामां नाम निजात्मजाम् ॥ ५७ ॥
अयं तया प्रवीणात्मा, वीणावाद्येन तोषितः । ददौ वरं तयाऽयाचि, सदाऽप्यविरहस्ततः ॥ ५८ ॥
अवियोगस्त्वयाऽयाचि, कुतः सुतनु ! कथ्यताम् ? । इत्युक्ते वसुदेवेन, सा बभाषे मृगेक्षणा ॥ ५९ ॥
पुरे किन्नरगीताख्ये, वैताढ्यगिरिभूषणे । राजा ज्वलनवेगोऽभूदर्चिमालिनृपात्मजः ॥ ६० ॥
नाम्ना चाऽशनिवेगोऽस्ति, खगस्तदनुजो वली । आस्ते ज्वलनवेगस्य, सूनुरङ्गारकः पुनः ॥ ६१ ॥
एतस्याशनिवेगस्य, सुताऽहमभवं विभो ! । व्रती ज्वलनवेगोऽभूत्, कृत्वा मत्पितरं नृपम् ॥ ६२ ॥
तदङ्गारकवीरेण, विद्या-बलविलोभिना । जित्वा मत्पितरं राज्यमिदमद्भुतमाददे ॥ ६३ ॥
अष्टापदेऽन्यदाऽऽख्यातं, मत्पितुश्चारणर्षिणा । जलावर्ते गजं जेता, राज्यदस्ते भविष्यति ॥ ६४ ॥
तदादि तत्र मुक्ताभ्यां, खगाभ्यां त्वं जितद्विपः । हृतोऽसि राज्यलोभेन, दत्ता तुभ्यमहं पुनः ॥ ६५ ॥
स्त्रीयुतं यः खगं हन्ति, स विद्याभिर्विमुच्यते । इत्याचारः सदैवास्ति, समये व्योमचारिणाम् ॥ ६६ ॥
तत् क्रूरोऽङ्गारकस्तुभ्यं, मा कार्षीत् प्रिय ! विप्रियम् । अवियोगस्तदेतेन, कारणेन मया वृतः ॥ ६७ ॥
प्रतिपद्य गिरं सद्यस्तदीयामिति धृष्णिभूः[1] । तत्रावतस्थे सौख्येन, समं दयितया तया ॥ ६८ ॥
सुप्तः स चान्यदा रात्रौ, वीरो वनितया समम् । अङ्गारकेणापहृतो, वसुदेवः प्रबुद्धवान् ॥ ६९ ॥
को मे हर्तेति विमृशन्, ददर्श निजवल्लभाम् । श्यामामङ्गारकेणैव, खड्गाखड्गि वितन्वतीम् ॥ ७० ॥

अङ्गारकेण सा श्यामा, खड्गेनाऽऽशु द्विखण्डिता ।
द्वे श्यामे युध्यमाने तद्, वसुदेवो व्यलोकयत् ॥ ७१ ॥

अथ मायामिमां मत्वा, वार्ष्णेयोऽङ्गारकं रुषा । जघान मुष्टिना मूर्ध्नि, केशरीव करीश्वरम् ॥ ७२ ॥
उद्घातपातरुग्णेन, विमुक्तोऽङ्गारकेण सः । च्युतश्चम्पापुरीपार्श्वे, सरोवरपयोऽन्तरा ॥ ७३ ॥
तत् तीर्त्वाऽऽशु सरस्तीरे, वासुपूज्यालयं गतः । जिनं नत्वा सहैकेन, द्विजेन पुरि जग्मिवान् ॥ ७४ ॥
यूनो वीणाजुपः प्रेक्ष्य, हेतुं पप्रच्छ स द्विजात् । अथो कथयितुं तस्मै, प्रारेभे द्विजकुञ्जरः ॥ ७५ ॥
इह गन्धर्वसेनाऽस्ति, चारुदत्तवणिक्सुता । सा प्राह स पतिः स्यान्मे, यो मां जयति वीणया ॥ ७६ ॥
वीणाचार्यौ यशोग्रीव-सुग्रीवाविह तिष्ठतः । वीणाभ्यासं तदभ्यासे, तन्वन्त्येते तदिच्छया ॥ ७७ ॥
मासे मासे परीक्षा स्यान्न कोऽपि[2] च जयत्यमूम् । वसुदेवो निशम्येति, विद्याविकृतरूपकृत् ॥ ७८ ॥
विप्रवेषधरो गत्वा, सुग्रीवं प्रत्यदोऽवदत् । वीणायां तत्र शिष्योऽस्मि, चारुदत्तसुताकृते ॥ ७९ ॥
सोपहासमुपाध्यायः, स्थापयामास तं ततः । अहासयज्जनान् सोऽपि, मूर्खत्वमिव दर्शयन् ॥ ८० ॥
अथाऽऽजगाम मासान्ते, चारुदत्तस्य नन्दनी । वीणाभ्यासकृतां यूनां, परीक्षां कर्तुमात्मना[3] ॥ ८१ ॥
उपाध्यायेन शिष्यैश्च, चारुचीरधरस्तदा । वसुदेवः प्रहासाय, स्थापितः प्रौढविष्टरे ॥ ८२ ॥
ते युवानोऽथ सर्वेऽपि, वीणया विजितास्तया । वादाय वसुदेवोऽथ, तैरूचे परिहासिभिः ॥ ८३ ॥
अथाऽऽधाय निजं रूपं, चमत्कारकरं नृणाम् । वीणाः प्रदूष्य यूनां च, तस्या वीणां करेऽग्रहीत्[4] ॥ ८४ ॥
गेयो विष्णुकुमारस्य, त्रिविक्रमपराक्रमः । गन्धर्वसेनयेत्युक्ते, स चक्रे सर्वमप्यदः ॥ ८५ ॥

---

१ धृष्णिभूः संता० ॥ २ °माने च, वसु° संता० ॥ ३ °मां ज्ञात्वा संता० ॥ ४ °रे प्र° संता० वाता० ॥

गतश्चाष्टापदे दृष्टोऽपश्यमेकाकिनीं प्रियाम् । ततः श्रुतं मया वैरी, यद् भीतः पलायितः ॥ १४१ ॥
दयितां तामुपादाय, ततो यातः पुरं निजम् । नीतः पित्रा ततो राज्यभारोद्धारे धुरीणताम् ॥ १४२ ॥
विद्याधरश्रमणयोर्हिरण्य-स्वर्णकुम्भयोः । सकाशे स्वयमग्राहि, तातेन व्रतमद्भुतम् ॥ १४३ ॥
जज्ञे मनोरमाकुक्षौ, सुतः सिंहयशा मम । वराहग्रीवनामाऽन्यो, मान्यो दर्पवतामपि ॥ १४४ ॥
सुता गन्धर्वसेनेति, जाता विजयसेनया । सर्वगान्धर्वसर्वस्वसङ्केतैकनिकेतनम् ॥ १४५ ॥

दत्त्वा च सुतयो राज्यं, यौवराज्यं च तन्मया ।
विद्याः सम्पाद्य च प्रापि, पितृगुर्वन्तिके व्रतम् ॥ १४६ ॥

द्वीपोऽयं कुम्भकण्ठाख्यः, क्षारवारिधिमध्यगः । गिरिः कर्कोटकश्चायं, कथमत्राऽऽगतो भवान् ? ॥ १४७ ॥
इत्यस्मिन् पृच्छति ख्यातं, सर्वं स्वचरितं मया । अथास्य नन्दनौ प्राप्तौ, खेचरौ तं च नेमतुः ॥ १४८ ॥
नम्यतां चारुदत्तोऽयमित्युक्तौ तेन तौ नतौ । तंदैत्य च सुरैः कोऽपि, मां नत्वाऽथ मुनिं नतः ॥ १४९ ॥
खेचराभ्यां तदा पृष्टस्तं वन्दन्नविपर्ययम् । अयं वैमानिकः प्राह, प्रमोदभरपूरितः ॥ १५० ॥
पूर्वजन्मन्यहं छागष्टङ्कणे रुद्रमारितः । एतस्मात् प्राप्तसर्वज्ञधर्मः सौधर्ममासदम् ॥ १५१ ॥
धर्माचार्यस्ततोऽयं मे, तेनाऽऽदौ वन्दितो मया । चारुदत्तः कृपाराशिरिति नोल्लङ्घितः क्रमः ॥ १५२ ॥
तौ खगौ प्रतिबोध्येति, स देवः प्राह मां प्रति । वद प्रत्युपकारं ते, कीदृशं करवाण्यहम् ? ॥ १५३ ॥
मयोक्तं समये तूर्णमेतव्यमथ सोऽगमत् । अगृह्ये खेचराभ्यां च, ताभ्यां निजपुरं प्रति ॥ १५४ ॥
तच्चिरं सत्कृतस्ताभ्यां, तज्जनन्या च तस्थिवान् । स्वसा गन्धर्वसेनेयमन्येद्युर्दर्शिता च मे ॥ १५५ ॥
निवेदितं च यत् तातः, प्रव्रजन्निदमब्रवीत् । चारुदत्तोऽस्ति मे मित्रं, भूचरो जीवितप्रदः ॥ १५६ ॥
उत्कीलितोऽस्मि तेनाहं, प्रदकारणबन्धुना । तस्य गन्धर्वसेनेयमर्पणीया कथञ्चन ॥ १५७ ॥
परिणेष्यत्यमूं मर्त्यो, वसुदेवः कलाजिताम् । इत्युक्तं ज्ञानिनाऽस्माभ्यं, ततः कार्यं तथैव तत् ॥ १५८ ॥
स्वपुत्रीं तद्वहाणैतां, श्रुत्वाऽहमपि तद्वचः । एनामादाय सद्योऽपि, गृहायोत्कण्ठितोऽभवम् ॥ १५९ ॥
इहान्तरे समायासीद्, देवोऽसावजजीवजः । तेन ताभ्यां खगाभ्यां च, सह सोऽहमिहाऽऽगमम् ॥ १६० ॥
स देवो भूरि दत्त्वा मे, हेम-रत्नादिकं ततः । जगाम त्रैदिवं धाम, वैताढ्यं खेचरौ च तौ ॥ १६१ ॥
सर्वार्थो मातुलः शीलगृहं मित्रवती च सा । वेश्या वसन्तसेना च, बद्धवेणिर्मयेक्षिता ॥ १६२ ॥
उत्पत्तिरियमेतस्या, नासौ वीर ! वणिक्सुता । श्रुत्वेति वसुदेवस्तामुपयेमे रमासमाम् ॥ १६३ ॥

रत्त्या चाथ विरक्त्या च, च्छलेन च बलेन च ।
कलाजयेन चानेकदेशोद्देशान् परिभ्रमन् ॥ १६४ ॥

भूपानां खेचराणां च, द्विजानां वणिजामपि । कन्याः सौन्दर्य-सौभाग्य-लावण्यादिगुणास्पदम् ॥ १६५ ॥
स कदाप्युपरोधेन, कदापि हठतः पुनः । कदापि कौतुकेनैव, परितः परिणीतवान् ॥ १६६ ॥ विशेषकम् ॥
सुकोशलाभिधां पुत्रीं, कोशलस्य खगेशितुः । कोशलायां पुरि प्राप्तः, स कदाचिदुदूढवान् ॥ १६७ ॥
सुप्तः श्रान्तो रतान्तेऽसौ, केनाप्यङ्घ्रिप्रक्षालनात् । उत्थापितो बहिर्गत्वा, कोऽयमेवमचिन्तयत् ॥ १६८ ॥
अथो प्रह्वन् पदोपान्ते, कुमारेणोपलक्षितः । खेचरोऽनुचरोऽसौ मे, चन्द्रहास इति स्वयम् ॥ १६९ ॥

---

१ नत° खंता० ॥ २ तदा चैत्य सु° पाता० ॥ ३ °रः कश्चिन्मां खंता० ॥ ४ °द्गतो द्रुतः । ए° पाता० ॥ ५ ताभ्यां गन्ध° खंता० पाता० ॥ ६ °हमिति त° खंता० पाता० ॥ ७ चन्द्रातप इति खंता० ॥

उत्कोऽस्त्रिदण्डिना भद्र !, द्रव्यार्थीव विभाव्यसे । दर्शयिष्यामि तत् तेऽहं, रसकूपं कृपारसात् ॥ ११२ ॥
इत्युक्त्वाऽस्मिन् प्रचलिते, पृष्ठे लग्नोऽहमुन्मुदः । व्यालव्याकुलितोपान्तां, गतस्तत्र गिरेस्तटीम् ॥ ११३ ॥
क्रान्ते बहुशिलायन्त्रैर्द्वारमुद्धाट्य मन्त्रतः । तत्राविशद् बिले सोऽथ, दुर्गपातालनामनि ॥ ११४ ॥
अन्वगामहमप्येनं, लोभपाशैर्नियन्त्रितः । भ्रान्तस्तमसि कष्टेन, रसकूपं व्यलोकयम् ॥ ११५ ॥
तस्मिन्नलाबुहस्तोऽहं, क्षिप्तः कूपे रसेच्छया । योगिना सहसा रज्जुबद्धमञ्चिकया क्रमात् ॥ ११६ ॥
तस्थितुःपुरुषप्रान्ते, मेखलोपरि सुस्थितः । दृष्ट्वा रसं नमोऽर्हद्भ्य, इति यावदहं ब्रुवे ॥ ११७ ॥
तावत् केनापि तत्राहं, व्यक्तमुक्तो महात्मना । साधर्मिक ! महाभाग !, रसं मास्म स्वयं ग्रहीः ॥ ११८ ॥
रसार्थमहमप्यत्र, वणिक् क्षिप्तस्त्रिदण्डिना । काङ्क्षन् धनमधोनामं, भक्षितोऽस्मि रसेन च ॥ ११९ ॥
तन्मां विश रसं दास्ये, तुभ्यं मे तुम्बमर्पय । तदर्पितं मया सोऽपि, भृत्वा मम समार्पयत् ॥ १२० ॥
तद्रज्जुचलनात् कृष्ट्वा, त्रिदण्डी मञ्चिकां तदा । तत्तुम्बं याचते द्वारासन्नं मां न तु कर्षति ॥ १२१ ॥

अयं द्रोहीति मत्वा तत्, क्षिप्तः कूपे मया रसः ।
मुक्तस्तेनाप्यहं कोपान्मेखलायां ततोऽपतम् ॥ १२२ ॥

तदुक्तं वणिजा साधु, रसान्तः पतितो न यत् । मा च शोचीर्यदायाति, गोधा रसपिपासया ॥ १२३ ॥
कूपेऽस्मिन् रसमापीय, व्रजन्त्याः पुच्छमादरात् । सर्वथैवावलम्बेथाः, सम्यग् धर्ममिवातुरः ॥ १२४ ॥
॥ युग्मम् ॥

नमस्कारं च मे देहि, परलोकाध्वशम्बलम् । कृते मयाऽथ तत्प्रोक्ते, परलोकं जगाम सः ॥ १२५ ॥
तद्रसंग्रसनप्राप्तगोधापुच्छग्रहादहम् । निःसृतो मूर्च्छितः प्राप्तसञ्ज्ञोऽरण्ये ततोऽभ्रमम् ॥ १२६ ॥
अटवीमहिषेणाऽऽसन्नदाऽऽरूढो महाशिलाम् । तत्राजगरसंरुद्धस्ततोऽहं द्रुतमत्रसम् ॥ १२७ ॥
तन् प्रयातोऽटवीप्रान्तग्रामे रोगेण पीडितः । अहं मातुलमित्रेण, रुद्रदत्तेन पालितः ॥ १२८ ॥
गृहीत्वाऽलक्तकं स्वर्णभूमौ तेन सहाऽचलम् । इषुवेगवतीं तीर्त्वा, गिरिकूटं विलङ्घ्य च ॥ १२९ ॥
क्रमाद् वेत्रवनं गत्वा, देशं टङ्कणमागतौ । ततः क्रीतच्छगारूढावुत्तीर्णौ वज्रमेदिनीम् ॥ १३० ॥ युग्मम् ॥
रुद्रदत्तोऽवदत् पन्था, नैवातः पादचारिणाम् । भस्त्रे कुर्वश्छगौ हत्वा, बहिरन्तर्विपर्ययात् ॥ १३१ ॥
तदन्तरस्थितावावां, भारुण्डैरामिषभ्रमात् । उत्पाट्याम्भोनिधौ स्वर्णमहीं नेष्यावहे जवात् ॥ १३२ ॥
श्रुत्वेत्यथावदं दुर्गपथसम्बन्धबान्धवौ । छागाविमौ ततः कार्षीः, पापं मातुल ! माऽतुलम् ॥ १३३ ॥
नैतौ त्वदीयावित्युक्त्वा, स्वं स च्छागं क्रुधाऽवधीत् । मदजो मन्मुखं दीनमुखस्तेन व्यलोकयत् ॥ १३४ ॥
तन्मयोक्तं तव त्राणे, नाहमीशस्तथापि ते । धर्मोऽस्तु मद्गिरा जैनः, परलोकविशुद्धये ॥ १३५ ॥
मया दिष्टं ततो धर्मं, मनसा प्रतिपद्य सः । मत्प्रदत्तं नमस्कारं, मुदा शृण्वन् हतोऽमुना ॥ १३६ ॥
तद्भस्त्रान्तर्गतावावां, भारुण्डाभ्यां धुरीजुषौ । हृतौ ततोऽन्यभारुण्डयुद्धेऽहं सरसि च्युतः ॥ १३७ ॥
शस्त्रीदीर्णाजिनस्तीर्णसरास्तत्राटवीमटन् । आरूढः शैलमनमं, कायोत्सर्गस्थितं मुनिम् ॥ १३८ ॥
धर्मलाभं ततो दत्त्वा, मुनिरेवमुवाच माम् । चारुदत्त ! कथं प्राप्तः, पथि त्वं खेचरोचिते ? ॥ १३९ ॥

महात्मन् ! खेचरः सोऽहं, यः पुरा मोचितस्त्वया ।
त्वामापृच्छ्य गतोऽन्वेष्टुं, तदा दारापहारिणम् ॥ १४० ॥

---

१ °मुत्पाट्य संप्रा० पाता० ॥

अदृश्येऽथ मरालेऽस्मिन्, विललाप कुमारिका ।
आस्तां तद्दर्शनं तावत्, तत्कथाकथकोऽप्यगात् ॥ २०० ॥
हा! धातर्दर्शितोऽसौ मे, कुतः सितविहङ्गमः?। दर्शितो वा ततोऽकस्मात्, कस्मादपहृतस्त्वया?॥ २०१ ॥
विलपन्त्यामिदं तस्यां, चित्रश्चित्रपटोऽग्रतः । पपात च नभोदेशादुच्चचार च भारती ॥ २०२ ॥
अहं स हंसस्तच्चित्रपटं त्वत्पुरतोऽमुचम् । अस्यानुसारतः सोऽयमुपलक्ष्यः स्वयंवरे ॥ २०३ ॥
अनुरागं तवेवाहं, तस्याप्याधातुमातुरः । यास्यामि न यतः क्वापि, सन्धिः सन्तप्त-शीतयोः ॥ २०४ ॥
इत्युक्त्वा तत्र तूर्णीके, सा ते चित्रगतं वपुः। दध्यौ यत्ननिबद्धस्य, जीवितस्येव यामिकम् ॥ २०५ ॥
तत् त्वया देव! यातव्यं, तत्र तस्याः स्वयंवरे । विजितानङ्गसङ्गोऽस्तु, भवतोरनुरूपयोः ॥ २०६ ॥
एतच्चेतश्चमत्कारि, निशम्य वचनं तदा। जगाद वसुदेवोऽपि, मित्र! हंसो भृशं न सः ॥ २०७ ॥
समयुग्माभिपक्षाय, स्मरस्तं प्राहिणोद् विधुम्। अथवा मम तस्याश्च, मूर्त्तं पुण्यमिव व्यधात् ॥ २०८ ॥
चन्द्रापीड! त्वया चेयं, ज्ञाता मित्र! कथं कथा?। हंसीभूय स्वयं वा त्वं, मत्कृते कृतवानिदम्?॥ २०९ ॥
इत्युक्ते स्मयमानोऽयं, कुमारेणोपलक्षितः । आलिङ्गितश्च बाहुभ्यां, तादात्म्यमिव तन्वता ॥ २१० ॥
समं तेनाथ निश्चित्य, स्वयंवरगतिं कृती। तं च प्रहित्य पल्यङ्के, निविष्टो नीतवान् निशाम् ॥ २११ ॥
सुकोशलामथाऽऽपृच्छ्य, प्रातरुत्कण्ठितो ययौ । पेढालनगरोपान्ते, लक्ष्मीरमणकानने ॥ २१२ ॥
वाक्सुधास्यन्दचन्द्रेण, हरिश्चन्द्रेण सत्कृतः । सैन्यमावासयत् तत्र, वसुदेवो वनावनौ ॥ २१३ ॥
पुरा पुरो नमिविभोर्लक्ष्मी रेमेऽत्र रासकैः।लक्ष्मीरमणमित्येतद्, वनं मत्वेति सोऽधिकम् ॥ २१४ ॥
प्रमोदपेशलस्तत्र, वने नमिजिनालये । पूजयित्वा जिनाधीशान्, ववन्दे पुलकाङ्कितः ॥ २१५ ॥
॥ युग्मम् ॥
अथो जितः पुरस्यास्य, धनाढ्यैरिव सन्धये। अवातरद् विमानेन, धनदोऽस्मिन् वने दिवः ॥ २१६ ॥
पूजयित्वा च नत्वा च, स भक्त्याऽस्मिन् वने जिनान् ।
हस्ताग्रसंज्ञयाऽऽह्वासीद्, विस्मितो वृष्णिनन्दनम् ॥ २१७ ॥
असौ महर्द्धिको देवस्तीर्थकृद्भक्तिभाक् पुनः । माननीय इति ध्यायन्, वसुदेवो मुदा ययौ ॥ २१८ ॥
तमायान्तमथालोक्य, पुरो लावण्यसागरम् । रूपे पुरन्दरस्यापि, धनदो निर्मदोऽभवत् ॥ २१९ ॥
अथादिशेति जल्पन्तं, पुरस्तं धनदोऽभ्यधात्। दूत्यं कनकवत्यां मेऽनन्यकृत्यं कृतिन्! कुरु ॥ २२० ॥
वरणीयस्त्वया श्रीदोऽवतीर्णस्त्वत्कृते दिवः । स्वयं देहेन गच्छ द्यां, मानुष्येऽपि सुरीभव ॥ २२१ ॥
सा वाच्येति द्रुतं गच्छ, कन्यान्तःपुरमात्मना । यामिकैर्मत्प्रभावेण, त्वमदृश्यो गमिष्यसि ॥ २२२ ॥
शिक्षां धनपतेरित्थं प्राप्य धीरो विशुद्धधीः। स्पृहणीयां सुरैः कन्यां, धन्यां ध्यायन्मुदाऽचलत् ॥ २२३ ॥
सामान्यजनमानेन, वेपमाकलय्नत्रयम् । ययौ कन्यागृहोत्सङ्गं, रक्षाकृद्भिरलक्षितः ॥ २२४ ॥
तमकस्मात् पुरो वीक्ष्य, राजपुत्री सविस्मया । अभ्युत्थानं व्यधादन्तर्मुदिता परिकम्पिनी ॥ २२५ ॥
दध्यौ किन्नु ममानूनैः, पुण्यैरेव विरञ्चिना । चित्रं पटगतं जीवन्यासेनोद्धृतमेव तत् ? ॥ २२६ ॥
अथैनामाह वीरोऽसौ, सुधासोदरया गिरा । अनङ्गमपि कन्दर्पं, कुर्वन् साङ्गमिवाग्रतः ॥ २२७ ॥

---

१ °ण्यमिति व्य° खंता० ॥　२ °न्द्रातप! त्व° खता० ॥　३ दौत्यं खंता० ॥
४ °वत्या मे° खंता० पाता० ॥

ततः सगौरवं गौरवचसा तमुवाच सः । कुमार! प्रमदामोदसद्योविद्योतिमानसः ॥ १७० ॥
केन प्रयोजनेन त्वं, कुतः स्थानादिहागतः ?। एतावत्यां तमस्विन्यां, तथ्यमित्थं निवेदय ॥ १७१ ॥
अथावददयं विद्याधरः प्रमददुर्धरः । शृणु देव! कथामेकां, कौतूहलनिकेतनम् ॥ १७२ ॥
पेढालपुरमित्यस्ति, पुरं भूखण्डभूषणम्। स्मरस्य खुरलीवाभूद्, यल्लोलाक्षीकटाक्षितैः ॥ १७३ ॥
हरिश्चन्द्रोऽसुहृद्दन्तिहरिश्चन्द्रोज्ज्वलाशयः । तत्रास्ति भूविभुः कीर्तिकुसुमाराममालिकः ॥ १७४ ॥
लक्ष्मीवतीति तस्यास्ति, रूपलक्ष्मीवती प्रिया। नीरे यदास्यदास्याय, तत् तपस्तप्यतेऽम्बुजैः ॥ १७५ ॥
सती सुतामसूताऽसौ, सरसीव सरोजिनीम् । जनलोचनलोलालिलिह्यमानमुखाम्बुजाम् ॥ १७६ ॥
तस्या जन्मदिने स्वर्णवर्षमुत्कर्षकृद् बभौ । मेरोरुपागतं सेवाकृते जितमिव त्विषा ॥ १७७ ॥
पितृभ्यां कौतुक-प्रीतिपूरिताभ्यां सुनिर्भरम्। सत्यं कनकवत्येषा, नामतोऽपि ततः कृता ॥ १७८ ॥
तत् प्रपेदे क्रमेणासौ, कलाभ्यासमयं वयः। रतिप्राणप्रियोऽप्यासीद्, यस्मिन् वासाय सस्पृहः ॥ १७९ ॥
चन्द्रमूर्तिरिव स्वच्छा, रवेरिव गुरोरियम्। प्राप्य कञ्चित् कलोद्देशं, प्रपेदे सकलाः कलाः ॥ १८० ॥
तद्रूपस्तनयारूपानुरूपमनिरूपयन् । प्रवरं स वरं कञ्चित्, समारेभे स्वयंवरम् ॥ १८१ ॥
स्वयंवरदिने मासमात्रासन्ने च सा स्वयम्। गवाक्षेऽक्ष्णीव गेहस्य, तस्थौ तारेव कन्यका ॥ १८२ ॥
अत्रान्तरे पुरस्तस्या, गतिशिक्षामतिः किल। हारेण हस्यमानोऽपि, हंसः कोऽपि दिवोऽपतत् ॥१८३॥
कल्याणकिङ्किणीकान्तभूषणानणुझात्कृतिः । स तयाऽऽरोपितः पाणौ, मरालः कमलत्विषि ॥ १८४ ॥
अथासौ शश्वदम्भोजमरन्दस्वादहृद्यया । चमत्कृतिकृता मर्त्यभाषया तामभाषत ॥ १८५ ॥
यदि ते कुतुकं किञ्चिच्चित्ते तन्वि! तदद्भुता। संवदन्ती सुधास्यन्दैः, किंवदन्ती निशम्यताम् ॥ १८६ ॥
अथावददियं तावत्, त्वं वक्तेत्यद्भुतं महत्। सा कथाऽप्यद्भुता हंस!, भविष्यत्याशु तद् वद ॥ १८७ ॥
हंसोऽप्याह मुदे वार्ता, सुधाकृतसुधारसा। प्रविशन्ती श्रुतौ देवि!, श्रूयतां सावधानया ॥ १८८ ॥
एकदाऽस्मि गतो देवि!, कोशलायां पुरि भ्रमन्। दूराददर्शि तत् तेजो, मया जितरविच्छवि ॥ १८९ ॥
किमेतदिति सम्भ्रान्तो, यावद् द्रष्टुमधोऽपतम् । तावदग्रे नरः कान्तिपूरिताम्बरगह्वरः ॥ १९० ॥
सुता च खेचरस्यैक्षि, कोशलस्य सुकोशला। अतिरूपयुताऽप्येषा, दीनश्रीस्तस्य सन्निधौ ॥ १९१ ॥
॥ युग्मम् ॥
तन्मयाऽचिन्ति सत्यस्मिन्ननङ्गो न मनोभवः। अनङ्गा तु रतिर्हृदया, यदस्य न समीपगा ॥ १९२ ॥
धन्येयं मेदिनी यस्यां, वीरोऽयं मुकुटायते । असावपूर्णपुण्यस्तु, स्त्रीरत्नं यत्र नाहितम् ॥ १९३ ॥
अनुरूपप्रियाहीनमेनमालोकयन् मुहुः। शोचन् निर्माणमेतस्य, गगनाङ्गणमभ्यगाम् ॥ १९४ ॥
ध्यायतस्तदिदानीं मे, हृदि तज्जन्म निष्फलम्। सद्यः सफलतां नीतं, देवि! त्वद्दर्शनामृतैः ॥ १९५ ॥
जाने यदि समीपेऽस्य, पश्यामि भवतीमहम् । मन्दारपादपस्यान्ते, कल्पवल्लीमिवोद्गताम् ॥ १९६ ॥
इत्याकर्ण्य मरालं सा, जगाद मदनातुरा। दशनद्युतिदुग्धेन, स्नपयन्ती मुहुर्मुहुः ॥ १९७ ॥
अमार्गेणैव कर्णेन, मनःसद्मनि मेऽविशत् । दृशा घण्टापथेनैव, कदाऽसौ सञ्चरिष्यते ? ॥ १९८ ॥
वार्चायामसमाधार्यामित्युड्डीय सितच्छदः । सहसैवोन्मुखस्तस्या, दृशा सह खमुद्ययौ ॥ १९९ ॥

---

१ °रथं न्यषेदयत् पाता० ॥ २ स्त्रीमुखानां यभौ साङ्कः, शशाङ्को यत्र किङ्करः ॥ इतिरूपः पाठः खंता० पाता० ॥ ३ °पथेनेष, पाता० ॥ ४ °यामथोड्डी° खंता० ॥

यस्मिं स्तमसि शोणाश्मवेश्मालीरश्मिभस्मिते । जना दिनादि जानन्ति, वापीपद्मालिनीरवैः ॥ २५६ ॥
यस्यां वसत्सु लोकेषु, रत्नसम्भारहारिषु । रत्नाकरः परीवेषमकार्षीत् परिखामिषात् ॥ २५७ ॥
तत्राभूद्दारिशौण्डीर्यनिकषो निषधाभिधः । विभुर्महीमहेलाया, हेलाविजितशात्रवः ॥ २५८ ॥
उच्छलद्बहुयशःस्तोमधूमध्यामलिताम्बराः । भूरयो भूभृतां वंशा, यत्प्रतापानलेऽज्वलन् ॥ २५९ ॥
उदारदानसौरभ्यमिलन्मार्गणषट्पदः । ऐश्वर्यकुञ्जरो यस्य, भुजस्तम्भे व्यवास्थित[1] ॥ २६० ॥
यत्पदाब्जनखाभीशुभास्वद्भालो वसुद्विपः । श्रीप्रदाने स काश्मीरमण्डनाडम्बरा इव ॥ २६१ ॥
तस्य निःसीमसौन्दर्या, सुन्दरेति[2] प्रियाऽभवत् । आस्येनेव जिता यस्याः, पद्मश्रीरपतत् पदोः ॥ २६२ ॥
पायं पायं रसालस्य, रसानपि पिको ध्रुवम् । यद्गिरं नाप सन्तापः, स तस्याः कार्ष्ण्यकारणम् ॥ २६३ ॥
मन्ये यस्याः सुधासारविजयैकविलासिना । वाग्रसेन सदा सिक्तो, माधुर्यमधरोऽप्यधात् ॥ २६४ ॥
नलो नामाऽनलस्पर्द्धिधामा सूनुस्तयोरभूत् । उपादानं यदङ्गस्य, मदनोऽनङ्गतां गतः ॥ २६५ ॥
यः ककुप्कुम्भिनां लीलागतिगौरवमग्रहीत् । तेन ते न चलन्त्येव, दिग्भ्यः क्षितिधृतिमिषात्[3] ॥ २६६ ॥
समग्रायुधयोग्यासु, यं वल्गन्तं विलोकयन् । जातः शङ्के कृताशङ्कः, शङ्करोऽपि स्मरभ्रमात् ॥ २६७ ॥
स्वविभूतिपराभूतकुबेरः कूबराभिधः । तस्यानुजोऽभवद् युद्धकान्तारक्रोडकेशरी ॥ २६८ ॥
सभायामन्यदा दूतः, कश्चिद् वेत्रिनिवेदितः । आगत्य प्रणिपत्याथ, तं राजानं व्यजिज्ञपत् ॥ २६९ ॥
अस्ति देव ! विदर्भेषु, रत्नगर्भाविभूषणम् । पुण्यपीयूषपूरस्य, कुण्डवत् कुण्डिनं पुरम् ॥ २७० ॥
तत्र भीमरथो नाम, सिन्धुसीमरथोद्यमः । अस्ति द्विषन्मुखाम्भोजसुधांशुर्वसुधाधवः ॥ २७१ ॥
प्रियाऽस्य पुष्पदन्तीति, दन्तीन्द्रगतिविभ्रमा । विधत्ते द्युतिवैशद्यकिङ्करीकृतकाञ्चना ॥ २७२ ॥
व्यजिज्ञपन्नृपं राज्ञी, तमेकान्ते तदेकदा । आनन्दहृद्यया वक्त्रचन्द्रचन्द्रिकया गिरा ॥ २७३ ॥
अभ्रमुविभ्रमभ्राजत्त्वद्वेश्म प्रविशन् मया । दृष्टः कोऽपि द्विपः स्वप्ने, स्वामिन् ! भीतो दवादिव ॥ २७४ ॥
सदा तदर्थस्वादुरसमाधुर्यधुर्यया । गिरा तदनु सानन्दं, जगाद जगतीश्वरः ॥ २७५ ॥
स्वप्नेनानेन देवि ! त्वं, स्त्रीषु धन्याऽसि निश्चितम् । यदुल्ललास गर्भस्ते, सगर्भस्तेजसा रवेः ॥ २७६ ॥
किंवदन्तीमिति तयोर्वदतोर्मदतोयधिः । दृष्टः सतुमुलैर्लोकैः, शुभ्रः कुम्भी गृहे विशन् ॥ २७७ ॥
तदाऽवलोकयितुं लोलौ, करिराजं कुतूहलात् । उदितौ मुदितौ द्वारि, स्वयमेवाथ दम्पती ॥ २७८ ॥
अथ द्वारगतं वीक्ष्य, वलक्षाङ्गं द्विपं नृपः । निजं पुण्यमिवायातं, मेने मूर्तिधरं पुरः ॥ २७९ ॥
तौ तदा दन्तिना तेन, स्वयं स्कन्धेऽधिरोपितौ । जातावाक्रान्तकैलासगौरी-गिरिशसन्निभौ ॥ २८० ॥
सम्भ्रमी बभ्रमीति स्म, तदा मदनदीगिरिः । तदाऽऽक्रान्तः पुरस्यान्तर्दुर्धरः सिन्धुरेश्वरः ॥ २८१ ॥
अथावतार्य तौ सौधे, स वारणपतिः स्वयम् । विवेश गजशालायां, शीलितायामिवान्वहम् ॥ २८२ ॥
अथो दिनेषु पूर्णेषु, पुष्पदन्त्याः सुताऽजनि । द्योतयन्ती गृहोत्सङ्गं, भानुमूर्तिरिवाम्बरम् ॥ २८३ ॥
गर्भे दवपरित्रस्तदन्तिस्वप्नावलोकनात् । तन्नाम्ना दवदन्तीति, पितृभ्यां सा प्रतिष्ठिता ॥ २८४ ॥
कलङ्कलोपसोमापदस्याभ्यामपरामपि । द्रप्सः स्वयमताद्दक्षपाक्षस्थितिकदर्थितः ॥ २८५ ॥
सौधेऽस्तितिलको भालस्था बाले इवांशुमान् । अरञ्चकार निःशेषध्वान्तसंहारकारकः ॥ २८६ ॥

१ व्यवस्थितः मन्ना० ॥ २ °न्दरीति पाठा० ॥ ३ °तिर्मिषम् मन्ना० पाठा० ॥ ४ °गर्द्दाभ्य° मैन्ना० पाठा० ॥

तन्वि ! मित्रं महेशस्य, महेन्द्रसदृशः श्रिया । त्वत्कृते त्रिदिवादेव, धनदोऽवनिमागतः ॥ २२८ ॥
दूतोऽहं तस्य वामाक्षि !, त्वयि तेन नियोजितः । त्वया वरयितव्योऽयं, नृवरेषु स्वयंवरे ॥ २२९ ॥
अथो कनकवत्याह, भावेन भिदुरस्वरा । स सुरोऽहं मनुष्या तु, कथमेनं वृणोमि तत् ? ॥ २३० ॥
अपलप्य किमात्मानं, दूतीभूतो वदस्यदः ? । भविता भुवनोत्तंस !, भुवि भर्ता त्वमेव मे ॥ २३१ ॥
मित्रमेष त्रिनेत्रस्य, शक्रतुल्योऽस्तु तेन किम् ? ।
महेशोऽपि महेन्द्रोऽपि, मम देव ! त्वमेव यत् ॥ २३२ ॥
निशम्येदं वचस्तस्याः, स दध्यौ विस्मितो हृदि । मन्ये चित्रपटस्यानुसारेणाहं मतोऽनया ॥ २३३ ॥
अथ तामवदद् वीरः, श्रीदंदूत्येऽहमागतः । शृण्वन्नपीति वार्तां ते, लिप्ये पापेन यामि तत् ॥ २३४ ॥
अभिधायेदमद्राम, सोऽयमद्दामिव प्रभुः । अतीतो दृक्पथं साऽभूत्, ततो म्लानमुखाम्बुजा ॥ २३५ ॥
तस्मिन् गते चित्रपटं, सा वीक्ष्य न मुदं दधौ । सहस्रांशोऽपि तद्रूपं, यतस्तत्र न पश्यति ॥ २३६ ॥
सोऽपि गत्वा यथावृत्तं, कथयन् विनयानतः । विज्ञातं सर्वमप्येतदिति श्रीदेन वारितः ॥ २३७ ॥
देवदूष्यांशुकद्वन्द्वमनेन परिधापितः । धनदेन मुदा शौरिः, पारितोषिककर्मणा ॥ २३८ ॥
मुद्रिकामर्जुनस्वर्णमयीं तस्याङ्गुलौ पुनः । चिक्षेप धनदः सोऽपि, तयाऽभूद्धनदोपमः ॥ २३९ ॥
अथो मण्डपमुर्वीशाः, स्वयंवरदिने गताः । तस्थुर्मञ्चेषु शृङ्गारभाजः शृङ्गारयोनिवत् ॥ २४० ॥
तेषु तुल्याकृती श्रीद-वसुदेवौ व्यराजताम् । इन्द्रोपेन्द्राविव तदा, समस्तेषु सुपर्वसु ॥ २४१ ॥
मण्डपेऽस्मिन्नथाऽविक्षज्जनाकीर्णे नृपाङ्गजा । अम्बरे चन्द्रलेखेव, नक्षत्रावलिमालिते ॥ २४२ ॥
सा दधाना करे मालां, पौष्पीं चापलतामिव । बभावायुधशालेव, जङ्गमाऽनङ्गभूभुजः ॥ २४३ ॥
चक्षुश्चिक्षेप निःशेषानथ पृथ्वीपतीन् प्रति । नालक्षयत् प्रियं श्रीदसदृशं मुद्रया कृतम् ॥ २४४ ॥
अदृष्टवल्लभे तस्मिन्, भूरिभूपेऽपि मण्डपे । अचम्पक इवोद्याने, भृङ्गीवाऽऽप मुदं न सा ॥ २४५ ॥
अथ तस्यां विलक्षायां, नर्म निर्मुच्य गुह्यकः । अर्जुनस्वर्णमुद्रां तां, वसुदेवादयाचत ॥ २४६ ॥
मुक्तायामथ मुद्रायामुन्मुद्रितनिजाकृतिः । मेघमुक्त इव भेजे, भानुरानकदुन्दुभिः ॥ २४७ ॥
ददृशे कनकवत्याऽऽस्तच्चिराय तृषिते दृशौ । तेषु क्षारोदनीरेषु, सुधाकूप इव प्रिये ॥ २४८ ॥
हसन्ती हर्षतो भृङ्गरवपुष्पविभानिभात् । मालाऽक्षिप्यत तत्कण्ठे, धन्यंमन्येव कन्यया ॥ २४९ ॥
अथाऽऽशु धनदादिष्टदुन्दुभिध्वनिभिर्व्यधुः । हरितो हसितं हृष्टाः, सदृग्युग्मसमागमात् ॥ २५० ॥
पर्यणैषीदथ क्ष्मापनन्दनीं यदुनन्दनः । चिरकालार्जितप्रीतिं, शर्वः पर्वतजामिव ॥ २५१ ॥
शौरिः श्रीदमथापृच्छदुदितामन्दसम्मदः । कुतः कनकवत्यां वः, प्रसादविशदं मनः ? ॥ २५२ ॥
श्रीदस्तदवदद् दन्तद्युतिविद्योतिताङ्कविम् । गिरं चिरन्तनप्रीतिचम्रं यदुसुतं प्रति ॥ २५३ ॥

<u>कनकवत्याः पूर्वभवः</u>

अस्ति कोशलदेशस्य, किरीटं कोशला पुरी । प्रतोली-तोरणदलभ्रूसम्भ्रान्तद्युपचना ॥ २५४ ॥
आरुह्य गृहमालासु, बालाः सुखसमुद्धृतैः । यस्यां गगनगङ्गाब्जैरवतंसं वितन्वते ॥ २५५ ॥

---

१ "दंदौत्ये" खंता० ॥ २ कृतिः । गि° खंता० ॥

विलङ्घ्य भूभृतो भूरीन्, नले लावण्यवारिधौ । दमयन्त्यास्ततो दृष्टिस्तटिनीव न्यलीयत ॥ ३१५ ॥
अथो विशददृक्पातद्युतिजातविलेपने । मालामयोजयद् बाला, नलस्य गलकन्दले ॥ ३१६ ॥
बद्धक्रुधोऽपि भूपास्ते, तदा न प्राभवन् नले । दवदन्तीसतीत्वेन, स्तम्भिता इव वह्नयः ॥ ३१७ ॥
प्रमोदमेदुरामेनां, मेदिनीनाथनन्दिनीम् । नलस्तदनलः स्वाहामिव व्यवहदुन्महाः ॥ ३१८ ॥
ततश्चकार सत्कारं, जामातुर्भीमभूपतिः । हर्षेण हास्तिका-ऽश्वीय-वसना-ऽऽभरणादिभिः ॥ ३१९ ॥
अन्यानपि धराधीशानशनैर्वसनैरपि । सत्कृत्य कृत्यवित् प्रैषीदसौ निजनिजं पुरम् ॥ ३२० ॥
अथ नक्तं पुरीलोकविलोकनसमुत्सुकः । व्यदधान्निषधक्ष्मापः, प्रयाणं प्रति कोशलाम् ॥ ३२१ ॥
कियन्तमप्यथाध्वानमनुव्रज्य निवर्त्स्यता । जगदे गद्गदं तेन, नन्दनी मेदिनीभुजा ॥ ३२२ ॥
चरित्रेण पवित्राऽसि, पुत्रि! किं तव शिक्षया ? । तथापि जनकस्नेहमोहेन मुखरोऽस्म्यहम् ॥ ३२३ ॥
पतिमाराधयेः शुद्धैर्वाङ्मनः-कर्मभिस्त्रिभिः । स एव देवता स्त्रीणां, चित्रं चित्रं गुरुः सुहृत् ॥ ३२४ ॥
किञ्च वैभवमभ्येत्य, सकालुष्यान्तराशया । पातयन्ती जवादेव, स्वयं सविधवर्धितान् ॥ ३२५ ॥
स्वच्छतामुपगच्छन्ती, पुनः प्रक्षीणवैभवा । सत्यतां पुत्रि! मा नैषीः, स्त्रीनदीवदिदं वचः ॥ ३२६ ॥
॥ युग्मम् ॥
पतिमेवानुगच्छेश्च, वत्से! स्वच्छेन चेतसा । क्षिप्ताऽपि दूरतः प्रातश्छायेव निजपादपम् ॥ ३२७ ॥
शिक्षयित्वा सुतामित्थमथ भीमो न्यवर्तत । तद्विश्लेषोत्थसन्तापमश्रुभिः शमयन्निव ॥ ३२८ ॥
बद्धाविव प्रेमगुणैः, शक्तौ विघटितुं न तौ । दवदन्ती-नलावेकरथारूढौ प्रचेलतुः ॥ ३२९ ॥
स्थपुटाध्वस्खलच्चक्ररथघूर्णितयोर्मुहुः । मिथःसङ्घट्टसङ्कल्पकल्पपादपतां ययौ ॥ ३३० ॥
तदा दीप्तौषधीनुन्नैर्गुहाभ्य इव भूभृताम् । ध्वान्तैः कोकवियोगाग्निधूमैरिव विजृम्भितम् ॥ ३३१ ॥
धाराधरैरिव ध्वान्तैर्निरुद्धे मरुदध्वनि । चुम्बना-ऽऽलिङ्गनैराशु, तयोः प्रेमलताऽफलत् ॥ ३३२ ॥
ध्वान्तैरध्वनि रुद्धेऽपि, नृपे वासमतन्वति । जनो जगाम सैन्येभरत्नादर्शप्रभामनु ॥ ३३३ ॥
तदा च धुर्यमाधुर्यं, मधुव्रतकुलध्वनिम् । निशम्य भीमनन्दन्या, वल्लभः समभाष्यत ॥ ३३४ ॥
न तावद् भाति सौरभ्यसंरम्भः कानने क्वचित् ।
तत् कुतः कुतुकोल्लासकारिणी भृङ्गझात्कृतिः ? ॥ ३३५ ॥
प्रिये! किं ज्ञायते ध्वान्ते ?, तदा कान्ते वदत्यदः । ममार्ज पाणिपद्मेन, भालं भीमनृपाङ्गजा ॥ ३३६ ॥
दीप्तोऽथ तिलकस्तस्याः, प्रताप इव भास्वतः । अकस्माद् भस्मयामास, तमःसमुदयं वने ॥ ३३७ ॥
वनेभगण्डसङ्क्रान्तमदाविलमथो नलः । कायोत्सर्गजुषं कञ्चिन्मुनिं वीक्ष्य मुदं दधौ ॥ ३३८ ॥
करिघट्टेऽपि नाचालीद्, कर्मभिस्तद्वहिष्कृतैः ।
व्याख्यातोऽयमलिव्याजाद्, गुणा आद्या रिपोरपि ॥ ३३९ ॥
वदन्निदं नलस्तूर्णमुत्तीर्णः प्रियया सह । नमस्कृत्य च तं साधुं, पुनः स्यन्दनमागमत् ॥ ३४० ॥
काकिणीरत्नविस्पर्द्धिभैमीतिलकतेजसा । ध्वान्ते हतेऽथ तत्सैन्यं, चक्रिसैन्यमिवाचलत् ॥ ३४१ ॥
क्रमादथ पुरं प्राप, निषधः क्ष्मापकुञ्जरः । चलचेलाञ्चलोल्लासैः, प्रणर्तितभुजामिव ॥ ३४२ ॥

---

१ °ष्टिर्नलिनीव न्य° खंता० ॥ २ °लान् खंता० ॥ ३ °पधक्ष्मापनन्दनः खंता० ॥

सतीतेजोमयीमेतां, राहुभीत्या समाश्रिते । सूर्य-सोमश्रियौ मन्ये, मुखाब्जतिलकच्छलात् ॥ २८७ ॥
मन्ये तदीयवक्त्रेन्दोर्लाञ्छनं कबरीच्छलात् । पश्चान्निर्यातमस्तोकलोकदृग्दण्डखण्डितम् ॥ २८८ ॥
सुरस्त्रीरूपनिर्माणैरभ्यस्याभ्यस्य पद्मभूः । स्वप्रत्ययाय निर्माय, रतिमेतां ततो व्यधात् ॥ २८९ ॥
अस्या वदन-दृक्पाणि-क्रमं निर्मातुमब्जवत् । प्रविवेश स्वयं देवः, स्वयम्भूरपि वारिजम् ॥ २९० ॥
तुल्यं तदीयरूपस्य, न पश्यति वरं भुवि । भूपस्तेन समारेभे, स्वयंवरमहोत्सवम् ॥ २९१ ॥
आययुर्भूरयो भूपा, भीमाभ्यर्थनया ततः । स्वामिन् ! समं कुमाराभ्यामभ्येतव्यं त्वयाऽपि तत् ॥ २९२ ॥
तदुक्तं सर्वमुर्वीशस्तथेति प्रतिपद्य सः । सत्कृत्य कृत्यविद् दूतं, प्रचचालाऽचलाधवः ॥ २९३ ॥
अथाऽऽससाद सूनुभ्यां, साकं कोशलनायकः । सैन्येभकृतमार्गद्रुखण्डनः कुण्डिनं पुरम् ॥ २९४ ॥
भीमः सम्मुखमागत्य, सत्कृत्य निषधाधिपम् । मुदितः कुण्डिनोपान्ततरुखण्डे न्यवासयत् ॥ २९५ ॥
आकारयन्तमत्युच्चध्वजाङ्गुलिदलैश्चलैः । अथाऽऽजग्मुर्महीनाथाः, स्वयंवरणमण्डपम् ॥ २९६ ॥
न्यविशन्नथ मञ्चेषु, पञ्चेषुद्युतिजित्वराः । स्वस्यान्यस्य च पश्यन्तो, रूपं भूपा मुहुर्मुहुः ॥ २९७ ॥

एकस्मिन् निषधो मञ्चे, सुताभ्यां सह तस्थिवान् ।
पार्श्वद्वयनिलीनाभ्यां, पक्षाभ्यामिव पक्षिराट् ॥ २९८ ॥

मुखपूर्णेन्दुपीयूषबिन्दुवृन्दानुकारिणा । आनाभि कण्ठमुक्तेन, मुक्ताहारेण हारिणी ॥ २९९ ॥
जिताभ्यां पुष्पदन्ताभ्यामिवाऽऽस्यतिलकश्रिया । माणिक्यताडपत्राभ्यामुपकर्णं निषेविता ॥ ३०० ॥
प्रभिन्नानङ्गमातङ्गमदनिर्झरहृद्यया । प्लावयन्ती सभागर्भमभितः प्रभया दृशोः ॥ ३०१ ॥
हसद्भ्यां नखतेजोभिर्गतिं गज-मरालयोः । चरणाभ्यां चमत्कारिझङ्कारिधृतहंसका ॥ ३०२ ॥
मूर्त्तां कीर्तिं स्मरस्येव, गीयमानां मधुव्रतैः । पश्यन्ती बिभ्रतीं सख्या, स्वयंवरणमालिकाम् ॥ ३०३ ॥
मण्डपं प्रविवेशाथ, भूरिभूपतिसम्भृतम् । दवदन्ती मरालीव, सरः कमलसङ्कुलम् ॥ ३०४ ॥
॥ षड्भिः कुलकम् ॥

मूर्तौ तस्या मणिस्तम्भप्रतिबिम्बेष्वपि क्षणात् । का नाम दवदन्तीति, राज्ञां तरलिता दृशः ॥ ३०५ ॥
दवदन्तीं प्रति ततो, दर्शयन्ती धराधिपान् । व्याजहार प्रतीहारी, हारीकृतरदद्युतिः ॥ ३०६ ॥
भानुर्देहप्रभापास्तसम्पच्चम्पाधिभूरयम् । यदङ्गघटनोच्छिष्टैर्द्रव्यैरघटि मन्मथः ॥ ३०७ ॥

रोहितकाख्यदेशाब्धिचन्द्रोऽयं चन्द्रशेखरः ।
चित्रस्थेऽपि स्मरे दृष्टे, द्विषस्त्रसन्ति यद्भ्रमात् ॥ ३०८ ॥
क्ष्मापतिः शशलक्ष्माऽयं, प्रकाशः काशिनायकः ।
उन्मिषन्ति द्विषद्दारैर्यस्य क्रमनखत्विषः ॥ ३०९ ॥

नृदेवो यज्ञदेवोऽयं, चम्पोऽनङ्गोपमप्रभः । दध्युर्वैन्देऽपि साफल्यं, यं विलोक्य रिपुस्त्रियः ॥ ३१० ॥
युद्धवर्द्धिष्णुतृष्णोऽयं कृष्णो हूणमहीपतिः । यत्र न्यधाद्धराभारं, श्रीपतिः श्रीमुतभ्रमात् ॥ ३११ ॥
सुंसमारपुरेशोऽयं, दधिपर्णः कलार्णवः । भाति नित्योदयः किन्तु, पश्य यस्य यशःशशी ॥ ३१२ ॥
निषधोऽयं द्विपद्रेदकुशलः कोशलेश्वरः । जिग्ये येनातिकामेन, तेजोभिः शाम्भवः शिखी ॥ ३१३ ॥
नलोऽयं नैषधिर्येभ्य, स्फुरन्ति न पुरः स्थिताः । कामन्यक्कारिलावण्यधन्यंमन्याः क्षमाभुजः ॥ ३१४ ॥

---

१ °म्येषु च क्ष° खेता० ॥ २ °ष्णोऽसौ, कृ° खेता० पाता० ॥ ३ सुंसुमार° खेता० पाता० ॥

स्वशीलरक्षितात्मानं, वरं मुञ्चामि तामिमाम् । न कुण्डिनगतो दैन्यं, मन्दो मन्दाक्षमुद्वहे ॥ ३७२ ॥
निश्चित्येति नलः कान्ताकपोलतलतो भुजम् । मन्दं चकर्ष निर्यातुमवाञ्छन्तमिव प्रियात् ॥ ३७३ ॥
उत्तरीयस्य पर्यङ्कीकृतस्यार्द्धग्रहेच्छया । आचकर्ष ततः शस्त्रीं, निस्त्रिंशत्वेन सत्रपः ॥ ३७४ ॥
बाष्पोर्मिरुद्धदृग्वर्त्मा, शुचा गलितचेतनः । वसनाय करं व्योम्नि, न्ययुङ्क्त व्याकुलो नलः ॥ ३७५ ॥
तस्य ध्यात्वा क्षणेनाक्ष्णी, परिमृज्यैकपाणिना । चेलं चिकर्तिषोः कम्पान्निपपात क्षुरी करात् ॥ ३७६ ॥
पुनः कृपाणिकां पाणौ, गृहीत्वा दुर्मनायितः । उवाच नैषधो दुःखमग्नमन्दतरस्वरम् ॥ ३७७ ॥
दमयन्त्या वनत्यागे, सपत्न्या मत्करग्रहात् । अपि निर्स्त्रिशपुत्रीयं, पपात भुवि धिग् ! नलम् ॥ ३७८ ॥

धाराधिरूढविज्ञाने !, सद्वंशे ! स्निग्धतानिधे ! ।
निष्कृपस्य कुकार्येऽपि, कृपाणि ! कुरु मे कृपाम् ॥ ३७९ ॥

इत्युक्त्वा क्षणमुद्धृत्य, धैर्यं वैक्लव्यतो नलः । चकर्त्त चीवरं प्रेमबन्धनेन समं तदा ॥ ३८० ॥
अथ देव्या मुखाम्भोजमालोकयितुमुन्मनाः । ममार्ज पाणिना भालमुन्मीलत्तिलकप्रभम् ॥ ३८१ ॥
अथाऽध्यायन्नलो मुग्धामुखस्याऽहो ! महो महत् । येन जागर्ति शेते वा, नेति निश्चिनुते मतिः ॥३८२॥

उवाच देवि ! त्वद्वक्त्रालोके भाग्यं न मे दृशोः ।
न च त्वत्परिचर्यायां, योग्यताऽपि हतात्मनः ॥ ३८३ ॥

प्रियाननोपरिन्यस्तदृष्टिरेवं वदन् नलः । दधौ हस्तेन बाष्पाम्भस्तत्प्रबोधभयान्मुहुः ॥ ३८४ ॥
अकृपः सकृपे ! गोत्रकलङ्को गोत्रदीपिके ! । दुराचारः सदाचारे !, कुर्वे नतिमपश्चिमाम् ॥ ३८५ ॥
देवि ! स्वचरितेनेन्दुरकलङ्कः किलाभवत् । अन्ववायगुरुः किन्तु, मद्वृत्तेन कलङ्कितः ॥ ३८६ ॥
अहो ! अभीरुर्बलवान्, यद्भीरुमबलां नलः । मुक्त्वा वनान्तरे याति, स्वयं वसति पत्तने ॥ ३८७ ॥
ध्रुवन्निति क्षतस्वाङ्गक्षरत्क्षतजलेखया । अक्षराण्यलिखद् दीनो, देव्याश्चेलाञ्चले नलः ॥ ३८८ ॥
विदर्भेषु वटेनाध्वा, वामे ! वामेन गच्छति । दक्षिणे ! दक्षिणेनैतैः, कोशलायां तु किंशुकैः ॥ ३८९ ॥
यत्र ते प्रतिभात्येव, देवि ! तत्र स्वयं व्रजेः । आत्मानं दर्शयिष्येऽहमुत्तमे ! न तवाधमः ॥ ३९० ॥
लिखित्वेति नलो मन्दपदपातमथाचलत् । पिबन् मुखाम्बुजं देव्या, दृग्भ्यां वलितकन्धरः ॥ ३९१ ॥

रक्षामि शयितां यावद्, यामिनीं स्वामिनीमिति ।
नलः पश्यन् प्रियां वल्लीमण्डलान्तरितः स्थितः ॥ ३९२ ॥

विभातायां विभावर्यां, देव्या जागरणक्षणे । मृदुद्रुतपदापातमचलन्नलभूपतिः ॥ ३९३ ॥
अथो हृदयसन्तापं, स्फुटीभूतमिवाऽऽत्मनः । नलो व्यलोकयद् दावानलं ज्वलितमग्रतः ॥ ३९४ ॥
रविवंशसरोहंस !, निषधक्ष्मापनन्दन ! । महाबल ! नल ! त्राणदक्ष ! संरक्ष मां दवात् ॥ ३९५ ॥
इत्याकर्ण्य गिरं दावानलमध्योत्थितां नलः । अचिन्तयदिदं वेत्ति, कोऽत्र मां निर्जने वने ! ॥ ३९६ ॥
अथोवाच नृपः कस्त्वं, मां परिज्ञाय भाषसे ! । इत्युक्ते पुनरुद्भूता, भारती दावपावकात् ॥ ३९७ ॥
भुजगोऽहमदग्धायां, वह्नौ सङ्कुचितैः स्थितः । निर्गन्तुं भूमितापेन, न शक्नोमि दवानलात् ॥ ३९८ ॥
उपकारं करिष्यामि, महान्तं ते महीपते ! । मूर्तादिव यमक्रोधादमेस्तत् कर्ष कर्ष माम् ॥ ३९९ ॥

---

१ 'तामेनां, परं मुञ्चामि भामिनीम्' संता० ॥ २ परिमार्ज्यैक' वता० संता० ॥
३ निस्त्रप' संता० ॥ ४ 'तरिष' संता० पाता० ॥

निधायाथ नलं राज्ये, यौवराज्ये च कूबरम् । आत्मानं शमसाम्राज्ये, न्यधत्त निषधाधिपः ॥ ३४३ ॥
पयोधिपरिखामुर्वीमपालयदयो नलः । निरन्तरचतुर्वर्णावासकीर्णां पुरीमिव ॥ ३४४ ॥
महीमृद्वंशसन्दोहपरिदाहपटीयसः । तेजसा नान्तरं दावानलस्य च नलस्य च ॥ ३४५ ॥
कूबरस्तं छलान्वेषी, बन्धुतावत्सलं नलम् । दुरोदरविनोदेषु, चिक्षेप क्रूरमानसः ॥ ३४६ ॥
दवदन्त्या च मित्रैश्च, द्यूतव्यसनतस्तदा । विरराम निषिद्धोऽपि, नैषधिर्नैव धिग्! विधिम् ॥ ३४७ ॥
कूबरेण सह क्रीडन्, मोहध्वान्ताकुलो नलः । अहारयत् तदा राज्यं, सान्तःपुर-परिच्छदम् ॥ ३४८ ॥
निकृतः कूबरेणाथ, क्ष्मानाथः क्रूरचेतसा । गात्रमात्रपरीवारोऽचलद्देशान्तरं प्रति ॥ ३४९ ॥
नलानुगामिनीं भैमीं, कूबरः प्राह साहसी । हारिता यन्नलेनासि, न त्वं तद् गन्तुमर्हसि ॥ ३५० ॥
अथेदं स वदन्नुक्तः, पौरैः क्रूर! करोषि किम्?। जननीमिव मन्यन्ते, भ्रातृजायां हि साधवः॥ ३५१ ॥
जननीति न चेन्नीतिस्त्वैतां प्रति सम्मति । तदस्याः पाप! शापेन, भृशं भवसि भस्मसात् ॥ ३५२ ॥
इत्ययं भाषितः पौरैः, शिक्षितश्च नलानुजः । रथमारोप्य वैदर्भी, न्ययुङ्क्तानुनलं तदा ॥ ३५३ ॥
अथ त्यक्तरथः कान्तायुक्तो निषधनन्दनः । चचार चरणापातपवित्रितधरातलः ॥ ३५४ ॥
सिक्तो षण्ठापथस्तस्य, प्रस्थितस्य वनं प्रति । पौरैर्नेत्राम्बुजोपान्तवान्तैः सलिलबिन्दुभिः ॥ ३५५ ॥
हा! हा! हताः स्मो दैवेनेत्यार्तैः प्रतिगृहं शनैः। शब्दाद्वैतं तदा जज्ञे, रोदःकन्दरमन्दिरे ॥ ३५६ ॥
पुरीपरिसरोपान्ते, तस्थिवानथ पार्थिवः । अमात्य-पौरप्रभृतीन्, बोधयित्वा न्यवर्तयत् ॥ ३५७ ॥
राज्यत्यागे निषिद्धोऽपि, नैषधिस्तैरनेकशः । सत्यमेव पुरस्कृत्य, प्रतस्थे सुस्थमानसः ॥ ३५८ ॥
प्रणम्य जननीत्वेन, कूबरेण निवारिता । नलेनानुमताऽप्यस्थान्नैव सा भीमनन्दनी ॥ ३५९ ॥
तद् वनं भवनं वृक्षाः, कल्पवृक्षास्त एव मे । चरणैरार्यपुत्रस्य, पावित्र्यं यत्र सूत्र्यते ॥ ३६० ॥
दवदन्ती तदित्युक्त्वा, विसृज्य च परिच्छदम् । चचालोज्ज्वलवक्त्रेन्दुर्नलवर्त्मानुवर्तिनी ॥ ३६१ ॥
असिस्वदत् फलश्रेणी, पयःपूरमपीप्यत । व्यशिश्रमन्मुहुर्मार्गे, भैमीं भूमीशपुङ्गवः ॥ ३६२ ॥
अथ कामप्यरण्यानीं, निरन्तरतैरद्रुमाम् । दुर्मेधामिव दुर्गोर्वीं, तमसामासदन्नृपः ॥ ३६३ ॥
तत्राऽऽह वल्लभं भैमी, लगित्वा पादपद्मयोः । अलङ्कुरु कुलोत्तंस!, पद्भ्यां तातपुरीमिति ॥ ३६४ ॥

यद् वदिष्यसि देवि! त्वं, तत् कार्यं ब(ध)स्तनेऽह्नि ।
कृतज्ञस्येव भैमीति, पिप्रिये प्रेयसो गिरा ॥ ३६५ ॥

अथास्तमगमद् भानुर्नलस्येव महोदयः । दुष्कीर्त्या कूबरस्येव, व्यानशे तमसा जगत् ॥ ३६६ ॥
उत्तरीयं धराधीशो, नीत्वा पल्यङ्कतां ततः । भुजोपधान एवाऽऽप, स्वापं वल्लभया सह ॥ ३६७ ॥
निशीथे पृथिवीनाथो, निद्रास्पृशि मृगीदृशि । अचिन्तयच्चिरं चित्ते, निपत्या निहतोद्यमः ॥ ३६८ ॥
आकारयिष्यति प्रातः, पिता निजनिर्गृहे । यद्यन्ते श्वशुरं नीतः, क यामि! करवाणि किम्!॥ ३६९ ॥

४. करिष्यामि यद् देवि!, वक्ष्यसीति मयोदितम् ।
तदाश्लिष्यन्नयं वाक्यं, बाढं दुःखाकरोति माम् ॥ ३७० ॥

त्यजामि यदहं शुभ्रां, तन् ममैति दुर्यशः । अन्यथा मानिनं मानः, प्रापयन्येव कुण्डिनम् ॥ ३७१ ॥

१ 'मात्र च' प्रत्य० प्रा० ॥ २ 'न्दिरम्' मं०प्र० ॥ ३ 'वैदर्भी भी' मं०प्र० ॥ ४ युग्मम् प्रा० ॥ ५ 'तरुद्रुमाम् प्र० ॥ ६ 'गृहम्' मं० ॥ ७ 'नि प्रतिभुतम्' प्र० ॥

निमेषार्द्धात् पुरः पश्चात्, पक्षयोश्च स्फुरन् नलः । खेदयामासिवानेकोऽप्यनेकवदनेकपम् ॥ ४२७ ॥

॥ विशेषकम् ॥

सोऽथ खिन्नमपि क्रोधाद्धावन्तं द्विपमुन्मदम् । वशीकर्तुं पटीं मूर्त्तामिव प्रज्ञां पुरोऽक्षिपत् ॥ ४२८ ॥

रूपबुद्ध्याऽथ तां हन्तुं, विनमन्तं मतङ्गजम् । दन्तन्यस्तपदः शैलं, केशरीवारुरोह सः ॥ ४२९ ॥

कलापकान्तरन्यस्तपदस्तदनु दन्तिनम् । सृणिमादाय रोमाञ्चकवची तमचीचलत् ॥ ४३० ॥[1]

पुरस्य कृपया कोऽपि, किमसावाययौ सुरः ? । स्वयम्भूरथवा पौरपुण्यपूरैस्तथाभवत् ? ॥ ४३१ ॥

अभ्रमूवल्लभस्पर्द्धिवर्द्धितर्द्धिपराक्रमः । ययौ भुवनभीमोऽपि, गजोऽयं यस्य वश्यताम् ॥ ४३२ ॥

इत्थं परस्परं पौरैः, प्रीतिगौरैः पदे पदे । कुब्जोऽपि स्तूयमानश्च, वीक्ष्यमाणश्च रेजिवान् ॥ ४३३ ॥

॥ विशेषकम्[1] ॥

प्रीतात्मा स्वयमारुह्य, गोपुरं पुरनायकः । तस्याधो गच्छतः कण्ठे, दाम रत्नमयं न्यधात् ॥ ४३४ ॥

अथोपनीय शालायां, गजमाकलयन् नलः । लीलाविलोलशुण्डाग्रग्राहिताहारपिण्डकम् ॥ ४३५ ॥

प्रीतः प्रदाय रत्नानि, वसना-ऽऽभरणानि च । अथ मित्रैमिवोर्वीशः, पुरः कुब्जं न्यवीविशत् ॥ ४३६ ॥

कुतस्तव कलाभ्यासः ?, कस्त्वं ? वससि कुत्र च ? । राज्ञेति पृष्टो हृष्टेन, नलभूपतिरभ्यधात् ॥ ४३७ ॥

सूपकारो नलस्याहं, प्रियो हुण्डिकसंज्ञकः । नलादात्तकलाभ्यासः, कोशलायां वसामि च ॥ ४३८ ॥

अज्ञासीद् यन्नलः सर्वं, तं कलौघं मयि न्यधात् । अन्यच्चाशिक्षयत् सूर्यपाकां रसवतीमपि ॥ ४३९ ॥

बन्धुना हारितैश्वर्यः, कूबरेणाधमेन सः । नलैः स्वामी वने गच्छन्, विपन्नः प्रियया सह ॥ ४४० ॥

ततो राजन् ! परित्यज्य, कूबरं कुलपांसनम् । आश्रितोऽहं कलावन्तं, भवन्तं नलवन्मुदा ॥ ४४१ ॥

इति श्रुत्वा नलक्ष्मापवार्तामार्तारवोऽरुदत् । दधिपर्णोऽशुकच्छन्नवदनः सपरिच्छदः ॥ ४४२ ॥

कृत्वा नलस्य पर्यन्तकृत्यानि कृतिनां वरः । अधारयच्चिरं चित्ते, दधिपर्णनृपः शुचम् ॥ ४४३ ॥

रसवत्या नलः सूर्यपाकया नृपमन्यदा । अप्रीणयद् यथायुक्तरसप्रसरपुष्टया ॥ ४४४ ॥

अथ वासांसि रत्नानि, तस्मै भूरीणि भूपतिः । ग्रामपञ्चशतीं टङ्कलक्षं च प्रीतिमान् ददौ ॥ ४४५ ॥

राज्यं ययौ नलस्यापि, ग्रामैर्नाम करोमि किम् ? ।
तं कुब्जमिति जल्पन्तं, प्रीतः प्राह पुनर्नृपः ॥ ४४६ ॥

प्रीतोऽस्मि तव सत्त्वेन, सत्त्वाधिकशिरोमणे ! । याच्यतां रुचितं किञ्चिदित्युक्तेऽभिदधे नलः ॥ ४४७ ॥

मृगव्य-मदिरा-द्यूतव्यसनानि स्वसीमनि । यावज्जीवं निषेध्यानि, श्रुत्वेदं तद् व्यधान्नृपः ॥ ४४८ ॥

अथ वर्षगणेऽतीते, कश्चिदेत्य द्विजः समाम् । वेत्रिणाऽऽवेदितः स्वस्तिपूर्वकं नृपमब्रवीत् ॥ ४४९ ॥

श्रीभीमेन समायातदवदन्तीगिरा चिरात् । नलप्रवृत्तिमन्वेष्टुं, प्रेषितोऽहं तवान्तिके ॥ ४५० ॥

भैमीं निशम्य जीवन्तीं, नलोऽपि क्वापि जीवति ।
तद्गिरेति विनिश्चित्य, प्रीतः प्रोवाच पार्थिवः ॥ ४५१ ॥

नलस्य सूपकारोऽयं, कुब्जो राज्येऽस्ति मे गुणी ।
एतद्गिरा मयाऽश्रावि, विपन्नः सप्रियो नलः ॥ ४५२ ॥

---

१ अत्रान्तरे विशेषकम् इति पाता० ॥ २ 'रसायभूत् ?' खंता० पाता० ॥ ३ पाता० नास्ति ॥ ४ 'श्रगिरोर्वी' वता० खंता० ॥ ५ 'लस्या' खंता० ॥ ६ 'दधौ न' खंता० पाता० ॥

इत्याकर्ण्य विलोक्याथ, पटप्रान्तं नृपोऽक्षिपत् । सर्पे तदग्रमारूढे, क्षणेन पुनराक्षिपत् ॥ ४०० ॥
अथ निःसृत एवास्य, भुजाग्रं भुजगोऽदशत् । तदात्वमेव कुब्जत्वमाससाद ततो नृपः ॥ ४०१ ॥
दृष्ट्वाऽथ भूपः स्वं रूपं, दध्यौ दृष्टं मया रयात् । धिग्! देवीत्यागपापद्रुफलोत्सचिप्रसूनकम् ॥ ४०२ ॥
अधुना वनमायान्त्या, देव्या यादृक् कृतो मया । उपकारोऽमुना तादृग्, दवाकृष्टेन मे कृतः ॥ ४०३ ॥
सविलक्षं हसन्नाह, सरीसृपमथो नृपः । उपकारस्त्वयाऽकारि, स्वस्ति ते गम्यतामिति ॥ ४०४ ॥
अथ कोऽप्यमतो भूत्वा, प्रीतः प्राह नरो नृपम् । वत्स! जानीहि मां देवीभूतं पितरमात्मनः ॥ ४०५ ॥

भास्वन्तं दुर्दिनेऽपि त्वां, तेजसा मास्म शत्रवः ।
जानन्तु हन्त! तेन त्वं, मया नीतोऽसि कुब्जताम् ॥ ४०६ ॥

समुद्गकं गृहाणेदं, यदा कार्यं भवेत् तव । परिधेयं तदाऽमुष्माद्, देवदूष्यांशुकद्वयम् ॥ ४०७ ॥
इत्थं समर्पयन्नेव, देवः प्राह पुनः सुतम् । क्व भवन्तं विमुञ्चामि ?, क्रमचारो हि दुःखदः ॥ ४०८ ॥
सुंसमारपुरे मुञ्च, नलेनेत्थमथोदिते । देवः कचिद् ययौ स्वं तु, तत्रापश्यदसौ पुरे ॥ ४०९ ॥

अकस्माद् विस्मयस्मेरस्तत् पश्यन् पुरतः पुरम् ।
यावच्चलति सोऽश्रौषीत्, तावत् कोलाहलं पुरः ॥ ४१० ॥

ततः किमेतदित्यन्तश्चिन्तयत्याकुले नले । नश्यतां नश्यतामित्थमूचुरुच्चैस्तुरङ्गिणः ॥ ४११ ॥
स्पर्द्धयेव प्रधावन्तीं, भ्रान्तं छायामपि स्वकाम् । मुहुःकृताकृतस्पर्शो, वायुनाऽपि भयादिव ॥ ४१२ ॥
मधुमत्तैरतितरां, धावद्भिर्मदलिप्सया । अनासादितकर्णान्तमतित्वरितचारतः ॥ ४१३ ॥
उदस्तशुण्डमुड्डीनानपि खण्डयितुं खगान् । क्षयोत्क्षिप्तमहादण्डमिव दण्डधरं क्रुधा ॥ ४१४ ॥
धर्मपुत्रानिवाब्दस्यं, स्वशब्दस्पर्द्धितध्वनेः । भिन्दन्तं दन्तघातेन, पादपौघान् पदे पदे ॥ ४१५ ॥
मूर्धातिधूननैर्गण्डप्रोड्डीनालिकुलच्छलात् । क्षिपन्तं खण्डशः कृत्वा, व्योमाङ्गणमपि क्षणात् ॥ ४१६ ॥
अस्यन्तं कुम्भसिन्दूररेणूंनुद्धतधूननैः । मूर्धाध्वनिःसृतध्मातकोधानलकणानिव ॥ ४१७ ॥
कचिदुच्चालितक्षोणिखण्डं चण्डांह्रिपाततः । व्यालं व्यालोकयामास, नलः प्रबलविक्रमम् ॥ ४१८ ॥

॥ सप्तभिः कुलकम् ॥

ऊर्द्धीकृत्य भुजामुर्वीभुजा वाहयुजा ततः । व्याहृतं दधिपर्णेन, क्षणव्याकुलचेतसा ॥ ४१९ ॥
यः कोऽपि कोपिनममुं, करिणं कुरुते वशे । लक्ष्मीं तनोमि तद्देहोत्सङ्गरङ्गैकनर्तकीम् ॥ ४२० ॥
अथाऽऽकर्ण्येति कुतुकी, सत्वरं प्राचलन्नलः । कालप्रायमपि व्यालं, मन्यमानः शृगालवत् ॥ ४२१ ॥

भो कुब्ज! कुब्ज! कीनाशमुखे मा विश मा विश ।
इत्युक्तोऽपि जनैर्धीरः, केसरीव ययौ गजम् ॥ ४२२ ॥

रे रे शुण्डाल! मा बाल-विप्र-धेनु-वधूर्वधीः । एह्येहि मददुर्दान्त!, दान्ततां दर्शयामि ते ॥ ४२३ ॥
वल्गन्तमिति वाचालं, कोपादनुचचाल तम् । करी करामविक्षेपप्राप्त-प्राप्तशिरोरुहम् ॥ ४२४ ॥
पतञ्छुधन् मिलत्रस्य, निघ्नन् घातं च वधयन् । अङ्गुष्ठाङ्गुलिसम्मर्दैर्दर्दयन् पुष्करं छलात् ॥ ४२५ ॥
भ्रान्त्वा दक्षिणपक्षेण, चक्रवद् भ्रमयन् मुहुः । चतुर्णामपि पादानां, प्रविश्याधोऽपि निःसरन् ॥ ४२६ ॥

---

१ "यान्त्यां, देव्यां या" पाता० ॥ २ "स्य, दाम्दस्य स्प" धंता० ॥ ३ 'रेणुमुद्ध' धंता० ॥ ४ "नैर्धीरः धंता० ॥

निश्चित्येत्यचलद् भीमनन्दनी वटवर्त्मना । स्वपादहतपत्रालीध्वनितेभ्योऽपि बिभ्यती ॥ ४८२ ॥
वृक्षेषु रत्नगर्भायाः, सपत्न्या अपि सूनुषु । मुहुः स्निग्धेषु विश्रान्ता, साऽचलद् भूपतिप्रिया ॥ ४८३ ॥
तस्यास्तिलकविद्योतपिङ्गदिग्गमनक्षितेः । चलन्त्या दावकीलाया, इव हिंस्रा वनेऽत्रसन् ॥ ४८४ ॥
अथावासितमग्रे सा, सार्थमेकं व्यलोकयत् । व्याप्तं शकटमण्डल्या, सवप्रमिव पत्तनम् ॥ ४८५ ॥
सार्थेन सममेतेन, सुखं गहनलङ्घनम् । चिन्तयन्तीति वैदर्भी, दधौ मुदमुदित्वरीम् ॥ ४८६ ॥
सार्थं यावदलञ्चक्रे, सा मरालीव पल्वलम् । तावच्चं रुरुधुश्चौराः, क्रूराः कपिमिवेतयः ॥ ४८७ ॥
अत्र सार्थे मया त्राते, रे! मा कुरुत विप्लवम् । सिंहीजुषि वने शाखिभङ्गाय न मतङ्गजाः ॥ ४८८ ॥
भाषमाणामिदं भैमीं, वातूलामिव तस्कराः । अवज्ञाय तदा पेतुः, सार्थे भृङ्गा इवाम्बुजे ॥ ४८९ ॥
पश्चपानथ हुङ्कारान्, सा चकार पतिव्रता । नेशुश्चौरास्तमःपूरास्तैर्भास्करकरैरिव ॥ ४९० ॥
शीलवधिरधिष्ठातृदेवतेव तदैव सा । अर्चिता सार्थवाहेन, जगृहे च गृहे जवात् ॥ ४९१ ॥
मातेति मन्यमानस्य, सार्थवाहस्य पृच्छतः । भिन्दन्ती हृदयं दुःखैस्तद् द्यूतादि जगाद सा ॥ ४९२ ॥
अथासौ सार्थवाहेन, विवेकाद्भुतभक्तिना । अस्थाप्यत गृहे भैमी, नलपत्नीति यत्नतः ॥ ४९३ ॥
घनागमेऽन्यदोद्दामैर्व्यापि व्योम घनाघनैः । तुच्छीभूतार्णवोन्मीलदौर्वधूमभरैरिव ॥ ४९४ ॥
गर्जावाद्यैस्तडिन्नृत्यैर्धाराध्वनितगीतिभिः । मेघो दिनत्रयं यात्रामनुद्घाटेन निर्ममे ॥ ४९५ ॥
तत्र कर्दमसम्मर्दभीममालोक्य भीमजा । अविज्ञाता जनैः शुद्धभूवासाय ततोऽचलत् ॥ ४९६ ॥
तडित्तुल्यमुखज्वालं, घोरनिर्घोषदुर्धरम् । बलाकाकुलसङ्काशकीकसावलिभूषणम् ॥ ४९७ ॥
अतिवृष्ट्या तदा व्योम्नस्त्रुटित्वाऽब्दमिव च्युतम् । पथि सा कौणपं कालं, करालं कञ्चिदैक्षत ॥ ४९८ ॥
॥ युग्मम् ॥

अथैनां राक्षसः प्राह, भोक्ष्यसे त्वं स्थिरीभव । चातकेनेव लब्धाऽसि, मेघधारेव यच्चिरात् ॥ ४९९ ॥
अथावष्टम्भमुद्भाव्य, भैमी भीमं जगाद तम् । कुर्वन्नज्ञ! ममावज्ञां, त्वं भविष्यसि भस्मसात् ॥ ५०० ॥
पश्यन्निर्भयां भैमीं, मुदितः कौणपोऽवदत् । तुष्टोऽस्मि तव धैर्येण, रुचितं याच्यतामिति ॥ ५०१ ॥
ततोऽवददसुं भैमी, यदि तुष्टोऽसि तद् वद । ज्वलिष्यति कियत्कालं, नलस्य विरहानलः? ॥ ५०२ ॥
आख्यत् तदवधिज्ञानात्, सैष भैमि! भविष्यति । हर्षाय द्वादशे वर्षे, पतिसङ्गः पितुर्गृहे ॥ ५०३ ॥
मुञ्चामि भवतीं तत्र, यदि वैदर्भि! भाषसे । अहं क्षणार्द्धमात्रेण, किमु भ्रमसि दुःखिता? ॥ ५०४ ॥
इत्याकर्ण्य वचः कर्ण्यमस्य हृष्टमनास्ततः । बभाषे भीमभूमीशनन्दनी विशदाशया ॥ ५०५ ॥
पत्युः कथयता सङ्गं, त्वयोपकृतमेव मे । गम्यतां स्वस्ति ते नाहं, यामि साकं परैर्नरैः ॥ ५०६ ॥
सदा भवेद् भवान् धर्मगृह्य इत्युदितस्तया । स्वं रूपं दर्शयन् दिव्यं, कौणपः स तिरोदधे ॥ ५०७ ॥
प्राप्यो द्वादशवर्षान्ते, वर्षान्त इव भास्करः । नलिन्या इव मे भर्ता, मत्वेत्यभ्यग्रहीच्च सा ॥ ५०८ ॥
ताम्बूलमरुणं वासः, कुसुमं विकृतीस्तथा । नादास्ये सत्यमेतानि, प्रियोण्याऽऽप्रियसङ्गमात् ॥ ५०९ ॥
निश्चित्येदं तदा देवी, चलिता मन्थरं पुरः । गिरेर्ददर्श कस्यापि, कन्दरां फलितद्रुमाम् ॥ ५१० ॥
वर्षाकालविरामाय, रामेयं तत्र कन्दरे । एका केसरिकान्तेव, तस्थौ निर्भयमानसा ॥ ५११ ॥
भावितीर्थकृतः शान्तिनाथस्य प्रतिमामिह । निवेश्य मृन्मयीं पुष्पैः, साऽर्चयद् गलितैः स्वयम् ॥ ५१२ ॥

१ सर्वे भृ° खंता० ॥ २ °र नृपात्मजा । खंता० ॥ ३ °र्षान्ते विशदच्छदः । खंता० ॥
४ प्रियाण्यप्रिय° वता० ॥

तवैतया पुनर्वाचा, प्रीतोऽस्मि द्विज! तद्वद। कथं तयोर्वियोगोऽभूद्?, वैदर्भी कथमागता? ॥ ४५३ ॥

अथ द्विजोऽवदद् देव!, प्रविवेश नलो वनम्।
कान्तामेकाकिनीं सुप्तां, त्यक्त्वाऽन्येद्युर्ययौ क्वचित् ॥ ४५४ ॥

तद् विरामे विभावर्या, भैमी स्वप्नमलोकयत्। सपुष्प-फलमारूढा, सहकारमहं पुरः ॥ ४५५ ॥
स्वादितान्यस्य पीयूषजित्वराणि फलान्यथ। आम्रो व्यालेन भग्नोऽथ, भ्रष्टाऽहमपि भूतले ॥ ४५६ ॥
स्वप्नान्ते निद्रया मुक्ता, प्रफुल्लनयनाम्बुजा। प्रातः प्रियमपश्यन्ती, व्याकुलैवमचिन्तयत् ॥ ४५७ ॥
जहार वनदेवी वा, खेचरी वा प्रियं मम। स ययौ जलमानेतुं, प्रातःकृत्याय वा स्वयम् ॥ ४५८ ॥
अथवा नर्मणा तस्थौ, वल्लीजालान्तरे क्वचित्। तत् पश्यामि जलस्थान-वल्ली-द्रुमतलान्यहम् ॥ ४५९ ॥
इत्युत्थाय प्रियं द्रष्टुं, यत्र यत्र जगाम सा। तत्र तत्राप्यपश्यन्ती, वैलक्ष्येणातिबाधिता ॥ ४६० ॥
सा चरन्ती स्थलीषु, मृगान् वीक्ष्य रवोत्थितान्। मुमुदे च प्रियभ्रान्त्या, मुहुः खिन्ना च निश्चयात् ॥४६१॥
भ्रामं भ्राममथ श्रान्ता, नलकान्ता समाकुला। पाणिपल्लवमुत्क्षिप्य, पूत्कुर्वन्तीदमभ्यधात् ॥ ४६२ ॥
एह्येहि दर्शनं देहि, परिरम्भं विधेहि मे। नर्मापि शर्मणे नातिक्रियमाणं भवेत् प्रिये ॥ ४६३ ॥
इति प्रतिरवं श्रुत्वा, निजोक्तेरेव हर्षिता। आकारयति मां भर्त्तेत्यागाद् गिरिगुहासु सा ॥ ४६४ ॥
तत्राप्यसावपश्यन्ती, वैदर्भी प्राणवल्लभम्। स्वप्नं सचेतना रात्रिप्रान्तदृष्टं व्यचारयत् ॥ ४६५ ॥
रसालोऽयं नलः पुष्प-फलानि नृपवैभवम्। तत्र देवीपदारूढा, जाताऽहं फलभोगभाग् ॥ ४६६ ॥
द्विपोऽस्य कूबरो भङ्क्ता, भ्रंशो मे विरहस्त्वयम्। स्वप्नार्थेनामुना तन्मे, सुलभो नैव वल्लभः ॥ ४६७ ॥

धिग्! मां दिग्मण्डनयशा, यन्मुमोच नलो नृपः।
तं मानिनं पितुर्वेश्म, नेतुं धिग्! मे कदाग्रहम् ॥ ४६८ ॥

अवाञ्छन् श्वशुरावासवासं मानधनः सुधीः। ममाऽऽग्रहं च तं वीक्ष्य, साधु तत्याज मामपि ॥ ४६९ ॥
प्राणान् मुञ्चन्ति नो मानं, धीरास्तन्मां मुमोच सः। मानच्छिदाग्रहग्रस्तां, मानी प्राणसमामपि ॥ ४७० ॥
हा कान्त! कुलकोटीर!, हा विवेकनिकेतन!। एकोऽपि नापराधोऽयं, दास्या मे किमसह्यत? ॥ ४७१ ॥
त्वदादेशस्य किं दूरे, कदाचिदभवं विभो!?। यदेवं देव! मुक्ताऽहं, न निषिद्धा कदाग्रहात् ॥ ४७२ ॥

ज्ञातं वा नान्यथा चक्रे, मद्वचोऽपि क्वचिद् भवान्।
ततस्त्यक्ताऽस्मि नोत्कृष्टा वागमाननैमानना ॥ ४७३ ॥

हा देव! दुर्मतिर्दूरं, निर्ममे किं ममेदृशी!। तदा कदाग्रहेऽमुष्मिन्, नलस्येव दुरोदरे ॥ ४७४ ॥
ध्यायं ध्यायमिदं मन्दभाग्यंमन्या वियोगिनी। प्राणेश! पाहि पाहीति, वदन्ती मूर्च्छिताऽपतत् ॥ ४७५ ॥
अथ क्षणेन मूर्च्छान्ते, बाढं विरहविह्वला। मामम मा नाथ! नाथेति, तारं दीना रुरोद सा ॥ ४७६ ॥
तदा चक्रन्द सा मर्मनामप्रमादं मुहुस्तथा। हृदयानि विदीर्णानि, शैलानामप्यहो! यथा ॥ ४७७ ॥
अथान्या नलरत्नायाः, कृपयोलास्य चीवरम्। मनन्म्र वयस्योऽपि, तां वर्णालीमदीदृशत् ॥ ४७८ ॥
भ्वजानिना भ्वरकेन, निपेन निमितां लिपिम्। दृष्ट्वा नलमिवाऽऽरात्, हृदयेऽन्तर्दधे च सा ॥ ४७९ ॥
अथ प्रमुदिता देवी, व्यचिन्तयदिदं हृदि। अहो! अद्यापि विधेऽहं, हृदये हृदयेशितुः ॥ ४८० ॥
यदादिदेश मे वर्त्म, स्वरक्षितमिनाधिपः। गमिष्यामि पितुर्गेहे गोरेव सहायकैः ॥ ४८१ ॥

---

१ 'मुपोष्णु' पा०॥ २ पा० टिप्पण—'मतान' पा०॥

अथ प्रभाते सार्थेशपुरस्कृतमहोत्सवा । अवाप तापसपुरं, वैदर्भी सह सूरिभिः ॥ ५४२ ॥
प्रतिष्ठां शान्तिचैत्यस्य, सम्यक्त्वारोपणं तथा । गुरुभ्यः कारयामास, दमयन्ती ससम्मदा ॥ ५४३ ॥
इति तत्रैव वैदर्म्याः, सप्त वर्षाण्यगुस्ततः । विरञ्चिवर्षदीर्घाणि, प्राणप्रियवियोगतः ॥ ५४४ ॥
अन्यदा कश्चिदागत्य, तां प्रति प्राह पूरुषः । नलः प्रतीक्षमाणोऽस्ति, भवतीं वनवर्त्मनि ॥ ५४५ ॥
अहं यास्यामि सार्थो मे, दवीयान् भवति क्रमात् ।
तमित्युक्त्वा जवाद् यान्तं, भैमी त्वरितमन्वगात् ॥ ५४६ ॥
क मे स्फुरति भर्तेति, व्याहरन्ती मुहुर्मुहुः । भैमी मार्गादपि भ्रष्टा, प्रयातः सोऽप्यदृश्यताम् ॥ ५४७ ॥
अथ भ्रमन्ती कान्तारे, मृगीव मृगलोचना । अपश्यत् कौणपीं काञ्चिदुच्चलद्रसनाञ्चलाम् ॥ ५४८ ॥
साऽप्याह भैमीमाक्रुश्य, त्वं मया मायया रयात् । मोक्ष्ये त्वामधुना राहुरसनेन्दुतनूमिव ॥ ५४९ ॥
इति तां विकृतां वीक्ष्य, भैमी स्वं धर्ममस्मरत् । तत्प्रभावादियं त्रस्ता, तमिस्रेव दिवाकरात् ॥ ५५० ॥
अथैषा तृषिता देवी, भ्रमन्ती निर्जले वने । व्याकुलाऽजनि निष्पुष्पे, भ्रमरीव वनस्पतौ ॥ ५५१ ॥
तदाऽऽह मम सान्निध्यं, कुरुध्वं वनदेवताः! । यथा वनमृगीवाऽहं, दाहं नहि सहे तृषः ॥ ५५२ ॥
इन्द्रजालिकमन्त्रोक्तिस्पर्द्धिन्या तद्गिरा ततः । दुकूलं तद्भुवः कूलङ्कषाऽऽविरभवत् पुरः ॥ ५५३ ॥
प्राप्तैरथ जलैर्मङ्क्षु, म्लानाऽप्यौज्ज्वल्यमाययौ । क्षणात् क्षयं व्रजिष्यन्ती, तैलैर्दीपशिखेव सा ॥ ५५४ ॥
कुतोऽपि सार्थतः प्राप्तैरथैषाऽभाषि पूरुषैः ।
काऽसि त्वं ? वनदेवी किं ?, तथ्यमित्याशु कथ्यताम् ॥ ५५५ ॥
साऽपि प्राह वणिक्पुत्री, यान्ती पत्या समं वने ।
सार्थाद् भ्रष्टाऽस्मि यूयं मां, स्थाने वसति मुञ्चत ॥ ५५६ ॥
अथ तैः सा समं नीत्वा, श्रेयःश्रीरिव देहिनी । अर्पिता धनदेवाय, सार्थवाहाय भीमभूः ॥ ५५७ ॥
सार्थवाहोऽपि मन्वानस्तनुजामिव तामथ । आरोप्य वाहने देवीं, नीत्वाऽचलपुरेऽमुचत् ॥ ५५८ ॥
लीलाकोककुलातङ्कहेतुवक्त्रेन्दुदीधितिः । मृगाक्षी तृषिता वापीं, कामपि प्राविशत् ततः ॥ ५५९ ॥
राज्याश्चन्द्रयशोनाम्न्या, ऋतुपर्णमहीभुजः । पुष्पदन्तीकनिष्ठाया श्चेटीभिरियमैक्ष्यत ॥ ५६० ॥
तच्चन्द्रयशसे ताभिस्तदा रूपवतीति सा । निवेदिता द्रुतं गत्वा, द्वितीयेन्दुतनूरिव ॥ ५६१ ॥
भागिनेयीमजानन्ती, पुष्पदन्तीसुतामिमाम् । आनाय्य निजगादेति, ऋतुपर्णनृपप्रिया ॥ ५६२ ॥
सहोदरेव मत्पुत्र्याश्चन्द्रमत्याः सुलोचने! । वत्से! कृतार्थयेदानीमृतुपर्णनृपश्रियम् ॥ ५६३ ॥
निवेदय पुनः काऽसि, विकासिगुणगौरवा ? । नहि सामान्यवामाक्ष्या, रूपमीदृक्षमीक्ष्यते ॥ ५६४ ॥
तां मातृभगिनीं सुभ्रूरजानानाऽवदत् तदा । यथोक्तं धनदत्तस्य, सार्थवाहस्य पश्चिषु (?) ॥ ५६५ ॥
कदाचिद् भोजनाकाङ्क्षाप्राप्तप्रियदिदृक्षया । सा चन्द्रयशसः सत्रागारैश्वर्यमयाचत ॥ ५६६ ॥
ओमित्युक्तेऽथ भूपालप्रिययाऽसौ प्रियंवदा । अर्थिनां कल्पवल्लीव, सत्रागाराधिभूरभूत् ॥ ५६७ ॥
देवि! मां रक्ष रक्षेति, वदन्तं बद्धमन्यदा । रक्षकैर्नीयमानं सा, पुरश्चौरं व्यलोकयत् ॥ ५६८ ॥
आरक्षकानथाऽपृच्छद्, देवी किममुना हृतम् ? । आचख्युस्ते ततश्चन्द्रमतीरत्नकरण्डकम् ॥ ५६९ ॥
देवी ततो दिदेशाऽथ, मुञ्चतैनं तपस्विनम् । तद्गिरा मुमुचुर्नैते, भीता विश्वम्भराभुजः ॥ ५७० ॥

चतुरा सा चतुर्थादि, तपःकर्म वितन्वती । चकार पारणं पाकपतितैर्भूरुहां फलैः ॥ ५१३ ॥
अथापश्यन्निमां चक्रश्चक्रबन्धुप्रभामिव । बभ्राम विधुरं सार्थे, सार्थेशस्तामविह्वलः ॥ ५१४ ॥
ततोऽनुपदिकीभूय, सार्थेशस्तां गतो गुहाम् । जिनार्चातत्परामेनामभिवीक्ष्य मुदं दधौ ॥ ५१५ ॥
सार्थनाथः प्रणम्याथ, भैमीमग्रे निविश्य च । पप्रच्छ देवि ! देवोऽयं, कस्त्वया परिपूज्यते? ॥ ५१६ ॥
ततः प्रीतिभरस्मेरा, दमयन्ती जगाद तम् ।
पूज्यतेऽसौ महाशान्तिः, शान्तिः षोडशतीर्थकृत् ॥ ५१७ ॥
तथाऽसौ कथयामास, धर्ममार्हतमुज्ज्वलम् । सावधानमनोवृत्तिं, मुदा सार्थपतिं प्रति ॥ ५१८ ॥
निशम्य वचनान्यस्यास्तापसास्तद्वनौकसः । तस्थुः समीपमागत्य, धर्माकर्णनकौतुकात् ॥ ५१९ ॥
मुखेन्दुज्योत्स्नयेवास्या, धर्माख्यानगिरा ततः । बोधितं सार्थवाहस्य, शुद्धं कुमुदवन्मनः ॥ ५२० ॥
दमयन्तीं गुरूकृत्य, कृत्यमेतदिति ब्रुवन् । अङ्गीचकार तीर्थेशधर्मं सार्थेशशेखरः ॥ ५२१ ॥
अत्रान्तरे गिरा तस्या, जितेव गगनापगा । भूमौ पतितुमारेभे, त्रपयाऽब्दजलच्छलात् ॥ ५२२ ॥
अथ दुर्धरधारालधाराधरजलाकुलाः । भ्रेमुस्तपोधना स्तोके, पयसीव तिमिव्रजाः ॥ ५२३ ॥
तानथ स्थापयित्वैकस्थाने पृथ्वीपतिप्रिया । दण्डेन परितो रेखामेतेषामकृत स्वयम् ॥ ५२४ ॥
तत् तापसास्तथा तस्थुस्तदाज्ञाकुट्टिमान्तरे । यथा वर्षति पर्जन्ये, लग्ना वारिच्छटाऽपि न ॥ ५२५ ॥
अथ स्थितेऽम्बुदे प्रौढप्रभावा काऽप्यसाविति । तां गुरूचक्रिरे जैनधर्मकर्मणि तापसाः ॥ ५२६ ॥
तत् तापसपुरं तत्र, चारुश्रीकमचीकरत् । सार्थेशः स्वपुरभ्रान्तिगतिस्खलितखेचरम् ॥ ५२७ ॥
देवानापततो वीक्ष्य, कदाचिदचलोपरि । दमयन्ती समं सर्वैरध्यारोहदधित्यकाम् ॥ ५२८ ॥
सिंहकेसरिणं सद्यः, प्रस्फुरत्केवलं मुनिम् । सुरैः कृतार्चनं वीक्ष्य, नत्वा देवी पुरोऽविशत् ॥ ५२९ ॥
ततः प्रदक्षिणीकृत्य, कश्चित् केवलिनं मुनिः । पुरः सपरिवारोऽपि, निविष्टो हृष्टमानसः ॥ ५३० ॥
अथासौ प्रथयामास, धर्मं कर्मद्रुपावकम् । केवली कलितानन्तगुणकेलिनिकेतनम् ॥ ५३१ ॥
देशनाभिः सुधापूरसनाभिभिरथ स्मितः । व्रतं केवलिनस्तस्मादयाचन्मुख्यतापसः ॥ ५३२ ॥
अथ प्रत्याहततमास्तं प्रत्याह स केवली । वाचं दशनविद्योतपूरनासीरभासुराम् ॥ ५३३ ॥
देवरोऽस्याः कुरङ्गाक्ष्याः, कूबरोऽस्ति नलानुजः ।
कोशलाधिपतेस्तस्य, सुतोऽहं सिंहकेसरी ॥ ५३४ ॥
संङ्गापुरीकिरीटस्य, सुतां केसरिणो मया । विवाह्य चलितेनाप्ताः, श्रीयशोभद्रसूरयः ॥ ५३५ ॥
तेषां व्याख्यानमाकर्ण्य, सुधाकृतसुधारसम् । पृष्टा मयाऽतिहृष्टेन, कियदायुर्ममेत्यमी ॥ ५३६ ॥
अथाऽऽचख्युः शुचिज्ञानाः, श्रीयशोभद्रसूरयः । इतो दिनानि पञ्चैव, तवाऽऽयुरवशिष्यते ॥ ५३७ ॥
इत्याकर्ण्य विवर्णास्यः, सोऽहं मोहाम्बुधौ ब्रुडन् । आरोपितस्तपःपोते, श्रीयशोभद्रसूरिभिः ॥ ५३८ ॥
परिपाल्य व्रतं सम्यग्, ज्ञानमुत्पादितं मया । ममैष मोक्षकालस्त्वां, व्रतयिष्यन्ति सूरयः ॥ ५३९ ॥
इत्युक्त्वा क्षीणनिःशेषकर्माऽसौ सिंहकेसरी । निर्वाणं प्राप निर्वाणोत्सवं देवाश्च तेनिरे ॥ ५४० ॥
श्रीयशोभद्रसूरीणां, समीपे सपरिच्छदः । आनन्दरसनिर्मग्नो, भेजे कुलपतिर्व्रतम् ॥ ५४१ ॥

---

१ निवेद्य खंता० ॥ २ देवदेवो खंता० ॥ ३ 'त्वेपा, स्थाने खंता० ॥ ४ 'स्थाऽऽरो' खंता० ॥ ५ गङ्गा' पाताखं० ॥ ६ व्याख्यां समा' पाता० ॥

अन्वरोदि तथा भूपप्रियापरिजनैरपि । नददादिवराहस्य, शोभां लेभे यथा नभः ॥ ५९८ ॥
अथेत्थमाकुले राजकुले क्षुत्कुञ्चितोदरः । हरिमित्रस्ततः सत्रागारं प्रति ययौ द्विजः ॥ ५९९ ॥
अकिञ्चन इवालोक्य, भैमीं कल्पलतामिव । अजिह्वावर्णनीयानां, स तदाऽभूत् पदं मुदाम् ॥ ६०० ॥
स प्रीतस्तां प्रणम्याथ, हनूमज्जित्वरत्वरः । सत्रागारेऽस्ति भैमीति, समेत्याऽऽह नृपप्रियाम् ॥ ६०१ ॥
कर्णामृतमिति श्रुत्वा, वाचं प्रीता नृपप्रिया । असिञ्चत् तं ततः स्वर्ण-रत्नाभरणवृष्टिभिः ॥ ६०२ ॥
कुत्र कुत्रेति जल्पन्ती, पद्भ्यां परिजनैः सह । सत्रागारं ययौ चन्द्रयशाश्चन्द्रमुखी मुदा ॥ ६०३ ॥
देवी ततोऽवदत् पुत्रि !, वञ्चिताऽस्मि स्वगोपनात् । यन्मातुरधिका मातृष्वसेति वितथीकृतम् ॥ ६०४ ॥
इत्युपालम्भसंरम्भिबाष्पा भूपालवल्लभा । निकेतनमुपेताऽसौ, पुरस्कृत्य नलप्रियाम् ॥ ६०५ ॥
भूषयित्वा स्वहस्तेन, भैमीं साश्रुविलोचना । अभ्यर्णमृतुपर्णस्य, निनाय विनयानताम् ॥ ६०६ ॥
साऽपि चन्द्रयशोवाचा, सम्मार्ज्य प्रकटं व्यधात् । भास्वन्तमिव भास्वन्तमलिके तिलकाङ्कुरम् ॥ ६०७ ॥
अथ प्रणम्य भूपालं, पितृवद् भीमनन्दनी । उपविष्टा पुरः पृष्टा, स्ववृत्तान्तं न्यवेदयत् ॥ ६०८ ॥
स्ववंश्यनलवृत्तान्ते, कथ्यमानेऽथ तादृशे । लज्जमान इवामज्जन्न्यग्मुखो रविरम्बुधौ ॥ ६०९ ॥
रवावस्ते समस्तेऽपि, क्ष्मापतिः प्राप विस्मयम् । सभान्तर्भान्तमालोकमालोक्य तिमिरापहम् ॥ ६१० ॥
राज्ञी विज्ञपयामास, मनो मत्वा नृपं प्रति । भास्वन्तं शाश्वतं भैमीभाले तिलकमीदृशम् ॥ ६११ ॥
भूपतिस्तत्पितेवास्या, भालं प्यधित पाणिना । तच्छलान्वेषिभिरिव, प्रादुर्भूतं तमोभरैः ॥ ६१२ ॥
करेऽपसारिते राज्ञा, तत् तस्यास्तिलकांशुभिः । किशोरकैरिवाग्रासि, घासस[ङ्घा]तवत् तमः ॥ ६१३ ॥
क्षणेऽस्मिन् कश्चिदागत्य, भाभासुरनभाः सुरः । नत्वा मध्येसभं भैमीं, प्राह बन्धुरकन्धरः ॥ ६१४ ॥
यस्त्वया तस्करो बद्धगलः पिङ्गलसंज्ञकः । मोचयित्वा तदा देवि !, बोधयित्वा व्रतीकृतः ॥ ६१५ ॥
स तापसपुरं प्राप्तो, विहरन् सह सूरिभिः । श्मशानेऽश्मनरप्रायः, कायोत्सर्गं निशि व्यधात् ॥ ६१६ ॥
चिताभवदवज्वालाजालेन कवलीकृतः । अमुक्तध्यानधैर्योऽयं, सौधर्मत्रिदिवं ययौ ॥ ६१७ ॥
अहं स हंसगमने !, त्वां नमस्कर्तुमागतः । त्वत्प्रसादप्रभावर्द्धिवर्द्धितेदृशवैभवः ॥ ६१८ ॥
इत्युक्त्वा सप्त कल्याणकोटीर्वृष्ट्वा ययौ सुरः । वृत्तेनैतेन राजाऽपि, जिनभक्तोऽभवत् तदा ॥ ६१९ ॥
हरिमित्रोऽन्यदाऽवादीद्, भूपं भूपप्रियामपि । प्रेष्यतां दवदन्तीयं, प्रीणातु पितरौ चिरात् ॥ ६२० ॥
समं चमूसमूहेन, वैदर्भीमथ पार्थिवः । प्रैषीच्चन्द्रयशोदेव्या, कृतानुगमनां स्वयम् ॥ ६२१ ॥
श्रीचन्द्रयशसं देवीं, प्रणम्याथ नलप्रिया । अल्पैः प्रयाणकैरुर्वीमण्डनं प्राप कुण्डिनम् ॥ ६२२ ॥
ईयतुः सम्मुखौ तस्याश्चिराकारणसोत्सुकौ । पितरौ स्मितरोचिर्भिः, खचिताधरविद्रुमौ ॥ ६२३ ॥
पितरं तरसा वीक्ष्य, रसाद् युग्यं विमुच्य सा । अनमत् क्रमराजीवयुग्मविन्यस्तमस्तका ॥ ६२४ ॥
पङ्किलं तं किलोद्देशमस्राम्भःसम्भ्रमो व्यधात् । विनम्रेणाम्बुजेनेव, मुखेन तु स भूपतिः ॥ ६२५ ॥
अथ राज्ञा सहायातामियं मातरमातुरा । नमश्चकार हर्षाश्रुमुक्तास्तबकितेक्षणाम् ॥ ६२६ ॥
सकलेनापि भूनाथलोकेनाथ नमस्कृता । कुण्डिनं मण्डयामास, सा त्रैलोक्यशिरोमणिः ॥ ६२७ ॥
गुरु-देवार्चनै राजा, पुरे सप्तदिनावधि । महोत्सवमहोरात्रमतिमात्रमकारयत् ॥ ६२८ ॥
साक्षात् तत्रास्ति धात्रीशनलध्यानधुरन्धरा । कृशा कृशानुकल्पेन, विरहेण विदर्भजा ॥ ६२९ ॥

---

१ °र्योऽसौ, सौधर्मत्रिदिवं गतः संता० ॥ २ °तरौ तर° संता० ॥

आच्छोटयदमुं देवी, तदम्भश्चुलुकैस्त्रिभिः । बन्धास्तैरत्रुटन् नागपाशास्तार्क्ष्यनखैरिव ॥ ५७१ ॥
अथातिमुमुदे लोकैरालोक्येदं कुतूहलम् । आश्चर्यमृतुपर्णोऽपि, तदाकर्ण्य तदाऽऽययौ ॥ ५७२ ॥
प्रीतोऽपि प्राह भूपस्तां, किं चौरः पुत्रि ! मोच्यते ? ।
व्यवस्था पृथिवीशानां, कथमित्थं विजृम्भते ! ॥ ५७३ ॥
अथाऽऽह नलभूपालवल्लभा भूमिवल्लभम् । आर्हत्या न मया दृष्टश्चौरोऽपि म्रियते पितः ! ॥ ५७४ ॥
अथाऽऽग्रहेण वैदर्भ्याः, सुताया इव भूपतिः । अमूमुचदमुं चौरं, प्रीतिप्रोत्फुल्ललोचनम् ॥ ५७५ ॥
देवीं प्रीतः प्रणम्याथ, स जगाद मलिम्लुचः । देवि ! त्वमद्वितीयाऽपि, द्वितीया जननी मम ॥ ५७६ ॥
अथायमन्वहं देव्याः, कुलदेव्या इव क्रमौ । प्रातः प्रातः समागत्य, प्रणिपत्य प्रमोदते ॥ ५७७ ॥
चौरः पृष्टोऽन्यदा देव्याः, समीचीनं न्यवेदयत् । अस्मि दासो वसन्तस्य, श्रीतापसपुरप्रभोः ॥ ५७८ ॥
पिङ्गलाख्योऽहमेतस्य, हृत्वा रत्नोत्करं प्रभोः । नश्यन् मार्गे धृतश्चौरैर्न क्षेमः स्वामिवञ्चिनाम् ॥ ५७९ ॥
अथास्य नरदेवस्य, सेवकोऽहमिहाऽभवम् । सर्वतोऽप्यतिविश्रम्भादवारितगतागतः ॥ ५८० ॥
तदा तदाऽऽप्य भूपालपुत्रीरत्नकरण्डकम् । अहार्षं त्वत्पदप्राप्तिपुण्यप्रेरितया धिया ॥ ५८१ ॥
निर्गच्छन् यामिकैर्दृष्टा, सलोप्त्रः क्ष्माभुजोऽर्पितः ।
ज्ञात्वाऽहं भूभुजा चौरो, रक्षकेभ्यः समर्पितः ॥ ५८२ ॥
ततो दृष्टिप्रपातेन, त्वदीयेन तदा मम । सर्वाङ्गमत्रुटन् बन्धाश्चौर्याय च मनोरथाः ॥ ५८३ ॥
अपरं च तदा देवि !, निःसृतायां पुरात् त्वयि । वसन्तसार्थवाहोऽयं, भोजनादिकमत्यजत् ॥ ५८४ ॥
सप्तमेऽहनि सम्बोध्य, श्रीयशोभद्रसूरिभिः । कथञ्चिद् भोजयाञ्चक्रे, देवि ! त्वद्दुःखदुर्मनाः ॥ ५८५ ॥
उपादाय वसन्तोऽयमपरेद्युरुपायनम् । कुशलः कोशलां गत्वा, प्रणनाम नलानुजम् ॥ ५८६ ॥
ददौ पृथ्वीपतिः प्रीतस्तस्य तापसपत्तने । चामरालीमरालीभिः, शोभितां राजहंसताम् ॥ ५८७ ॥
अथ हृष्टः प्रविष्टः स्वां, वसन्तनृपतिः पुरीम् । मौक्तिकस्वस्तिकव्याजराजत्प्रस्वेदबिन्दुकाम् ॥ ५८८ ॥
सोऽपि देवि ! प्रभावस्ते, सोऽभूद् यद् भूपतिर्वणिक् ।
हन्ति गर्भगृहध्वान्तं, दर्पणोऽर्ककरार्पणात् ॥ ५८९ ॥
तद्भूपतिपदभीता, तं देवी निजगाद तत् । यदि ते हृदि कोऽप्यस्ति, विवेको मार्गदीपकः ॥ ५९० ॥
उत्सहिष्णुस्तदाऽऽदत्स्व, वत्स ! पापच्छिदे व्रतम् ।
तदादेशाद् व्रतीभूय, सोऽप्यगाद् गुरुभिः सह ॥ ५९१ ॥ युग्मम् ॥
प्राग्दृष्टः कुण्डिनादेत्य, हरिमित्रोऽन्यदा द्विजः ।
वीक्ष्य क्षोणीपतिं क्षिप्रमगाच्चन्द्रयशोऽन्तिकम् ॥ ५९२ ॥
देवी तं वीक्ष्य पप्रच्छ, कुशला-ऽकुशलादिकम् । कथामकथयत् सोऽपि, वैदर्भीत्यागतः पराम् ॥ ५९३ ॥
नलस्य दमयन्त्याश्च, वार्तामार्तान्तराशयः । ज्ञातुं श्रीभीमभूमीशो, भूमीभागे न्ययुङ्क्त माम् ॥ ५९४ ॥
अरण्य-नगर-ग्राम-गिरि-कुञ्जादिकं ततः । समालोकि मया प्रापि, प्रवृत्तिरपि नैतयोः ॥ ५९५ ॥
तद्वार्ता काऽपि युष्माकमाकस्मिकतयाऽप्यभूत् । तदिदं ज्ञातुमत्राहमागतः का गतिः परा ? ॥ ५९६ ॥
इत्याकर्ण्य कथां चन्द्रयशसा सहसा ततः । आक्रन्दि मेदिनीखण्डखण्डिताखिलमण्डनम् ॥ ५९७ ॥

---

१ °कयेति कु° खंता० पाता० ॥ २ नाहरन्त्या मया पाता० ॥ ३ °लाख्योऽह° खंता० ॥
४ °त्तनम् । चा° खंता० ॥ ५ °पिट्टतालिकमण्ड° खंता०सं० ॥

अक्षवृक्षमथो वीक्ष्य, कलां दर्शयितुं निजाम् ।
कियन्त्यस्मिन् फलानीति, राजा कुब्जकमब्रवीत् ॥ ६५९ ॥

अजानति ततः कुब्जे, फलसङ्ख्यां धराधवः । आख्यदस्मै परिस्पष्टमष्टादशसहस्रिकाम् ॥ ६६० ॥
मुष्टिघातेन दिग्दन्तिघातघोरेण तन्नलः । अपातयदशेषाणि, फलानि कलिपादपात् ॥ ६६१ ॥
यावद् गणयते तावत्, तावन्त्येवाभवत् पुरः । अश्वहृद्विद्यया सङ्ख्याविद्यां कुब्जस्तदाऽऽददे ॥६६२॥
धावन्नथो रथोऽनायि, स्थैर्यं कुब्जेन सत्वरम् । भीमपुर्या मुखे तारतिलकायितकेतनः ॥ ६६३ ॥
अथ तस्या निशः प्रान्ते, भैमी स्वप्नमलोकयत् । हृष्टा तद्भीमभूपाय, समागत्य न्यवेदयत् ॥ ६६४ ॥
स्वप्नेऽधुना मयाऽदर्शि, तात! निर्वृतिदेवता । इहाऽऽनीय तया व्योम्नि, दर्शितं कोशलावनम् ॥ ६६५ ॥
सहकारमिहाऽऽरोहं, तद्गिराऽहं फलाकुलम् । समार्प्यत स्मितं पाणौ, तया तामरसं ततः ॥ ६६६ ॥
मदारोहात् पुरारूढः, पतन् कोऽप्यपतत् तदा । आम्राद् भुवि रविक्रान्तादभ्रात् पूर्ण इवोडुपः ॥ ६६७ ॥
अथ भीमोऽवदत् पुत्रि!, प्रापि स्वप्नोऽयमुत्तमः । निर्वृतिस्तव भाग्यश्रीर्मता तनुमती ननु ॥ ६६८ ॥
कोशलावैभवं भावि, कोशलावनवीक्षणात् । सफलाम्राधिरोहेण, सराज्य-रमणागमः ॥ ६६९ ॥

निपतन् यः पतन् कोऽपि, त्वयाऽदर्शि रसालतः ।
भवत्याऽध्यासिताद् राज्यात्, पतिष्यति स कूबरः ॥ ६७० ॥

अद्य सद्यः स्वचित्तेशसङ्गस्तव भविष्यति । यः प्रातः प्राप्यते स्वप्नः, सद्यः स हि फलेग्रहिः ॥ ६७१ ॥
तदाऽऽयातं पुराऽभ्यर्णे, दधिपर्णधराधवम् । आगत्याचीकथत् कोऽपि, श्रीभीमाय महीभुजे ॥ ६७२ ॥
अथ सम्मुखमागत्य, श्रीमान् भीमरथो नृपः । सम्मानेन पुरोत्सङ्गे, दधिपर्णमवीविशत् ॥ ६७३ ॥
ऊचे मिथः कथागोष्ठ्यां, दधिपर्णं विदर्भराट् । कुब्जाद् रसवतीं सूर्यपाकां कारय मन्मुदे ॥ ६७४ ॥
तदुक्तो दधिपर्णेन, कुब्जो रसवतीं व्यधात् । इन्दुपुष्टिकृदर्कांशुसम्पर्कसुरसीकृताम् ॥ ६७५ ॥
लोकैः साकं रसवतीं, बुभुजे भूभुजाऽथ सा । विचाराक्षमवैदग्ध्यैर्मिथःपश्यद्भिराननम् ॥ ६७६ ॥
आनायितां परीक्षार्थमथैतां भीमभूपभूः । स्वादयित्वा रसवतीं, कुब्जं निरचिनोन्नलम् ॥ ६७७ ॥

तद् वैदर्भी विदर्भेशं, प्रत्याह प्रीतिपूरिता ।
आस्तां कुब्जोऽपि खञ्जोऽपि, निश्चितः सैष नैषधिः ॥ ६७८ ॥

ज्ञानिना मुनिमुख्येन, कथितं मत्पुरः पुरा । नलो रसवतीमर्कपाकां जानाति नापरः ॥ ६७९ ॥
सा(त्वां)भिज्ञानान्तरं तात!, पुनरेकं समस्ति मे । नलस्पर्शेन विपुलपुलकं यद् भवेद् वपुः ॥ ६८० ॥
तन्मदङ्गमयं कुब्जः, स्तोकं स्पृशतु पाणिना । इत्युक्ते भीमवचसा, तामङ्गुल्या नलोऽस्पृशत् ॥ ६८१ ॥
वपुः सपुलकं तस्यास्तन्नलस्पर्शतः क्षणात् । प्रीतिपूरबहिःक्षिप्तास्तोकशोकमिवाभवत् ॥ ६८२ ॥
अन्तर्भैमी नलं निन्ये, तद् बलादबलाऽप्यसौ । अतूतुपत् तया चाटुप्रेमामृतकिरा गिरा ॥ ६८३ ॥
दमयन्त्युपरोधेन, नलस्त्यक्त इवानलः । जज्ञे बिल्वकरण्डाभ्यामाविष्कृतनिजाकृतिः ॥ ६८४ ॥
प्रकृतस्वरूपं तद्रूपं, वीक्ष्य कं कं रसं न सा । भेजे भीमसुता पार्श्व-त्रपाम्भःस्नानकातरा ! ॥ ६८५ ॥
तदा भाति स्म वैदर्भी, स्वेदाम्भःकणभासुरा । उपशान्तवियोगाग्निः, स्नाता हर्षाम्भसीव सा ॥ ६८६ ॥
अभितो वीक्ष्यमाणाङ्गी, नलनेत्रायतैश्चलैः । सद्यः स्वेदोदकस्नाता, सा चकम्पे चकोरदृक् ॥ ६८७ ॥

---

१ 'दधिपम्' सं०। २ 'दर्भीर' सं०। ३ तं भूपं, सं०।

कथयन्ती कथामित्थं, स्वयं स्वजननीं प्रति । मयाऽश्रूयत वैदर्भी, तुभ्यमावेदितं च तत् ॥ ६३० ॥
इदानीं तु भवद्दूतः कोऽपि भूपालमभ्यधात् । यदस्ति दधिपर्णस्य, पार्श्वे कुब्जः कलानिधिः ॥ ६३१ ॥
नलस्य सूपकारोऽहमिति वक्ति करोति च । अधीतां नलतः सूर्यपाकां रसवतीमसौ ॥ ६३२ ॥
इत्याकर्ण्य समीपस्था, भैमी भूमीशमभ्यधात् । नान्यो रसवतीवेत्ता, कुब्जोऽभून्नल एव सः ॥ ६३३ ॥
द्रष्टुमेनमहं देव !, तद्भीमेन नियोजितः । धिक् कुब्जेऽस्मिन् नलाशङ्का, कृष्णागारे मणिभ्रमः ॥ ६३४ ॥
आकर्ण्य दधिपर्णोऽयमिति विस्तरतः कथाम् । श्रुतां कुब्जेन साश्रेण, यथोक्तरसनाटिना ॥ ६३५ ॥
शरीराभरणस्तोमदानेनाऽऽनन्द्य सम्मदी । प्रैषीत् तं ब्राह्मणं राजा, कुब्जस्तु जगृहे गृहे ॥ ६३६ ॥
॥ युग्मम् ॥
अभोज्यत स कुब्जेन, रसवत्याऽर्कपाकया । स्वर्णादिकं नृपालब्धं, दत्त्वा च प्रीणितस्ततः ॥ ६३७ ॥
अथायं कुब्जमापृच्छ्य, गतः कुण्डिनपत्तनम् । तदीयं दान-भोज्यादि, सर्वमुर्वीभुजेऽभ्यधात् ॥ ६३८ ॥
तं निशम्याऽवदद् भैमी, मुदिता मेदिनीपतिम् । नल एव स कुब्जत्वं, ययौ केनापि हेतुना ॥ ६३९ ॥
तद्दानं सा मतिः सूर्यपाका रसवती च सा । सन्ति नान्यत्र कुत्रापि, युष्मज्जामातरं विना ॥ ६४० ॥
तामालोच्य ततस्तात !, समुन्मेषय शेमुषीम् । नलो यया रयादेव, प्रकटीभवति स्वयम् ॥ ६४१ ॥
सोत्साहमाह भूपस्तर्हि सम्प्रेष्य कञ्चन । आकार्यो दधिपर्णोऽयं, त्वत्स्वयंवरणच्छलात् ॥ ६४२ ॥
गत्वा यथार्थवर्णोऽयं, कथयिष्यति तं प्रति । श्वस्तने यद्दिने भावी, दमयन्त्याः स्वयंवरः ॥ ६४३ ॥
तत्पार्श्वे यदि कुब्जोऽयं, नलः स्याद्वनीधवः । तदश्वहृदयाभिज्ञस्तमानेष्यत्यसौ द्रुतम् ॥ ६४४ ॥
इति निश्चित्य भीमेन, भूभृता प्रेषितश्चरः । सुंसमारपुरं गत्वा, दधिपर्णमदोऽवदत् ॥ ६४५ ॥

न प्रापि नलवार्ताऽपि, क्वापि तेन करिष्यति ।
भूयः स्वयंवरं भैमी, प्रभुणा प्रेषितोऽस्मि तत् ॥ ६४६ ॥

किन्तु मार्गे विलम्बोऽभूद्, देहस्यापाटवान्मम । मत्यासन्नतरं जातं, तल्लग्नं श्वस्तने दिने ॥ ६४७ ॥
तूर्णं देव ! तदेतव्यमित्युक्त्वाऽस्मिन् गते चरे । अचिन्तयन्नलश्चित्ते, किमेतदिति विस्मितः ॥ ६४८ ॥
वर्षिष्यति विषैरिन्दुर्वदिष्यत्यनृतं मुनिः । किमन्यमपि भर्तारं, दमयन्ती करिष्यति ! ॥ ६४९ ॥
विवोढुं प्रौढिमा कस्य, मत्पत्नीं मयि जीवति ! । सिंहेऽभ्यर्णगते सिंहीं, मानसेनापि कः स्पृशेत् ! ॥ ६५० ॥
इति ध्यात्वा चिरं चित्ते, दधिपर्णं जगाद सः । आसन्नलग्न-दूरोर्वीगतिचिन्तापरायणम् ॥ ६५१ ॥
समर्पय हयान् जात्यान्, रथं गाढं च कञ्चन । यथाऽहमश्वहृद्वेदी, नये झटिति कुण्डिने ॥ ६५२ ॥
इति प्रीतिमताऽऽकर्ण्य, दधिपर्णेन भूभुजा । उक्तोऽग्रहीच्चतुर्वाहीं, रथं चाहीनपौरुषम् ॥ ६५३ ॥
अथ चामरयुग्म-च्छत्रभृद्रूपभासुरम् । नियुक्तवाजिनं कुब्जो, रथं तूर्णमवाहयत् ॥ ६५४ ॥
तुरंगस्य रथे वाहैर्जवनैः पवनैरिव । अपतद् भूपतेरंसात्, पटी शैलादिवाऽऽपगा ॥ ६५५ ॥
राजा तदाऽवदत् कुब्ज !, स्थिरीकुरु हयानिमान् । एतदादीयते यावद्, वासो वसुमतीगतम् ॥ ६५६ ॥
जगाद कुब्जको राजन्नपतद् यत्र तेंऽशुकम् । पञ्चविंशतियोजन्या, साऽमुच्यत वसुन्धरा ॥ ६५७ ॥

न राजन् ! वाजिनोऽमी ते, तादृक्षगुणलक्षिताः ।
इयन्त्या वेलया यान्ति, पञ्चाशद् योजनानि ये ॥ ६५८ ॥

१ सं०विमाऽन्यत्र—'स्याऽऽमु भी' संता० । 'स्या तत् भी' संता० ॥ २ दधपत्नयाः संता० ॥
३ नये झटिति कुण्डिनम् संता० ॥

अकृत प्रतितीर्थेशं, विंशतिं विंशतिं ततः । आचाम्लानि चमत्कारिभक्तिचारुः सुलोचना ॥ ७१८ ॥
तथा तिलकमेकैकं, जिनेशानां व्यधापयत् । सौवर्णमर्णःसम्पूर्णमणिसन्दर्भगर्भितम् ॥ ७१९ ॥
तदुद्यापनकं कृत्वा, प्रीता भूकान्तकामिनी । मुनीनानन्द्य दानेन, चारणान् पारणां व्यधात् ॥ ७२० ॥
तत् तीर्थेशपदाम्भोजसेवाहेवाकशालिनी । राजधानीं राजवधूराजगाम प्रमोदिनी ॥ ७२१ ॥
चिराराद्धजिनाधीशधर्मनिर्मलिताविथ । व्यपद्येतामुभौ वीरमती-मम्मणभूपती . ॥ ७२२ ॥
भूपजीवोऽथ बहलीदेशान्तः पोतने पुरे । आभीरधम्मिलाभस्य, सुतोऽभूद् रेणुकाङ्गभूः ॥ ७२३ ॥
तस्यैव धन्यसञ्ज्ञस्य, धूसरी नाम वल्लभा । आसीद् वीरमतीजीवः, पूर्ववत् प्रेमभाजनम् ॥ ७२४ ॥
वर्षासु महिषीर्धन्यश्चारयन्नन्यदा वने । वर्षत्यम्भोधरेऽपश्यदेकपादस्थितं मुनिम् ॥ ७२५ ॥
न्यधात् तदुपरि च्छत्रं, धन्यो भावनया ततः । अपारवारिभृद्धाराधोरणीवारणक्षमम् ॥ ७२६ ॥

न तिष्ठत्यम्बुदो वर्षन्, साधुः स्थैर्यं न मुञ्चति ।
धन्यस्त्यजति न च्छत्रं, त्रयोऽपि स्पर्द्धिनोऽभवन् ॥ ७२७ ॥

सप्तमेऽह्नि निवृत्तेऽब्दे, कायोत्सर्गमपारयत् । मुनिः पूर्णप्रतिज्ञोऽसौ, ततो धन्येन वन्दितः ॥ ७२८ ॥
स्वस्थवृत्तिरथापृच्छन्मुनीशं धूसरीवरः । भवतां व्रजतां कुत्र, मेघोऽयं विघ्नतां गतः ? ॥ ७२९ ॥
अथावददिदः साधुर्लङ्कायां गुरुसन्निधौ । गच्छतो मम मेघेन, प्रारेभे वृष्टिरीदृशी ॥ ७३० ॥
अभिग्रहं गृहीत्वा च, तद्वृष्टिविरमावधिम् । कायोत्सर्गं व्यधां तत्र, त्वया साहायकं कृतम् ॥ ७३१ ॥
ततः सद्मनि धन्येन, सममाकारितो व्रती । निषिध्य महिषारोहं, प्राचालीत् पङ्किले पथि ॥ ७३२ ॥
क्षैरेयीपारणं पुण्यकारणं सप्तमेऽहनि । मुनीशं कारयामास, शुद्धात्मा धूसरीधवः ॥ ७३३ ॥
करुणातरुणीहारो, विहारोद्यमविक्रमी । वर्षात्यये यथाकामं, ग्रामाद् ग्रामं जगाम सः ॥ ७३४ ॥
धन्योऽपि मुनिना दत्तं, श्रावकत्वं प्रियान्वितः । पालयित्वा चिरं हैमवते युगलधर्म्यभूत् ॥ ७३५ ॥
ततोऽपि क्षीरदण्डीराभिधानौ दम्पती दिवि । शोभमानौ प्रभूताभिस्तावभूतां विभूतिभिः ॥ ७३६ ॥
तच्च्युत्वा क्षीरदण्डीरजीवोऽभून्नैषधिर्भवान् । प्रिया ते क्षीरदण्डीरादेवीजीवश्च भीमभूः ॥ ७३७ ॥
यद् द्वादश घटीर्दध्रे, मम्मणेन त्वया मुनिः । तत्प्रियाविरहो राज्यभ्रंशश्च द्वादशाब्दिकः ॥ ७३८ ॥
यच्छत्रधारणं क्षीरपारणं च मुनेः कृतम् । त्वया धन्येन धन्येन, तेनायं विभवस्तव ॥ ७३९ ॥
भैमी त्वद्वल्लभा वीरमतीजन्मनि यन्मुदा । अष्टापदेऽर्हतां रत्नतिलकानि व्यधापयत् ॥ ७४० ॥
करभकरविस्तारकिङ्करीकृतभास्करः । तदस्याः शाश्वतो भाले, तिलको भाति भासुरः ॥ ७४१ ॥
॥ युग्मम् ॥

इति प्राग्भवमाकर्ण्य, समं दयितया नलः । पुष्कलाख्ये सुते राज्यं, नियोज्य व्रतमाददे ॥ ७४२ ॥
व्रतेनातीव तीव्रेण, कृतव्रतिचमत्कृती । एतौ यशःसुधापूरैः, शुभ्रयामासतुर्दिशः ॥ ७४३ ॥
नलो विलोक्य वैदर्भीमन्यदा मदनातुरः । गुरुभिर्न्यत्कृतः स्वर्गादेत्य पित्रा प्रबोधितः ॥ ७४४ ॥
तन्नलोऽनशनं भेजे, व्रतपालनकातरः । नलानुरागतः साध्वी, प्रपेदे भीमभूरपि ॥ ७४५ ॥

---

१ विपद्याभवतामेतौ, दम्पती दिवि पूर्ववत् ॥ संतासं० ॥ २ स्वच्छवृत्तिरथा° पाता० । स्वच्छवृत्तिमथा° संता० ॥ ३ °रीधवः पाता० ॥ ४ सं० विनाऽन्यत्र—व्यधात् तत्र, वता० संता० ॥ ५-६-७ °रडिण्डी° पाता० ॥ ८ भास्वरः संता० ॥ ९ नलोऽवलो° संता० ॥

साम्बुनेत्राञ्जलिभ्यां सा, तुल्यं दयित-कामयोः। तदान्तःकान्तिदूर्वाभ्यां, व्यधादर्घमनर्घ्ययोः ॥ ६८८ ॥
अदर्शि दर्शनीयश्रीरथाऽऽयातो बहिर्जनैः । नैषधिस्त्यक्तकुब्जत्वो, राहुमुक्त इवांशुमान् ॥ ६८९ ॥
अपराद्धं यदज्ञानान्मया नाथ ! क्षमस्व तत् । दधिपर्णोऽवदन्नेवमपतन्नलपादयोः ॥ ६९० ॥
स्वयं वेत्रीभवन् भीमो, भद्रपीठे निवेश्य तत्। अभ्यषिञ्चन्नलं नाथस्त्वमस्माकमिति ब्रुवन् ॥ ६९१ ॥
ऋतुपर्णः प्रियायुक्तः, सार्थेशोऽपि वसन्तकः । सुख-दुःखांशदायादावाहूतौ नलकान्तया ॥ ६९२ ॥
वसन्त-दधिपर्ण-र्तुपर्ण-भीमैः समं नलः । चिक्रीड लोकपालैः स, चतुर्भिरिव पञ्चमः ॥ ६९३ ॥
धनदेवोऽपि सार्थेशः, कुतोऽपि प्राप कुण्डिनम् । तस्य प्रत्युपकारं सा, कारयामास भूभुजा ॥ ६९४ ॥
कश्चिदेत्य दिवोऽन्येद्युर्देवः पश्यत्सु राजसु । भैमीं नत्वाऽवदद् देवि !, त्वत्प्रसादो मयीदृशः ॥ ६९५ ॥
सम्बोध्य तापसेन्द्रोऽहं, पुरा प्रव्राजितस्त्वया । विमाने केसरेऽभूवं, सौधर्मे केसरः सुरः ॥ ६९६ ॥
इत्युक्त्वा सप्त कल्याणकोटीर्वर्षन् पुरः सुरः । विद्युद्दण्ड इवोद्दण्डः, समुत्पत्य तिरोदधौ ॥ ६९७ ॥
नलादेशेन देशेभ्यः, स्वेभ्यः स्वेभ्यस्ततो नृपाः। ऋतुपर्णादयः स्वं स्वं, सैन्यमानाययन् जवात् ॥ ६९८ ॥
नलस्तदैव दैवज्ञदत्तेऽह्नि प्रति कोशलाम् । प्रयाणं कारयामास, वासवोपमविक्रमः ॥ ६९९ ॥
भूभृतः सैन्यचारेण, स्थावरानपि कम्पयन् । देवभूतमपि क्षोदैः, स्थगयन् सूरमण्डलम् ॥ ७०० ॥
कैश्चित् प्रयाणकैः प्राप, नलः कोशलपत्तनम्। नमयन् पृतनाक्रान्तं, पातालेन्द्रमपि क्षणात् ॥ ७०१ ॥
आकर्ण्य कोशलोद्यानविद्यमानबलं नलम् । अथो यमातिथिंमन्यश्चकम्पे कूबरो नृपः ॥ ७०२ ॥
पुनर्लक्ष्मीं पणीकृत्य, द्यूतार्थं दूतभाषया। नलः कूबरमाकार्य, दीव्यन् जित्वाऽग्रहीन्महीम् ॥ ७०३ ॥

अथाऽऽनन्दी नलो मन्दीकृतक्रोधो निजानुजम् ।
अपि क्रूरं व्यधाद् यौवराज्ये प्राज्यमहोत्सवात् ॥ ७०४ ॥

अथ सम्प्रेष्य निःशेषं, राजकं राजकुञ्जरः । कोशलाचैत्यचक्रेषु, चक्रे कान्तान्वितोऽर्चनाम् ॥ ७०५ ॥
बहून्यब्दसहस्राणि, भैम्या सह सहर्षया । त्रिखण्डां खण्डितारातिरपालयदिलां नलः ॥ ७०६ ॥
एत्य देवो दिवोऽन्येद्युर्निषधो न्यगदन्नलम्। फलं गृहाण मानुष्यभूरुहस्य व्रताभिधम् ॥ ७०७ ॥
प्राग् मया प्रतिपन्नं ते, व्रतकालनिदेशनम् । तद् वृथा मा विलम्बिष्ठा, यात्यायुर्जलबिन्दुवत् ॥ ७०८ ॥
इत्युक्त्वाऽस्मिन् गते देवे, नलः कान्तान्वितो ययौ। जिनसेनाभिधं सूरिं, विज्ञातागमनं तदा ॥ ७०९ ॥
प्रणम्य नैषधिः सूरिं, निविष्टः क्षितिविष्टरे। पप्रच्छ स्वस्य देव्याश्च, कारणं सुख-दुःखयोः ॥ ७१० ॥
निर्दम्भमन्यथो वाचमथोवाच महामुनिः । प्रदत्तमिश्रशर्माणि, प्राक्कर्माणि शृणु क्षणात् ॥ ७११ ॥
जम्बूद्वीपशिरोरत्नं, भरतक्षेत्रभूषणम् । अष्टापदसमीपेऽस्ति, श्रीसङ्गरपुरं पुरम् ॥ ७१२ ॥

तत्राऽऽसीन्मम्मणो राजा, तस्य वीरमती प्रिया ।
अन्यदाऽऽखेटके गच्छन्, भूपोऽपश्यत् पुरो मुनिम् ॥ ७१३ ॥

मन्वन्नशकुनं सोऽथ, धारयामास तं क्रुधा । तद् द्वादशघटीप्रान्ते, कृपयाऽमूमुचत् पुनः ॥ ७१४ ॥
तदर्हिंसामयो धर्मः, साधुनाऽस्मै निवेदितः। राज्ञाऽप्यङ्गीकृतो वीरमत्या दयितया समम् ॥ ७१५ ॥
ताभ्यां राजसभावेन, तद् व्रती मैतिपालितः । अपराधं क्षमस्वेत्यमुक्त्वा मुक्तो जगाम सः ॥ ७१६ ॥
सेवाप्रसादिता वीरमतीं शासनदेवता । धर्मस्थैर्यकृते निन्येऽन्येद्युरष्टापदोपरि ॥ ७१७ ॥

१ 'दोऽयमीदृ' खंता० ॥ २ 'दधे खंता० ॥ ३ प्रतिलाभितः खंता० ॥

कृतस्य प्रतिकुर्वाणावविशेषतया चिरम् । अयुध्येतामुभौ धीरौ, नृणां कृतचमत्कृती ॥ ७७५ ॥
समुद्रविजयं सम्यगधिगम्य विनीतधीः । चिक्षेप साक्षरं नम्रं, वसुदेवः शरं पुरः ॥ ७७६ ॥
पाणौ बाणमथाऽऽदाय, समुद्रोऽवाचयल्लिपिम् । तदा च्छलेन यातस्त्वां, वसुदेवो नमाम्यहम् ॥ ७७७ ॥
वत्सलो वत्स ! वत्सेति, समुद्रोऽथ वदन्नदः । अभ्यधावद् रथं मुक्त्वा, तं प्रतीन्दुमिवाम्बुधिः ॥ ७७८ ॥
प्रीतिमान् वसुदेवोऽपि, समुत्तीर्य समुत्सुकः । निपतन् पादयोर्दोर्भ्यामुद्धृत्यानेन सस्वजे ॥ ७७९ ॥
क स्थितस्त्वमियत्कालमिति पृष्टोऽग्रजन्मना । समग्रमात्मनो वृत्तं, वसुदेवो न्यवेदयत् ॥ ७८० ॥
वार्ष्णेयो दशमः सोऽयमिति मत्वा पराक्रमात् । दधिरे रुधिरोर्वीश-जरासन्धादयो मुदम् ॥ ७८१ ॥
प्रसन्नायातनिःशेषभूपालविहितोत्सवम् । पुण्येऽह्नि वसुदेवोऽथ, रोहिणीं परिणीतवान् ॥ ७८२ ॥
जरासन्धादयो जग्मुर्भूभुजो रुधिरार्चिताः । तत्रैव यदवः सर्वे, तस्थुः कंसान्विताः पुनः ॥ ७८३ ॥
अन्येद्युर्जरती काऽपि, श्रीसमुद्रे सभाजुषि । आगत्य गगनोत्सङ्गाद्, वसुदेवमवोचत ॥ ७८४ ॥
मम पुत्र्यौ चिराद् बालचन्द्रा वेगवती तथा । त्वद्वियोगातुरे देव !, सञ्जाते बाढदुर्बले ॥ ७८५ ॥
इति श्रुत्वा मुखं पश्यन्, समुद्रेण स भाषितः । गच्छ वत्स ! चिरं तत्र, मास्म स्थाः पूर्ववत् पुनः ॥ ७८६ ॥
इत्याकर्ण्य तया साकं, वसुदेवो दिवा ययौ । तदागमोत्सुकः प्राप, समुद्रोऽपि स्वपत्तनम् ॥ ७८७ ॥
कन्ये काञ्चनदंष्ट्रस्य, खेचरेन्द्रस्य वृष्णिभूः । उपयेमे प्रसन्नस्ते, पुरे गगनवल्लभे ॥ ७८८ ॥

विवोढा पूर्वोढा निजनिजपुरेभ्यो मृगदृशः,
समादाय भ्राम्यन् दिशि दिशि दशार्होऽथ दशमः ।
समागत्य व्योम्ना स्वपुरमपरैः खेचरचमू-
समूहैर्लक्ष्मीवाननमत समुद्रं स्मितमतिः ॥ ७८९ ॥

॥ इति श्रीविजयसेनसूरिशिष्यश्रीमदुदयप्रभसूरिविरचिते श्रीधर्माभ्युदयनाम्नि श्रीसङ्घपतिचरिते लक्ष्म्यङ्के महाकाव्ये वसुदेवयात्रावर्णनो नामैकादशः सर्गः ॥

दस्युः कस्यापि नायं प्रथयति न परप्रार्थनादैन्यमन्य-
स्तुच्छामिच्छां विधत्ते तनुहृदयतया कोऽपि निष्पुण्यपण्यः ।
इत्थं कल्पद्रुमेऽस्मिन् व्यसनपरवशं लोकमालोक्य सृष्टः,
स्पष्टं श्रीवस्तुपालः कथमपि विधिना नूतनः कल्पवृक्षः ॥ १ ॥
॥ ग्रन्थाग्रम् ७९८ । उभयम् ३९४३ ॥

---

१ 'नचन्द्रस्य, खे' संता० ॥ २ ग्रन्थाग्रम् ८०४ ॥ उभयम् ४०१९ संता० ॥

वसुदेव! नलः सोऽहं, सञ्जातोऽस्मि घनाधिपः। विपय साऽपि वैदर्भी, बभूव मम वल्लभा ॥ ७४६ ॥
अथेयं झटिति च्युत्वा, ततः कनकवत्यभूत्। तेन पूर्वानुरागेण, बद्धः सोऽहमिहाऽऽगमम् ॥ ७४७ ॥
इहैव कर्म निर्मूल्य, सेयं यास्यति निर्वृतिम्। इत्याख्यन्मे विदेहेषु, विमलस्वामितीर्थकृत् ॥ ७४८ ॥
इत्युक्त्वा वसुदेवस्य, पुरः किंपुरुषेश्वरः। शारीरैः पूरयन्नंशुपूरै रोदस्तिरोदधे ॥ ७४९ ॥
वसुदेवोऽन्यदा खेलन्, खेचरीभिः सहान्वहम्। सूर्पकेणैकदा जह्रेऽमोचि गङ्गाजले ततः॥ ७५० ॥
उत्तीर्य वीर्यवान् गङ्गां, पल्लीं कामपि जग्मिवान्। असौ परिभ्रमन् साकं, पथिकैः पथि कैश्चन ॥ ७५१ ॥
जराभिधां स्मराटोपमल्लीं पल्लीन्दुनन्दनीम्। तत्रोपयेमे रेमे च, चन्द्रिकामिव चन्द्रमाः ॥ ७५२ ॥
तस्यां जराकुमाराख्यं, समुत्पाद्याथ नन्दनम्। विचरन्नन्यतोऽभापि, साक्षाद् देव्या कयाचन ॥ ७५३ ॥
कन्या रुधिरभूपस्य, दत्ता ते रोहिणी मया। व्रज पाणविकीभूय, तूर्णं तस्याः स्वयंवरे ॥ ७५४ ॥
इत्युक्तः स तया शौरिर्गतोऽरिष्टपुरं प्रति। जरासन्धादिभूपाढ्यस्वयंवरणमण्डपे ॥ ७५५ ॥
रूपेण त्रिजगच्चित्तारोहिणी रोहिणी ततः। स्वयंवरणमाल्येन, राजमानाऽऽजगाम सा ॥ ७५६ ॥

शृङ्गारितेऽप्यरूपेऽस्मिन्, राजकेऽस्याः स्थिता न दृक्।
वर्ण्यवर्णेऽपि निर्गन्धे, कर्णिकार इवालिनी ॥ ७५७ ॥

शौरिरेपोऽन्यवेषोऽथ, विस्फूर्जत्तूर्यवादिषु। वादयामास पटहमित्थं पट्टुभिरक्षरैः ॥ ७५८ ॥

आगच्छाऽऽगच्छ मां तन्वि!, नन्वितः किमु वीक्षसे ?।
अस्मि त्वदनुरूपोऽहं, कृतोत्कण्ठः सुकण्ठि! यत् ॥ ७५९ ॥

वादयन्तमिति प्रेक्ष्य, शौरिं शूरनिभप्रभम्। रोहिणी रोहदानन्दाऽनन्दयद् वरमाल्यया ॥ ७६० ॥
अथ पाटहिके तस्मिन्, वृते रुधिरकन्यया। अहसन् सहसा सेर्ष्यं, सर्वेऽप्युर्वीशकुञ्जराः ॥ ७६१ ॥
अहो! कौलीन्यमेतस्याः, कुलीनमवृणोद् यतः। इति वार्तां मिथश्चक्रुः, पश्यन्तो रुधिरं च ते ॥ ७६२ ॥
अथ तेषु सहासेषु, प्राह पाटहिकः क्रुधा। दोर्दण्डे यस्य कण्डूतिः, कौलीन्यं तस्य दृश्यते ॥ ७६३ ॥
श्रुत्वा शौरेर्गिरं दावकीलालीलामिमामथ। तद्वधाय जरासन्धः, स्वभूपान् समनीनहत् ॥ ७६४ ॥
सन्नद्धनिजसैन्योऽथ, रुधिरोऽपि धराधिपः। जरासन्धेन युद्धाय, क्रुद्धः शौरेः पुरोऽस्फुरत् ॥ ७६५ ॥
सारथीभूय शोडीरावधिर्दधिमुखाभिधः। खेचरः समरक्रूरं, रथे शौरिमवीविशत् ॥ ७६६ ॥
वेगाद् वेगवतीमात्राऽङ्गारमत्याऽर्पितानि तत्। चण्डः कोदण्ड-तूणानि, जगृहे विग्रहाग्रही ॥ ७६७ ॥
जरासन्धधराधीशैः, रुधिरं युधि रंहसा। भग्नं वीक्ष्य गिरा शौरेः, खेचरो रथमैरयत् ॥ ७६८ ॥
शौरिं स्ववर्ग्यभूमीभृत्कुम्भिकेसरिणं रणे। पश्यन्नूचे जरासन्धः, समुद्रविजयं प्रति ॥ ७६९ ॥
न पाणविकमात्रोऽयं, तदेनं साधय स्वयम्। वनं मत्तेभैः केन, रक्ष्यः पञ्चाननं विना ? ॥ ७७० ॥
शूरमेनं निराकृत्य, त्वं भवन् रोहिणीधवः। मद्यशःकुमुदं स्मेरीकुरुष्वानेन मुद्रितम् ॥ ७७१ ॥
धृतान्यनरनिष्ठाया, न धवोऽस्या भवाम्यहम्। जेयोऽसौ तु त्वदादेशादित्युक्त्वस्थौ समुद्रराट् ॥ ७७२ ॥
ततः समुद्रमुन्मुद्रवेलं खेलन्तमाहवे। अवलोक्य स्म कुर्वन्ति, देवाः कल्पान्तविभ्रमम् ॥ ७७३ ॥
युयुधाते क्रुधा तेजस्तिरस्कृतदिवाकरौ। शौरी दूरीकृतत्रासावथ प्रथम-पश्चिमौ ॥ ७७४ ॥

---

१ °पल्लीशितुः सुताम्। तत्रो° संता० ॥ २ °विहर° संता० ॥ ३ °पाढ्ये, स्व° संता० ॥
४ पुरोऽविशत् संता० ॥

बहिर्निवेश्य सैन्यानि, देवकेन पुरस्कृतौ। पुरान्तर्जग्मतुः कंस-शौरी पौरनिरीक्षितौ ॥ २७ ॥
अथोपविविशुर्भूपसदः प्राप्य त्रयोऽपि ते। त्रैलोक्यरक्षासामर्थ्यं, मन्त्रयन्त इवाऽऽत्मसु ॥ २८ ॥
सुहृत्प्रेमोर्मिहंसेन, ततः कंसेन देवकः। याचितः प्रीतिवार्तासु, वसुदेवाय देवकीम् ॥ २९ ॥
स स्वयं प्रार्थनीयेऽर्थे, प्रार्थ्यमानोऽथ देवकः। ऊचे वयं त्वदायत्ता, देवकी देव! कीदृशी? ॥ ३० ॥
पुराऽपि नारदाख्यातगुणोद्यदनुरागयोः। तयोरथ विवाहोऽभूद्, देवकी-वसुदेवयोः ॥ ३१ ॥
देवकोऽथ दशार्हाय, बहुस्वर्णादिकं ददौ। नन्दं गोकोटियुक्तं च, दशगोकुलनायकम् ॥ ३२ ॥
वसुदेवोऽद्भुतानन्दस्ततो नन्दसमन्वितः। मथुरां सह कंसेन, प्रयातो दयितायुतः ॥ ३३ ॥
सुहृत्पाणिग्रहोपज्ञं, कंसश्चक्रे महोत्सवम्। अमानमदिरापानमत्तनृत्यद्वधूजनम् ॥ ३४ ॥
कंसानुजोऽतिमुक्तोऽथ, पूर्वोपात्तव्रतः कृती। अगादोकसि कंसस्य, पारणाय महातपाः ॥ ३५ ॥
वीक्ष्य मत्ता तमायान्तं, प्रीता कंसप्रिया ततः। एहि देवर! नृत्यावो, जल्पन्तीति गलेऽलगत् ॥ ३६ ॥
अथोचे व्यथितः साधुर्यन्निमित्तोऽयमुत्सवः। तस्य सप्तमगर्भेणोच्छेद्यौ त्वंपितृ-वल्लभौ ॥ ३७ ॥
श्रुत्वेति मुनितो मुक्तमदा जीवयशा जवात्। गत्वा स्फारस्फुरत्खेदं, कंसायेदं न्यवेदयत् ॥ ३८ ॥
याच्यः सौहार्दतः सप्त, गर्भान् शौरिरसौ सुहृत्। निश्चित्येदमगात् कंसो, वसुदेवं प्रियान्वितः ॥ ३९ ॥
प्रारब्धप्रेमवार्तासु, मत्तेनेवामदेन तत्। स मेने देवकीगर्भान्, सप्त कंसेन याचितः ॥ ४० ॥
आकर्ण्य शौरिरन्येद्युरतिमुक्तकथामथ। चिखिदे वञ्चितो गर्भयाच्ञायां सुहृदा च्छलात् ॥ ४१ ॥
इतश्चासीन्नाग इति, श्रीभद्रिलपुरे वणिक्। प्रियाऽभूत् तस्य सुलसा, कुलसागरचन्द्रिका ॥ ४२ ॥
अतिमुक्ताभिधः साधुश्चारणोऽस्याश्च शैशवे। निन्दुरिन्दुमुखी सेयं, भाविनीति न्यवेदयत् ॥ ४३ ॥
परमश्राद्धयाऽऽराधि, सुरः कश्चित् तयाऽप्यथ। तुष्टोऽयाचि सुतानेष, प्राह ज्ञात्वाऽवधेस्ततः ॥ ४४ ॥
हन्तुं शौरिसुतान् प्रीतिकूटात् कंसेन याचितान्। अहं सञ्चारयिष्यामि, निन्दोः सुतपदे तव ॥ ४५ ॥
इति देवः प्रतिज्ञाय, चक्रे शक्त्या स्वकीयया। देवकी-सुलसापत्यप्रसवे तुल्यकालताम् ॥ ४६ ॥

सुषुवाते समं ते तु, देवक्याः षट् सुतान् क्रमात्।
सुलसायै ददौ देवो, देवक्यै सौलसान् मृतान् ॥ ४७ ॥
स्फारमास्फालयद् ग्राव्णि, कंसो निन्दुसुतान् स तान्।
अवर्धन्त च देवक्याः, सूनवः सुलसागृहे ॥ ४८ ॥

नाम्नाऽनीकयशोऽनन्तसेनावजितसैनिकः। निहतारिर्देवयशाः, शत्रुसेनश्च ते श्रुताः ॥ ४९ ॥
निशान्ते प्रैक्षत स्वप्ने, सिंहा-ऽर्का-ऽग्नि-गज-ध्वजान्। विमान-पद्मसरसी, ऋतुस्नाताऽथ देवकी ॥ ५० ॥
तस्याः कुक्षाववातार्षीद्, गङ्गदत्तश्च्युतो दिवः। नभःसिताष्टमीरात्रिमध्येऽथ तमसूत सा ॥ ५१ ॥
सान्निध्यं तेनिरे तस्य, पुण्यपूर्णस्य देवताः। तज्जन्मनि ततः स्वापमापुस्ते कंसयामिकाः ॥ ५२ ॥
तदाऽऽहूय प्रियं प्राह, देवकी रक्ष मे सुतम्। वञ्चयित्वा द्विपं कंसं, मोच्योऽसौ नन्दगोकुले ॥ ५३ ॥
यशोदा जननीवामुं, सानन्दा नन्दवल्लभा। पालयिष्यति यद् बालमुपचारैर्नवैर्नवैः ॥ ५४ ॥
वसुदेवोऽपि तन्मत्वा, तमादायाङ्गजं व्रजन्। पार्श्वस्थदेवीक्लृप्ताष्टदीप-च्छत्रजुषा पथा ॥ ५५ ॥
अथो धवलरूपेण, शिशुसान्निध्यदेवताः। पुरतो गोपुरद्वारकपाटान्युदघाटयन् ॥ ५६ ॥

---

१ 'नोऽपि दे' खंता० ॥ २ 'श्चिता गर्भ' खंता० ॥ ३ 'स्याऽऽत्तु दै' खंता० ॥

द्वादशः सर्गः ।

इतश्च कश्चन श्रेष्ठी, जज्ञे श्रीहस्तिनापुरे । ललितस्तत्सुतो मातुः, प्राणेभ्योऽपि प्रियोऽभवत् ॥ १ ॥
अथान्यो गर्भतो दुःखदाता मातुः कृतज्वरः । पातहेतून् वृथाकृत्य, द्वैतीयीकः सुतोऽभवत् ॥ २ ॥
स दास्या त्याजितो मत्वा, पित्रा च्छन्नीकृतः किल । ववृधे गङ्गदत्ताख्यो, लालितो ज्येष्ठबन्धुना ॥ ३ ॥
ललितः श्रेष्ठिनं प्रोचेऽन्येद्युरेष गृहे यदि । भोज्यते गङ्गदत्तस्तत्, सुन्दरं तात ! जायते ॥ ४ ॥
स्वमातुश्छन्नमेवैतत्, कार्यमेवमुवाच सः । ललितोऽथ तमानीय, तल्पस्याधो न्यपादयत् ॥ ५ ॥
ललितक्षिप्तमन्नं च, भुञ्जानं हर्षनिर्भरम् । गङ्गदत्तं कथञ्चित् तं, व्यालोक्य जननी क्रुधा ॥ ६ ॥
दण्डकाष्ठं समुद्यम्य, गृहीत्वा चिहुरव्रजे । क्षणान्निष्कासयामास, कुट्टयन्ती मुहुर्मुहुः ॥ ७ ॥ युग्मम् ॥
तमेवानुगतौ श्रेष्ठि-ललितौ कलितौ शुचा । पुरो वीक्ष्य मुनिं तस्य, मातृवैरमपृच्छताम् ॥ ८ ॥
ऊचे मुनिः क्वचिद् ग्रामे, बन्धू अभवतामुभौ । एकदा शकटं काष्ठैः, पूर्णं ग्रामाय निन्यतुः ॥ ९ ॥
ज्येष्ठः पुरश्चरन् मार्गे, चक्रलण्डां महोरगीम् । वीक्ष्य प्रोचेऽनुजं सूतं, रक्ष्याऽसौ शकटादिति ॥ १० ॥
इति तद्वाक्यविश्वस्ता, सा स्थितैव भुजङ्गमी । सूतेन चूरिता गन्त्र्याऽस्थिभङ्गध्वनिकौतुकात् ॥ ११ ॥
सा ज्येष्ठे दधती प्रीतिमप्रीतिं च कनीयसि । गन्त्रीचक्रेण भग्नाङ्गी, चक्रलण्डा व्यपद्यत ॥ १२ ॥

सा ते जाता प्रिया श्रेष्ठिन् !, ज्येष्ठः स ललितस्त्वसौ ।
गङ्गदत्तः कनिष्ठस्तु, प्राक्कृतेन प्रिया-ऽप्रियौ ॥ १३ ॥

इत्याकर्ण्य भवोद्विग्नः, श्रेष्ठी सूनुद्वयान्वितः । जैनं प्राप व्रतं पापमतङ्गजमृगाधिपम् ॥ १४ ॥
तौ श्रेष्ठि-ललितावायुः, पूरयित्वा तपोनिधी । देवलोकं महाशुक्रं, जग्मतुस्तिग्मतेजसौ ॥ १५ ॥
जगाम विश्ववाल्लभ्यमिदानीं गङ्गदत्तकः । तपस्तपनपूर्वाद्रिस्तमेव त्रिदशालयम् ॥ १६ ॥
च्युत्वा ललितजीवोऽयं, तन्महाशुक्रकल्पतः । रोहिण्या वसुदेवस्य, प्रेयस्या उदरेऽभवत् ॥ १७ ॥
वदने विशतः स्वप्ने, हलभृज्जन्मसूचकान् । सा मृगाङ्क-मृगेशा-ऽर्थीन्, निशाशेषे व्यलोकयत् ॥ १८ ॥
ततोऽङ्कतेजसा ध्वान्तद्रोहिणं रोहिणी सुतम् । असूत मृतधात्रीव, तर्जितद्युमणिं मणिम् ॥ १९ ॥
रामो नाम्नाऽभिरामत्वात्, पितृभ्यां तत्प्रतिष्ठितः । क्रीडन् भोगीव बालोऽपि, जातः परभयङ्करः ॥ २० ॥
वसुदेवोऽन्यदाऽऽहूतः, कंसेन प्रीतिशालिना । ययौ राजानमापृच्छ्य, मथुरायाममन्थरः ॥ २१ ॥
वसुदेवमथ प्राह, कंसो जीवयशोऽन्वितः । अस्तीन्द्रपुरनिर्यासो, नगरी मृत्तिकावती ॥ २२ ॥
राजा तत्र पितृव्यो मे, देवकः सेवकप्रियः । वर्तते नर्तितश्रीका, सुता तस्यापि देवकी ॥ २३ ॥
सा कान्तिसुमनोवल्ली, त्वं यौवनवनद्रुमः । युवयोस्तद् द्वयोर्लक्ष्मीविदमनोरस्तु सङ्गमः ॥ २४ ॥
तस्यां ननु वरो भार्या, भवाननुवरस्त्वहम् । तदेहि देवकाद् याच्या, देवकन्येव देवकी ॥ २५ ॥
इदमालोच्य निश्चित्य, शौरिः कंसान्वितो गतः । नगर्यां मृत्तिकावत्यां, राजा सम्मुखमाययौ ॥ २६ ॥

---

१ 'जितो भ्राम्या, मंता० पता० ॥ २ 'जं स्यं मं, रक्ष्यासौ मंता० ॥ ३ 'हिणी रोहि' मंता० ॥
४ 'य, निर्जित' मंता० ॥

तं वीक्ष्य विवशा गोप्यो, निमीलितविलोचनाः । पिण्डीकृत्योरसि रसात्, तरसैव न्यपीडयन् ॥ ८८ ॥
कृष्णः सदाऽपि मायूरपिच्छपूरविभूषणः । जगौ गोपालबालाभिः, सह गोपालगूर्जरीम् ॥ ८९ ॥
वंशनादवशैर्नेत्र-गति-कान्तिजितैरिव । सोऽयं कुरङ्ग-मातङ्ग-भुजगैरनुगैर्बभौ ॥ ९० ॥
राम-गोविन्दयोः क्रीडारसनिर्मग्नयोरिति । गोपयोर्जग्मुरेकाह्नवदेकादश वत्सराः ॥ ९१ ॥
इतश्च कार्तिके कृष्णद्वादश्यां त्वाष्ट्रगे विधौ । समुद्रविजयाख्यस्य, पत्न्यां शौर्यपुरेशितुः ॥ ९२ ॥
शिवायाः कुक्षिमध्यास्त, शङ्खजीवोऽपराजितात् । सा निशान्ते महास्वप्नांश्चतुर्दश ददर्श च ॥ ९३ ॥
गजोक्ष-सिंह-लक्ष्मी-स्रक्-चन्द्रा-ऽर्क-कलश-ध्वजाः ।
पद्माकर-विमाना-ऽब्धि-रत्नपुञ्जा-ऽग्नयस्तु ते ॥ ९४ ॥
नारकाणामपि स्वर्गजुषामिव तदा सुखम् । क्षणमासीत् प्रकाशश्च, चकास्ति स्म जगत्स्वपि ॥ ९५ ॥
पत्युरत्युत्सुका स्वप्नानाख्यद् देवी प्रबुध्य तान् ।
राज्ञा तदैव दैवज्ञोऽपृच्छ्यत क्रोष्टुकिः स्वयम् ॥ ९६ ॥
स व्याचख्यौ सुतो भावी, जिनो वां त्रिजगत्पतिः । श्रुत्वेति तावपि प्रीतौ, पीयूषस्नपिताविव ॥ ९७ ॥
गर्भस्थितेन तेनाथ, स्वामिना नृपकामिनी । बभौ स्मितमुखाम्भोजा, हंसेनेव सरोजिनी ॥ ९८ ॥
निशीथे सितपञ्चम्यां, श्रावणे त्वाष्ट्रगे विधौ । शङ्खध्वजं शिवाऽसूत, सुतं जीमूतमेचकम् ॥ ९९ ॥
षट्पञ्चाशदथाऽऽगत्य, दिक्कुमार्यो यथाक्रमम् । शिवा-जिनेन्द्रयोश्चक्रुः, सूतिकर्माणि भक्तितः ॥ १०० ॥
पञ्चरूपो हरिः स्वर्गादथाऽऽगत्य यथाविधि । अतिपाण्डुकम्बलायां, शिलायां नीतवान् विभुम् ॥ १०१ ॥
तत्र सिंहासनारूढः, सोऽयं स्वाङ्के जिनं दधौ ।
त्रिषष्ट्या त्वपरैः शक्रैः, स्नात्रं चक्रेऽच्युतादिभिः ॥ १०२ ॥
अङ्के तदीशमीशानो, दधौ सिंहासनासनः । सौधर्मेन्द्रोऽकृत स्नात्रा-ऽऽरात्रिक-स्तवनादिकम् ॥ १०३ ॥
प्रभोरप्सरसः पञ्च, धात्रीराधाय वासवः । कृत्वा नन्दीश्वरे यात्रां, मुदितः स्वपदं ययौ ॥ १०४ ॥
समभावं प्रभावन्तं, राकेन्दुमिव नन्दनम् । तमालोक्य समुद्रोऽभूदुन्मुद्रितमहोदयः ॥ १०५ ॥
दृष्टो रिष्टमणेर्नेमिर्मात्रा स्वप्नेऽत्र गर्भगे । अरिष्टनेमिरित्याख्यां, सूनोस्तद् विदधे पिता ॥ १०६ ॥
मथुरायामथाऽऽतेने, नेमिजन्ममहोत्सवम् । दशार्हो दशमस्तेन, कंसस्तस्याऽऽययौ गृहम् ॥ १०७ ॥
छिन्ननासापुटां वीक्ष्य, खेलन्तीं तत्र तां सुताम् ।
भीतः कंसोऽधिकं सोऽथ, स्मृत्वाऽनुजमुनेर्वचः ॥ १०८ ॥
नैमित्तिकं स कंसस्तदपृच्छत् सदने गतः । स्त्रीगर्भः सप्तमः सोऽयं, मुनिनोक्तो भवेन्न वा? ॥ १०९ ॥
ऊचे नैमित्तिकः साधुगिरो विपरियन्ति न । क्वाप्यस्ति हस्तिमल्लौजाः, स गर्भस्ते भयङ्करः ॥ ११० ॥
तमरिष्टाख्यमुक्षाणं, हयेशं केशिनं च तम् । खर-मेषौ च तौ मुञ्च, क्रमाद् वृन्दारके वने ॥ १११ ॥
अत्युग्रानपि तान् खेलन्, सहेलं यो हनिष्यति । हन्त ! हन्ता स ते सत्यं, निरर्गलभुजार्गलः ॥ ११२ ॥
पूजयेज्जननी यत् ते, शार्ङ्गं धन्व क्रमागतम् । आरोपयिष्यति पयःसितकीर्तिः स एव तत् ॥ ११३ ॥
कालियाहेर्दमयिता, चाणूरस्य विषादकः । हनिष्यति द्विपेन्द्रौ ते, स पद्मोत्तर-चम्पकौ ॥ ११४ ॥
आदिश्याऽथ प्रमायाऽसौ, मल्लौ चाणूर-मौष्टिकौ । अरिष्टादीन् वनेऽमुञ्चदरातिं ज्ञातुमात्मनः ॥ ११५ ॥

१ °ष्टाख्यमु° संता० ॥ २ °षौ ततो मु° पाता० ॥ ३ °ष्यति च यः, सित° पाता० ॥

आयातो गोपुरे शौरिरुग्रसेनेन भाषितः । भास्वन्तं दर्शयन् बालं, सानन्दमिदमब्रवीत् ॥ ५७ ॥
पुत्रव्याजेन शत्रुस्ते, कंसोऽनेन हनिष्यते । त्वमुद्धरिष्यसे मैवं, पुनः क्वापि प्रकाशयेः ॥ ५८ ॥
आकर्ण्येत्युग्रसेनेन, हर्षादनुमतस्ततः । जगाम नन्दकान्ताया, यशोदाया निकेतनम् ॥ ५९ ॥
तस्यास्तमात्मजं शौरिः, समर्प्याथ तदात्मजाम् । तनयां समुपादाय, देवक्याः पुरतोऽमुचत् ॥ ६० ॥
इति कृत्वा गते शौरौ, प्रबुद्धाः कंसयामिकाः । कन्यामिमां समादाय, कंसाय द्रागढौकयन् ॥ ६१ ॥
स्त्रीमयं सप्तमं वीक्ष्य, तं गर्भं निर्भयो नृपः । विदधे च्छिन्ननासाग्रां, मानी ज्ञानं हसन् मुनेः ॥ ६२ ॥
अमूमुचदमूं कंसो, देवक्या एव सन्निधौ । पुनर्जातेयमित्यन्तः, प्रमोदं प्राप साऽप्यथ ॥ ६३ ॥
स कृष्ण इति संहूतः, कृष्णाङ्गत्वेन गोमिभिः । वसुदेवकुलोत्तंसो, गोकुलान्तरवर्धत ॥ ६४ ॥
गते मासि सुतं द्रष्टुमुत्सुका देवकी ययौ । सह स्त्रीभिः प्रियं पृष्ट्वा, गोकुले गोऽर्चनच्छलात् ॥ ६५ ॥
मुदं दधौ यशोदाङ्कवर्तिनं निजनन्दनम् । श्रीवत्सलाञ्छितं स्निग्ध-श्याममालोक्य देवकी ॥ ६६ ॥
सदैव देवकी तत्र, गोपूजाव्याजतो ययौ । आविर्बभूव लोकेऽत्र, ततः प्रभृति गोव्रतम् ॥ ६७ ॥
वैरेण वसुदेवस्यान्यदा शकुनि-पूतने । विद्यया तत्सुतं मत्वा, निहन्तुं कृष्णमागते ॥ ६८ ॥
बभूवैका समारुह्य, शकटं कटुनादिनी । पूतना नूतनक्ष्वेडलिप्तं स्तनमपाययत् ॥ ६९ ॥
सान्निध्यं विदधानाभिर्देवताभिस्तदा मुदा । कृष्णस्य देहमाविश्य, हते तेनैनसैव ते ॥ ७० ॥
एत्य नन्दोऽथ वीक्ष्येदं, खेदं मनसि धारयन् । यशोदां प्राह नैकाकी, बालो मोच्यः कदाचन ॥ ७१ ॥
तं पालयति सानन्दा, यशोदाऽथ स्वयं सदा । छलादुच्छृङ्खलो बालः, प्रयातीतस्ततः स तु ॥ ७२ ॥
दाम्नोदूखलबद्धेन, तस्य बद्ध्वाऽन्यदोदरम् । यशोदा तद्गतेर्भीता, गृहेऽगात् प्रतिवेशिनः ॥ ७३ ॥
तदा पितामहद्वेषादेत्य सूर्पकसूः शिशुम् । तं मध्ये पेष्टुमभितो, जगामार्जुनयुग्मताम् ॥ ७४ ॥
अनयोः कृष्णदेव्याऽथ, माथश्चक्रे महीरुहोः । ऊचे गोपैस्ततोऽभञ्जि, कृष्णेनार्जुनयोर्युगम् ॥ ७५ ॥
तदाऽऽकर्ण्येति नन्दश्च, यशोदा च समीयतुः । तौ धूलिधूसरं वीक्ष्य, प्रीतौ बालं चुचुम्बतुः ॥ ७६ ॥
बद्धो यदुदरे दाम्ना, नाम्ना दामोदरस्ततः । ख्यातोऽयं गोकुले बालो, वल्लवीप्रीतिपल्लवी ॥ ७७ ॥
मत्वा शताङ्ग-शकुनि-पूतना-ऽर्जुनसङ्कथाम् । दध्यौ शौरिरमुं कंसो, ज्ञास्यत्येवंविधौजसा ॥ ७८ ॥
माऽपकार्षीत् किमप्यस्य, मत्वाऽपि क्रूरधीरसौ । अहं तदस्य रक्षायै, कश्चिन्मुञ्चामि नन्दनम् ॥ ७९ ॥
तद् यथातथमाख्याय, राममुद्दामविक्रमम् । सुतत्वेनार्पयामास, यशोदा-नन्दयोर्मुदा ॥ ८० ॥
सहेलं रेमतुस्तत्र, राम-दामोदरौ ततः । गोकुले गोमति व्योम्नि, सतारे शशि-सूर्यवत् ॥ ८१ ॥
आयुधेषु समग्रेषु, श्रमं रामेण कारितः । प्रकृत्या विक्रमी कृष्णः, सपक्षाहिरिवाबभौ ॥ ८२ ॥
गोपस्त्रियः प्रियममुं, गूढोन्मुद्रितमन्मथाः । समालिङ्गन्ति चुम्बन्ति, बाल्यवद्गतिच्छलात् ॥ ८३ ॥
साङ्गनाभिरनाकूतः, रेमे सते गोपखेलनैः । स गोपीभिः पर्णीकृत्य, चुम्बना-ऽऽलिङ्गनादिकम् ॥ ८४ ॥
भ्रुकुटं कृष्ण कृष्णेति, जल्पन्त्यः प्रति तं मुहुः । पतन्ति मदिरोद्भूतमदव्याजेन गोपिकाः ॥ ८५ ॥
तं मध्येकृत्य नृत्यन्ति, गोप्यो मण्डलनर्तनैः । तत्र बालध्वजव्यालवापं वितनुते मुदा ॥ ८६ ॥
एवं केनाप्युपायेन, काऽपि गोपी कदाचन । स्पृशन्ती निर्विकारैव, सेर्ष्यमन्याभिरीक्ष्यते ॥ ८७ ॥

---

१ 'तपुनं ज्ञात्वा, पा०' ॥ २ 'दं, पूतं मम' पा० ॥ ३ 'कमूः शि' पा० ॥
४ 'रोकृत' पा० ॥

वचनेनामुना म्लानमवलोक्य बलो हरिम् । स्नानाय सममादाय, यमुनायास्तटे ययौ ॥ १४२

रामो हरिमथापृच्छदपच्छायोऽसि वत्स ! किम् । त्वं प्रभातप्रभाराशिव्याश्लिष्ट इव दीपकः ? ॥ १४३

तदेवं बलदेवं स, निजगाद सगद्गदम् । किङ्करीति किमाक्षिप्ता, भ्रातर्माता मम त्वया ? ॥ १४४

अथैनं प्रथयन् सामलीलां नीलाम्बरोऽवदत् ।
यशोदा जननी वत्स !, न ते नन्दो न ते पिता ॥ १४५

देवकी देवकक्ष्मापनन्दनी जननी तव । गोपूजाव्याजतोऽभ्येति, त्वां द्रष्टुं मासि मासि सा ॥ १४६

वसुदेवश्च देवेन्द्रप्रायरूप-पराक्रमः । पिता स तव तेनात्र, कंसत्रासादमुच्यथाः ॥ १४७

अहं च रोहिणीसूनुर्वैमात्रेयस्तवाग्रजः । तातेन स्वयमाहूय, त्वद्रक्षायै नियोजितः ॥ १४८

कंसात् किं भीतिरित्युक्ते, कृष्णेनाख्यत् पुनर्बलः । अतिमुक्तमुनेरुक्तिं, तथा बन्धुवधप्रथाम् ॥ १४९

कृष्णस्तदा तदाकर्ण्य, क्रोधादनलवज्ज्वलन् । कंसध्वंसं प्रतिज्ञाय, स्नानाय यमुनां ययौ ॥ १५०

दृष्ट्वाऽथ कालियः कृष्णमतिक्रोधादधावत । पश्यन्निवात्मनो मृत्युं, चूडारत्नप्रदीपवान् ॥ १५१

किमेतदिति सम्भ्रान्ते, रामे वामेन पाणिना । धृत्वाऽसौ हरिणा घ्राणे, पद्मनालेन नस्तितः ॥ १५२

हरिः शरारुमारुह्य, तं भुजङ्गं महाभुजः । क्रीडत्कुम्भवन्नीरे, सविभ्रममविभ्रमत् ॥ १५३

मृतकल्पमनल्पौजास्तं मुक्त्वा निर्ययौ हरिः । तदेत्य समदाटोपैर्गोपैस्तौ बान्धवौ वृतौ ॥ १५४

ततः प्रचलितौ राम-गोविन्दौ मथुरां प्रति । गोपालकैः सहाऽभूतां, पुरगोपुरगोचरौ ॥ १५५

कंसादिष्टावथ द्विष्टाविभौ यमनिभौ क्रुधा । प्रधावितौ हतौ ताभ्यां, तौ पद्मोत्तर-चम्पकौ ॥ १५६

अरिष्टादिद्विपौ नन्दनन्दनौ ननु ताविमौ । दर्श्यमानौ मिथो रागसागरैरिति नागरैः ॥ १५७

गत्वा मल्लभटीभूमिं, सह वल्लभवल्लवैः । निषेदतुः कचिन्मञ्चे, तौ समुत्सार्य तज्जनम् ॥ १५८ ॥ युग्मम्

ततश्च वामो रामेण, रौद्रमूर्तिधरः पुरः । सैष मञ्चशिखोत्तंसः, कंसः कृष्णस्य दर्शितः ॥ १५९

सकौतुकप्रपञ्चेषु, मञ्चेषु विहितासनाः । कंसक्रूराशयज्ञानसावधानीभवद्धटाः ॥ १६०

समुद्रविजयप्रष्ठा, जितज्वलनतेजसः । दशापि च दशार्हास्ते, गोविन्दाय निवेदिताः ॥ १६१

॥ युग्मम् ॥

विभाविभासुरच्छायौ, सुरप्रायौ नु काविमौ ? । चिन्तयद्भिरिति क्ष्मापैरैक्ष्येतां तौ प्रतिक्षणम् ॥ १६२

वधे सिन्धुरयोर्लोकैर्ज्ञापिते कुपितस्तदा । सशल्य इव कंसोऽभूद्, घूर्णमानेक्षणः क्षणम् ॥ १६३

अयुध्यन्ताधिकं मल्लोत्तंसाः कंसाज्ञया ततः । अथोदतिष्ठत क्रूरश्चाणूरः कंससंज्ञया ॥ १६४

करास्फोटैस्स्फुटाटोपः, स्फूर्जन्नूर्जस्वलं ध्वनन् । ऊर्ध्वीकृतभुजो भूमीभुजोऽधिक्षिप्य सोऽवदत् ॥ १६५

यः कोऽपि धैर्यधुर्योऽस्ति, पात्रं कोपस्य कोऽपि यः ।
स मे दोर्दण्डकण्डूतिं, युधा खण्डयतु क्षणात् ॥ १६६

असहिष्णुरथो विष्णुश्चाणूरस्येति गर्जितम् । उत्तीर्य मञ्चात् पञ्चास्यध्वनिर्भुजमदिध्वनत् ॥ १६७

भुजास्फोटध्वनिर्विष्णोर्वर्द्धमानोऽथ दुर्धरः । कीर्तिविस्तृतये व्योमभाण्डे भङ्गमिव व्यधात् ॥ १६८

तं मत्वाऽथ भुजास्फोटध्वनिनैवात्मघातकम् । एककालयुधे कंसः, प्रेरयामास मौष्टिकम् ॥ १६९

१ °वौ मुदा पाता० ॥ २ °टस्फुटा° खंता० पाता० ॥ ३ युद्धा ख° खंतासं० पाता०
४ °कालं युधि कंसः, पाता० ॥

आयातो गोपुरे शौरिरुग्रसेनेन भाषितः । भास्वन्तं दर्शयन् बालं, सानन्दमिदमब्रवीत् ॥ ५७ ॥
पुत्रव्याजेन शत्रुस्ते, कंसोऽनेन हनिष्यते । त्वमुद्धरिष्यसे मैवं, पुनः क्वापि प्रकाशयेः ॥ ५८ ॥
आकर्ण्येत्युग्रसेनेन, हर्षादनुमतस्ततः । जगाम नन्दकान्ताया, यशोदाया निकेतनम् ॥ ५९ ॥
तस्यास्तमात्मजं शौरिः, समर्प्याथ तदात्मजाम् । तनयां समुपादाय, देवक्याः पुरतोऽमुचत् ॥ ६० ॥
इति कृत्वा गते शौरौ, प्रबुद्धाः कंसयामिकाः । कन्यामिमां समादाय, कंसाय द्रागढौकयन् ॥ ६१ ॥
स्त्रीमयं सप्तमं वीक्ष्य, तं गर्भं निर्भयो नृपः । विदधे च्छिन्ननासाग्रां, मानी ज्ञानं हसन् मुनेः ॥ ६२ ॥
अमूमुचदमूं कंसो, देवक्या एव सन्निधौ । पुनर्जातेयमित्यन्तः, प्रमोदं प्राप साऽप्यथ ॥ ६३ ॥
स कृष्ण इति संहूतः, कृष्णाङ्गत्वेन गोमिभिः । वसुदेवकुलोत्तंसो, गोकुलान्तरवर्धत ॥ ६४ ॥
गते मासि सुतं द्रष्टुमुत्सुका देवकी ययौ । सह स्त्रीभिः प्रियं पृष्ट्वा, गोकुले गोऽर्चनच्छलात् ॥ ६५ ॥
मुदं दधौ यशोदाङ्कवर्तिनं निजनन्दनम् । श्रीवत्सलाञ्छितं स्निग्ध-श्याममालोक्य देवकी ॥ ६६ ॥
सदैव देवकी तत्र, गोपूजाव्याजतो ययौ । आविर्बभूव लोकेऽत्र, ततः प्रभृति गोव्रतम् ॥ ६७ ॥
वैरेण वसुदेवस्यान्यदा शकुनि-पूतने । विद्यया तत्सुतं मत्वा, निहन्तुं कृष्णमागते ॥ ६८ ॥
बभूवैका समारूढा, शकटं कटुनादिनी । पूतना नूतनक्ष्वेडलिप्तं स्तनमपाययत् ॥ ६९ ॥
सान्निध्यं विदधानाभिर्देवताभिस्तदा मुदा । कृष्णस्य देहमाविश्य, हते तेनैनसैव ते ॥ ७० ॥
एत्य नन्दोऽथ वीक्ष्येदं, खेदं मनसि धारयन् । यशोदां प्राह नैकाकी, बालो मोच्यः कदाचन ॥ ७१ ॥
तं पालयति सानन्दा, यशोदाऽथ स्वयं सदा । छलादुच्छृङ्खलो बालः, भयातीतस्ततः स तु ॥ ७२ ॥
दाम्नोदूखलबद्धेन, तस्य बद्धाऽन्यदोदरम् । यशोदा तद्गतेर्भीता, गृहेऽगात् प्रतिवेशिनः ॥ ७३ ॥
तदा पितामहद्वेषादेत्य सूर्पकसूः शिशुम् । तं मध्ये पेष्टुमभितो, जगामार्जुनयुग्मताम् ॥ ७४ ॥
अनयोः कृष्णदेव्याऽथ, माथश्चक्रे महीरुहोः । ऊचे गोपैस्ततोऽभञ्जि, कृष्णेनार्जुनयोर्युगम् ॥ ७५ ॥
तदाऽऽकर्ण्येति नन्दश्च, यशोदा च समीयतुः । तौ धूलिधूसरं वीक्ष्य, प्रीतौ बालं चुचुम्बतुः ॥ ७६ ॥
बद्धो यदुदरे दाम्ना, नाम्ना दामोदरस्ततः । ख्यातोऽयं गोकुले बालो, वल्लवीप्रीतिपल्लवी ॥ ७७ ॥
मत्वा शताङ्ग-शकुनि-पूतना-ऽर्जुनसङ्क्षयम् । दध्यौ शौरिरमुं कंसो, ज्ञास्यत्येवंविधौजसा ॥ ७८ ॥
माऽपकार्षीत् किमप्यस्य, मत्वाऽपि क्रूरधीरसौ । अहं तदस्य रक्षायै, कञ्चिन्मुञ्चामि नन्दनम् ॥ ७९ ॥
तद् यथातथमाख्याय, राममुद्दामविक्रमम् । सुतत्वेनार्पयामास, यशोदा-नन्दयोर्मुदा ॥ ८० ॥
महेलं खेलतस्तत्र, राम-दामोदरौ ततः । गोकुले गोमति व्योम्नि, सतारे शशि-सूर्यवत् ॥ ८१ ॥
धायुधेषु समग्रेषु, श्रमं रामेण कारितः । प्रकृत्या विक्रमी कृष्णः, सपक्षाहिरिवाबभौ ॥ ८२ ॥
गोपस्त्रियः प्रियममुं, गूढोन्मुद्रितमन्मथाः । समालिङ्गन्ति चुम्बन्ति, बाल्यवद्धतिच्छलात् ॥ ८३ ॥
साकूतामिरनाकूतः, रोस्यते गोपसेलनैः । स गोपीभिः पणीकृत्य, चुम्बना-ऽऽलिङ्गनादिकम् ॥ ८४ ॥
भस्फुटं कृष्ण कृष्णेति, जल्पन्त्यः प्रति तं मुहुः । पतन्ति मदिरोद्भूतमदव्याजेन गोपिकाः ॥ ८५ ॥
तं मध्येकृत्य नृत्यन्ति, गोप्यो मण्डलनर्तनैः । तत्र तालध्वजस्तालवाद्यं वितनुते मुदा ॥ ८६ ॥
एनं केनाप्युपायेन, काऽपि गोपी कदाचन । स्पृशन्ती निर्विकारैव, सेर्ष्यमन्याभिरीक्ष्यते ॥ ८७ ॥

१ "सुतं ज्ञात्वा, पाता० ॥ २ "दं, पृष्टं मम" पाता० ॥ ३ "कस्सूः दि" पाता० ॥
४ "रोदून" खंभा० ॥

वचनेनामुना म्लानमवलोक्य बलो हरिम् । स्नानाय सममादाय, यमुनायास्तटे ययौ ॥ १४२ ॥
रामो हरिमथापृच्छदपच्छायोऽसि वत्स ! किम् । त्वं प्रभातप्रभाराशिव्याश्लिष्ट इव दीपकः ? ॥ १४३ ॥
तदेवं बलदेवं स, निजगाद सगद्गदम् । किङ्करीति किमाक्षिप्ता, भ्रातर्माता मम त्वया ? ॥ १४४ ॥
अथैनं प्रथयन् सामलीलां नीलाम्बरोऽवदत् ।
यशोदा जननी वत्स !, न ते नन्दो न ते पिता ॥ १४५ ॥
देवकी देवकक्ष्मापनन्दनी जननी तव । गोपूजाव्याजतोऽभ्येति, त्वां द्रष्टुं मासि मासि सा ॥ १४६ ॥
वसुदेवश्च देवेन्द्रप्रायरूप-पराक्रमः । पिता स तव तेनात्र, कंसत्रासादमुच्यथाः ॥ १४७ ॥
अहं च रोहिणीसूनुर्वैमात्रेयस्तवाग्रजः । तातेन स्वयमाहूय, त्वद्रक्षार्थे नियोजितः ॥ १४८ ॥
कंसात् किं भीतिरित्युक्ते, कृष्णेनाख्यत् पुनर्बलः । अतिमुक्तमुनेरुक्तिं, तथा बन्धुवधप्रथाम् ॥ १४९ ॥
कृष्णस्तदा तदाकर्ण्य, क्रोधादनलवज्ज्वलन् । कंसध्वंसं प्रतिज्ञाय, स्नानाय यमुनां ययौ ॥ १५० ॥
दृष्ट्वाऽथ कालियः कृष्णमतिक्रोधादधावत । पश्यन्निवात्मनो मृत्युं, चूडारत्नप्रदीपवान् ॥ १५१ ॥
किमेतदिति सम्भ्रान्ते, रामे वामेन पाणिना । धृत्वाऽसौ हरिणा घ्राणे, पद्मनालेन नस्तितः ॥ १५२ ॥
हरिः शरारुमारुह्य, तं भुजङ्गं महाभुजः । क्रीडन्नुडुपवन्नीरे, सविभ्रममविभ्रमत् ॥ १५३ ॥
मृतकल्पमनल्पौजास्तं मुक्त्वा निर्ययौ हरिः । तदेत्य समदाटोपैर्गोपैस्तौ बान्धवौ वृतौ ॥ १५४ ॥
ततः प्रचलितौ राम-गोविन्दौ मथुरां प्रति । गोपालकैः सहाऽभूतां, पुरगोपुरगोचरौ ॥ १५५ ॥
कंसादिष्टावथ द्विष्टाविभौ यमनिभौ क्रुधा । प्रधावितौ हतौ ताभ्यां, तौ पद्मोत्तर-चम्पकौ ॥ १५६ ॥
अरिष्टादिद्विषौ नन्दनन्दनौ ननु ताविमौ । दर्श्यमानौ मिथो रागसागरैरिति नागरैः ॥ १५७ ॥
गत्वा मल्लभटीभूमिं, सह वल्लभवल्लवैः । निषेदतुः क्वचिन्मञ्चे, तौ समुत्सार्य तज्जनम् ॥ १५८ ॥ युग्मम् ॥
ततश्च वामो रामेण, रौद्रमूर्तिधरः पुरः । सैष मञ्चशिखोत्तंसः, कंसः कृष्णस्य दर्शितः ॥ १५९ ॥
सकौतुकप्रपञ्चेषु, मञ्चेषु विहितासनाः । कंसक्रूराशयज्ञानसावधानीभवद्भटाः ॥ १६० ॥
समुद्रविजयप्रष्ठा, जितज्वलनतेजसः । दशापि च दशार्हास्ते, गोविन्दाय निवेदिताः ॥ १६१ ॥
॥ युग्मम् ॥
विभाविभासुरच्छायौ, सुरप्रायौ नु काविमौ ? । चिन्तयद्भिरिति क्ष्मापैरैक्ष्येतां तौ प्रतिक्षणम् ॥ १६२ ॥
वधे सिन्धुरयोर्लोकैर्ज्ञापिते कुपितस्तदा । सशल्य इव कंसोऽभूद्, घूर्णमानेक्षणः क्षणम् ॥ १६३ ॥
अयुध्यन्ताधिकं मल्लोत्तंसाः कंसाज्ञया ततः । अथोदतिष्ठत क्रूरश्चाणूरः कंससंज्ञया ॥ १६४ ॥
करास्फोटैस्फुटाटोपः, स्फूर्जन्नूर्जस्वलं ध्वनन् । ऊर्ध्वीकृतभुजो भूमीभुजोऽधिक्षिप्य सोऽवदत् ॥ १६५ ॥
यः कोऽपि धैर्यधुर्योऽस्ति, पात्रं कोपस्य कोऽपि यः ।
स मे दोर्दण्डकण्डूतिं, युधा खण्डयतु क्षणात् ॥ १६६ ॥
असहिष्णुरथो विष्णुश्चाणूरस्येति गर्जितम् । उत्तीर्य मञ्चात् पञ्चास्यध्वनिर्भुजमदिध्वनत् ॥ १६७ ॥
भुजास्फोटध्वनिर्विष्णोर्वर्द्धमानोऽथ दुर्धरः । कीर्तिविस्तृतये व्योमभाण्डे भङ्गमिव व्यधात् ॥ १६८ ॥
तं मत्वाऽथ भुजास्फोटध्वनिनैवात्मघातकम् । एककालयुधे कंसः, प्रेरयामास मौष्टिकम् ॥ १६९ ॥

---

१ 'यौ मुदा पाता० ॥ २ 'टस्फटा' संता० पाता० ॥ ३ युद्धा स' संतासं० पाता० ॥
४ 'कालं युधि कंसः, पाता० ॥

शरद्घनाघनध्वानो, महोक्षो गाः क्षिपन् मुहुः । भञ्जन् भाण्डभरं तुङ्गशृङ्गो गोपान् लुलोप सः ॥ ११६ ॥

राम! त्रायस्व गोविन्द!, त्रायस्वेति व्रजे गिरः ।
श्रुत्वैव शौरिजन्मानौ, मानाध्मातावधावताम् ॥ ११७ ॥

अथोक्षाणं क्रुधावन्तं, धावन्तं वीक्ष्य केशवः । करावलितशृङ्गाग्रभग्नग्रीवं जघान तम् ॥ ११८ ॥

तस्मिन् काल इव क्रूरे, नीते कालनिकेतनम् । वल्लवाः पूजयामासुर्जनार्दनभुजौ मुदा ॥ ११९ ॥

प्राप्तः कंसकिशोरोऽथ, केशी क्रीडति केशवे । प्रकान्तवल्लवीनाशः, कीनाश इव दुःसहः ॥ १२० ॥

कृष्णेन सोऽपि निर्भिन्दन्, सुरभीः सुरभीषणः । कूर्परार्पणतो वक्त्रं, विदार्यामार्यत द्रुतम् ॥ १२१ ॥

खर-मेषप्रमुरुक्रोधखरमेष ततोऽन्यदा । कृतगोपभयारोपमाजघान जनार्दनः ॥ १२२ ॥

अथायं मथुरानाथस्तन्माथप्रभवद्भयः । द्विपं निश्चेतुमानिन्ये, सदस्यर्चामिषाद्धनुः ॥ १२३ ॥

अत्यद्भुतभुजः शार्ङ्गं, यः कोऽप्यारोपयिष्यति । देयाऽस्मै सत्यभामेयमिति चायमघोषयत् ॥ १२४ ॥

महीभुजो भुजोष्मायमाणाः प्राणाधिकास्ततः । आगताः पर्यैभूयन्त, नन्वनेनैव धन्वना ॥ १२५ ॥

सूनुर्मदनवेगाया, वसुदेवात्मजो रथी । चापारोपार्थमुत्कण्ठाकुलो गोकुलमागमत् ॥ १२६ ॥

तत्रोवास निशां राम-केशवस्नेहमोहितः । मार्गे गच्छन्नसौ प्रातः, कृष्णमेकं सहाऽनयत् ॥ १२७ ॥

अथ लग्नं रथं मार्गेऽनाधृष्टौ मोक्षणाक्षमे । हेलया हरिरव्यग्रो, न्यग्रोधमुदमूलयत् ॥ १२८ ॥

इत्थं भुजालमालोक्य, तं पदातिं तदाऽन्तिके । हृष्टोऽनाधृष्टिरुत्तीर्य, परिष्वज्य रथेऽनयत् ॥ १२९ ॥

मथुरायामथानेकपृथ्वीनाथकुलाकुलाम् । धीरौ धनुःसभामेतौ, जग्मतुस्तिग्मतेजसौ ॥ १३० ॥

अस्नापयन्नृपस्तोमंवीक्षातक्षमथ क्षणात् । सत्यभामा चिरं चक्षुः, कृष्णलावण्यसागरे ॥ १३१ ॥

ग्रहणादेव चापस्याऽनाधृष्टौ पतिते ततः । भ्रष्टाङ्गभूषणे खिन्ने, न यावदहसन् जनाः ॥ १३२ ॥

तावन्मृदुलदोर्दण्डचण्डिमानमदीदृशत् । मुदा सदसि गोविन्दस्तन्वन् धन्वाधिरोपणम् ॥ १३३ ॥
॥ युग्मम् ॥

अनाधृष्टिरथागत्य, मुक्त्वा द्वारि रथे हरिम् । गत्वा पितुः सदस्याख्यन्मयाऽऽरोप्यत तद्धनुः ॥ १३४ ॥

उत्क्रोऽय वसुदेवेन, नश्य कंसेन हन्यसे । श्रुत्वेति स हरिं मुक्त्वा, व्रजेऽथ स्वपुरेऽव्रजत् ॥ १३५ ॥

चापमारोपयन्नन्दनन्दनः शब्द इत्यभूत् । कंसोऽपि हृदयारोपिशङ्काशङ्कुरजायत ॥ १३६ ॥

आहूय भूयसो भूपान्, मञ्चेषु मथुरापतिः ।
आदिशत् कलये मल्लान्, चापारोपोत्सवच्छलात् ॥ १३७ ॥

रामं जगाद गोविन्दः, श्रुत्वा मल्लरणोत्सवम् ।
द्रष्टुं मल्लभटीमावां, गच्छावः कौतुकं हि मे ॥ १३८ ॥

तं प्रति प्रतिपद्येति, यशोदामवदद् बलः । आवयोर्मङ्क्षु पानीयं, स्नानीयं प्रगुणीकुरु ॥ १३९ ॥

बलस्तदलसां किंचित्, तां निरीक्ष्य रुषाऽवदत् । पड्बान्धववधाख्यानं, साक्षात्कर्तुं हरेः पुरः ॥ १४० ॥

आत्मानं मास्म विस्मार्षीर्मिदुक्तं न करोषि किम्? ।
स्वाम्यादेशेऽप्युदासीना, दासी नाम क्वचिद् भवेत्? ॥ १४१ ॥

---

१ श्रुत्वेति शौ° संता० पाता० ॥ २ °पणाः संता० पाता० ॥ ३ °पर्यसूच्यन्त, पाता० ॥ ४ °मदेपाया, वता० ॥ ५ °मप्तीष्मात° पाता० ॥ ६ द्वारि हरिं रथे । गत्या संता० पाता० ॥

इत्युक्तो हरिणा सोमः, समुद्रेणाप्युपेक्षितः । तद्राऽऽख्यद् द्विगुणं गत्वा, जरासन्धमहीभुजे ॥ १९७ ॥
अथ क्रुद्धे जरासन्धे, विरोधिवधसन्धया । प्रयाणमकरोत् काल, इव कालकुमारकः ॥ १९८ ॥
इतो योद्धुं समुद्रेण, पृष्टः क्रोष्टुकिरभ्यधात् । प्रतीचीं प्रति पाथोधिकच्छे गच्छत सम्प्रति ॥ १९९ ॥
सत्या सूते सुतौ यत्र, तत्र स्थाने कृते हरिः । जरासन्धवधाद् भावी, भरतार्द्धधराधवः ॥ २०० ॥
सहोग्रसेनभूपेन, श्रुत्वेदं यादवाग्रणीः । मुमोच मथुरामेकादशकोटिकुलान्वितः ॥ २०१ ॥

नीत्वा सूर्यपुरात् सप्त, कुलकोटीरपि[1] द्रुतम् ।
मध्येविन्ध्यं ययौ पृष्ठे, प्राप्तः कालोऽप्यदूरतः ॥ २०२ ॥

कृष्णसान्निध्यदेव्यस्तच्चितां[2] पथि विचक्रिरे । एकामेकाकिनीं पार्श्वे, रुदतीं सुदतीं पुनः ॥ २०३ ॥
किमेतदिति कालेन, पृष्टे सा भीरुरब्रवीत् । एष्यत्कालभयादस्यां, चितायां यदवोऽविशन् ॥ २०४ ॥

मद्भ्राता तैः सहाविक्षदिह वेक्ष्याम्यहं ततः ।
चितां साऽविशदित्युक्त्वा, दध्यौ कालोऽपि कोपनः ॥ २०५ ॥

ज्वलितानलदुर्गेऽस्मिन्, मद्भीता विविशुस्ततः । गत्वा तत्रापि हन्मीति, प्राविशन्मोहितश्चिताम् ॥ २०६ ॥
क्षणेन ज्वलिते कालकुमारे सैनिकैस्ततः । तन्मोहाचरितं सर्वं, गत्वा राज्ञे निवेदितम् ॥ २०७ ॥
यदवः प्रययुः क्वापि, दूरमित्युदिते चरैः । वृद्धालोचेन तन्मेने, देवतामोहितं नृपः ॥ २०८ ॥
यादवानामथ पथि, व्रजतामतिमुक्तकः । चारणर्षिः समुद्रेण, पृष्टो राज्ञैवमब्रवीत् ॥ २०९ ॥
द्वाविंशस्तीर्थकृन्नेमिर्भावी तव तनूद्भवः । राम-कृष्णौ द्विषो[3] जिष्णू, वलविष्णू भविष्यतः ॥ २१० ॥
तन्मा भैषीर्द्विपद्भ्यस्त्वमित्युदीर्य गते मुनौ । सुराष्ट्रामण्डलं प्राप, समुद्रविजयो नृपः ॥ २११ ॥
आवासेषु मंदेषु, रैवतात् प्रत्युगुत्तरे । सत्याऽसूत सुतौ तत्र, भानु-भामरसंज्ञकौ ॥ २१२ ॥
तत् क्रोष्टुकिगिराऽभ्यर्च्य, हरिर्लहरिमालिनम् । तत्राष्टमं तपस्तेपे, प्रत्यक्षः सुस्थितोऽभवत्[4] ॥ २१३ ॥

पाञ्चजन्य-सुघोषाख्यौ, शङ्खौ सात्वत-कृष्णयोः ।
सुस्थितः प्राभृतीकृत्य, जगाद किमहं स्मृतः ? ॥ २१४ ॥
कृष्णोऽवदत् पुराऽभूद् या, विष्णूनां द्वारका[5] पुरी ।
छादिता सा त्वयाऽम्भोभिस्तां मह्यं प्रकटीकुरु ॥ २१५ ॥

अथेत्याकर्ण्य देवेन, विज्ञप्तस्तेन वासवः । आदिश्य धनदं तत्र, कारयामास तां पुरीम् ॥ २१६ ॥
नवयोजनविस्तारां, दैर्घ्ये द्वादशयोजनीम्[6] । द्वादशा-ष्टादशकरपृथुलोत्तुङ्गवप्रिकाम्[7] ॥ २१७ ॥[8]
रत्नोत्करस्फुरत्तेजःपुञ्जपिञ्जरिताम्बराम् । चकार जिनचैत्यानां, श्रेणिं तत्र धनाधिपः ॥ २१८ ॥
प्रासादौ सर्वतोभद्र-पृथिवीजयसंज्ञकौ । पुरान्तर्विदधे श्रीदः, श्रीदामोदर-रामयोः ॥ २१९ ॥
तत्पुरश्च सुधर्मायाः, सधर्माणं सभां व्यधात् । चैत्यं चाष्टोत्तरशतश्रीजैनप्रतिमान्वितम् ॥ २२० ॥
समुद्रविजयादीनां, सर्वेषामपि भूभुजाम् । प्रासादयोस्तयोः पार्श्वे, प्रासादाः कोटिशः कृताः ॥ २२१ ॥

---

१ °रपि प्रभुम् खंता० ॥ २ °देवास्तच्चितां पाता० । °देव्यस्तु, चितां गंता० ॥ ३ द्विषां जि° पाता० ॥ ४ चक्रेऽष्टमं तपस्तेन, प्र° मंता० पाता० ॥ ५ द्वारिका गंता० ॥ ६ °जनाम् खंता० पाता० ॥ ७ °वप्रकाम् पाता० ॥ ८ एतदनन्तरं पाता० युग्मम् इति वर्तते ॥

अथ दृष्ट्वा तमुत्कृष्टमुष्टिकं मौष्टिकं हली । अधावत क्रुधा विष्णुपराभवभिया विभीः ॥ १७० ॥
स्थिरताया व्यर्थतां नाम, नयन्तः क्रमसङ्क्रमैः । अथो युयुधिरे विष्णु-चाणूर-बल-मौष्टिकाः ॥ १७१ ॥
कंसे यियासौ कीनाशपुराय प्रहितौ पुरः । तौ मल्लावथ शौरिभ्यां, मार्गालोकपराविव ॥ १७२ ॥
इमौ हत हत क्षिप्रं, सह नन्देन गोमिना । वदन्तमिति भी-कोपद्विगुणस्फुरिताधरम् ॥ १७३ ॥
फालाकान्तमहामञ्चः, सञ्चरन् पञ्चवक्त्रवत् । केशेषु केशवः कंसं, कृष्ट्वाऽलुलुठदग्रतः ॥ १७४ ॥
॥ युग्मम् ॥
अथ कृष्णं प्रति क्रुद्धाः, कंसगृध्रा महीभुजः । मञ्चस्तम्भायुधेनोच्चैर्बलेन दलिता बलात् ॥ १७५ ॥
कृष्णोऽपि रोपितपदः, शिरस्युरसि च क्षणात् । कंसं क्रोशन्तमत्यन्तमजघातं जघान तम् ॥ १७६ ॥

भयस्पृशाऽधिकं सेना, कंसेनाऽऽनायि या पुरा ।
जरासन्धेरिता साऽपि, योद्धुं क्रोधादधावत ॥ १७७ ॥

तासु सन्नह्यमानासु, वाहिनीष्वर्धचक्रिणः । त्रासं दिदेश सन्नद्धः, समुद्रविजयः स्वयम् ॥ १७८ ॥
यदवोऽथ दवोदग्रमहसः सहसा ययुः । सदनं वसुदेवस्य, समुद्रविजयादयः ॥ १७९ ॥
चुम्बन्तं लालयन्तं च, राम-दामोदरौ मुदा । किमेतदिति पप्रच्छ, वसुदेवं धराधवः ॥ १८० ॥
देवकीदयितेनाथ, कथितेऽस्मिन् कथानके । स्वाङ्केऽधिरोप्य तौ धीरौ, राजा चिरमलालयत् ॥ १८१ ॥
साकं तदुग्रसेनेन, काराकृष्टेन भूभुजा । कंसाय यमुनानद्यां, समुद्राद्या जलं ददुः ॥ १८२ ॥
हते कंसाहिते पित्रा, देयं पत्युर्जलं मया । इति जीवयशाः सन्धां, जरासन्धात्मजा व्यधात् ॥ १८३ ॥
मथुरायामथो राम-कृष्णानुज्ञावशंवदः । उग्रसेनं धराधीशं, समुद्रविजयो व्यधात् ॥ १८४ ॥
मुरारिरुग्रसेनेन, दत्तां पर्यणयत् ततः । सत्यभामां प्रमोदाम्रां, क्रोष्टुकिप्रथिते दिने ॥ १८५ ॥
ज्ञात्वा तं कंसवृत्तान्तमथ जीवयशोमुखात् । क्रोधबन्धाज्जरासन्धः, सन्धां यदुवधे व्यधात् ॥ १८६ ॥
दूत्येन सोमकक्ष्मापः, समुद्रविजयं प्रति । जरासन्धनिदेशेन, जगाम मथुरापुरीम् ॥ १८७ ॥
यदुराजं सभाभाजं, निजगाद स धीरधीः । कंसद्विषौ स ते स्वामी, याचते राम-केशवौ ॥ १८८ ॥
तौ समर्प्य भवन्तोऽपि, विभवन्तु विभूतिभिः । उच्छिचिरनयोर्युक्ता, निजप्राभवरोगयोः ॥ १८९ ॥

अथाऽवदत् क्रुधाकम्प्रः, सोमकं प्रति भूपतिः ।
आभ्यां भ्रूणवधात् पापी, निन्ये कंसो यमौकसि ॥ १९० ॥

प्राणप्रियाविमौ बालौ, नार्पयिष्यामि सर्वथा । विरोधेऽस्मिन् जरासन्धो, न भव्यं भाणयिष्यति ॥ १९१ ॥
अथाऽऽह सोमकस्तस्मिन्, हते जामातरि प्रिये । त्रिखण्डक्ष्मापतिः क्रुद्धस्तेन युक्तो न विग्रहः ॥ १९२ ॥
एतौ पटीमिव क्षिप्त्वा, यूयं जगति जीवत । क्रोधोद्धुराज्जरासन्धगन्धसिन्धुरतोऽधुना ॥ १९३ ॥
अथावददमुं दीप्तः, कोपनो गोपनायकः । नास्माकं स प्रभुस्तस्य, राज्ञस्तु प्रभवो वयम् ॥ १९४ ॥
पियो यमस्य कंसोऽभूत्, तदायातु रयादयम् । यथाऽमुं तस्य जामातुर्मेलयामि समुत्सुकम् ॥ १९५ ॥
गच्छ रे । मत्सरे बाढं, त्वमस्मान् मास्म रोपय । मास्म भूः स्वविमोर्मृत्युपथप्रस्थानडिण्डिमः ॥ १९६ ॥

---

१ °प्रसादसा सहसा ययुः पाता० ॥ २ °दरौ तदा संता० ॥ ३ °राधिपः संता० पाता० ॥ ४ तौ बालौ, रा° संता० ॥ ५ नया, स° संता० ॥ ६ दौत्ये° संता० ॥ ७ °धुरां प्रति संता० । °धुरां पुरीम् पाता० ॥ ८ पापो, निन्ये संता० । पापान्निन्ये पाता० ॥

त्रयोदशः सर्गः ।
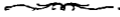
प्रद्युम्नकुमारचरितम्

ददन्मुदं दशार्हाणां, तस्यां हलियुतो हरिः । चिरं चिक्रीड सहितो, यादवैर्द्विड्लतादवैः ॥ १ ॥
तदन्तर्नेमिनाथोऽपि, बाल्यं साफल्यमानयत् । त्रिज्ञानवानपि क्रीडारसैर्यदुमदप्रदः ॥ २ ॥
आजन्म मन्मथजयी, निर्विकारमनाः क्रमात् । श्रीनेमिर्यौवनं प्राप, दशचापोन्नताकृतिः ॥ ३ ॥
पितृ-भ्रातृ-सुहृद्वर्गैः, प्रार्थ्यमानोऽप्यहर्निशम् । न मेने नेमिनाथस्तु, पाणिग्रहमहोत्सवम् ॥ ४ ॥
अन्येद्युः केलिवल्लीनां, नीरदो नारदो मुनिः । पर्यटन्नेत्य गोविन्दार्चितो भामागृहं ययौ ॥ ५ ॥
तत्रानभ्युत्थितायां तु, दर्पणालोककौतुकात् । क्रुद्धो दध्यौ ददाम्यस्याः, सापत्न्यमिति नारदः ॥ ६ ॥

अथ भीष्मकभूपालसुतायै कुण्डिने पुरे ।
रुक्मिण्यै रुक्मिसोदर्यै, व्याख्यात् कृष्णगुणान् मुनिः ॥ ७ ॥

[3]तस्याः कृष्णानुरक्ताया, रूपं चित्रपटस्थितम् । कृष्णाय दर्शयामास, नेत्रपात्रामृतं मुनिः ॥ ८ ॥
कृष्णस्तदनुरक्तोऽथ, सत्कृत्य मुनिपुङ्गवम् । रुक्मिणे रुक्मिणीयाच्ञा-हेतोर्दूतं नियुक्तवान् ॥ ९ ॥
दूतेन रुक्मिणीं रुक्मी, प्रार्थितोऽभिदधौ हसन् । शिशुपालाय देयाऽसौ, न तु गोकुलरक्षिणे ॥ १० ॥

इत्युक्त्वाऽस्मिन् गते दूते, रुक्मिणी कृष्णरागिणी ।
पितृष्वसा सहाऽऽलोच्य, न्ययुङ्क्त हरये चरम् ॥ ११ ॥

माघे मासि सिताष्टम्यां, वने नागार्चनच्छलात् । मामभ्युपेयुषीं हर्तुमागन्तव्यं त्वया रयात् ॥ १२ ॥

वचः श्रुत्वेति रुक्मिण्याः, दूतात् प्रीतो जनार्दनः ।
आहूतः शिशुपालस्तु, रुक्मिणा रुक्मिणीकृते ॥ १३ ॥

रामेण सह सङ्केतदिने गरुडकेतनः । आययौ कुण्डिनोद्याने, तत्राथ रथिना रथी ॥ १४ ॥
इतोऽपि रुक्मिणी नागपूजाव्याजेन निःसृता । पितृष्वसाऽप्यनुमता, रथं कृष्णस्य शिश्रिये ॥ १५ ॥
अथ स्वदोषमोषाय, सपूत्कारं पितृष्वसा । रुक्मिणेऽकथयज्जह्रे, रुक्मिणी हरिणा हठात् ॥ १६ ॥
पाञ्चजन्य-सुघोषाख्यौ, शङ्खावापूर्य निर्भरम् । हृत्वा च रुक्मिणीं कृष्ण-रामावचलतां ततः ॥ १७ ॥
अपहारं स्वसुः श्रुत्वा, रुक्मी रोषारुणेक्षणः । शिशुपालान्वितोऽचालीत्, कृष्णस्यानुपदं तदा ॥ १८ ॥
तस्थौ रामोऽथ युद्धाय, ययौ तूर्णं तु केशवः । रथेन रुक्मिणीनेत्रस्पर्द्धातरलवाजिना ॥ १९ ॥
रामस्तदनु सङ्ग्रामकुशलो मुशलोद्धतः । ममन्थारिबलं शुण्डाचण्डो ह्रदमिव द्विपः ॥ २० ॥

---

१ °यन् खंता० पाता० ॥ २ °हर्दिवम् खंता० पाता० ॥ ३ तस्यां कृष्णानुरक्तायां, रूपं पाता० ॥ ४ °थ, पूजयित्वा तु नारदम् पाता० ॥ ५ माघमासे सिता° खंता० । सिताष्टम्यामहं माघे, मासे नागार्चनच्छलात् । वनमेष्यामि मां हर्तुं° पाता० ॥ ६ कृष्णस्य रथमारुहत् पाता० ॥ ७ तां हृत्वा रुक्मि° खंता० पाता० ॥ ८ ततः खंता० ॥ ९ तूर्णं जनार्दनः पाता० ॥

तत् पीते वाससी मुक्तामालां मुकुट-कौस्तुभौ। गरुडाङ्कं रथं शार्ङ्गं, धन्व कौमोदकीं गदाम् ॥ २२२ ॥
अक्षय्यबाणौ शरधी, नन्दकासिं च विष्णवे। ददौ श्रीदोऽथ रामाय, वनमालां हलं धनुः ॥ २२३ ॥
तालध्वजं रथं तूणौ, मुशलं नीलवाससी । अर्हाणि च दशार्हेभ्यो, रत्नान्याभरणानि च ॥ २२४ ॥
मत्वाऽथ यदवो युद्धे, बलवन्तं बलानुजम् । अपरोदधिपर्यन्तेऽभ्यषिञ्चन् हर्षनिर्भराः ॥ २२५ ॥
रथावारुह्य सिद्धार्थ-दारुकाभिधसारथी । प्रविष्टावुत्सवोद्दामां, राम-दामोदरौ पुरीम् ॥ २२६ ॥

आसेदुः सदनान्यथो निजनिजान्येते जवाद् यादवा,
यक्षाधीश्वरदर्शितानि मणिभिः क्लृप्तानि लक्ष्मीमयैः ।
रत्नस्तम्भतलार्पितप्रतिकृतीन् यत्रावलोक्य प्रभून्,
मुह्यन्तः प्रणमन्ति जल्पितरवैर्ज्ञात्वा परं सेवकाः ॥ २२७ ॥

॥ इति श्रीविजयसेनसूरिशिष्यश्रीमदुदयप्रभसूरिविरचिते श्रीधर्माभ्युदयनाम्नि श्रीसङ्घपतिचरिते लक्ष्म्यङ्के महाकाव्ये कृष्णराज्यवर्णनो नाम द्वादशः सर्गः ॥

शश्वच्चलाऽपि किल कृष्णमुखं कृपाणे,
पाणौ सरोजमुखमिन्दुमुखं मुखे च ।
भद्रेभकुम्भमुखमंसयुगे च लब्ध्वा,
लक्ष्मीः स्थिराऽजनि चिरादिह वस्तुपाले ॥ १ ॥

॥ ग्रन्थाग्रम् २३१ । उभयम् ४१७४ ॥

---

१ उभयं ४२४९. पाता० ॥

इतश्च रुक्मिणीसौधे, हरिः सिंहासने स्थितः । अपश्यत् पुत्रमानाय्य, विभाजितविभाकरम् ॥ ४६ ॥
आनन्दाम्बुधिनिर्मग्नो, निजगाद जनार्दनः । प्रद्युम्न इति तं नाम्ना, धाम्नां सीमा सुतो हि सः ॥ ४७ ॥
ज्योतिष्कः पूर्ववैरेण, धूमकेतुस्तदा सुतम् । तं कृष्णाद् रुक्मिणीवेषो, हृत्वा वैताढ्यमभ्यगात् ॥ ४८ ॥
तं चूतरमणोद्याने, बालं टङ्कशिलोपरि । एष क्षुधातुरत्वेन, म्रियतामित्यमुञ्चत ॥ ४९ ॥
असावनपमृत्युस्तच्चरमाङ्गतया शिशुः । अबाधितोऽपतद् भूरिपर्णाकीर्णमहीतले ॥ ५० ॥
गच्छतः स्वपुरं कालसंवरस्य पुरान्तरात् । विमानमस्खलत् प्रातस्तत्रैव व्योमचारिणः ॥ ५१ ॥
अथाधोदत्तदृष्टिस्तं, दृष्ट्वा बालं रविच्छविम् । पत्न्यै कनकमालायै, पुत्र इत्यार्पयत् खगः ॥ ५२ ॥
अथाऽऽख्यन्मेघकूटाख्ये, खेचरः स्वपुरे गतः । गूढगर्भाऽधुनैवामुं, मत्पत्नी सुषुवे सुतम् ॥ ५३ ॥
पुत्रजन्मोत्सवादूर्द्ध्वं, संवरः सुदिने व्यधात् । तस्य प्रद्युम्न इत्याख्यां, दिक्प्रद्योतनतेजसः ॥ ५४ ॥
अथैत्याप्रच्छि रुक्मिण्या, श्रीगोविन्दः क्व नन्दनः ? । अधुनैवाग्रहीः पुत्रं, हरिरित्युत्तरं ददौ ॥ ५५ ॥
केनापि च्छलितोऽसीति, भाषमाणाऽथ रुक्मिणी । पपात मूर्छिता भूमौ, लब्धसंज्ञा रुरोद च ॥ ५६ ॥
यदुभिः पद्मवन्म्लानं, भास्वत्यस्मिन् गते सुते । कुमुद्वतीव भामा तु, मुदिता सपरिच्छदा ॥ ५७ ॥
आसीय नारदायाथ, किमेतदिति पृच्छते । आख्यत् सर्वं हरिर्दुःखी, शुद्धिं वेत्सीति चावदत् ॥ ५८ ॥

अथाऽऽह नारदो ज्ञानी, पुराऽऽसीदतिमुक्तकः ।
अधुना स गतो मुक्तिं, न ज्ञानं भारतेऽस्ति तत् ॥ ५९ ॥

तदहं प्राग्विदेहेषु, पृष्ट्वा सीमन्धरं जिनम् । कथयिष्यामि ते सर्वमित्युक्त्वा नारदो ययौ ॥ ६० ॥
गत्वाऽथ ज्ञानिनिःसीमं, सीमन्धरजिनेश्वरम् । प्रणम्य नारदोऽपृच्छत्, कृष्णसूनुगतिप्रथाम् ॥ ६१ ॥
अथाऽऽख्यत् तीर्थकृद् धूमकेतोः प्राग्वैरचेष्टितम् । विद्याधरगृहे वर्द्धमानं च हरिनन्दनम् ॥ ६२ ॥
पृच्छते नारदायाथ, तस्य प्राग्वैरकारणम् । स्वामी सीमन्धरस्तत्र, सर्वमित्थमचीकथत् ॥ ६३ ॥

प्रद्युम्नस्य पूर्वभवचरितम्

अस्ति हस्तिपुरं जम्बूद्वीपे धरणिभूषणम् ।
विष्वक्सेनोऽत्र भूपोऽभूद्, विष्वक्सेनोद्धृताहितः ॥ ६४ ॥

मधु-कैटभनामानौ, तस्याभूतामुभौ सुतौ । भेजे राजा व्रतं राज-युवराजौ विधाय तौ ॥ ६५ ॥
छलात् पल्लीपतिर्भीमस्तयोर्देशमुपाद्रवत् । तं हन्तुमथ भूपालश्चचालाचलविक्रमः ॥ ६६ ॥
मार्गे वटपुरेन्द्रेण, कनकप्रभभूभुजा । मधुर्भोजन-वस्त्रादिदानैः सानन्दमर्चितः ॥ ६७ ॥
तत्रासौ वीक्ष्य चन्द्राभां, कनकप्रभवल्लभाम् । चेतस्तत्रैव मुक्त्वाऽगाद्, भीमं पल्लीपतिं प्रति ॥ ६८ ॥
मधुः पल्लीपतिं हत्वा, कण्ठीरव इव द्विपम् । चलितः पुनरामन्त्रि, कनकप्रभभूभुजा ॥ ६९ ॥
अथाऽयच्छति चन्द्राभां, याञ्चया कनकप्रभे । बलात्कारेण तां निन्ये, मधुर्मधुसखातुरः ॥ ७० ॥
चन्द्राभाविरहाद् भेजे, वैकल्यं कनकप्रभः । मधुस्तु हास्तिनपुरं, प्राप्य रेमे समं तया ॥ ७१ ॥

---

१ °त्यस्तद्धृते खंता० ॥ २ °थ, तदा सर्वमची° पाता० । °त्र, °सर्वमेवम° खंता० ॥
३ भीमप° खंता० ॥

सह सेनासहस्रेण, शिशुपालः पलायत । राममालोक्य रुक्मी तु, युद्धैकश्रद्धया स्थितः ॥ २१ ॥
कृत्वाऽथ विरथं रामो, रुक्मिणं रणमूर्धनि । क्षिप्रं क्षुरप्रनिर्लून-केशं तमिदमभ्यधात् ॥ २२ ॥

त्वं मत्कनिष्ठकान्ताया, रुक्मिण्याः सोदरो यतः ।
जीवन् मुक्तोऽसि तत् केशच्छेदैश्छुटितमस्तकः ॥ २३ ॥

रुक्मी कृतशिरस्तुण्डमुण्डनः कुण्डिने पुरे । न जगाम ह्रिया चक्रे, तत्र भोजकटं पुरम् ॥ २४ ॥
इतश्च दर्शयामास, रुक्मिण्यै द्वारकां हरिः । न्यवेदयच्च पूरेषा, कृता श्रीदेन मत्कृते ॥ २५ ॥
सफलीकुरु हेलाभिरिहोपान्तावनीवनीः । लीलाशैल-सरो-वापी-सिन्धुबन्धुरिताः सदा ॥ २६ ॥
अथाऽऽह रुक्मिणी स्वामिन्नहमेकाकिनी हृता । परिवारं ततो देहि, सत्यभामादिवन्मम ॥ २७ ॥
कार्या तदधिकाऽसीति, प्रतिपद्य जनार्दनः । रुक्मिणीममुचद् भामाधामान्तिकनिकेतने ॥ २८ ॥
परिणीयाथ गान्धर्वविवाहेन बलानुजः । क्षणवत् क्षणदां कृत्स्नामिमामरमयन्मुदा ॥ २९ ॥
अतिमुक्तमुनिः प्रापदन्यदा रुक्मिणीगृहम् । तन्मत्वा सत्यभामाऽपि, रभसा समुपागमत् ॥ ३० ॥

भावी मम सुतो नो वा ?, रुक्मिण्येत्युदितो मुनिः ।
जनार्दनसमो भावीत्युक्त्वा तां स ययौ तदा ॥ ३१ ॥

अथाऽऽह रुक्मिणीं भामा, कथितो मे सुतोऽमुना । तेन वादेन ते याते, हरिमन्योन्यकोपने ॥ ३२ ॥
अथ तत्राऽऽगतो धैर्यधुर्यो दुर्योधनो नृपः । भामा तमाह जातो मे, सूनुर्वोढा सुतां तव ॥ ३३ ॥
रुक्मिणीं सत्यभामां च, प्राह दुर्योधनो नृपः । प्राग् भावी तनयो यस्यास्तस्यै देया सुता मया ॥ ३४ ॥

अथाऽऽह भामा प्रथमं, यत्पुत्रः परिणेष्यते ।
तस्यै च्छित्त्वा शिरःकेशान्, द्वितीया स्वान् प्रदास्यति ॥ ३५ ॥
निश्चित्येदं तदा सत्या, रुक्मिणी च समान्तरे ।
तत् साक्षीचक्रतुः कृष्ण-राम-दुर्योधनादिकान् ॥ ३६ ॥
दृष्टः स्वप्नेऽथ रुक्मिण्या, विशन्नास्ये सितो वृषः ।
तद्विचारं हरिर्व्याख्यद्, यद् भावी तेऽद्भुतः सुतः ॥ ३७ ॥
दासीमुखादिति श्रुत्वा, सत्याऽप्यागत्य कल्पितम् ।
आचख्यौ हरये स्वप्नं, यन्ममाऽऽस्ये गजोऽविशत् ॥ ३८ ॥

तं मत्वाऽपि हरिः स्वप्नं, कल्पितं जल्पितैर्मितैः । मा भूदस्या विषादस्तद्, व्याख्यद् वरसुतोद्भवम् ॥ ३९ ॥
अथो महर्द्धिकः कोऽपि, महाशुक्राच्च्युतः सुरः । उदरे रुक्मिणीदेव्यास्तेजोरविरवातरत् ॥ ४० ॥
अथ सत्याऽप्यधाद् गर्भमुदरं ववृधे च तत् । यथावत्योदरीयाऽस्यात्, प्रच्छन्नगर्भा तु रुक्मिणी ॥ ४१ ॥
कृष्णमेत्यान्यदा सत्या, प्राह सत्या न रुक्मिणी । उदरं मेदुरं नास्याः, पश्य गर्भं पुनर्मम ॥ ४२ ॥
वदन्त्यामिति भामायां, दासी कृष्णमवर्धयत् । पुत्रोऽभूद् देव ! रुक्मिण्या, रुक्मपुञ्जसमद्युतिः ॥ ४३ ॥
[illegible], कर्णपूरमदाच्युतः । उत्थाय रुक्मिणीगेहं, प्रति प्रचलितो मुदा ॥ ४४ ॥
[illegible] सदने स्थिता, यथा सत्याऽपि पार्श्वगा । [illegible] सा भानुकं सुतम् ॥ ४५ ॥

१ [illegible] ॥ २ [illegible] ॥ ३ [illegible] ॥ ४ [illegible] ॥ ५ [illegible] ॥

साऽथ दुर्गन्धतां मत्वा, स्वस्मिन् मुनिजुगुप्सया । जातजातिस्मृतिः प्रीता, क्षमयामास तं मुनिम् ॥ ९५ ॥

धर्मश्रीनामिकार्यायाः, श्राविका साऽर्पि साधुना ।
श्राद्धः साधर्मिकत्वेनान्वग्रहीद् गाङ्गिलोऽथ ताम् ॥ ९६ ॥

एकान्तरोपवासान् सा, द्वादशाब्दीं विधाय तत् । विपद्यानशनादेव, देवाधिपमहिष्यभूत् ॥ ९७ ॥
च्युताऽसौ रुक्मिणी जाता, षोडशाब्दान्यसौ पुनः । मयूरचरितात् पुत्रविरहार्ता भविष्यति ॥ ९८ ॥
श्रुत्वेत्युत्पत्य वैताढ्ये, बालं तं वीक्ष्य नारदः । एत्य सर्वं तदावेद्य, रुक्मिणी-कृष्णयोर्ययौ ॥ ९९ ॥
अन्ते षोडशवर्षाणां, सूनुसङ्गमशंसिना । जिनेशवचसा सुस्थावस्थातामथ दम्पती ॥ १०० ॥
समुद्रस्य सभाभाजोऽन्येद्युः कुन्ती सहोदरा । सवधूकैः सुतैः सार्द्धं, पञ्चभिः समुपागता ॥ १०१ ॥
अथार्चित्वा नरेन्द्राय, किमेतदिति पृच्छते । कुन्ती यथातथं प्राह, किमकथ्यं सहोदरे? ॥ १०२ ॥
राज्यं युधिष्ठिरे न्यस्य, पाण्डुभूपो व्यपद्यत । नकुलं सहदेवं च, मुक्त्वा माद्री तमन्वगात् ॥ १०३ ॥
प्रियौ युधिष्ठिराद् भीमादर्जुनादपि तन्मया । इमौ संवर्द्धितौ माद्रीपुत्राविन्दु-रविच्छवी ॥ १०४ ॥
धार्तराष्ट्रेन दुष्टेन, द्यूते दुर्योधनेन तत् । हारयित्वा वयं राज्यं, वने प्रास्थापयिष्महि ॥ १०५ ॥
अपि द्रुपदपुत्रीयं, जिता द्यूते वधूटिका । दुर्योधनेन मुक्ता द्राक्, भीमभ्रूभङ्गभीरुणा ॥ १०६ ॥
कौलं कालमिव क्षिप्त्वा, श्रुत्वा वः किल जीवतः । हृष्टाऽहमागता किञ्च, द्रष्टुं तौ राम-केशवौ ॥ १०७ ॥
इति श्रुत्वा समुद्रोऽपि, सहाऽक्षोभ्यादिसोदरैः । सुतैश्च राम-कृष्णाद्यैस्तां सपुत्रामपूपुजत् ॥ १०८ ॥
ददुर्यदूद्वहाः कुन्तीसुतेभ्यः स्वसुताः क्रमात् । लक्ष्मीवतीं वेगवतीं, सुभद्रां विजयां रतिम् ॥ १०९ ॥
इतः प्रद्युम्नमालोक्य, कलावन्तं सुयौवनम् । ऊचे कनकमाला सा, मदनज्वरजर्जरा ॥ ११० ॥
शंवरेण पथि भ्रष्टः, प्राप्तस्त्वं नासि मे सुतः । तन्मां भज स्मरप्राय!, माऽन्यथा मद्वचः कृथाः ॥ १११ ॥
विद्ये प्रज्ञप्ति-गौर्यौ च, गृहाण मम सन्निधौ । यथा मदीयपुत्रैस्त्वं, जातुचिन्नहि जीयसे ॥ ११२ ॥
श्रुत्वेति सोऽपि नाकृत्यं, करिष्यामीति निश्चयी । मत्वा तद्वाक्यमादाय, विद्ये धीमानसाधयत् ॥ ११३ ॥
माताऽसि पोषणाद् विद्यादानाच्च नियतं मम । इत्थं निषेधयामास, वृषस्यन्तीमिमामसौ ॥ ११४ ॥

तत् प्रद्युम्नः पुरोपान्ते, गतो वापीं कलम्बुकाम् ।
स्वनखैः स्वं विदार्याङ्गं, साऽपि कोलाहलं व्यधात् ॥ ११५ ॥

प्रद्युम्नेन कृतं सर्वमित्याचख्यौ सुतेषु सा । तेऽपि क्रुद्धा गता योद्धुं, प्रद्युम्नेन विनिर्जिताः ॥ ११६ ॥
धावंस्तत्पीडया जित्वा, शंवरोऽपि नभश्चरः । प्रद्युम्नेन निवेद्याऽथ, तत्कथां परितापितः ॥ ११७ ॥

---

१ °र्गन्धितां खंता० पाता० ॥ २ तयाऽर्पिता कचिद् ग्रामे, गाङ्गिलश्रावकस्य तत् इतिरूपमुत्तरार्धं पाता० ॥ ३ कालात् कालादिव ततः, श्रु° पाता० ॥ ४ किञ्चिद्, द्र° खंता० ॥ ५ °त्वा कुमारोऽपि, सहा° खंता० ॥ ६ संवरेण पथि भ्रष्टः, प्राप्तस्त्वं नासि मे सुतः । विद्ये प्रज्ञप्ति-गौर्याख्ये, गृहाण मम सन्निधौ ॥ १११ ॥ मन्यते मत्सुता नाथ!, त्वमजेयबलस्ततः । भजस्व मां स्मरप्राय!, माऽन्यथा मद्वचः कृथाः ॥ ११२ ॥ इतिरूपं श्लोकयुगलं पाता० वर्तते ॥ ७ °ति चिन्तयन् पाता० ॥ ८ °नात् त्वं नि° खंता० ॥ ९ रतं प्रार्थयमानां तां, प्रद्युम्नोऽथ न्यषेधयत् इतिरूपमुत्तरार्धं पाता० ॥ १० °न्ते, वापीं कलम्बुकां गतः पाता० ॥ ११ गतस्तत्पीडया धावन्, शंवरो पाता० ॥

उत्सूरागतिमन्येद्युः, पृष्टश्चन्द्राभया मधुः । पारदारिकवादेन, स्थितोऽस्मीदमवोचत ॥ ७२ ॥
चन्द्राभा प्राह को वादो ?, यत् पूज्याः पारदारिकाः ? । श्रुत्वेत्युक्तं नरेन्द्रेण, वध्या मे पारदारिकाः ॥ ७३ ॥
चन्द्राभाऽप्यवदत् पूज्यो, निश्चितं पारदारिकः । अत्रार्थे स्पष्टदृष्टान्तः, क्षोणीनाथस्त्वमेव मे ॥ ७४ ॥
आकर्ण्येति महीपालस्तपालोऽभूदधोमुखः । प्राप्तो राजपथे नृत्यन्नितश्च कनकप्रभः ॥ ७५ ॥
दुःखार्तं वीक्ष्य चन्द्राभा, स्ववियोगविसंस्थुलम् । अदीदृशद् दृशा बाष्परुद्धया मघवे धवम् ॥ ७६ ॥
तां प्रत्यर्प्य विधायाऽथ, मधुर्बन्धुसुतं नृपम् । सकैटभो व्रतं भेजे, मुनेर्विमलवाहनात् ॥ ७७ ॥
तीव्रं तप्त्वा तपः साधुवैयावृत्यकराविमौ । जातावनशनाद् देवौ, महाशुक्रे महर्द्धिकौ ॥ ७८ ॥

ज्योतिष्को धूमकेत्वाख्यो, मृत्वाऽभूत् कनकप्रभः ।
च्युत्वाऽभूत् तापसो मृत्वा, धूमकेतुरभूत् पुनः ॥ ७९ ॥

महाशुक्रान्मधुश्च्युत्वा, रुक्मिण्यां सोऽप्यजायत । प्राग्वैरं स्त्रीकृते धूमकेतु-प्रद्युम्नयोरिदम् ॥ ८० ॥
सूनुः षोडशवर्षान्ते, रुक्मिण्याः स मिलिष्यति । विद्या विद्याधरेन्द्राणां, हृद्या हृदि विनोदयन् ॥ ८१ ॥

किं पुत्रविरहः स्वामिन् !, रुक्मिण्याः षोडशाब्दिकः ? ।
नारदेनेति पृष्टः श्रीजिनेशः पुनरादिशत् ॥ ८२ ॥

रुक्मिण्याः पुत्रवियोगकारणगर्भं पूर्वभवचरितम्

मण्डले मगधाभिख्ये, जम्बूद्वीपस्य भारते । लक्ष्मीग्रामाभिधे ग्रामे, सोमदेवोऽजनि द्विजः ॥ ८३ ॥
लक्ष्मीवतीति तद्भार्या, कुङ्कुमार्द्रेण पाणिना । कदाऽप्युपवने स्पृष्ट्वा, मयूराण्डमशोणयत् ॥ ८४ ॥
तमौज्झदन्यवन्माता, यावत् षोडश नाडिकाः । मेघवृष्ट्या ततो धौतं, स्वीचकार स्वमण्डकम् ॥ ८५ ॥
भूयो लक्ष्मीवती याता, वने बालं कलापिनम् । तं निनाय गृहे शोकातुरायामपि मातरि ॥ ८६ ॥
धृत्वा षोडश मासान् सा, सकृपा स्वजनोक्तिभिः । नीत्वा तत्र वने मातुरातुरायाः पुरोऽमुचत् ॥ ८७ ॥
ब्राह्मण्या तत्प्रमादेन, बद्धं षोडशवार्षिकम् । कर्मेदं पुत्रविरहव्यथाप्रथितवेदनम् ॥ ८८ ॥
मुनिं समाधिगुप्तं साऽन्यदा भिक्षार्थमागतम् । गृहात् पूत्कृत्य निष्कास्य, कपाटौ पिदधे द्रुतम् ॥ ८९ ॥

सप्तमेऽह्नि गलत्कुष्ठीभूय व्रतिजुगुप्सया ।
सा विषण्णाऽग्निना मृत्वा, भवान् भूरीन् किलाऽभ्रमत् ॥ ९० ॥

भृगुकच्छतटे रेवातीरेऽभूद्धीवरात्मजा । त्यक्ता पितृभ्यां दौर्गन्ध्यात्, काणाऽसौ दुर्भगाभिधा ॥ ९१ ॥
उद्यौवनाऽन्यदाऽपश्यत्, कायोत्सर्गस्थितं मुनिम् । सेयं समाधिगुप्ताख्यं, शीतार्तं निर्भरे निशि ॥ ९२ ॥
असौ स्फीतेन शीतेन, निशायां मास्म बाध्यत । इति सार्द्रमनाः साधुं, तृणैः प्रावृणुते स्म तम् ॥ ९३ ॥
ननाम सा मुनिं प्रातर्धर्ममाख्यन्मुनिस्ततः । दृष्टोऽसि क्वचिदित्युक्तः, प्राग्भवानप्यचीकथत् ॥ ९४ ॥

---

१ °भार्त्तां धीं° भंना० ॥ २ प्रतिबुद्धो धिं° पाता० ॥ ३ श्लोकस्यास्य पूर्वार्धोत्तरार्धयोः भंना० पाता० पुस्तकयोर्विपर्यासो दृश्यते ॥ ४ सोमदेवोऽजनि ग्रामे, लक्ष्मीग्रामाभिधे द्विजः इतिरूपमुत्तरार्धं पाता० ॥ ५. स्वकाण्ड° पाता० ॥ ६ कर्म स्त्रपुत्रविरहव्यथावेधमिदं तदा इतिरूपमुत्तरार्धं पाता० ॥ ७ °न्मुनिः पुनः पाता० ॥

मुने ! प्रसीद तद् ब्रूहि, कदा भावी स वासरः । यत्र पुत्रो ममोत्सङ्गसङ्गमङ्गीकरिष्यति ? ॥ १४५ ॥

मुनिरूचे क्षुधार्तोऽहं, तत् किञ्चिद् देहि भोजनम् ।
कथयामि यथा सुस्पस्त्वत्पुत्रागमवासरम् ॥ १४६ ॥

अथाऽऽह रुक्मिणी कृष्णमोदकाः सन्ति नापरम् ।
ते तु नान्यस्य जीर्यन्ते, तन्मुने ! किं ददामि ते ? ॥ १४७ ॥

किञ्चिन्मे दुर्जरं नेति, जल्पते साधवेऽथ सा । एकैकं मोदकं प्रादादाद कृत्स्नान् क्रमादसौ ॥ १४८ ॥

इतोऽपि सत्यभामानुयुक्ताः पटलिकाभृतः ।
रुक्मिणीमेत्य विजितान्, दास्यः केशान् ययाचिरे ॥ १४९ ॥

भृत्वा पटलिकास्तासामेव केशैः स कृष्णभूः । स्मितस्ताः प्रेषयामास, मुण्डितस्वामिनीसमाः ॥ १५० ॥

ताः प्रेक्ष्य कुपिता सत्या, प्रैषीज्झगिति नापितान् ।
कुट्टितास्ते कुमारेण, रुक्मिणीकुन्तलार्थिनः ॥ १५१ ॥

अथ भामा सभामेत्य, कोपना प्राह केशवम् । प्रयच्छ रुक्मिणीकेशान्, यदभूः प्रतिभूरिह ॥ १५२ ॥

रामो दामोदरेणाथ, केशार्थं प्रेषितो ययौ । कृष्णीभूय तदा चास्थात्, कुमारो मातुरन्तिके ॥ १५३ ॥

बलोऽवलोक्य तत् सर्वं, वलितो हृदि लज्जितः । मां प्रेष्य त्वमगास्तत्र, कृष्णमित्याह कोपतः ॥ १५४ ॥

श्रुत्वेति हलिनो वाचं, सत्यभामाऽतिकोपना । सर्वे कपटिनो यूयमित्युक्त्वाऽऽत्मगृहं गता ॥ १५५ ॥

प्रद्युम्नो नारदेनासौ, रुक्मिण्यै कथितस्ततः । तदा स्वं रूपमास्थाय, स्वजनन्यै नमोऽकरोत् ॥ १५६ ॥

स्तनयोरुज्ज्वलं प्रीत्या, साञ्जनं नेत्रयोः पयः । मेने मूर्ध्नि पतद्गङ्गा, यमी स्नानं नमन्नसौ ॥ १५७ ॥

न शाप्योऽहं पितुर्यावच्चित्रं किञ्चन दर्शये । इत्युक्त्वा मातरं मायी, रथे न्यस्य चचाल सः ॥ १५८ ॥

हरेऽहं जीवतः कान्तां, हरेर्दंष्ट्रां हरेरिव । स इत्याख्यान् जने शङ्खं, दध्मौ दुर्धरविक्रमः ॥ १५९ ॥

मुमूर्षुः कोऽत्र मूर्खोऽयं ?, वदन्निति बलान्वितः । कोपी गोपीधवो धन्व, विधुन्वन्नभ्यधावत ॥ १६० ॥

कैशवः शैशवे तिष्ठन्, मंक्त्वा कृष्णचमूरमूः । चिरान्निरायुधं चक्रे, वैकुण्ठं कुण्ठितोद्यमम् ॥ १६१ ॥

तदाऽऽगतं हरिं प्रीतिभारदो नारदोऽवदत् । मा विषादीरसौ युद्धं, विधत्ते रुक्मिणीसुतः ॥ १६२ ॥

श्रुत्वेति सप्रमोदस्य, गोविन्दस्य पदाब्जयोः । प्रद्युम्नो न्यपतत् कुर्वन्नश्रुमुक्ताफलार्चनम् ॥ १६३ ॥

प्रविवेश गतावेशः, केशवः सबलः पुरीम् । प्रद्युम्न-रुक्मिणीरोचमानो मानधनाग्रणीः ॥ १६४ ॥

प्रद्युम्नहृतमुक्तां तां, दुर्योधननृपात्मजाम् । पर्यणैषीत् ततः सत्यातनुभूर्भानुकाभिधः ॥ १६५ ॥

रौक्मिणेयविभूत्याऽथ, भामां दुर्मनसं हरिः ।
अपृच्छत् किं विषण्णाऽसि, पूरये किं तवेहितम् ? ॥ १६६ ॥

भामा प्राह मयि प्रीतो, यदि देव ! प्रयच्छ तत् । प्रद्युम्नमिव सद्युम्नं, नन्दनं चित्तनन्दनम् ॥ १६७ ॥

प्रत्यक्षीकृत्य तपसा, गीर्वाणं नैगमेषिणम् । हरिर्ययाचे भामायां, प्रद्युम्नप्रतिमं सुतम् ॥ १६८ ॥

---

१ °दादादत् कृ° खंता० ॥ २ कुण्टिता° खंता० ॥ ३ °गत्य ह° खंता० पाता० ॥ ४ पपात पुरतोऽभीतः, प्रद्युम्नो मन्मथद्युतिः इतिरूपमुत्तरार्धं पाता० ॥ ५ तां, कन्यां पर्यणयत् ततः । दुर्योधनसुतां भामानन्दनो भानुकाभिधः इत्येवंरूपः श्लोकः पाता० ॥

प्राप्तोऽथ नारदमुनिः, प्रद्युम्नाय न्यवेदयत् ।
आदितः सकलां जन्म-वियोगादिकथाप्रथाम् ॥ ११८ ॥
सूनुः सम्प्रति भामाया, भानुकः परिणेष्यति । ततस्त्वज्जननीकेशान्, सा सपत्नी ग्रहीष्यति ॥ ११९ ॥
श्रुत्वेति द्वारिकामागात्, कृष्णसूनुः सनारदः । तूर्णं विमानमारुह्य, कृतं प्रज्ञप्तिविद्यया ॥ १२० ॥
विमाने नारदं मुक्त्वा, स्वयमुत्तीर्य कृष्णभूः । तत्रैव भानुकोद्वाह्यां, हृत्वा चिक्षेप कन्यकाम् ॥ १२१ ॥
निस्तृणा-ऽम्बुं हयीभूय, मर्कटीभूय निष्फलाम् । स सत्यावाटिकां कृत्वा, जातस्तुरगविक्रयी ॥ १२२ ॥
मूल्येनाहं ग्रहीष्यामि, पश्याम्यारुह्य वाजिनम् । जल्पते भानुकायेति, स तुरङ्गममार्पयत् ॥ १२३ ॥
आरूढोऽथ हयेनायमनायि भुवि भानुकः । विपक्कफलवद् वातावधूतद्रुमशाखया ॥ १२४ ॥
स[3] द्विजीभूय भामायाः, कुब्जां दासीमृजुं व्यधात् ।
प्रीतयाऽपि तयाऽदर्शि, भामायै कपटद्विजः ॥ १२५ ॥
तमाह भामा कुरु मां, रुक्मिणीतोऽपि रूपिणीम् ।
सोऽप्यूचे मुण्डिता भूत्वा, त्वं मषीमण्डिता भव ॥ १२६ ॥
तत् कृत्वा तद्गिरा भामा, रूपाय प्रगुणाऽभवत् । क्षुधितस्य न मे विद्या, स्फुरतीत्याह तु द्विजः ॥ १२७ ॥
भोक्तुं निवेशितः सर्वमन्नमाहृत्य घस्मरः । अतृप्त इव निर्यातः, कुपितः कपटद्विजः ॥ १२८ ॥
तद् बालसाधुवेषेण, रुक्मिण्याः सदनं ययौ । रुक्मिण्यां पीठहस्तायां, निविष्टः कृष्णविष्टरे ॥ १२९ ॥
एष कोऽपि न सामान्यो, मान्योऽयं दैवतैरपि । यदस्याविनयं सेहे, पीठाधिष्ठातृदेवता ॥ १३० ॥
ध्यात्वेति रुक्मिणी प्राह, वात्सल्योत्फुल्लया गिरा । बाल्ये ब्रूहि कार्येण, केनेदानीं त्वमागतः ? ॥ १३१ ॥
मुनिः प्राह क्षुधार्तोऽहं, षोडशाब्दानुपोषितः । पीतं मातुरपि स्तन्यं, न मया जन्मतोऽपि यत् ॥ १३२ ॥
इदानीं त्वामुपायातं, तन्मां कारय पारणम् । अथोचे रुक्मिणी हर्ष-विषादाकुलमानसा ॥ १३३ ॥
धन्यं मन्येऽहमात्मानं, मुने ! त्वद्दर्शनाञ्चितम् । धिक्करोमि तु सत्पात्रदानपुण्येन वञ्चितम् ॥ १३४ ॥
भूषे विषण्णा किं नाम, त्वमित्युक्तेऽथ साधुना । रुक्मिण्युवाच नोद्वेगादद्य किञ्चिदुपस्कृतम् ॥ १३५ ॥
विषादहेतुमेतेन, पृष्टा प्रोवाच सा पुनः । जातमात्रोऽपि पुत्रो मे, हृतः केनापि पापिना ॥ १३६ ॥
तत्सङ्गमार्थमाराद्धा, सुचिरं कुलदेवता । तथापि व्यर्थयत्नत्वादुपक्रान्तः शिरोबलिः ॥ १३७ ॥
गोत्रदेव्यपि तुष्टाऽथ, सहसादाह सा स्वयम् ।
वत्से ! धत्से मतिं कस्मात्, कर्म निर्मातुमीदृशम् ? ॥ १३८ ॥
अयं ते रुचिराकारः, सहकारः करिष्यति । अकाले दर्शितोद्दामप्रसूनः सूनुसङ्गमम् ॥ १३९ ॥
इत्याशातन्तुसन्तानसन्धर्षसंरुद्धजीविता । षोडशागमयं वत्सवत्सलाऽपि हि वत्सरान् ॥ १४० ॥
तदयं मदयन्नर्घैः, कोकिलांश्चूतपादपः । पुष्पितो मन्दभाग्याया, न पुनर्मे मनोरथः ॥ १४१ ॥
कुर्वेऽहं सर्वथा तासां, गवामप्यन्वहं स्पृहाम् । धयन्त्यकुण्ठितोत्कण्ठं, यासां स्तन्यं स्तनन्धयाः ॥ १४२ ॥
किं चन्दनेन ? पीयूषबिन्दुना किं ? किमिन्दुना ? । अङ्गजाङ्गपरिष्वङ्गपात्रं गात्रं भवेद् यदि ॥ १४३ ॥
अशनं व्यसनं वेषो, विषमाभरणं रणम् । भवनं च वनं जातं, विना वत्सेन मेऽधुना ॥ १४४ ॥

१ °मारुढः, मृ° वा० ॥ २ विमाने भा° पाता० ॥ ३ भामादासीं स्वजूचक्रे, द्विजीभूयाऽथ कुब्जिकाम् इतिरूपं पूर्वार्धं पाता० ॥ ४ °गमः संता० । ॥

विवाहितामिवालोक्य, तामपृच्छत् प्रगे नृपः । न किञ्चिदप्युवाचासौ, रुक्मी प्रकुपितस्ततः ॥ १८९ ॥
तावेवाहूय चण्डालौ, दत्त्वा तामन्वतप्यत । मत्वा प्रद्युम्न-साम्बौ तौ, तदवाप मुदं पुनः ॥ १९० ॥
ऊढवान् सुहिरण्याख्यां, साम्बो हेमाङ्गदात्मजाम् ।
नित्यं हन्ति स्म हेलासु, भामापुत्रं च भीरुकम् ॥ १९१ ॥
अथाऽऽख्यत् केशवो जाम्बवत्यै साम्बकुचेष्टितम् ।
सा प्राह पुत्रः सौम्यो [1]मे, दर्श्यतां कोऽस्य दुर्णयः ? ॥ १९२ ॥
[2]तस्याः प्रत्यायनायाथ, जाम्बवत्या समं हरिः । आभीरीभूय विक्रेतुं, तक्रं द्वारि पुरः स्थितः ॥ १९३ ॥
तक्रविक्रयिणौ साम्बो, नगरद्वारि वीक्ष्य तौ । समाकारयदाभीरीं, तक्रक्रयणकैतवात् ॥ १९४ ॥
सहाऽऽभीरेण साम्बं साऽन्वगाद् देवालयान्तिके ।
अन्तरप्रविशन्तीं तां, साम्बोऽकर्षत् करग्रहात् ॥ १९५ ॥
रे ! किमेतदिति क्रुध्यन्नाभीरः साम्बमाक्षिपत् । दृष्ट्वा स माता-पितरौ, तौ साक्षात् तूर्णमत्रसत् ॥ १९६ ॥
दृष्टेयं सोमता सूनोराह जाम्बवतीं हरिः । कीलिकां घटयन् साम्बः, प्रातः प्राप्तः समान्तरे ॥ १९७ ॥
क्षेप्याऽसौ ह्यस्तनकथाकर्तुरास्ये वदन्निदम् । अन्तः कोपं च हासं च, गोपीभर्तुरवर्धयत् ॥ १९८ ॥
दुर्न्याय इति कृष्णेन, साम्बो निष्कासितः पुरात् ।
तस्मै प्रज्ञप्तिविद्यां तत्, प्रद्युम्नो गच्छते ददौ ॥ १९९ ॥
अन्यदा भानुकं निघ्नन्, प्रद्युम्नोऽभापि भामया ।
रे वैरिन् ! कथमद्यापि, न पुराद् यासि साम्बवत् ? ॥ २०० ॥
गच्छ स्थेयं स्मशानान्तस्त्वदैतव्यं त्वया पुनः । यदा साम्बं करे धृत्वा, पुरान्तः स्वयमानये ॥ २०१ ॥
जगाम भामयेत्युक्तः, स्मशानं रुक्मिणीसुतः ।
मिलितस्तत्र साम्बोऽपि, स्वेच्छाचरणकौतुकी ॥ २०२ ॥
इतश्च रम्यमेकोनं, कन्याशतममेलयत् । भामा भीरुकृते किञ्च, कन्यामेकां स्म काङ्क्षति ॥ २०३ ॥
तन्मत्वा रुक्मिणीसूनुर्विकृत्य पृतनां स्वयम् । जितशत्रुर्नृपो जज्ञे, साम्बस्तस्य तु कन्यका ॥ २०४ ॥
तन्मत्वा भामया प्रैषि, पुरुषो जितशत्रवे । स गत्वा प्रार्थयामास, तां कन्यां भीरुहेतवे ॥ २०५ ॥
जितशत्रुरथ प्राह, तं भामाप्रेषितं नरम् । भामा यदि स्वयं हस्ते, कन्यामादाय गच्छति ॥ २०६ ॥
चेत् कारयति मत्पुत्रीकरं भीरुकरोपरि । पाणिग्रहणवेलायां, तद् ददामि सुतामहम् ॥ २०७ ॥
गत्वा तेन नरेणेति, कथिते सत्यदोषतः । तदूरीकृत्य मत्याऽपि, कन्यार्थं चलिता स्वयम् ॥ २०८ ॥
प्रज्ञप्तिं प्राह साम्बोऽपि, जनोऽसौ साम्बमेव माम् ।
जानातु देवि ! भामा तु, कन्यकां सपरिच्छदा ॥ २०९ ॥
अथाऽऽगत्य स्वयं सत्या, कन्यामादाय तां करे । साम्बरूपतया लोकैर्दृश्यमानां गृहेऽनयत् ॥ २१० ॥
भीरोः करोपरि करं, साम्बः कुर्वन्नुदूढवान् । धृत्वैकोनशतस्त्रैणकरान् दक्षिणपाणिना ॥ २११ ॥
अथ ताभिः समं साम्बः, प्रपेदे कौतुकालयम् । भीरुस्तेन भ्रुवाऽऽक्षिप्तः, सर्वं मातुर्न्यवेदयत् ॥ २१२ ॥

१ मे, शाठ्यं कथय दर्शय पाता० ॥ २ तच्छाठ्यदर्शनायाथ, विष्णुराभीररूपभाक् । स्वसरूपया जाम्बवत्या साम्बान्तिके स्थितः ॥ १९३ ॥ इतिरूपः श्लोकः पाता० ॥

दत्त्वा हारममुं यां त्वं, रमयिष्यसि तत्सुतः । अद्भुतो भवितेत्युक्त्वा, दत्त्वा हारं ययौ सुरः ॥ १६९ ॥
प्रज्ञप्त्या तदथ ज्ञात्वा, प्रद्युम्नः प्राह रुक्मिणीम् ।
आत्मतुल्यं सुतं मातस्तव यच्छाम्यहं पुनः ॥ १७० ॥
रुक्मिणी प्राह तुष्टाऽस्मि, त्वयैकेन क्षमोऽसि चेत् ।
जाम्बवत्याः सपत्न्या मे, तद् यच्छात्मसमं सुतम् ॥ १७१ ॥
कृतभामाकृतिं जाम्बवतीं तद् रुक्मिणीसुतः । जनार्दनं प्रति प्रैषीद्, भामावासकवासरे ॥ १७२ ॥
असत्यसत्ययाऽक्रीडद्, दत्त्वा हारं हरिस्तया । महाशुक्राच्च्युतं साऽपि, कैटभं गर्भगं दधौ ॥ १७३ ॥
तस्यामथ प्रयातायां, सत्यभामा समाययौ ।
कयाऽपि च्छलितोऽस्मीति, सहाक्रीडत् तया हरिः ॥ १७४ ॥
किञ्चिद्भीतोऽथ तन्मत्वा, विष्णुः प्रद्युम्नचेष्टितम् ।
भीरुरस्याः सुतो भावी, निश्चिकायेति चेतसि ॥ १७५ ॥
अथ पूर्णैर्दिनैर्जाम्बवत्याः साम्बः सुतोऽभवत् । प्रद्युम्नस्य प्रियः पूर्वजन्मतोऽपि हि बान्धवः ॥ १७६ ॥
भामाया भीरुको नाम, सूनुर्जातः सदाभयः । जज्ञिरे हरिपत्नीनामन्यासामपि सूनवः ॥ १७७ ॥
रुक्मिण्या प्रेषितोऽन्येद्युश्चरो भोजकटे पुरे । वैदर्भीं रुक्मिणः पुत्रीं, प्रद्युम्नार्थमयाचत ॥ १७८ ॥
रुक्मी वैरं स्मरन् प्राच्यमूचे तं कोपनश्चरम् । वरं म्लेच्छाय यच्छामि, सुतां न तु हरेः कुले ॥ १७९ ॥
अथास्मिन् रुक्मिणीदूते, रुक्मिणेति निराकृते । प्रद्युम्न-साम्बौ चण्डालरूपौ भोजकटं गतौ ॥ १८० ॥
तत्र रुक्मिणमुत्सङ्गे, वैदर्भीं दधतं सुताम् । पर्यप्रीणयतामेतौ, मधुरस्वरगीतिभिः ॥ १८१ ॥
तत्र च स्तम्भमुन्मूल्य, कोपात् कोऽपि द्विपो भ्रमन् । बली विलोडयामास, वासवेमनिभः प्रजाः ॥ १८२ ॥
वीक्ष्य द्विपं नृपः प्राह, य एनं कुरुते वशे । मुदे हृदीप्सितं तस्मै, यच्छाम्यहमसंशयम् ॥ १८३ ॥
गीतेन दन्तिनि प्रीते, चण्डालाभ्यां वशीकृते ।
हृष्टस्तदाऽऽह रुक्मी तौ, याच्यतां हृदयेप्सितम् ॥ १८४ ॥
अथान्नसिद्धये भूपाद्, वैदर्भीं तौ ययाचतुः । तदिमौ रुक्मिणा कोपात्, पुरादपि बहिष्कृतौ ॥ १८५ ॥
प्रद्युम्नोऽथ ययौ व्योम्ना, निशि रुक्मिसुतान्तिके ।
चण्डालादिचरित्रं च, स्वमेतस्यै न्यवेदयत् ॥ १८६ ॥
प्रद्युम्नोऽयमिति ज्ञात्वा, तां हृष्टामनुरागिणीम् । पाणौजग्राह गान्धर्वविवाहेन हरेः सुतः ॥ १८७ ॥
रमयित्वा निशि स्वैरं, प्रद्युम्नेन्दौ गते सति । प्रातः सा मीलयामास, निद्रया नेत्रकैरवम् ॥ १८८ ॥

---

१ त्वं सम्मोदयसी हा......... . । ....हारं मुक्त्वेत्यगात् सुरः ॥ १६९ ॥ इति पाता० ॥ २ °कदायिनम् पाता० ॥ ३ °रुच्युतं पाता० ॥ ४ अन्यास्वपि हरिस्त्रीषु, सुता जाता महाभुजाः इतीदमुत्तरार्धं पाता० ॥ ५ °कटे गतः । प्रद्युम्नाय ययाचे स, वैदर्भी रुक्मिणः सुताम् इतीदृशः श्लोकः पाता० ॥ ६ °कटे ग° खंता० ॥ ७ इतश्च स्तम्भमुन्मूल्य, करी कोऽपि स्फुरन् पुरे । इतीदृशं पूर्वार्धं पाता० ॥ ८ अथ गीतिगिरा दन्ती, चण्डालाभ्यां वशीकृतः पाता० ॥ ९ °सुतां प्रति पाता० ॥ १० °तस्या अचीकथत् पाता० ॥ ११ उपयेमे स गान्ध° पाता० सं० ॥ १२ विलस्य तां निशि स्वेच्छं, प्रद्यु° पाता० ॥

दिने क्रोष्टुकिनाऽऽदिष्टे, रथी दारुकसारथिः। ततः पूर्वोत्तराशायां, विष्णुर्बलवृतोऽचलत् ॥ २४१ ॥
॥ पञ्चभिः कुलकम् ॥

योजनानि पुरात् पञ्चचत्वारिंशतमीयिवान्। ग्रामेऽथ शतपल्याख्ये, स निवासानकारयत् ॥ २४२ ॥
चतुर्भिर्योजनैः कृष्णे, स्थितेऽर्वाग् मगधेशितुः। एत्य विद्याधराः केऽपि, समुद्रनृपमभ्यधुः ॥ २४३ ॥
त्वद्भ्रातुर्वसुदेवस्य, गुणगृह्या वयं नृप!। तदागमाम वैताढ्यादास्यातुं भवतां हितम् ॥ २४४ ॥
अन्येभ्यः किमु साहाय्यं, भवतां भुजशालिनाम्?। तथापि सुजनस्नेहसम्मोहादिदमुच्यते ॥ २४५ ॥

जरासन्धस्य मित्राणि, वैताढ्ये सन्ति खेचराः।
असमायान्त एवामी, योग्याः साधयितुं द्विपः ॥ २४६ ॥

प्रद्युम्न-साम्बसहितं, वसुदेवं तदादिश। वयं यथा विगृह्णीमो, रिपुमित्राणि खेचरान् ॥ २४७ ॥
ओमिति क्ष्माभृताऽऽदिष्टे, वसुदेवे चलत्यथ। प्रददौ भगवान्नेमिरौषधीमस्त्रवारणीम् ॥ २४८ ॥
अथाऽऽदिश्य जरासन्धो, हंस-डिम्भकमन्त्रिणौ। अभेद्यं रिपुचक्रेण, चक्रव्यूहमकारयत् ॥ २४९ ॥
चक्रस्यास्य सहस्रारीसहस्रं भूभुजोऽभवन्। भूरिस्यन्दन-हस्त्य-श्व-पदातिपरिवारिताः ॥ २५० ॥
पट्सहस्रमहीपानां, दधिरे प्रविरूपताम्। भूपपञ्चसहस्रीवान्, स्थितोऽन्तर्मगधाधिपः ॥ २५१ ॥
पृष्ठे सैन्धव-गन्धारसेनाऽभून्मगधप्रभोः। धार्तराष्ट्राः शतं युद्धदक्षा दक्षिणतोऽभवन् ॥ २५२ ॥
सन्धौ सन्धौ च पञ्चाशच्छकटव्यूहसङ्कटे। व्यूहेऽस्मिन् दधिरे गुल्मा, भूपानामन्तराऽन्तरा ॥ २५३ ॥
चक्रव्यूहस्य च बहिर्नैकधा व्यूहधारिणः। स्थाने स्थाने नृपास्तस्थुर्महीयांसो महाभुजाः ॥ २५४ ॥
हिरण्यनाभं भूपालं, भूभुजां दण्डनायकम्। कृतं वीक्ष्य भयेनेव, सूरोऽप्यस्तमितस्तदा ॥ २५५ ॥
दोषायामथ दुर्धर्षा, यदवोऽपि दवोर्जिताः। चक्रिरे गरुडव्यूहं, चक्रव्यूहजयेच्छया ॥ २५६ ॥

अर्धकोटिः कुमाराणां, व्यूहस्यास्य मुखे स्थिताः।
शौरि-शार्ङ्गधरौ युद्धदुर्धरौ मूर्धनि स्थितौ ॥ २५७ ॥

वसुदेवभुवोऽक्रूरमुख्या द्वादश दुर्धराः। रथलक्षयुता विष्णोरभूवन् पृष्ठरक्षकाः ॥ २५८ ॥
पृष्ठे तेषाममूदुग्रसेनः कोटिमितै रथैः। तत्पृष्ठरक्षकास्तस्य, चत्वारः सूनवोऽभवन् ॥ २५९ ॥
व्यूहस्य दक्षिणे पक्षे, समुद्रविजयः स्वयम्। तस्थौ परिवृतो वीरैर्भ्रातृ-भ्रातृव्य-सूनुभिः ॥ २६० ॥
चन्द्रयशा: मञ्चविंशत्या, रथलक्षैरथाऽपरे। समुद्रविजयं भूपाः, परिवृत्याऽवतस्थिरे ॥ २६१ ॥
वामपक्षे तथोद्दामधामानो रामनन्दनाः। युधिष्ठिरादयः पाण्डुसूनवश्चावतस्थिरे ॥ २६२ ॥
कृतास्त्रताण्डवास्तस्थुः, पाण्डवानां तु पृष्ठतः। भास्वन्तो भूरयो भूपा, धार्तराष्ट्रवधेच्छया ॥ २६३ ॥
यमदण्डोग्रदोर्दण्डा, अर्ककर्कशतेजसः। अभूवन् भूरयो भूपाः, परितो व्यूहरक्षिणः ॥ २६४ ॥
इत्येष गरुडव्यूहं, विदधे गरुडध्वजः। यं वीक्ष्य विलयं प्राप, दर्पसर्पो विरोधिनाम् ॥ २६५ ॥
अथ प्रेषितमिन्द्रेण, जैत्रशस्त्रचयान्वितम्। युयुत्सुर्नेमिरारूढो, रथं मातलिसारथिम् ॥ २६६ ॥
समुद्रविजयेनाथ, चमूनाथपदे स्वयम्। कृष्णाग्रभूरनाधृष्टिरभिषिक्तो महाभुजः ॥ २६७ ॥
स्कन्धावारे हरेरासीदथो जयजयारवः। विपक्षक्षितिपक्षोभकारी ब्रह्माण्डभाण्डभित् ॥ २६८ ॥

---

१ °धराः कोऽपि, समुद्रनृपमभ्यधात् संता० ॥ २ °द्वादशमुख्यमः ॥ संता० ॥ ३ °जयादयः। खेता० ॥ ४ °ह्य प्रलयं याति, दर्प° संता० ॥ ५ °शस्त्रितम् संता० ॥ ६ °रथिः संता० ॥

कुपिताऽथाऽऽययौ भामा, साम्बः स्मित्वा ननाम ताम् ।
केनाऽऽनीतोऽसि रे धृष्ट !?, साटोपमिति साऽवदत् ॥ २१३ ॥
अहं मातस्त्वयाऽऽनीय, कन्योद्वाहमकारिषि । इति जल्पत्यथो साम्बे, साक्ष्यभूदखिलो जनः ॥ २१४ ॥
त्वया मायागृहेणाहं, कन्याकूटेन वञ्चिता । इत्युक्त्वा सत्यभामाऽपि, यथागतमगात् पुनः ॥ २१५ ॥
अथ ताः कन्यकाः कम्बुपाणिः साम्बाय दत्तवान् ।
ताभिर्जाम्बवतेयोऽभात्, ताराभिरिव चन्द्रमाः ॥ २१६ ॥
इतश्च जवनद्वीपवणिजो द्वारकापुरः । पुरे राजगृहे जग्मुर्विक्रेतुं रत्नकम्बलान् ॥ २१७ ॥
कम्बला जीवयशसा, स्वल्पमूल्येन याचिताः । तदूचुर्वणिजो मूल्यं, द्वारकायाममून्महत् ॥ २१८ ॥
का द्वारकापुरी? तस्यां, कश्चास्ति पृथिवीपतिः? ।
ते जीवयशसेत्युक्ताः, प्रोचुः कम्बलवाणिजाः ॥ २१९ ॥
मध्येपयोधि विदधे, द्वारकाख्या पुरी सुरैः । तत्र धात्रीधवः कृष्णो, देवकी-वसुदेवभूः ॥ २२० ॥
इति जीवयशाः श्रुत्वा, ताडयन्ती करैरुरः । दुःखयन्ती सखीचक्रमिति चक्रन्द मन्दधीः ॥ २२१ ॥
कथं रोदिषि पुत्रीति, जरासन्धाय पृच्छते । साऽऽख्यद्द्यापि कंसारिर्जीवत्यवति चावनिम् ॥ २२२ ॥
तदहं मदहुङ्कारहीना दीना करोमि किम्?। ममाथ शरणं तात!, त्वत्प्रतापसखः शिखी ॥ २२३ ॥
अथेति शिखिनाम्नाऽपि, ज्वलितो निजगाद सः । स्थिरीभव हरेर्नारीः, क्षेपयिष्यामि पावके ॥ २२४ ॥
इत्युदीर्य तदा वीर्यदुःसहः सहसा नृपः । पुरे सूचितदिग्यात्रारम्भां भम्भामवादयत् ॥ २२५ ॥
सहसा सहदेवाद्याः, सह साहसिकैर्भटैः । परिवव्रुर्जरासन्धं, सूनवोऽथ नवोद्यमाः ॥ २२६ ॥
रिपुभूमीभुजां कालः, शिशुपालः करालदृक् । कौरव्योऽरिविधारम्भधुर्यो दुर्योधनः पुनः ॥ २२७ ॥
अन्येऽपि वेपितारातिकोटयः कोटिशो नृपाः । परिवव्रुस्तमागत्य, विन्ध्याद्रिमिव सिन्धुराः ॥ २२८ ॥
॥ युग्मम् ॥
पुरः प्रस्थानवन्मूर्ध्नः, पपात मुकुटं भुवि । हारतस्त्रुटितादायुर्विन्दुवन्मणयोऽगलन् ॥ २२९ ॥
पुरः क्षुतमभूत् कालजनिताह्वानशब्दवत् । चस्खलेऽङ्घ्रिश्च कीनाशपाशेनेवास्य वाससा ॥ २३० ॥
साक्षादशकुनानीति, नीतिज्ञोऽपि क्रुधाऽन्धलः । प्रयाणे गणनातीतान्यसौ गणयति स्म न ॥ २३१ ॥
प्रतापतापितक्षोणिरथासौ पृथिवीश्वरः । दिवाकर इवास्ताय, प्रतीचीं प्रति चेलिवान् ॥ २३२ ॥
नारदर्षिरथाऽऽचख्यौ, कलिकेलिकुतूहली । द्रुतमेत्य जरासन्धप्रयाणं कम्बुपाणये ॥ २३३ ॥
कृष्णोऽप्यथ द्विपद्दाववारिदो हारिदोर्बलः । अताडयत् प्रयाणाय, पटहं पटुहुङ्कृतिः ॥ २३४ ॥
बलाविष्कृतामुद्रसमुद्रविजयास्ततः । चेलुर्दशार्हाः सर्वेऽपि, समुद्रविजयादयः ॥ २३५ ॥
पितृष्वसेयकाः सर्वे, मातृष्वसेयका अपि । यदूनां बहवोऽन्येऽपि, प्रीताः पृथ्वीभुजोऽमिलन् ॥ २३६ ॥
गृहीतरणदीक्षोऽथ, कृतयात्रिकमङ्गलः । विप्रवक्त्राम्बुजोन्मुक्तसूक्तिसंवर्मितोद्यमः ॥ २३७ ॥
बन्दिवृन्दसमुद्गीर्णविक्रमस्फूर्जदूर्जितः । सम्बन्धि-बन्धु-वृद्धाभिराशीर्भिरभिवर्धितः ॥ २३८ ॥
पौरैर्जयजयारावमुखैरभिनन्दितः । शकुनैरनुकूलैश्च, निश्चितात्मजयोत्सवः ॥ २३९ ॥
अवार्यतूर्यनिर्घोषप्रतिनादितदिग्भ्रमः । सानन्दं पौरनारीभिः, साक्षतक्षेपमीक्षितः ॥ २४० ॥

---

१ °यशाः सता° ॥

मुक्तमार्गणसार्थेन, पार्थेन विरथीकृतः । दुर्योधनः समुत्पत्य, प्रपेदे शकुने रथम् ॥ २९९ ॥
बभञ्ज भूभुजो धीरंमन्यानन्यानपि क्रुधा । पार्थः शरभरैः पद्मान्, धारासारैरिवाम्बुदः ॥ ३०० ॥

शक्त्याऽवधीद् द्विषां शल्यं, शल्यं युधि युधिष्ठिरः ।
अमोघेनाऽऽशु वज्रेण, वज्रपाणिरिवाचलम् ॥ ३०१ ॥

हत्वा दुःशासनस्याऽऽशु, गदयाऽथ व्यदारयत् । उरो दुरोदरच्छद्मजयक्रुद्धो वृकोदरः ॥ ३०२ ॥
सहदेवकरोत्थेन, श्येनेनेव पतत्रिणा । रयादुड्डीयमानेन, चिच्छिदे शकुनेः शिरः ॥ ३०३ ॥
दीप्तं कौरवसेनाया, जीवितव्यमिवेषुभिः । अस्तं निनाय गाण्डीवधन्वा युधि जयद्रथम् ॥ ३०४ ॥
ज्वालाजालैरिव व्योम, व्याप्नुवन् विशिखैरथ । निर्दग्धुमर्जुनं दाववर्णः कर्णः समुत्थितः ॥ ३०५ ॥
यशोमुक्ताञ्चितं कर्णताडङ्कमिव जीवितम् । हरन् पार्थोऽकृताश्रीकं, कौरवध्वजिनीमुखम् ॥ ३०६ ॥
मृगेन्द्र इव कर्णेऽस्मिन्, निहतेऽथ मृगा इव । मेनिरे हतमात्मानमहता अपि कौरवाः ॥ ३०७ ॥
हते कर्णेऽर्जुनस्याऽऽसीज्जितमेवेति निश्चयः । भीमश्वाससमरुत्तूले, जीवत्यपि सुयोधने ॥ ३०८ ॥
गजेन्द्रसेनासीमन्तो, भीमं तोयधिनिस्वनम् । क्रुद्धो दुर्योधनो राजा, सिंहं मृग इवाक्षिपत् ॥ ३०९ ॥

भीमोऽथ शुण्डया धृत्वा, महेभान् समराद् बहिः ।
दूरं चिक्षेप शेवालजालानीव सरोवरात् ॥ ३१० ॥

कल्लोलानिव कुम्भीन्द्रान्, दोर्भ्यामुभयतः क्षिपन् । तदा तरीतुमारेभे, भीमः सङ्गरसागरम् ॥ ३११ ॥
दायाद एव भीमस्य, युद्धमार्गेऽप्यढौकत । सज्जीकृतद्विपकुलो, नकुलोऽथ प्रतिद्विपः ॥ ३१२ ॥
ततः पाण्डव-कौरव्यबलयोः प्रबलस्वनाः । अमिलन्नाशु कीनाशकिङ्करा इव कुञ्जराः ॥ ३१३ ॥
कौचिद् द्विपौ दृढाघातभ्रष्टदन्तौ रणे मिथः । अस्पृश्येतां कराग्रेण, मन्दमग्रे द्विपीधिया ॥ ३१४ ॥
कोऽपि प्रतिद्विपं दन्ती, स्वदन्तप्रोतविग्रहम् । ऊर्द्ध्वमुत्पाटयामास, कृतान्तायार्पयन्निव ॥ ३१५ ॥
युद्धेन चलितं योद्धुमक्षमं दन्तमात्मनः । द्विपोऽन्यः शुण्डयोन्मूल्य, तेनाभैत्सीत् प्रतिद्विपम् ॥ ३१६ ॥

पराङ्मुखौ मिथो भङ्गादभूतां सम्मुखौ पुनः ।
स्वैभैः परभ्रमात् कौचित्, ताडितौ चलितौ गजौ ॥ ३१७ ॥

उद्धृत्य शुण्डया कोऽपि, प्रतिदन्तिरदं रणे । रुषाऽक्षिपन्मुखे मूर्त्तां, रिपुकीर्तिमिव द्विपः ॥ ३१८ ॥
उत्क्षिप्तः शुण्डया दूरं, केनापि करिणा करी । ततो भूभङ्गभीत्येव, दन्तदण्डे धृतः पतन् ॥ ३१९ ॥
लज्जयामासतुः स्वं स्वं, योधं कौचन सिन्धुरौ । एकस्त्रस्यन् परः पृष्ठे, व्रजन्नवमताङ्कुशः ॥ ३२० ॥
जानन्निवारिभग्नस्य, हृदयं निजसादिनः । करी प्रतिकरीन्द्रेणोपद्रुतः कोऽपि विद्रुतः ॥ ३२१ ॥
इतो व्यालोलकल्पान्तकालकल्पं सुयोधनः । भीमं द्विपद्वधाविष्टमभ्यधाविष्ट दुष्टधीः ॥ ३२२ ॥
द्यूतच्छलं स्मरन् भीमस्तथा तं गदयाऽपिपत् । यथाऽऽशु पवनेनैव, कीर्णा देहाणवोऽप्यगुः ॥ ३२३ ॥
ततो हिरण्यनाभस्य, शरणं तद्बलं ययौ । परिवव्रुरनाधृष्टिं, तेऽपि यादव-पाण्डवाः ॥ ३२४ ॥
हिरण्यनाभसेनानीः, सेनानीरजनीरविः । करैरिव शरैः शोषं, निन्येऽनाधृष्टिवाहिनीम् ॥ ३२५ ॥

अथाऽऽलोक्य तमायान्तमतुलं मातुलं निजम् ।
जयसेनो जयाकाङ्क्षी, शिवाग्रनुः समुत्थितः ॥ ३२६ ॥

---

१ 'उत्कृत्य' खंता० ॥ २ 'यनिधिस्व' खंता० ॥ ३ समरसा' खंता० सं० ॥ ४ 'रणे त' खंता० सं० ॥

सैन्यद्वयेऽपि नासीरवीरा युयुधिरे ततः । गर्जन्तोऽस्त्राणि वर्षन्तो, युगान्तघनवद् घनम् ॥ २६९ ॥
गजेन्द्रगर्जिभिस्तूर्यरसितैर्हयहेषितैः । रथघोषैर्भटारावैः, शब्दाद्वैतं जगत्यभूत् ॥ २७० ॥
जरासन्धभटैर्भग्नानिव वीक्ष्य भटानथ । ऊर्द्ध्वीकृत्य भुजादण्डं, धीरयामास केशवः ॥ २७१ ॥
उत्तस्थिरे महानेमि-पार्था-ऽनाधृष्टयस्त्रयः । तार्क्ष्यपक्षद्वयीचञ्चुरूपा भूपावलीवृताः ॥ २७२ ॥
दध्मुर्निजं निजं शङ्खं, तथामी दुर्धरास्त्रयः । यथा चेतश्चमत्कारं, श्रीनेमेरपि चक्रिरे ॥ २७३ ॥
युद्ध्यमानैः स्फुरन्मानैरथ तै रथिभिस्त्रिभिः । चक्रव्यूहो रयादेव, त्रिषु स्थानेष्वभज्यत ॥ २७४ ॥
इमां वीरत्रयीं व्यूहे, विशन्तीमन्वगुर्नृपाः । दृढीभूताः पटे गाढे, सूचिकामिव तन्तवः ॥ २७५ ॥
एतान् प्रत्युत्थितान् दुर्योधन-रौधिरि-रुक्मिणः । एतैरथ मिथः षड्भिर्द्वन्द्वयुद्धमुरीकृतम् ॥ २७६ ॥
अथ तद्द्वयवीराणां, कुप्यत्कीनाशतेजसाम् । मिथो विश्वत्रयत्रासचणः प्रववृधे रणः ॥ २७७ ॥

केऽपि भीताः परे क्रुद्धा, न तु कोपोऽप्यजायत ।
केषाञ्चित् खेलतां शत्रुशिरोभिः कन्दुकैरिव ॥ २७८ ॥

मौलौ कोऽप्यसिकृत्तेऽपि, दन्तदष्टाधरः क्रुधा । रिपुं जघान हस्तेन, समालम्ब्य गलं बलात् ॥ २७९ ॥
कोऽपि प्रसन्नगम्भीरो, वीरो निर्दारयन्नरीन् । दर्शयामास नेत्रौष्ठ-भ्रूमात्रेऽपि न विक्रियाम् ॥ २८० ॥
शिरो वैरिशरोत्क्षिप्तं, कस्याप्यालोलवेणिकम् । ससङ्गराहुसंभ्रान्त्या, दिवि देवानभापयत् ॥ २८१ ॥
नृत्ते सदृष्टिभ्रूभङ्गं, शत्रौ कृत्तशिरस्यपि । हन्तुर्लोहमयेनापि, शिरः खड्गेन कम्पितम् ॥ २८२ ॥
जिघांसुमिभमायान्तं, गृहीत्वा कोऽपि शुण्डया । भ्रमयन्नम्बरे भ्रष्टशस्त्रो योद्धुमशस्त्रयत् ॥ २८३ ॥
क्रमभ्यापारिताशेषभ्रष्टशस्त्रो रणेऽपरः । नखैर्दन्तैरपि रिपून्, बिभिदे सिंहविक्रमः ॥ २८४ ॥
दृशैव त्रासयन् वीरान्, हुङ्कारेणैव कुञ्जरान् । अभ्युद्यतास्त्र एवान्यः, परसैन्यमलोडयत् ॥ २८५ ॥
ध्वान्ते धूलिकृते खड्गः, कस्यापि दलयन्नरीन् । केयूररत्नबिम्बेन, धृतदीप इवाबभौ ॥ २८६ ॥
हत्वा चपेटयैवान्यः, पविपातसमानया । अलूलुठद्दिभान् भूमौ, पर्वतानिव वासवः ॥ २८७ ॥
आस्फाल्यान्योन्यमन्योऽरिशिरांसि करलीलया । नालिकेरीफलानीव, बभञ्ज भुजकौतुकी ॥ २८८ ॥
हक्कापराङ्मुखः पुच्छे, धृतः केनापि कुञ्जरः । भ्राणं कुर्वन् गतौ मुक्तो, मुखाग्रेणापतद् भुवि ॥ २८९ ॥

अन्योन्यास्फालनोन्मुक्तस्फुलिङ्गैरसिभिस्तदा ।
धूमायितं प्रदीप्तानां, शिखिनामिव दोष्मताम् ॥ २९० ॥

कचग्रहपरः शत्रुहस्तोऽस्मादसिना क्षतः । कस्याप्यपतितो हस्तिशोभां शुण्डानिभो दधौ ॥ २९१ ॥
उपन्महा महानेमिर्विरथं रुक्मिणं व्यधात् । तन्महानेमये शक्तिं, राजा शत्रुन्तपोऽक्षिपत् ॥ २९२ ॥
श्रीनेमिनाथमालोच्य, मातलिर्वज्रसङ्क्रमम् । महानेमिशरे चक्रे, शक्तिस्तेन हताऽपतत् ॥ २९३ ॥
शरैरत्रसद् दुर्योधनं तत्र धनञ्जयः । बाणवृष्ट्याऽप्यनाधृष्टिर्विधुरं रौधिरं व्यधात् ॥ २९४ ॥
इतोऽपि यदुभिर्वीरैर्वैरिसैन्यं विलोडितम् । जघ्निरे गुरिशो भूपा, द्रुमाद्या माधवद्युमाः ॥ २९५ ॥
सदनाभ्यामितो रामाङ्गजैर्मत्तगजैरिव । भीमा-ऽर्जुनाभ्यां कौरव्याः, शरजर्जीचक्रिरे क्रुधा ॥ २९६ ॥

वेगादलक्षसन्धान-मोक्षः पार्थः शरान् किरन् ।
श्यामप्रभो बभौ धन्वी, वर्षन् धारा इवाम्बुदः ॥ २९७ ॥

अथाऽवलोक्य संहारमर्जुनमातुरः । संभ्रम गुरिभूपालैर्गर्जन् दुर्योधनोऽरुधत् ॥ २९८ ॥

हयतः पतितौ पादकटकस्खलितक्रमौ । केशाकर्षादयुध्येतां, शस्त्र्या कौचिदधोमुखौ ॥ ३५६ ॥
सारणेन रणे जघ्ने, तदा रामानुजन्मना । जवनाख्यो जरासन्धयुवराजो महाभुजः ॥ ३५७ ॥
ततः सुतवधक्रुद्धो, जरासन्धोऽपि जघ्निवान् । दश रामसुतान् तार्क्ष्यव्यूहाङ्गिनखरानिव ॥ ३५८ ॥
कृष्णोऽपि शिशुपालस्य, मूर्धानमसिनाऽच्छिनत् । चक्राधिरूढकलशं, कुलाल इव तन्तुना ॥ ३५९ ॥
तदाऽष्टाविंशतिस्तत्र, जरासन्धसुता हताः । बलेन मुशलेनाऽऽशु, निजाङ्गजवधक्रुधा ॥ ३६० ॥
जरासन्धेन चापत्यपेपरोपान्धचक्षुपा । आहतो गदया रक्तं, वमन् भुवि बलोऽपतत् ॥ ३६१ ॥
तदा बन्धुपराभूतिक्रोधाविर्भूतिदुर्धरः । जरासन्धसुवोऽभैत्सीद्, विष्णुरेकोनसप्ततिम् ॥ ३६२ ॥
तदोद्धुरविरोधेन, क्रोधेन मगधाधिपः । ज्वलंश्चचाल कृष्णाय, शरभायेव केसरी ॥ ३६३ ॥
इहान्तरे जरासन्धशरासारतिरस्कृते । अभवद् यदुसैन्येऽस्मिन्, हतो हरिरिति प्रथा ॥ ३६४ ॥
तदाऽऽकुलं यदुकुलं, श्रीमान् नेमिर्विलोकयन् । रथं मातलिना युद्धे, ससम्भ्रममबिभ्रमत् ॥ ३६५ ॥
अथेन्द्रचापनिर्मुक्तैः, शरैः स्वामी रिपुव्रजम् । आच्छादयदुडुस्तोमं, करैरिव दिवाकरः ॥ ३६६ ॥
एक एव तदा स्वामी, विश्वरक्षा-क्षयक्षमः । विपक्षक्ष्माभृतां लक्षं, रुरोधाऽऽयातकैः शरैः ॥ ३६७ ॥
किरीटेषु ध्वजाग्रेषु, कुन्तप्रान्तेषु सारिषु । फलकेष्वातपत्रेषु, पेतुः प्रभुपतत्रिणः ॥ ३६८ ॥
अथ श्रीनेमिसाहाय्यलब्धोत्साहो यदुव्रजः । परेपुमारुतप्रोचोयमो दव इवाज्वलत् ॥ ३६९ ॥
भीमस्तदा रणक्षोणावन्विष्यान्विष्य कौरवान् । करीवोन्मूलयामास, वनान्तः सल्लकीतरून् ॥ ३७० ॥
भास्वानाश्वासनामाप्य, बलोऽपि प्रबलोद्यमः । अरीन् व्यरीरमद् वायुः, कज्जलध्वजवज्जवात् ॥ ३७१ ॥
सद्योऽङ्गजव्रजध्वंसोद्धुद्धकंसवधक्रुधा । जिष्णुं जगाद जाज्वल्यमानधीर्मगधाधिपः ॥ ३७२ ॥
अयुध्यमानो मल्लानां, पश्यन् कौतूहलं छलात् । अरे ! वीरकुलोत्तंसः, कंसः किल हतस्त्वया ॥ ३७३ ॥
तस्मिन् रणाङ्गणोत्ताले, काले दत्तप्रयाणके । पलाय्याऽऽशु प्रविष्टोऽसि, पयोधिपरिखां पुरीम् ॥ ३७४ ॥
तवाद्य केन दैवेन, दत्ता दुर्मद ! दुर्मतिः ? । स तादृशो दृशोर्मार्गे, यदस्माकमढौकथाः ॥ ३७५ ॥
कुक्षौ कस्यां स कंसोऽस्ति ?, वद त्वां हन्मि हेलया । प्रतिज्ञां पूरयाम्यद्य, तां जीवयशसश्चिरात् ॥ ३७६ ॥
ततस्तमाह गोविन्दः, किमालपसि बालिश ! ? । कंसकुञ्जरसिंहस्य, जरद्गव इवासि मे ॥ ३७७ ॥
कंसोऽस्ति वामकुक्षौ मे, कुक्षिः शून्यस्तु दक्षिणः । इहाऽऽविश जवाद् येन, तृप्तः खेलामि भूतले ॥ ३७८ ॥
प्रतिज्ञां पूरय स्यात्, तां जीवयशसोऽधुना । त्वत्प्रेयसीनां सार्थेन, यात्वसौ दहनाध्वना ॥ ३७९ ॥
अथ क्रुद्धोऽक्षिपद् बाणान्, मगधश्चिच्छिदुश्च तान् । दिवि कृष्णशरा भानुकरानिव पयोधराः ॥ ३८० ॥
पर्जन्याविव गर्जन्तौ, तर्जयन्तावुभौ मिथः । युयुधाते क्रुधा तेजःपिञ्जरौ कुञ्जराविव ॥ ३८१ ॥
तयोस्तदेयुजातेन, जाते नभसि मण्डपे । नापूरि नाकनारीणां, रणालोकनकौतुकम् ॥ ३८२ ॥
शस्त्रैस्तमपरैः शत्रुमजेयं परिभावयन् । मगधेशोऽस्त्रमाग्नेयं, वाग्नेयं विशिखे न्यधात् ॥ ३८३ ॥
ज्वलनः प्रज्वलन्नुद्धधूमलेखाङ्कितस्तदा । शत्रुदाहं प्रतिज्ञातुं, मुक्तचूल इवाभवत् ॥ ३८४ ॥
अथाऽऽलोक्य बलं ज्वालाजिह्वज्वालाकुलाकुलम् । अम्भोदास्त्रं महारम्भो, जम्भारेरनुजोऽमुचत् ॥ ३८५ ॥

---

१ °न तत्पुत्रपेप° खंता० ॥ २ अच्छा° खंता० ॥ ३ कुम्भप्रा° खंता० ॥ ४ °चोत्साहो दव खंता० सं० ॥ ५ माग° खंता० ॥ ६ °स्तथा खंता० ॥

हिरण्यनाभोऽप्येतस्य, स्यन्दनध्वजमच्छिदत् ।
जयसेनो[1]ऽलुनात् तस्य, ध्वज-वर्मा-ऽश्व-सारथीन् ॥ ३२७ ॥
क्रुद्धोऽथ दशभिर्बाणैर्जयसेनं जघान सः । मर्माविद्भिरिभं मत्तं, करजैरिव केसरी ॥ ३२८ ॥
अथ धावन् महीसेनो, जयसेनसहोदरः । खङ्ग-चर्मधरो दूरात्, क्षुरप्रेणामुना हतः ॥ ३२९ ॥
अनाधृष्टिरथोत्तस्थे, बन्धुद्वयवधक्रुधा । ऊष्मलो दोष्मतां सीमा, सह भीमा-ऽर्जुनादिभिः ॥ ३३० ॥
हिरण्यनाभं सक्रोधमनाधृष्टिरयोधयत् । परस्परमढौकन्त, परेऽप्यथ महारथाः ॥ ३३१ ॥
आमूलं वैरिनाराचकीलनेन स्थिरीकृते । धनुर्युजि भुजि कोऽपि, ननन्द प्रहरन् रथी ॥ ३३२ ॥
सूते हतेऽपि पादाग्रधृतप्राजनरश्मिकः । हयानवाहयत् कोऽपि, युयुधे च द्विषा रथी ॥ ३३३ ॥
रथिकः कोऽपि बाणेन, पाणौ वामे कृतक्षते । ध्वजदण्डे धनुर्बद्ध्वा, शरान् साक्षेपमक्षिपत् ॥ ३३४ ॥
कस्यापि रथिनो बाणा, भेद्यं प्राणाधिका ययुः । अन्तःकृत्ता अपि द्वेषविशिखैर्भुजगा इव ॥ ३३५ ॥
हन्तुमुच्छलितश्छिन्नमौलिरर्धपथे रथी । कोऽपि प्रतिरथं गत्वा, रिपोर्मुण्डमखण्डयत् ॥ ३३६ ॥
समरे विरथो व्यस्तश्चक्रवर्तीव कोऽप्यभात् । भग्नस्यात्मरथस्यैव, चक्रमादाय शस्त्रयन् ॥ ३३७ ॥
छिन्नेषु कौतुकाद् योक्त्ररश्मिषु द्विषता शरैः । कस्यापि धनुराकृष्टिस्थाम्नाऽभूदुन्मुखो रथः ॥ ३३८ ॥
इतः सात्यकिना कृष्णजयार्णवहिमांशुना । जिग्ये भूरिश्रवा भूपो, योक्त्रबद्धगलग्रहात् ॥ ३३९ ॥
इतो मूर्ताविव क्रोधौ, कृतरोधौ परस्परम् । अयुध्येतामनाधृष्टि-हिरण्यपृतनापती ॥ ३४० ॥
अथोद्धृतासि-फलकौ, बलकौतुककारिणौ । उत्सृज्य रथमन्योन्यं, क्रोधाद् वीरावधावताम् ॥ ३४१ ॥
अनाधृष्टिकृपाणेन, सर्पेणेवाथ सर्पता । हिरण्यस्य समं प्राणानिलैः कीर्तिपयः पपे ॥ ३४२ ॥
अत्रान्तरे रणोद्धूतधूलीभिरिव धूसरः । अपराब्धौ गतः स्नातुमह्नामह्नाय नायकः ॥ ३४३ ॥
अथाऽऽत्मस्थानमायातौ, सायं व्यूहावुभावपि । कल्पान्तविरतौ पूर्व-पश्चिमाम्भोनिधी इव ॥ ३४४ ॥
व्यूहयोरनयोर्वीरव्यूहोऽथ रणकौतुकी । चतुर्युगीमिव श्यामाचतुर्यामीममन्यत ॥ ३४५ ॥
अथ तद्युद्धकीलालनदीरक्तादिवाम्बुधेः । उदियाय रविः कुप्यत्कान्ताहक्कोणशोणरुक् ॥ ३४६ ॥
अथो निजं निजं [2]व्यूहं, विरचय्य रणोत्सुकाः । अगर्जिषुर्जरासन्ध-जनार्दनचमूचराः ॥ ३४७ ॥
जरासन्धाभिषिक्तोऽथ, शिशुपालश्चमूपतिः । पुरस्कृत्या[3]श्वसैन्यानि, प्रचचाल प्रति द्विपम् ॥ ३४८ ॥
अनाधृष्टि[4]रथो वाहवाहिनीं स्थिरयन् पुरः । अचस्खलत् खलममुं, सिन्धुपूरमिवाचलः ॥ ३४९ ॥
उत्पाट्योत्पाट्य निस्त्रिंश-गदा-पट्टिश-मुद्गरान् । ततो युयुधिरे [5]धीरास्तुरङ्गाश्च जिहेषिरे ॥ ३५० ॥
व्यालोलत्पादकटकबद्धवध्रप्रहोत्थितम् । अष्टं कोऽपि समित्यश्वत्रारमारोहयद्धयः ॥ ३५१ ॥
छिन्नाग्रपादतुण्डोऽपि, कोऽप्यश्वः समरान्तरात् ।
क्रामन् पाश्चात्यपादाभ्यामाचकर्ष निषादिनम् ॥ ३५२ ॥
खुराग्रैस्त्रोटयन्नन्त्रावलीं द्विड्घातनिःसृताम् । कोऽप्यश्वः समरेऽधावत्, स्वसादिमनसा समम् ॥ ३५३ ॥
छिन्नमौली द्विषा कौचित्, तुरङ्गम-तुरङ्गिणौ । प्रधावने च घाते च, स्पर्धयेव न निर्वृतौ ॥ ३५४ ॥
अश्वः कोऽप्युरसाऽऽहत्य, साश्ववारान् पुरो हरीन् । धावन्नपातयद् युद्धश्रद्धां च निजसादिनः ॥ ३५५ ॥

---

१ °नोऽच्छिनत् तस्य, संता० सं० ॥ २ निजनिजव्यू° संता० ॥ ३ °स्य च से° सं० ॥
४ °ष्टिस्ततो धा° सं० ॥ ५ धीरा° सं० ॥

अथ प्रीतो हरिः सर्वैः, खेचरैर्भूचरैर्वृतः । वसुधां साधयामास, त्रिखण्डां चण्डविक्रमः ॥ ४१८ ॥
भरतार्द्धं विजित्याथ, प्रविष्टो द्वारकापुरीम् । स भेजे सम्भृतं भूपैरभिषेकमहोत्सवम् ॥ ४१९ ॥
सम्बन्धि-बन्धुवर्गेषु, सेवकेषु सुहृत्सु च । यथौचित्यं ददौ राज्यसंविभागं गदाग्रजः ॥ ४२० ॥
इत्थं निर्मथिताशेषोपसर्ग-ग्रह-विग्रहः । गोविन्दो विदधे न्यायधर्मशर्ममयीं महीम् ॥ ४२१ ॥

परिचरति पुरीयं वारिधौ न्यायधर्म-
व्यतिकरमकरन्दस्यारविन्दस्य लक्ष्मीम् ।
जितसितकरमूर्तिस्फूर्तिभिः सच्चरित्रै-
रिह विहरति हंसः कंसविध्वंसनोऽसौ ॥ ४२२ ॥

॥ इति श्रीविजयसेनसूरिशिष्यश्रीमदुदयप्रभसूरिविरचिते श्रीधर्माभ्युदयनाम्नि श्रीसङ्घपतिचरिते लक्ष्म्यङ्के महाकाव्ये हरिविजयो नाम त्रयोदशः सर्गः ॥

विश्वस्मिन्नपि वस्तुपाल ! जगति त्वत्कीर्तिविस्फूर्तिभिः,
श्वेतद्वीपति कालिकाकलयति स्वर्मालिकानां मुखम् ।
यत्वैस्तावककीर्तिसौरभमदान्मन्दारमन्दादरे,
वर्गे स्वर्गसदां सदा च्युतनिजव्यापारदुःस्थैः स्थितम् ॥ १ ॥

॥ ग्रन्थाग्रम्[1] ४३० ॥ उभयम् ४६९० ॥

---

१ °म् ४०४ । उभयं ग्रंथ ४५७९, ख्ता० ॥

नैकं केशवसैन्यानि, तापयन्तं हुताशनम् । महोऽपि मगधेशस्य, शान्ति निन्युस्तदाऽम्बुदाः ॥ ३८६ ॥
धृतेन्द्रचापो निस्तापः, शरासारैस्तदाऽम्बुदः । श्रीनेमिरिव नीलश्रीररिसैन्यानि वद्धवान् ॥ ३८७ ॥
विलोकयन् नृपो मेघधारासाराकुलं बलम् । यशोमालिन्यमुच्छेत्तुं, मुमुचेऽस्त्रं स पावनम् ॥ ३८८ ॥
द्रुतं विदुद्रुवे वातैर्घनडम्बरमम्बरम् । मगधेशप्रतापश्च, भास्वान् दुःसहतामधात् ॥ ३८९ ॥
सङ्कोचं पृतनाङ्गेषु, कुर्वाणं भमिदुर्धरम् । वायुप्रकोपं हन्ति स्म, हरिर्वाताशनौषधैः ॥ ३९० ॥
यशःक्षीरं च वातं च, पीत्वा ते मगधेशितुः । प्रतापदीपं फूत्कारैः, शमयन्ति स्म पन्नगाः ॥ ३९१ ॥
अथो फणिफणाघातकातरां वीक्ष्य वाहिनीम् । मुमोचास्त्रं नृपो धैर्यचारु गारुडमुत्कटम् ॥ ३९२ ॥
ततपक्षास्ततो लक्षसङ्ख्या रुरुधुरुद्धुराः । गरुडा गगनं मेरुकुलोत्पन्ना इवाद्रयः ॥ ३९३ ॥
गरुडैरथ कंसारिर्नागास्त्रे विफलीकृते । भास्वानपि मुमोचास्त्रं, तामसं नाम सङ्गरे ॥ ३९४ ॥
विदधानैस्तदाऽपास्तवार्त्तं मार्तण्डमण्डलम् । अन्धकारैर्जगन्नेत्रबन्दिकारैर्विजृम्भितम् ॥ ३९५ ॥
वलितैः स्खलितैरङ्गैर्निर्जरेव परैरिव । अपश्यन्तोऽप्येवमघ्नन्त, जरासन्धबले भटाः ॥ ३९६ ॥
मुमोचास्त्रमथ प्रौढवैरो वैरोचनं नृपः । प्रतापैरिव तद् भानुमारैराविरभावि खे ॥ ३९७ ॥
मूलेषु जग्मुर्नागानां, तुरङ्गि-रथि-पत्तयः । नारायणवले तापाक्रान्ता यान्तु क दन्तिनः ! ॥ ३९८ ॥
आहवे राहवीयास्त्रं, निदधेऽथ यदूद्वहः । चेलुस्ततः करालास्या, राहवो बहवोऽम्बरे ॥ ३९९ ॥
अगिलन्नथ मार्तण्डमण्डलानि सहस्रशः । आकाशद्रुफलानीव, ते पक्षिण इव क्षणात् ॥ ४०० ॥
अतृप्ता इव मार्तण्डमण्डलैर्गिलितैरथ । विधुभ्रान्त्येव तेऽधावन्, परवीराननान्यभि ॥ ४०१ ॥
लीलानिष्फलिताशेषदिव्यास्त्रेषु प्रैमाथिषु । राहुष्वथ क्रुधा चक्रं, प्रतिचक्री मुमोच तत् ॥ ४०२ ॥
बहूनामपि राहूणामथाऽऽधाय वधं युधि । हरिं प्रत्यचलच्चक्रं, सहस्रांशुसहस्ररुक् ॥ ४०३ ॥
सम्भूय यदुभिर्मुक्तान्यपि शस्त्राणि भस्मयत् । दावपावकवच्चक्रं, वनमालिनमभ्यगात् ॥ ४०४ ॥
आसन्नेऽपि तदाऽऽयाते, चक्रेऽस्मिन्नर्ककर्कशे । नाऽगाद् गोविन्दवक्त्रेन्दुर्मन्दिमानं मनागपि ॥ ४०५ ॥
तदा यादवसैन्यानामाकुलैस्तुमुलारवैः । परमार्थविदोऽप्यन्तश्चुक्षुभुः कुलदेवताः ॥ ४०६ ॥
कुद्दलीमुक्तताडङ्कताडं कष्टप्रदं तदा । नाभिपिण्डिकया चक्रं, तत् पस्पर्श हरेरुरः ॥ ४०७ ॥
उत्को यावज्जरासन्धः, पश्यत्यरिशिरश्छिदाम् । तावद् विष्णोः करे चक्रं, ददर्श व्योम्नि भानुवत् ॥ ४०८ ॥
अभवद् वासुदेवोऽथ, नवमोऽयमिति ब्रुवन् । विष्णौ व्यधित गन्धाम्बु-पुष्पवृष्टिं सुरव्रजः ॥ ४०९ ॥
पूर्वाब्धिरिव कल्लोले, रविं चक्रं करे दधत् । अथ कृष्णः कृपाविष्टो, जरासन्धमदोऽवदत् ॥ ४१० ॥
आजीवमङ्घ्रिराजीवभ्रमरीभूय भूयसीम् । भज लक्ष्मीं जरासन्ध !, बन्धो ! सन्धेहि जीवितम् ॥ ४११ ॥
अथाभ्यधाज्जरासन्धो, मुधा गोविन्द ! माद्यसि । मदुच्छिष्टेन लब्धेन, चक्रेण च्छत्रधारवत् ॥ ४१२ ॥
तदुच्चैर्मुञ्च मुञ्चाहो !, चक्रं मां प्रति सम्प्रति । रे रे ! मदीयमेवेदं, प्रभविष्यति नो मयि ॥ ४१३ ॥
ततः कृष्णकरोन्मुक्तं, स्फुलिङ्गैः पिङ्गयद् दिशः । तदायुधं जरासन्धस्कन्धबन्धं द्विधा व्यधात् ॥ ४१४ ॥
चतुर्थं नरकं निन्ये, जरासन्धः स्वकर्मभिः । जयोज्ज्वलस्तु कृष्णोऽस्थाद्, वसुदेवागमोत्सुकः ॥ ४१५ ॥
जरासन्धवधं श्रुत्वा, तद्गृह्यैः खेचरैरितः । विमुच्य रणसंरम्भं, वसुदेवः समाश्रितः ॥ ४१६ ॥
गृहीतोपायनैः साकं, तैर्विद्याधरपुङ्गवैः । प्रद्युम्न-साम्बवान् कृष्णं, वसुदेवः समाययौ ॥ ४१७ ॥

१ °भ्यरे संता० ॥ २ °व्ययुध्य° संता० ॥ ३ प्रधाविषु संता० ॥ ४ °तुर्धन° संता० ॥

लोलदम्भोरुहकरै, रसवद्भिस्तरङ्गकैः । निपत्य चपलैः कान्तावक्षोजेषु व्यलीयत ॥ २७ ॥
जलयन्त्रोज्झितं नीरं, मुहुर्मार्जयतः करात् । सङ्क्रान्तमिव रागेण, तदा नेत्रेषु योषिताम् ॥ २८ ॥
स्त्रीणां तदा कराघातैर्जले गर्जति मेघवत् । नृत्ता ग्रीष्ममपि प्रावृट्कालयन्ति स्म केकिनः ॥ २९ ॥
मनोमुदे वरं मुक्त्वा, देवरं प्रति नेमिनम् । तास्ततश्चक्रिरे नीरमपञ्चं नर्मकर्मठाः ॥ ३० ॥
करोद्धूतैरपां पूरैरथ तासां निरन्तरैः । तदा न विव्यथे नेमिरब्दमुक्तैरिवाचलः ॥ ३१ ॥
समन्ततः समं ताभिः, कृतप्रतिकृतौ कृती । चिक्रीड नेमिनाथोऽपि, तदा पाथोभिरद्भुतम् ॥ ३२ ॥
इति खेलन्तमालोक्य, तदानीं नेमिनं मुदा । कृतार्थीकृतदृक् तस्थौ, चिरं पयसि केशवः ॥ ३३ ॥
निर्गत्य सरसस्तीरे, तदा तस्थुः ससम्मदाः । अब्देव्य इव देदीप्यमाना माधवयोषितः ॥ ३४ ॥
अथ निःसृत्य दन्तीव, नेमिनाथोऽपि पल्वलात् । लताभिरिव कान्ताभिस्ताभिर्न्यासे पदे ययौ ॥ ३५ ॥
प्रहृष्टा रुक्मिणी रुक्मपीठे नेमिं न्यवेशयत् । वाससा दाससामान्यमङ्गे चास्य मृजां व्यधात् ॥ ३६ ॥
अथाऽऽह रुक्मिणी नेमिनाथं मधुरया गिरा । अहं किञ्चन वच्मि त्वां, देवरं देव! रञ्जिता ॥ ३७ ॥
जितं बलेन कान्त्या च, केशवं बान्धवं जय । विधाय बद्धसम्बन्धमवरोधवधूजनम् ॥ ३८ ॥
श्रीनाभेयादयस्तीर्थकराः के न मुमुक्षवः ? । परिणीय समुत्पन्नसूनवो दधिरे व्रतम् ॥ ३९ ॥
त्वमप्यतो विवाहेन, पितृ-भ्रातृ-सुहृज्जनम् । आनन्दय दयासार!, दयास्थानमिदं महत् ॥ ४० ॥
इत्युक्त्वा रुक्मिणी सत्यभामाप्रभृतिभिः सह । पपात पादयोर्नेमेः, पाणिग्रहकृताग्रहा ॥ ४१ ॥
ततः सतृष्णः कृष्णोऽपि, पाणिग्रहमहोत्सवे । कुर्वन्नभ्यर्थनां नेमेः, पाणौ दीन इवालगत् ॥ ४२ ॥
अन्येऽपि यदवः सर्वे, विवाहे विहिताग्रहाः । बभूवुर्नेमिनाथस्य, पुरः पटुचटूक्तयः ॥ ४३ ॥
स्त्रिय एता अमी मूढास्तदेषामित्थमाग्रहे । कालनिर्गमनं कर्तुं, युक्तं वचनमाननम् ॥ ४४ ॥
कदाचिदपि लप्स्येऽहमिहार्थे सन्धिदूषणम् । ध्यात्वेदमोमिति प्रोचे, श्रीनेमिस्तानमोदयत् ॥ ४५ ॥
शिवा-समुद्रविजयौ, तत्कथाकथके नरे । दातुं नापश्यतां वस्तु, राज्येऽप्यानन्दभानतः ॥ ४६ ॥
स्वबन्धोरुचितां कन्यामन्विष्यन्नथ केशवः । अभापि भामयाऽऽस्ते यन्मम राजीमती स्वसा ॥ ४७ ॥
हरिः स्मृत्वाऽथ तां स्मित्वा, ययौ यदु-बलैः समम् । निवासमुग्रसेनस्य, नभोदेशमिवांशुमान् ॥ ४८ ॥
अभ्युत्थायोग्रसेनोऽपि, विष्वक्सेनं ससम्भ्रमः । भद्रपीठे निवेश्याग्रे, तस्थावादेशलालसः ॥ ४९ ॥
याचितो नेमये राजीमतीं कृष्णेन स स्वयम् । तथेति प्रतिपद्याथ, सचक्रे चक्रिणं मुदा ॥ ५० ॥
ततः कृष्णेन विज्ञप्तः, समुद्रविजयो नृपः । विवाहलग्नमासन्नं, पृष्टवान् क्रोष्टुकिं तदा ॥ ५१ ॥
दत्तेऽथ श्रावणश्वेतपष्ठ्यां क्रोष्टुकिना दिने । उग्रसेन-समुद्रोर्वीनाथौ तूर्णमसज्जताम् ॥ ५२ ॥
अथ पाणिग्रहासन्नदिने नेमिं यदुस्त्रियः । प्राङ्मुखं स्थापयामासुस्तारप्रारब्धगीतयः ॥ ५३ ॥
तमस्नपयतां प्रीत्या, राम-दामोदरौ स्वयम् । बद्धप्रतिसरं नेमिप्रभुं, नाराचधारिणम् ॥ ५४ ॥
अगादथोग्रसेनस्य, निकेतं तार्क्ष्यकेतनः । स्वयं तद्विधिना राजीमतीमप्यध्यवासयत् ॥ ५५ ॥
अथाऽऽगत्य गृहं विष्णुरिमां निर्वाह्य शर्वरीम् । मुदा संवाहयामास, विवाहाय जगद्गुरुम् ॥ ५६ ॥
अथ श्वेतांशुवल्लोकदृक्कैरवविकासकः । श्रीनेमिः श्वेतशृङ्गारः, श्वेताश्वं रथमास्थितः ॥ ५७ ॥
तूर्यनिर्घोषसंहूतपुरुहूतवधूजनः । बन्दिवृन्दमुखोन्मुक्तैः, सूक्तैर्मुखरिताम्बरः ॥ ५८ ॥

१ °तपुरीजनः खंता० सं० ॥

चतुर्दशः सर्गः।

खेलन्नितोऽपि शैवेयः, कृष्णायुधगृहं गतः। यामिकेन निषिद्धोऽपि, पाञ्चजन्यं करेऽकरोत् ॥ १ ॥
शङ्खमादाय हंसायमानमाननपङ्कजे। नेमिर्दध्मौ दृढध्वानबधिरीकृतविष्टपः ॥ २ ॥
चुचुम्ब मत्सुतं शङ्खं, विश्वस्वामीति हर्षतः। वीचीहस्तैर्नर्नर्ताब्धिस्तेन ध्वानेन विस्तृतैः ॥ ३ ॥
दध्मौ मदधिकप्राणः, कः कम्बुमिति चिन्तयन्। कृष्णः शस्त्रगृहारक्षैर्विज्ञप्तो नेमिविक्रमम् ॥ ४ ॥
अथाऽऽगतं पुरो नेमिं, प्रीतः प्राह जनार्दनः। निजं भुजबलं भ्रातर्मम युद्धेन दर्शय ॥ ५ ॥
जगादाथ जगन्नाथो, युक्तो नैव रणोत्सवः। बाहुवल्लिविनामेन, मन्तव्यस्तु बलावधिः ॥ ६ ॥
प्रतिपद्येति कृष्णेन, धृतमस्यायतं भुजम्। वज्रार्गलनिभं नेमिर्मृणालवदनामयत् ॥ ७ ॥
धृतेऽपि नेमिना बाहौ, बाहुयुग्मेन केशवः। ललम्बे द्रुमशाखायां, शाखामृग इवोत्प्लुतः ॥ ८ ॥
नेमेर्नमयितुं बाहुमशक्तः प्राह केशवः। जेतास्मि त्वद्बलेनाहं, साहङ्कारानपि द्विषः ॥ ९ ॥
एवंविधबलोद्दामोऽरिष्टनेमिर्ग्रहीष्यति। मम राज्यमिति ध्यायन्नूचे देवतया हरिः ॥ १० ॥
पुरा नमिजिनेनोक्तं, भावी नेमिर्जिनः स हि। कुमार एव भविता, व्रती तन्मा भयं विधाः ॥ ११ ॥
मत्वेदमथ सम्मानमतिमात्रं जिनेशितुः। चकार रुक्मिणीकान्तो, रेवतीरमणोऽपि च ॥ १२ ॥
अविकारिमनाः स्वामी, यौवनस्थोऽपि बालवत्। अखेलदस्खलन्नन्तःपुरेऽपि बल-कृष्णयोः ॥ १३ ॥
अथ कृष्णो वसन्तर्तौ, सान्तःपुर-पुरव्रजः। जगाम स्वामिना साकं, रैवताचलकाननम् ॥ १४ ॥
तत्र कृष्णेन समं नेमिरक्रीडत् कामिनीजनैः। सभिः प्रत्युपकुर्वाणोऽप्यविकुर्वाणमानसः ॥ १५ ॥
अहर्दिवमिति क्रीडां, विधाय गरुडध्वजः। आजगाम पुनर्द्वारवतीं श्रीनेमिना सह ॥ १६ ॥
ऋतुराजमथो जित्वा, वसन्तं भुवनेऽद्भुतम्। ग्रीष्मर्तुरुच्चयौ चण्डमार्तण्डेन प्रतापवान् ॥ १७ ॥
श्रीचन्दनरसैर्धौतवसनैरपि देहिनः। मूर्तैर्ग्रीष्मर्तुराजस्य, यशोभिरिव रेजिरे ॥ १८ ॥
हृते नदी-नदादीनां, सर्वस्वे भास्वतः करैः। नदीनदेशः स्मेरोऽभूत्, धिगहो! जलधीहितम् ॥ १९ ॥
प्रतापं तपनस्योच्चैस्तदा वीक्ष्येव वैरिणः। पेतुर्भीतानि शीतानि, कूपेष्विति हिमं पयः ॥ २० ॥
नभोऽपि प्रसृतं मन्ये, घर्मह्रत्पवनाशया। तच्चिराल्लङ्घ्यतेऽर्केण, महान्तस्तेन वासराः ॥ २१ ॥
अथ सान्तःपुरो विष्णुर्नेमिना सह जग्मिवान्। तत्रैव रैवतोद्यानसरसीं क्रीडितुं रसी ॥ २२ ॥
सरसि स्वच्छनीरेऽस्मिन्, समं स्त्रीभिर्बभौ हरिः। व्योम्नीव चन्द्रिकापूर्णे, ताराभिः सह चन्द्रमाः ॥ २३ ॥
गौराङ्गीषु च खेलन्तौ, सहेलं हरि-नेमिनौ। चञ्चच्चम्पकमालासु, भ्रेजाते भ्रमराविव ॥ २४ ॥
स्त्रीणां नितम्बसम्बन्धवृद्धाम्बुपिहिताम्बुजे। मुर्खाम्बुजेषु भृङ्गाणां, दृशः सरसि बभ्रमुः ॥ २५ ॥
स्वस्तनप्रतिमां वीक्ष्य, धावत्यूर्मौ मृगीदृशः। हरिं भेजुर्भयादम्भःकुम्भिकुम्भस्थलभ्रमात् ॥ २६ ॥

---

१ करे दध्मौ सं० ॥ २ °ते नु ने° संता० सं० ॥ ३ °नेमि° संता० ॥ ४ °रग्रजः संता० ॥
५ °ते सदा नदा° संता० ॥ ६ °साम्भोजे° संता० सं० ॥ ७ °र्जुर्भिया द्राःस्थकु° सं० ॥

ततोऽभ्यधात् प्रभुः कृष्ण !, नोक्तं युक्तमिदं त्वया । विचारय चिरं बन्धो !, निर्बन्धस्याऽऽयतिं मम ॥८८॥
संसारसुखमापातमधुरं स्यादपथ्यवत् । प्रियङ्करः प्रियैश्चायं, शमस्तु कटुजायुवत् ॥ ८९ ॥
सर्वेषां तत् प्रियाकर्तुं, प्रशमोऽयं श्रितो मया । हितं यत् परिणामे हि, हितं तत् पारमार्थिकम् ॥ ९० ॥
इत्युक्त्वा स्वजनेष्वश्रुगद्गदेषु रुदत्स्वपि । समाजगाम श्रीनेमिर्गृहमुद्वाहनिःस्पृहः ॥ ९१ ॥
तदा च समयं ज्ञात्वा, प्रभुर्लोकान्तिकामरैः । मुदा विज्ञपयाञ्चक्रे, नाथ ! तीर्थं प्रवर्तय ॥ ९२ ॥
अथाऽसौ वार्षिकं दानं, दातुं प्रारब्धवान् प्रभुः । कारुण्यसागरः कृतव्रतग्रहणनिश्चयः ॥ ९३ ॥
अन्यतश्चलिते विश्वस्वामिन्यथ रवाविव । भेजे मूर्च्छामियं राजीमती राजीविनीव सा ॥ ९४ ॥
अमन्दैश्चन्दनस्यन्दैः, कौमुदीकोमलैरथ । अभिषिक्ता वयस्याभिर्बुद्धा कुमुदिनीव सा ॥ ९५ ॥
सकज्जलैरश्रुजलैः, कपोलञ्छलितैरथ । विललापेयमेणाङ्कबिम्बयन्ती मुखाम्बुजम् ॥ ९६ ॥
रे दैव ! यदि भाले मे, न नेमिर्लिखितः पतिः । ततः किमियतीं भूमिं, त्वयाऽहमधिरोपिता ? ॥ ९७ ॥
यदि नेमिर्न मे भावी, भर्ता किं ढौकितस्ततः ? । तन्नाऽलब्धनिधेर्दुःखं, दृष्टनष्टनिधेर्हि यत् ॥ ९८ ॥
काऽहं ? क नेमिरित्यासीत्, त्वत्पतित्वे मनोऽपि न । त्वद्गिरैव विवाहार्थे, स्वामिन्नस्मि प्रतारिता ॥ ९९ ॥
त्वमारोपि ममोद्वाहमनोरथतरुः स्वयम् । उन्मूलयन्निमं स्वामिन्नात्मनोऽपि न लज्जसे ? ॥ १०० ॥
क्रन्दन्तीति वयस्याभिर्निषिद्धा कथमप्यसौ । निश्चिकायेति शैवेय, एव देवोऽस्तु मे गतिः ॥ १०१ ॥
ववर्ष वार्षिकं दानमितश्च श्रीशिवासुतः । समुद्रविजयादीनां, जलं च नयनोच्चयः ॥ १०२ ॥
कृतदीक्षाभिषेकोऽयमथाशेषैः सुरेश्वरैः । नाम्नोत्तरकुरुं रत्नशिबिकामारुरोह सः ॥ १०३ ॥
सुरा-ऽसुर-नरैर्मातृ-जनक-स्वजनैरपि । स्वामी परिवृतो राजपथेन प्राचलन्मुदा ॥ १०४ ॥
तदाऽऽलोक्य गृहासन्नं, प्रसन्नं नेमिनं जिनम् । अवाप व्याकुला राजीमती मूर्च्छां मुहुर्मुहुः ॥ १०५ ॥
अथाऽऽससाद श्रीनेमिः, सहस्राम्रवणं वनम् । वनान्तलक्ष्मीधम्मिल्लतुल्यरैवतकाचलम् ॥ १०६ ॥
पूर्वाह्ने श्रावणश्वेतषष्ठ्यां षष्ठेन स प्रभुः । पूर्णाब्दत्रिशतीकोऽथ, प्राव्रजत् त्वाष्ट्रगे विधौ ॥ १०७ ॥

प्रतीप्य केशान् देवेशो, दूष्यं स्कन्धे विभोर्न्यधात् ।
तान् परिक्षिप्य दुग्धाब्धौ, तुमुलं च न्यषेधयत् ॥ १०८ ॥

सामायिकमथाऽऽदाय, मनःपर्ययमासदत् । श्रीमान् नेमिश्च सौख्यं च, प्रपेदे नारकैरपि ॥ १०९ ॥
भूभुजः प्राव्रजंस्तत्र, सहस्रं सह नेमिना । स तैः प्रभाढ्यैर्व्याप्तः, सहस्रांशुरिवाऽऽबभौ ॥ ११० ॥
अथ नत्वा गते लोके, परमान्नेन पारणम् । द्वितीयेऽह्नि विभुश्चक्रे, वरदत्तद्विजौकसि ॥ १११ ॥
अथोत्सवे कृते तत्र, त्रिदशेशैर्यथाविधि । विजहारान्यतः स्वामी, कर्मनिर्मथनोद्यतः ॥ ११२ ॥
रथनेमिरथो नेमेरनुजो मदनातुरः । उपाचरच्चिरं राजीमतीं पाणिग्रहेच्छया ॥ ११३ ॥
हेमपात्रेऽन्यदा पीतं, वान्त्वा दुग्धं प्रयोगतः । पिबेदमिति तं नेमिरथं राजीमती जगौ ॥ ११४ ॥

स तामुवाच श्वानोऽस्मि, किमु वान्तं पिबामि यत् ? ।
साऽप्याह नेमिवान्तां मां, भोक्तुकामोऽसि किं ततः ? ॥ ११५ ॥

आश्विने मासि पूर्वाह्णेऽमावास्यायां कृताष्टमः । वेतसाधः प्रभुः प्राप, केवलं त्वाष्ट्रगे विधौ ॥ ११६ ॥

---

१ °तु पुनः ए° संता० ॥ २ °यस्यायं संता० ॥ ३ °पु घट° संता० ॥ ४ °न्दचन्द° संता० सं० ॥ ५ °यममुं स्वा° संता० ॥ ६ °वात्मजः सं० ॥

गीयमानगुणग्रामो, हृष्टैर्बन्धुवधूजनैः । कामं जामिसमूहेन, क्रियमाणावतारणः ॥ ५९ ॥
समं समद्रैर्यदुभिर्यदुनारीभिरप्यथ । उग्रसेनगृहासन्नो, जगाम जगदीश्वरः ॥ ६० ॥ कैलापकम् ॥
वयस्याभिरभिप्रायविद्भिः सा प्रेरिता ततः । गवाक्षमाययौ राजीमती नेमिदिदृक्षया ॥ ६१ ॥
आयाति विश्वमालिन्यभिदि नेमौ भयाद् गतम् । पश्चाल्लक्ष्मेव वक्त्रेन्दोर्दधाना कबरीभरम् ॥ ६२ ॥
सीमन्तसीम्नि बिभ्राणा, मुक्तास्तबकमद्भुतम् । लावण्याम्भोधिसम्भूतनवनिर्लाञ्छनेन्दुवत् ॥ ६३ ॥
मदनद्विरदालानमणिस्तम्भानुकारिणा । भालस्थलस्थकाश्मीरतिलकेन विभूषिता ॥ ६४ ॥
समारूढरति-प्रीतिप्रियशैलूषशालिना । भ्रूरज्जुसज्जितेनोच्चैर्नासावंशेन भासुरा ॥ ६५ ॥
दृग्भ्यां योग्याकृते क्षिप्तैः, कर्णकोटरमध्यगैः । विशिखैरिव राजन्ती, कटाक्षैर्द्रुतपातिभिः ॥ ६६ ॥
अन्तर्भित्तिसदृग्नासाविभक्तौ मणिभासुरौ । कपोलौ बिभ्रती कामप्रेयस्योर्वासवेश्मवत् ॥ ६७ ॥
आस्येन्दुना निपीतस्य, शशाङ्कयशसोऽधिकान् । उद्गारानिव तन्वाना, स्मितदन्तद्युतिच्छलात् ॥ ६८ ॥
प्रियानुरागं चित्तान्तरमान्तमिव निर्भरम् । उद्भ्रान्तमधरच्छायाच्छद्मना दधती मुखे ॥ ६९ ॥
कम्बुं नाभीह्रदादीशदग्धं मग्नमिव स्मरम् । दाम्नेवास्येन्दुमुक्तेन, मुक्ताहारेण हारिणी ॥ ७० ॥
दधाना मेखलारत्नं, दीपरूपमिव स्मरम् । उद्यत्कज्जललेखाभरोमराजिविराजितम् ॥ ७१ ॥
पादाभ्यामङ्गुलिश्रेणिशोणितक्षोणिमण्डला । तर्जयन्तीव पद्मानि, मणिनूपुरसिञ्जितैः ॥ ७२ ॥
हर्षपीयूषवर्षेणोद्भिन्नरोमाङ्कुरोत्करा । साऽऽरुरोह वरारोहा, गवाक्षं वीक्षिता जनैः ॥ ७३ ॥

॥ द्वादशभिः कुलकम् ॥

विश्वातिशायिसौभाग्य-भाग्य-लावण्यसम्पदम् । पिबन्ती निर्निमेषाक्षी, सा देवीभूयमन्वभूत् ॥ ७४ ॥

विवोढुमप्युपायान्तं, सा तं वीक्ष्य व्यचिन्तयत् ।
एतत्पाणिग्रहे योग्यं, भाग्यं किं मे भविष्यति ! ॥ ७५ ॥

इतश्चाऽऽकर्णयन् नानाजीवानां करुणं रवम् । जानन्नपि जिनोऽपृच्छत्, किमेतदिति सारथिम् ॥ ७६ ॥
अथ सारथिनाऽभाषि, देवाऽऽतिथ्यकृते तव । उग्रसेनोऽग्रहीज्जीवान्, जल-स्थल-नभश्चरान् ॥ ७७ ॥
तत् सर्वेऽपि कृपाकान्त !, वाटकान्तः स्थिता अमी । तन्वते तुमुलं प्राणभयं येन महाभयम् ॥ ७८ ॥
तदुवाच यदुस्वामी, यत्रामी सन्ति जन्तवः । स्यन्दनं नय तत्रामुमित्यकार्षीच्च सारथिः ॥ ७९ ॥
अथ व्यलोकि दीनास्यैः, प्राणिभिर्वध्यतां गतैः । स्वोक्त्या रक्षेति जल्पद्भिः, पितेव तनुजैः प्रभुः ॥ ८० ॥
करुणाकरिणीकेलिकाननेनाथ नेमिना । अमी सर्वेऽप्यमोच्यन्त, जवादादिश्य सारथिम् ॥ ८१ ॥
मुक्तेषु तेषु जीवेषु, करुणावीचिवार्धिना । स्यन्दनो जगतां पत्या, प्रत्यावासमचाल्यत ॥ ८२ ॥
शिवा समुद्रविजयः, कृष्ण-रामादयोऽप्यथ । स्वस्वयानं समुत्सृज्य, श्रीमन्नेमिनमभ्यगुः ॥ ८३ ॥
ततो नेमिनमूचाते, पितरौ साश्रुलोचनौ । त्वया जात ! किमारब्धमिदं नः प्रतिलोमिकम् ? ॥ ८४ ॥
प्रभुः प्राह मयाऽऽरब्धमेतद्विधानुकूलिकम् । पशुवन्मोचयिष्यामि, यद् युष्मान् स्वं च बन्धनात् ॥ ८५ ॥
तदाकर्ण्याथ मूर्च्छार्तौ, पितरौ पेततुः क्षितौ । चन्दनादिभिराश्वास्य, कृष्णस्तौ नेमिमभ्यधात् ॥ ८६ ॥
धिक् ! ते विवेकितामेतां, पशूनप्यनुकम्पसे । दोदूयसे पुनर्मातृ-पितृ-बन्धु-सुहृज्जनान् ॥ ८७ ॥

---

१ कुलकम् बता० ॥ २ अयं श्लोकः बता० नास्ति ॥ ३ भयेदिति संता० सं० ॥
४ °दनारपम् संता० सं० ॥ ५ °स्तार्थृता सं० ॥ ६ °भ्ययुः संता० ॥ ७ °मेतान्, पशू° संता० ॥

कृष्णोऽपृच्छदथ क्रोधात्, कथं ज्ञेयः स दुर्द्विजः ? ।
प्रभुः प्राह त्वदालोके, शिरो यस्य स्फुटिष्यति ॥ १४५ ॥

रुदन् कृष्णोऽथ संस्कार्य, गजं निजपुरेऽविशत् । सोमं तथामृतं बद्धपादं बहिरचिक्षिपत् ॥ १४६ ॥

यदवो गजदुःखेन, प्राव्रजन् बहवस्ततः । शिवादेवी च दाशार्हा, वसुदेवं विना नव ॥ १४७ ॥

विभोः सहोदराः सप्त, चान्ये हरिकुमारकाः । राजीमती चैकनासा, कन्या चान्या यदुस्त्रियः ॥ १४८ ॥
॥ युग्मम् ॥

प्रत्याख्याच हरिः कन्योद्वाहं सोत्साहमानसः । तत्पुत्र्यः प्राव्रजन् सर्वा, वसुदेवस्य चाङ्गनाः ॥ १४९ ॥

देवकी-कनकवती-रोहिणीभिर्विना पुनः । गृहे कनकवत्यास्तु, जातं केवलमुज्वलम् ॥ १५० ॥

तत्रोत्यमित्य गीर्वाणैः, कृतोच्चैःकेवलोत्सवा । प्रव्रज्यां स्वयमादाय, नेमिं वीक्ष्य ययौ वने ॥ १५१ ॥

कृत्वाऽऽहारपरीहारं, तत्र त्रिंशदसौ दिनान् । क्षिप्त्वा निःशेषकर्माणि, मोक्षलक्ष्मीमुपाददे ॥ १५२ ॥

शक्रोऽन्यदा गदस्याह, नाऽऽहवं कुरुतेऽधमम् । दोषान् परेषामुत्सृज्य, भाषते च गुणं हरिः ॥ १५३ ॥

तदश्रद्दधता मार्गे, चक्रे देवेन केनचित् । दुर्गन्धः श्वा मृतः श्यामः, स्वैरं विहरतो हरेः ॥ १५४ ॥

गन्धत्रस्तजनं श्वानं, तं प्रेक्ष्य प्राह केशवः । इह श्यामैरुचौ दन्ता, भान्ति व्योम्नीव तारकाः ॥ १५५ ॥

हयरत्नं हरन्नश्वहरीभूय पुरःसरः । ऊचे जितान्यसैन्योऽथ, स्वयमभ्येत्य विष्णुना ॥ १५६ ॥

स्थिरीभव के रे ! यासि ?, म्रियसे मुञ्च वाजिनम् । इति वासवकल्पं तं, जल्पन्तं त्रिदशोऽवदत् ॥ १५७ ॥

यच्छन्ति वाञ्छितं युद्धं, शुद्धक्षत्रियैगोत्रजाः । पुताहवेन मां जित्वा, तद् गृहाण हयं निजम् ॥ १५८ ॥

निषिद्धाधर्मयुद्धोऽसौ, तुष्टादथ हरिः सुरात् । मेरीं मेजे ध्वनिध्वस्तषाण्मासिकमहारुजम् ॥ १५९ ॥

इति प्रीते सुरे तस्मिन्, गते मेरीं हरिः पुरे । अवादयद् यदा लोके, रोगः क्षयमगात् तदा ॥ १६० ॥

अथ लक्षेण लक्षेण, तस्या मेर्याः पलं पलम् । विक्रीतं रक्षकेणैषा, पूर्णा श्रीखण्डखण्डकैः ॥ १६१ ॥

तां निष्प्रभावां तज्ज्ञात्वा, घातयामास रक्षकम् । हरिः सुरात् परां लेभे, मेरीमष्टमभक्ततः ॥ १६२ ॥

तद्भेरीभूरिनादेन, स चक्रे विरुजं पुरम् । पर्जन्यगर्जितेनेव, गतदुःखं महीतलम् ॥ १६३ ॥

अन्येद्युर्द्वारकां प्राप्तो, वर्षासु श्रीशिवासुतः । ततः प्रभुप्रणामाय, निर्माय: केशवो ययौ ॥ १६४ ॥

नत्वा शुश्रूषमाणोऽथ, पप्रच्छ स्वामिनं हरिः । न किं चलन्ति वर्षासु, दत्तहर्षाः सुसाधवः ? ॥ १६५ ॥

विश्वचक्षुरथाऽऽचख्यौ, नेमिर्गम्भीरया गिरा । बहुजीवकुलोत्कर्षा, वर्षा तन्नोचिता गतिः ॥ १६६ ॥

श्रुत्वेति श्रीपतिः श्रीमान्, जग्राह नियमं तदा । वर्षासु निःसरिष्यामि, कचिन्नाहं गृहाद् बहिः ॥ १६७ ॥

निश्चित्येति हरिर्नत्वा, नेमिं धाम जगाम सः ।
कोऽपि मोच्योऽन्तरा नेति, द्वारपालं तथाऽऽदिशत् ॥ १६८ ॥

वीराख्यस्तु पुरे तस्मिन्, कुविन्दो भक्तिमान् हरौ ।
अविलोक्य हृषीकेशं, न भुङ्क्ते स्म कदाचन ॥ १६९ ॥

आवासे न प्रवेशं स, लेभे द्वारस्थितस्ततः । सपर्यां विष्णुमुद्दिश्य, चक्रे नित्यमभोजनः ॥ १७० ॥

---

१ °लोकात्, समन्ताद् यः स्फुटच्छिराः खंता॰ सं॰ ॥ २ °मृतं पादयद्धं यदि° खता॰ ॥ ३ °प्रभुतो द° खंता॰ सं॰ ॥ ४ क भो ! या° खंता॰ ॥ ५ °यवंशजाः सं॰ ॥ ६ °युद्धोऽथ, तुष्टादेव हरिः खंता॰ सं॰ ॥ ७ द्वारि स्थि° खंता॰ ॥

देवैः समवसरणे, विहितेऽथ यथाविधि । अलञ्चक्रे विभुः सिंहासनं सिंह इवाचलम् ॥ ११७ ॥
अथाऽऽगतं विभुं मत्वा, हरिः परिजनैः समम् । समागत्य नमस्कृत्य, जिनं हृष्टो निविष्टवान् ॥ ११८ ॥
ततश्च वरदत्तादीनेकादश गणेश्वरान् । विभुः प्रवर्तिनीं चक्रे, राजपुत्रीं च यक्षिणीम् ॥ ११९ ॥
देवक्युदरजैः षड्भिर्द्वात्रिंशद्वल्लभायुतैः । नागसद्मस्थितैर्युक्तेऽगाद् भद्रिलपुरे विभुः ॥ १२० ॥
अमी चरमदेहाः षड्, प्राव्रजन् नेमिबोधिताः । विजह्रुः स्वामिना सार्कं, द्वारकां च ययौ विभुः ॥ १२१ ॥
देवकीसूनवः षट् ते, भूत्वा युगलिनः क्रमात् । देवक्याः सदनं जग्मुः, षष्ठान्ते पारणेच्छया ॥ १२२ ॥
मुदिता वीक्ष्य कृष्णाभं, पूर्वायातं मुनिद्वयम् । देवकी मोदकैः सिंहकेसरैः प्रत्यलाभयत् ॥ १२३ ॥
द्वितीयं युग्ममायातमप्यसौ प्रत्यलाभयत् । युग्मं तृतीयमायातमथाभाषत देवकी ॥ १२४ ॥
किं दिग्मोहान्मुहुः प्राप्तौ, युवां ? किं मे मतिभ्रमः ? । किं वा भक्तादिकं नात्र, लभन्ते पुरि साधवः ? ॥१२५॥
तावूचतुः किमाशङ्का?, यद् वयं षट् सहोदराः । त्रिधा युगलिनो भूत्वा, भृशं त्वद्गृहमागताः ॥ १२६ ॥

तद् दध्यौ देवकी कृष्णतुल्याः किं मे सुता अमी ? ।
उक्ताऽतिमुक्तकेनाहं, जीवत्पुत्राष्टकाऽसि यत् ॥ १२७ ॥

इति श्रीनेमिनं प्रष्टुं, द्वितीयेऽह्नि जगाम सा । ऊचे नाथोऽपि तद्भावं, मत्वा ते षडमी सुताः ॥ १२८ ॥
तेषां जीवितवृत्तान्तमाकर्ण्य च विभोर्मुखात् । सा ववन्दे प्रमोदेन, षडिमान् षडरिच्छिदः ॥ १२९ ॥
ऊचे च मद्भुवां राज्यमुत्कृष्टमथवा व्रतम् । नाङ्के यल्लालितः कोऽपि, सुतस्तदतिबाधते ॥ १३० ॥
प्रभुः प्राह त्वयाऽहारि, सपत्न्या रत्नसप्तकम् । प्राग्भवे यत् त्वया तस्यै, रुदत्यै चैकमर्पितम् ॥ १३१ ॥
तत्पाकर्मफलेनामी, न त्वया पालिताः सुताः । श्रुत्वेति सा ययौ सौधमष्टमात्मजकाङ्क्षिणी ॥ १३२ ॥
मत्वा मातुरभिप्रायं, गोविन्दो नैगमेषिणम् । देवमाराधयामास, तुष्टः सोऽप्येवमब्रवीत् ॥ १३३ ॥
भावी तवानुजः किन्तु, यौवने प्रव्रजिष्यति । तच्च तस्मिन् गते कृष्णः, प्रातर्मातुर्न्यवेदयत् ॥ १३४ ॥
तदा च देवकीकुक्षौ, देवः कोऽपि दिवश्च्युतः । अवतीर्णः शुभस्वप्नसूचिताद्भुतवैभवः ॥ १३५ ॥
बभूव समये विश्वरूपरूपस्ततः सुतः । नाम्ना गजसुकुमालो, देवक्या लालितः स्वयम् ॥ १३६ ॥
उपयेमे क्ष्मापसुतामेष नाम्ना प्रभावतीम् । सोमां च क्षत्रियाजातां, सोमशर्मद्विजाङ्गजाम् ॥ १३७ ॥
उद्यौवनः समं ताभ्यां, श्रीनेमिव्याख्यया गजः । धीमानुत्पन्नवैराग्यः, प्रियाभ्यां प्राव्रजत् समम् ॥ १३८ ॥
पृष्ट्वा प्रभुं श्मशाने च, मतिमान् प्रतिमां व्यधात् । दृष्टः श्वशुरकेणात्र, ब्रह्मणा सोमशर्मणा ॥ १३९ ॥
सैष प्रव्रज्य मत्पुत्रीं, व्यडम्बयदिति क्रुधा । चिताङ्गारचितं मूर्ध्नि, घटीकण्ठं न्यधाद् द्विजः ॥ १४० ॥
दग्धकर्मेन्धनोऽङ्गारैस्तैरिवाद्भुतभास्वनः । गजः केवलमासाद्य, प्रपेदे परमं पदम् ॥ १४१ ॥
वीक्षितुं दीक्षितं प्रातः, सोदरं सादरो हरिः । वन्दितुं च प्रभोः पादांश्चचाल सपरिच्छदः ॥ १४२ ॥
चैत्यार्थमिष्टकावाही, द्विजो वृद्धः कृपालुना । कृत्वा कृष्णेन साहाय्यं, सर्वैन्येन कृतार्थितः ॥ १४३ ॥

अथ नेमिं गतो विष्णुः, पप्रच्छ क ययौ गजः ? ।
विभुः सिद्धिं मुनेराख्यद्, वृत्तान्तात् सोमशर्मणः ॥ १४४ ॥

---

१ 'गजामंक्रिय' संपा० ॥ २ 'भद्दिल' गं० ॥ ३ सार्धं, द्वा' गं० ॥ ४ 'त्नपञ्चक' कं० ॥ ५ 'म, पृष्टः सोऽप्यवदद् स्याम्' संपा० गं० ॥ ६ 'तु प्रभुपादाब्जं, ययौ' संपा० गं० ॥ ७ अथ विष्णुर्गतो नेमिं, पप्र' गं० ॥

अन्यदा कर्म तस्योच्चैरुदगादान्तरायिकम्। स्वयं न लभते सोऽयं, हन्ति लाभं परस्य च ॥१९७॥
साधवोऽथ जगन्नाथमपृच्छन् किं न ढण्ढणः। कुत्रापि लभते किञ्चिन्नगरे ऋद्धिमत्यपि? ॥ १९८ ॥
अथावदद् विभुर्ग्रामे, धान्यपूराभिधे पुरा। विप्रो मगधदेशेऽभूदयं नाम्ना परासरः ॥ १९९ ॥
ग्रामे राजनियुक्तोऽसौ, ग्राम्यैः क्षेत्राणि वापयन्। सीतामकर्षयद् भक्तेऽभ्युपेतेऽपि पृथक् पृथक् ॥ २०० ॥
बुभुक्षितानपि श्रान्तानपि तृष्णातुरानपि। वृषान् दासांश्च स क्रूरो, मुमोच न कथञ्चन ॥ २०१ ॥
इत्यन्तरायमर्जित्वा, कर्म भ्रान्त्वा भृशं भवे। ढण्ढणोऽभूत् सुतो विष्णोः, पूर्वकर्मोदितं च तत् ॥ २०२ ॥
समाकर्ण्येति संविग्नः, कृष्णसूनुः पुरः प्रभोः। अभ्यग्रहीदिदं यन्न, मोक्ष्येऽहं परलब्धिभिः ॥ २०३ ॥
परलब्धं न तद् भुङ्क्ते, लभते न स्वयं क्वचित्। कालक्षेपमसावित्थं, चक्रे दुष्करकारकः ॥ २०४ ॥
कोऽतिदुष्करकारीति, प्रभुः पृष्टोऽथ विष्णुना। व्याचख्यौ ढण्ढणं साधुं, सोढाऽलाभपरीषहम् ॥ २०५ ॥
नत्वाऽथ स्वामिनं विष्णुः, पुरं द्वारवतीं व्रजन्। मुनिं ढण्ढणमालोक्य, ननामोत्तीर्य कुञ्जरात् ॥ २०६ ॥
ववन्दे विष्णुनाऽप्येष, धन्यः कोऽपि मुनीश्वरः। कोऽपि श्रेष्ठीति तं साधुं, मोदकैः प्रत्यलाभयत् ॥ २०७ ॥
दर्शयन् मोदकान् सोऽपि, मुनिः प्रभुमभाषत। मम कर्माद्य किं क्षीणं, लब्धा यन्मोदका अमी? ॥ २०८ ॥
जिनो जगाद नो कर्म, क्षीणं लब्धिश्च नैव ते। वन्दमानं हरिं दृष्ट्वा, यत् त्वां स प्रत्यलाभयत् ॥ २०९ ॥
परलब्धिमभुञ्जानः, स्थण्डिले मोदकान् मुनिः। द्राक् परिष्ठापयन् लेभे, केवलं भूरिभावनः ॥ २१० ॥
प्रभुं प्रदक्षिणीकृत्य, स केवलिसभां गतः। विहृत्याथ भुवि स्वामी, द्वारकां पुनरागमत् ॥ २११ ॥
रथनेमिरथान्येद्युर्भिक्षां भ्रान्त्वा पुरान्तरे। वलमानो गुहां काञ्चित्, प्रविष्टो वृष्टिपीडितः ॥ २१२ ॥
नेमिं नत्वा तथा राजीमती यान्ती पुरं प्रति। वृष्टिदूना तमोगुप्तां, रथनेमिगुहामगात् ॥ २१३ ॥
रथनेमिमजानन्ती, तमःस्तोमतिरोहितम्। उद्वापयितुमत्रासौ, वस्त्राण्यूर्द्धाण्यमुञ्चत ॥ २१४ ॥
तां तथा वीक्ष्य कामार्तो, रथनेमिरथाऽवदत्। पुराऽपि प्रार्थिताऽसि त्वमद्य मे कुरु वाञ्छितम् ॥ २१५ ॥
रथनेमिमथो मत्वा, ध्वनिना भोजनन्दनी। संवृताङ्गी जवादेव, व्रीडाभारादुपाविशत् ॥ २१६ ॥
राजीमत्याऽथ जल्पन्त्या, चिरं साधूचितं वचः। प्रत्यबोधि तदा प्रीतो, रथनेमिमहामुनिः ॥ २१७ ॥
तदालोच्य प्रभोरग्रे, तपस्तीव्रतरं चरन्। स्वच्छात्मा वत्सरेणासौ, कलयामास केवलम् ॥ २१८ ॥
विहृत्य पुनरन्येद्युः, स्वामी रैवतपर्वते। सेवितो देवतावृन्दैः, शमवान् समवासरत् ॥ २१९ ॥
हरिराह सुतान् प्रातर्यः प्राग् नंस्यति नेमिनम्। यच्छामि वाञ्छितं तस्मै, वाजिनं रयराजिनम् ॥ २२० ॥
श्रुत्वेति प्रथमं प्रातर्बालकः पालको मुदा। तुरङ्गस्यैव लोभेन, नेमिनाथं ननाम सः ॥ २२१ ॥
शाम्बस्तु प्रस्तुतध्याननिधानीभूतमानसः। स्थानस्थ एव तीर्थेशं, प्रणनाम निशात्यये ॥ २२२ ॥
ययाचे पालकः प्रातर्हयं हरिरथाब्रवीत्। प्रभुः प्राग् वन्दितो येन, दास्ये तस्यैव वाजिनम् ॥ २२३ ॥
गत्वाऽथ विष्णुना पृष्टः, स्वामी सम्यगभाषत।
द्रव्यतः पालकः शाम्बो, भावतः प्राग् ननाम माम् ॥ २२४ ॥
अभव्योऽयमिति क्रुद्धो, निचक्रे पालकं हरिः। शाम्बाय मण्डलेशत्वमिष्टं च तुरगं ददौ ॥ २२५ ॥
देशनान्तेऽन्यदा नेमिं, नमस्कृत्य जनार्दनः। पप्रच्छ द्वारकाऽप्येषा, कदाचिद् यास्यति क्षयम्? ॥२२६॥

---

१ °न्त्वा चिरं भवे। खंता० सं० ॥ २ °तकाचले खंता० ॥ ३ नत्वा° सं० ॥ ४ °ति श्रुत्वा, निच° खंता० ॥

देवैः समवसरणे, विहितेऽथ यथाविधि । अलञ्चक्रे विभुः सिंहासनं सिंह इवाचलम् ॥ ११७ ॥
अथाऽऽगतं विभुं मत्वा, हरिः परिजनैः समम् । समागत्य नमस्कृत्य, जिनं हृष्टो निविष्टवान् ॥ ११८ ॥
ततश्च वरदत्तादीनेकादश गणेश्वरान् । विभुः प्रवर्तिनीं चक्रे, राजपुत्रीं च यक्षिणीम् ॥ ११९ ॥
देवक्युदरजैः पड्भिर्द्वात्रिंशद्वल्लभायुतैः । नागसद्मस्थितैर्युक्तेऽगाद् भद्रिलपुरे विभुः ॥ १२० ॥
अमी चरमदेहाः पट्, प्राव्रजन् नेमिबोधिताः । विजह्रुः स्वामिना साकं, द्वारकां च ययौ विभुः ॥ १२१ ॥
देवकीसूनवः पट् ते, भूत्वा युगलिनः क्रमात् । देवक्याः सदनं जग्मुः, पष्ठान्ते पारणेच्छया ॥ १२२ ॥
मुदिता वीक्ष्य कृष्णाभं, पूर्वायातं मुनिद्वयम् । देवकी मोदकैः सिंहकेसरैः प्रत्यलाभयत् ॥ १२३ ॥
द्वितीयं युग्ममायातमप्यसौ प्रत्यलाभयत् । युग्मं तृतीयमायातमथाभाषत देवकी ॥ १२४ ॥
किं दिग्मोहान्मुहुः प्राप्तौ, युवां ? किं मे मतिभ्रमः ! । किं वा भक्तादिकं नात्र, लभन्ते पुरि साधवः ! ॥१२५॥
तावूचतुः किमाशङ्का !, यद् वयं पट् सहोदराः । त्रिधा युगलिनो भूत्वा, भृशं त्वद्गृहमागताः ॥ १२६ ॥
तद् दध्यौ देवकी कृष्णतुल्याः किं मे सुता अमी ! ।
उक्ताऽतिमुक्तकेनाहं, जीवत्पुत्राष्टकाऽसि यत् ॥ १२७ ॥
इति श्रीनेमिनं प्रष्टुं, द्वितीयेऽह्नि जगाम सा । ऊचे नाथोऽपि तद्भावं, मत्वा ते षडमी सुताः ॥ १२८ ॥
तेषां जीवितवृत्तान्तमाकर्ण्य च विभोर्मुखात् । सा ववन्दे प्रमोदेन, षडिमान् षडरिच्छिदः ॥ १२९ ॥
ऊचे च मद्भुवां राज्यमुत्कृष्टमथवा व्रतम् । नाङ्के यल्लालितः कोऽपि, सुतस्तदतिबाधते ॥ १३० ॥
प्रभुः प्राह त्वयाऽहारि, सपत्न्या रत्नसप्तकम् । प्राग्भवे यत् त्वया तस्यै, रुदत्यै चैकमर्पितम् ॥ १३१ ॥
तत्पाक्कर्मफलेनामी, न त्वया पालिताः सुताः । श्रुत्वेति सा ययौ सौधमष्टमात्मजकाङ्क्षिणी ॥ १३२ ॥
मत्वा मातुरभिप्रायं, गोविन्दो नैगमेषिणम् । देवमाराधयामास, तुष्टः सोऽप्येवमब्रवीत् ॥ १३३ ॥
भावी तवानुजः किन्तु, यौवने प्रव्रजिष्यति । तच्च तस्मिन् गते कृष्णः, मातर्मातुर्न्यवेदयत् ॥ १३४ ॥
तदा च देवकीकुक्षौ, देवः कोऽपि दिवश्च्युतः । अवतीर्णः शुभस्वप्नसूचिताद्भुतवैभवः ॥ १३५ ॥
बभूव समये विश्वरूपरूपस्ततः सुतः । नाम्ना गजसुकुमालो, देवक्या लालितः स्वयम् ॥ १३६ ॥
उपयेमे क्ष्मापसुतामेष नाम्ना प्रभावतीम् । सोमां च क्षत्रियाजातां, सोमशर्मद्विजाङ्गजाम् ॥ १३७ ॥
उद्यौवनः समं ताभ्यां, श्रीनेमिव्याख्यया गजः । धीमानुत्पन्नवैराग्यः, प्रियाभ्यां प्राव्रजत् समम् ॥ १३८ ॥
दृष्ट्वा प्रभुं श्मशाने च, मतिमान् प्रतिमां व्यधात् । दृष्टः श्वशुरकेणात्र, ब्रह्मणा सोमशर्मणा ॥ १३९ ॥
सैष प्रव्रज्य मत्पुत्रीं, व्यडम्बयदिति क्रुधा । चिताङ्गारचितं मूर्ध्नि, घटीकण्ठं न्यधाद् द्विजः ॥ १४० ॥
दग्धकर्मेन्धनोऽङ्गारैस्तैरिवाद्भुतभावनः । गजः केवलमासाद्य, प्रपेदे परमं पदम् ॥ १४१ ॥
प्रीक्षितुं दीक्षितं प्रातः, सोदरं सादरो हरिः । वन्दितुं च प्रभोः पादांश्चचाल सपरिच्छदः ॥ १४२ ॥
चैत्यार्थमिष्टकावाही, द्विजो वृद्धः कृपालुना । कृत्वा कृष्णेन साहाय्यं, ससैन्येन कृतार्थितः ॥ १४३ ॥
अथ नेमिं गतो विष्णुः, पप्रच्छ क ययौ गजः ? ।
विभुः सिद्धिं मुनेराख्यद्, वृत्तान्तात् सोमशर्मणः ॥ १४४ ॥

---

१ 'मदासंरिम' सं० ॥ २ 'भद्दिल' सं० ॥ ३ सार्धं, प्रा' सं० ॥ ४ 'त्नपञ्चक' सं० ॥ ५ 'त्त, पृष्टः सोऽप्यवदद् रयात्' सं० सं० ॥ ६ 'सुं प्रभुपादाब्जं, यथा' सं० सं० ॥ ७ अथ विष्णुर्गतो नेमिं, पप्र' सं० ॥

इति मांसादनं मद्यपानं च यदवो व्यधुः । छिद्रान्वेषी स च च्छिद्रं, लेभे द्वैपायनासुरः ॥ २५७ ॥
उल्का-निर्घात-भूकम्पा-ऽऽश्लेल्य-प्रहसितादयः । उत्पाता विविधाः प्रादुरासंस्तस्यां ततः पुरि ॥ २५८ ॥
पिशाच-शाकिनी-भूत-वेतालादिर्परिच्छदः । द्वैपायनासुरः सोऽपि, बभ्राम द्वारिकान्तरे ॥ २५९ ॥
उष्ट्रारूढं दक्षिणस्यां, यान्तं रक्तांशुकावृतम् । महिषीरूढमात्मानं, स्वप्नेऽपश्यन् पुरीजनाः ॥ २६० ॥
सीरादि सीरिणो नष्टं, रत्नं चक्रादि शार्ङ्गिणः । तत्र संवर्तकं वातं, विचकारासुरस्ततः ॥ २६१ ॥
काननानि समग्राणि, दिग्भ्योऽष्टाभ्योऽपि वायुना । उन्मूल्य स पुरीं काष्ठ-तृणादिभिरपूरयत् ॥ २६२ ॥

भीत्या प्रणश्यतो लोकान्, दिग्भ्योऽप्यानीय दुष्टधीः ।
द्वारकान्तर्निचिक्षेप, क्षणाद् द्वैपायनासुरः ॥ २६३ ॥

अथ क्षयानलप्राये, ज्वलने ज्वालिते द्विषा । तत्र बालैश्च वृद्धैश्च, कण्ठलग्नैर्मिथः स्थितम् ॥ २६४ ॥
देवकी-रोहिणीयुक्तं, वसुदेवमथो रथे । क्रष्टुं प्रज्वलनाद् रामयुक्तः कृष्णो न्यवेशयत् ॥ २६५ ॥
न हया न वृषा नेभाः स्तं क्रष्टुं रथमीशते । स्तम्भितास्तेन दैत्येन, स्थिता लेप्यमया इव ॥ २६६ ॥
कृष्ण-रामौ स्वसामर्थ्यात्, तं रथं द्वारि निन्यतुः । पूःप्रतोलीकपाटे ते, पिदधावसुरः क्रुधा ॥ २६७ ॥
अपाटयत् कपाटौ तौ, रामः पादप्रहारतः । रथस्तु नाचलत् कृष्यमाणोऽपि गिरिश्रृङ्गवत् ॥ २६८ ॥
अथ तौ पितरः प्राहुर्वत्सौ ! द्राग् गच्छतं युवाम् । निदानं स मुनिः कुर्वन्, युवामेव मुमोच यत् ॥ २६९ ॥
शरणं नः पुनर्नेमिरधुनाऽप्यस्तु दुर्धियाम् । कस्यापि न वयं कोऽपि, नास्माकमिति निश्चयः ॥ २७० ॥
इति ध्यानवतां मूर्ध्नि, तेषामग्निं ववर्ष सः । मृत्वाऽथ दिवि जग्मुस्ते, राम-कृष्णौ निरीयतुः ॥ २७१ ॥
दह्यमानां पुरीं पाश्चात्, द्रष्टुमप्यक्षमौ शुचा । आलोच्याऽऽलोच्य तौ पाण्डुपत्तनं प्रति चेलतुः ॥ २७२ ॥
पुरेऽथ प्रज्वलत्यस्मिन्, रामसूः कुब्जवारकः । शिष्योऽस्मि नेमिनाथस्य, भावतोऽहं धृतव्रतः ॥२७३॥
ब्रुवन्निति समुत्पाट्य, नीतोऽसौ जृम्भकामरैः । प्राव्राजीत् पल्हवे देशे, श्रीमन्नेमिपदान्तिके ॥ २७४ ॥
॥ युग्मम् ॥

इतोऽपि क्षुधितं कृष्णं, मुक्त्वा हस्तिपुराद् बहिः । गत्वा बलो गृहीत्वा च, शम्बलं वलितः स्वकम् ॥२७५॥
तन्नृपेणाऽऽच्छदन्तेन, धार्तराष्ट्रेण सीरभृत् । पिधाय नगरद्वारं, चौरोऽयमिति रोधितः ॥ २७६ ॥
क्ष्वेडाहूतेन कृष्णेन, बलादर्गलबाहुना । हेलाहतकपाटेन, युक्तः सीरी द्विषोऽजयत् ॥ २७७ ॥
अथ भुक्त्वा तदुद्याने, तौ कौशाम्ब्यवनं गतौ । तत्रार्तस्तृष्णया कृष्णस्तस्थौ रामोऽम्भसे गतः ॥ २७८ ॥
अथ पीताम्बरच्छन्नतनोः सुप्तस्य कानने । लग्नो जानूपरिन्यस्ते, कृष्णस्याङ्घ्रितले शरः ॥ २७९ ॥
तदुत्थाय हरिः कोऽयमित्यवादीदमर्षणः । उपलक्ष्य गिराऽऽगत्य, जरापुत्रो मुमूर्च्छ च ॥ २८० ॥
लब्धसंज्ञो रुदन्नाह, धिग् मे जन्मेदमीदृशम् । धिग् मां यन्न तदा दीर्णः, श्रुत्वा तत् तीर्थकृद्वचः ॥ २८१ ॥
ममारण्यगतस्यापि, यदमूः शरगोचरः । तन्मन्ये कृष्ण ! पूर्दग्धा, न स्यादर्हद्वचोऽन्यथा ॥ २८२ ॥
अथ तं हरिरित्याह, विषादेन कृतं कृतिन् ! । त्वं जीव यादवेष्वेको, व्रज वेगेन पाण्डवान् ॥ २८३ ॥
भाविनस्ते सहायास्ते, चिरं क्षाम्याश्च मद्गिरा । गच्छ यावद् बलो नैति, त्वां हनिष्यति स क्रुधा ॥ २८४ ॥
इत्युक्त्वा प्रेषितः सैष, गोविन्देन जरासुतः । उन्मूल्यास्मै ददौ चायमभिज्ञानाय कौस्तुभम् ॥ २८५ ॥

---

१ °परिग्रहः खंता० ॥ २ °पाक्रान्तमात्मा° खंता० सं० ॥ ३ °स्तं रथं क्रष्टुमी° खंता० ॥
४ °ष्टुमथुरां प्रति खंता० सं० ॥ ५ °त्वाऽथ, द्रा° खंता० । °त्वाऽप्यरा° सं० ॥

वर्षान्ते निर्ययौ विष्णुर्गृहाद् भानुरिवाम्बुदात् ।
अपृच्छद् वीरकं धीरः, किं कृशोऽसीति नीतिमान् ॥ १७१ ॥

तद्वचे कथिते द्वास्थैर्गृहे सोऽस्खलितः कृतः । वीरकेण समं जग्मे, हरिणा नेमिसन्निधौ ॥ १७२ ॥
साधुधर्मं जिनाधीशात्, कर्ण्यमाकर्ण्य सोऽवदत् । नास्मि श्रामण्ययोग्योऽहमस्तु मे नियमस्तु तत् ॥१७३॥

न निषेध्यो व्रतात् कश्चित्, कार्यः किन्तु व्रतोत्सवः ।
सर्वस्यापि मया विष्णुरभिगृह्येत्यगाद् गृहम् ॥ १७४ ॥ युग्मम् ॥

विवाह्याः स्वसुताः प्राह, कृष्णस्तन्नन्तुमागताः ।
स्वामित्वमथ दास्यत्वं, भवतीभ्यो ददामि किम् ? ॥ १७५ ॥

स्वामित्वं देहि नस्तात !, ताभिरित्युदितो हरिः । ग्राहयामास ताः सर्वाः, प्रव्रज्यां नेमिसन्निधौ ॥ १७६ ॥
जननीशिक्षिताऽवोचत्, कन्यका केतुमञ्जरी । भविष्यामि भुजिष्याऽहं, तात ! न स्वामिनी पुनः ॥१७७॥
अन्याः कन्या ममेदृक्षं, मा वदन्निति विष्णुना । तद्विवाहधिया पृष्टो, विक्रमं वीरकः स्वयम् ॥ १७८ ॥
वीरमन्यस्ततो वीरः, कुविन्दोऽवोचदच्युतम् । बदरीस्थो मया ग्राव्णा, कृकलासो हतो मृतः ॥ १७९ ॥
चक्रमार्गे मया वारि, वहद्वामाङ्घ्रिणा धृतम् । मक्षिकाः पानकुम्भान्तर्धृता द्वारस्थपाणिना ॥ १८० ॥
समासीनो द्वितीयेऽह्नि, विष्णुर्भूमीभुजोऽवदत् । वीरकस्यास्य वीरत्वं, कुलातीतं किमप्यहो ! ॥ १८१ ॥
येन रक्तफटो नागो, निवसन् बदरीवने । निजघ्ने भूमिशस्त्रेण, वेमतिः क्षत्रियो ह्ययम् ॥ १८२ ॥
येन चक्रकृता गङ्गा, वहन्ती कलुषोदकम् । धारिता वामपादेन, वेमतिः क्षत्रियो ह्ययम् ॥ १८३ ॥
येन घोषवती सेना, वसन्ती कलशीपुरे । निरुद्धा वामहस्तेन, वेमतिः क्षत्रियो ह्ययम् ॥ १८४ ॥
इत्युक्त्वा पौरुषं स्पष्टं, क्षत्रियेषु जनार्दनः । वीरेणोद्वाहयामास, स्वकन्यां केतुमञ्जरीम् ॥ १८५ ॥
वीरकस्तां गृहे नीत्वा, तस्या दास इवाभवत् । आज्ञया केशवस्याथ, तां दासीमिव चक्रिवान् ॥ १८६ ॥

पराभूता तु सा विष्णुं, रुदतीदं न्यवेदयत् ।
कृष्णोऽवोचत् त्वयायाचि, दास्यं स्वाम्यममोचि तत् ॥ १८७ ॥

साऽवोचदधुनाऽपि त्वं, पितः ! स्वाम्यं प्रयच्छ मे । इति प्राव्राजयत् पुत्रीं, कृष्णोऽनुज्ञाप्य वीरकम् ॥१८८॥
एकदा प्रददौ विष्णुर्द्वादशावर्तवन्दनम् । विश्वेषामपि साधूनां, मुदा तदनु वीरकः ॥ १८९ ॥
ऊचे हरिर्विभुं पश्चाऽधिकैर्युद्धशतैस्त्रिभिः । न श्रान्तोऽहं तथा नाथ !, यथा वन्दनयाऽनया ॥ १९० ॥
अभ्यधत्त ततः स्वामी, श्रीमन्नद्य त्वयाऽर्जिते । साक्षात् क्षायिकसम्यक्त्व-तीर्थकृन्नामकर्मणी ॥ १९१ ॥
सप्तम्या दुर्गतेरायुरुद्वृत्त्याद्य त्वया हरे ! । साधुवन्दनया बद्धं, तृतीयेनिरयावनौ ॥ १९२ ॥
कृष्णोऽवदत् पुनर्देयं, वन्दनं दमिनां मया । नरकायुर्यथा शेषमपि निःशेषतां भजेत् ॥ १९३ ॥
द्रव्यवन्दनमित्थं ते, न भवेद् दुर्गतिच्छिदे । इत्युक्तः स्वामिनाऽपृच्छद्, वीरकस्य फलं हरिः ॥ १९४ ॥
अथाभ्यधत्त तीर्थेशः, क्लेश एवास्य तत्फलम् । वन्दिताः साधवोऽनेन, यतस्त्वदनुवर्तनात् ॥ १९५ ॥
नत्वाऽथ नाथमावासे, ययौ द्वारवतीपतिः । ढण्ढणाख्यो हरेः सूनुः, प्राव्रजन्नेमिसन्निधौ ॥ १९६ ॥

---

१ °मे, नन्तुं च हरिणा प्रभुम् ॥ संता० सं० ॥ २ त्वं, स्वाम्यं तात ! प्रय° संता० सं० ॥
३ ऊचे विष्णुर्वि° सं० ॥ ४ °नरकोचितम् ॥ संता० सं० ॥ ५ °नं दमि° संता० सं० ॥
६ दोषं, मम मूलादपि शुद्ध्येत् संता० सं० ॥

इति मांसादनं मद्यपानं च यदवो व्यधुः । छिद्रान्वेषी स च च्छिद्रं, लेभे द्वैपायनासुरः ॥ २५७ ॥
उल्का-निर्घात-भूकम्पा-ऽऽश्लेल्य-प्रहसितादयः । उत्पाता विविधाः प्रादुरासंस्तस्यां ततः पुरि ॥ २५८ ॥
पिशाच-शाकिनी-भूत-वेतालादिपरिच्छदः । द्वैपायनासुरः सोऽपि, बभ्राम द्वारिकान्तरे ॥ २५९ ॥
उष्ट्रारूढं दक्षिणस्यां, यान्तं रक्तांशुकावृतम् । महिषारूढमात्मानं, स्वप्नेऽपश्यन् पुरीजनाः ॥ २६० ॥
सीरादि सीरिणो नष्टं, रत्नं चक्रादि शार्ङ्गिणः । तत्र संवर्तकं वातं, विचकारासुरस्ततः ॥ २६१ ॥
काननानि समग्राणि, दिग्भ्योऽष्टाभ्योऽपि वायुना । उन्मूल्य स पुरीं काष्ठ-तृणादिभिरपूरयत् ॥ २६२ ॥

भीत्या प्रणश्यतो लोकान्, दिग्भ्योऽप्यानीय दुष्टधीः ।
द्वारकान्तर्निचिक्षेप, क्षणाद् द्वैपायनासुरः ॥ २६३ ॥

अथ क्षयानलप्राये, ज्वलने ज्वालिते द्विषा । तत्र बालैश्च वृद्धैश्च, कण्ठलग्नैर्मिथः स्थितम् ॥ २६४ ॥
देवकी-रोहिणीयुक्तं, वसुदेवमथो रथे । कष्टुं प्रज्वलनाद् रामयुक्तः कृष्णो न्यवेशयत् ॥ २६५ ॥
न हया न वृषा नेभास्तं क्रष्टुं रथमीशते । स्तम्भितास्तेन दैत्येन, स्थिता लेप्यमया इव ॥ २६६ ॥
कृष्ण-रामौ स्वसामर्थ्यात्, तं रथं द्वारि निन्यतुः । पूःप्रतोलीकपाटे ते, पिदधावसुरः क्रुधा ॥ २६७ ॥
अपाटयत् कपाटौ तौ, रामः पादप्रहारतः । रथस्तु नाचलत् कृष्यमाणोऽपि गिरिशृङ्गवत् ॥ २६८ ॥
अथ तौ पितरः प्राहुर्वत्सौ ! द्राग् गच्छतं युवाम् । निदानं स मुनिः कुर्वन्, युवामेव मुमोच यत् ॥ २६९ ॥
शरणं नः पुनर्नेमिरधुनाऽप्यस्तु दुर्धियाम् । कस्यापि न वयं कोऽपि, नास्माकमिति निश्चयः ॥ २७० ॥
इति ध्यानवतां मूर्ध्नि, तेषामग्निं ववर्ष सः । मृत्वाऽथ दिवि जग्मुस्ते, राम-कृष्णौ निरीयतुः ॥ २७१ ॥
दह्यमानां पुरीं पास्यां, द्रष्टुमप्यक्षमौ शुचा । आलोच्याऽऽलोच्य तौ पाण्डुपत्तनं प्रति चेलतुः ॥ २७२ ॥
पुरेऽथ प्रज्वलत्यस्मिन्, रामसूः कुब्जवारकः । शिष्योऽस्मि नेमिनाथस्य, भावतोऽहं धृतव्रतः ॥२७३॥
ब्रुवन्निति समुत्पाट्य, नीतोऽसौ जृम्भकामरैः । प्राव्राजीत् पल्हवे देशे, श्रीमन्नेमिपदान्तिके ॥ २७४ ॥
॥ युग्मम् ॥

इतोऽपि क्षुधितं कृष्णं, मुक्त्वा हस्तिपुराद् बहिः । गत्वा बलो गृहीत्वा च, शम्बलं वलितः स्वयम् ॥२७५॥
तन्नृपेणाऽच्छदन्तेन, धार्तराष्ट्रेण सीरभृत् । पिधाय नगरद्वारं, चौरोऽयमिति रोषितः ॥ २७६ ॥
क्ष्वेडाहूतेन कृष्णेन, बलादर्गलबाहुना । हेलाहतकपाटेन, युक्तः सीरी द्विषोऽजयत् ॥ २७७ ॥
अथ भुक्त्वा तदुद्याने, तौ कौशाम्बवनं गतौ । तत्रार्तस्तृष्णया कृष्णस्ततथौ रामोऽम्भसे गतः ॥ २७८ ॥
अथ पीताम्बरच्छन्नतनोः सुप्तस्य कानने । लग्नो जानूपरिन्यस्ते, कृष्णस्याङ्घ्रितले शरः ॥ २७९ ॥
तदुत्थाय हरिः कोऽयमित्यवादीदमर्षणः । उपलक्ष्य गिराऽऽगत्य, जरापुत्रो मुमूर्च्छ च ॥ २८० ॥
लब्धसंज्ञो रुदन्नाह, धिग् मे जन्मेदमीदृशम् । धिग् मां यन्न तदा दीर्णः, श्रुत्वा तत् तीर्थकृद्वचः ॥ २८१ ॥
ममारण्यगतस्यापि, यदभूः शरगोचरः । तन्मन्ये कृष्ण ! पूर्दग्धा, न स्यादर्हद्वचोऽन्यथा ॥ २८२ ॥
अथ तं हरिरित्याह, विषादेन कृतं कृतिन् ! । त्वं जीव यादवेष्वेको, व्रज वेगेन पाण्डवान् ॥ २८३ ॥
भाविनस्ते सहायास्ते, चिरं क्षाम्याश्च मद्गिरा । गच्छ यावद् बलो नैति, त्वां हनिष्यति स क्रुधा ॥ २८४ ॥
इत्युक्त्वा प्रेषितः सैष, गोविन्देन जरासुतः । उन्मूल्यास्मै ददौ चायमभिज्ञानाय कौस्तुभम् ॥ २८५ ॥

---

१ °परिग्रहः संता० ॥ २ °पाकान्तमात्मा° संता० सं० ॥ ३ °स्तं रथं क्रष्टुमी° संता० ॥
४ °ण्डुमथुरां प्रति संता० सं० ॥ ५ °त्याऽथ, श° संता० । °त्वाऽघ्वश° सं० ॥

अथावदद् विभुः शौर्यपुरसीम्नि परासरः। सिषेवे तापसः काञ्चित्, कन्यां नीचकुलां पुरा ॥ २२७ ॥
तद्भूर्द्वैपायनो नाम, ब्रह्मचारी दमी शमी। वसन् वनेऽत्र मद्यान्धैः, शाम्बाद्यैः स हनिष्यते ॥ २२८ ॥
स पुरीं धक्ष्यति क्रुद्धो, यादवैः सह तापसः। भ्रातुर्जराकुमारात् ते, मृत्युर्भावी जरासुतात् ॥ २२९ ॥
श्रुत्वा जराकुमारस्तत्, खिन्नचेताः प्रभोर्वचः। ययौ वनं जिनं नत्वा, तूण-कोदण्डदण्डभृत् ॥ २३० ॥
श्रुत्वा द्वैपायनोऽपीदं, नृपरम्परया वचः। सर्वक्षयाय मा भूवमित्यभूद् वनमन्दिरः ॥ २३१ ॥
नेमिं प्रणम्य कृष्णोऽपि, प्रति द्वारवतीं गतः। भावी मद्यादनर्थोऽयमिति मद्यं न्यवारयत् ॥ २३२ ॥
अथ कादम्बरीं कादम्बरीसंज्ञगुहान्तरे। शिलाकुण्डे समीपाद्रेः, पौराः कृष्णाज्ञयाऽत्यजन् ॥ २३३ ॥
एवं क्षयभियाऽऽपृच्छ्य, सिद्धार्थः सोदरो बलम्। देवीभूयोपकर्तास्मि, गदित्वेत्यग्रहीद् व्रतम् ॥ २३४ ॥
स षण्मासीं तपस्तप्त्वा, मुनीन्द्रस्त्रिदिवं ययौ। इतश्च कश्चित् कुण्डस्थां, सुरां शाम्बानुगः पपौ ॥ २३५ ॥
शाम्बायाथ सुरापूर्णां, चक्रे दृतिमुपायनम्। आख्यत् पृष्टः स शाम्बेन, शिलाकुण्डे स्थितां सुराम् ॥२३६॥
द्वितीयेऽह्नि ययौ शाम्बः, कुमारैः सह दुर्धरैः[1]। अतृप्तश्च पपौ स्वादुरसां स्वादुरसां चिरात् ॥ २३७ ॥
द्वैपायनस्तदा ध्यानस्थितः शैलाश्रितः शमी। पूर्दाहहेतुरित्येष, रुषा शाम्बेन कुट्टितः ॥ २३८ ॥
कृत्वाऽथ तं मृतप्रायं, ययुः सर्वेऽपि वेश्मसु। क्रुद्धस्यास्य पुरीदाहे, प्रतिज्ञां श्रुतवान् हरिः ॥ २३९ ॥
पटुभिश्चटुभिः शांस्त्रवचोभिर्भक्तिभिस्तथा। कृष्णस्तं सान्त्वयामास, न पुनः शान्तवानसौ ॥ २४० ॥
कोपक्रूरारुणाक्षोऽपि[3], मुनीशः कृष्णमब्रवीत्। सह रामेण मुक्तोऽसि, पुरीदाहेऽतिभक्तिभाक् ॥ २४१ ॥
हन्यमानेन दुर्दान्तैर्मया तव कुमारकैः। बद्धं निदानमद्येति, पूर्दाहोऽस्तु तपःफलम् ॥ २४२ ॥
कृष्णस्तपस्विनेत्युक्तः, सरामः प्रययौ पुरीम्। द्वैपायननिदानं च, तदभूत् प्रकटं पुरे ॥ २४३ ॥
अथ कृष्णाज्ञयाऽभूवन्, धर्मनिष्ठाः पुरीजनाः। तदा रैवतकाद्रौ च, श्रीनेमिः समवासरत् ॥ २४४ ॥
तत्र गत्वा प्रभुं नत्वा, चाश्रौषीद् देशनां हरिः। प्रद्युम्न-शाम्बौ निषध, उल्मुकः सारणादयः ॥ २४५ ॥
कुमारा रुक्मिणी चात्र, सत्याद्याश्च यदुस्त्रियः। बह्व्यः संसारनिर्विण्णा, देशनान्ते प्रवव्रजुः ॥ २४६ ॥

॥ युग्मम् ॥

समुद्रविजयादीन् स, स्तुवन् प्रव्रजितान् पुरा। निनिन्द स्वयमात्मानं, हरिर्मुहुरदीक्षितम् ॥ २४७ ॥
ज्ञातचेताः प्रभुः प्राह, जातुचिन्नैव शार्ङ्गिणः। भजन्ते संयमं बद्धा, यन्निदानेन केशव! ॥ २४८ ॥
किंञ्चाधोगामिनः सर्वे, स्वभावेन भवन्त्यमी। श्रुत्वेति विधुरं बाढं, तं स्वामी पुनरभ्यधात् ॥ २४९ ॥
मा विषीद हरे! भावी, त्वमर्हन्नत्र भारते। ब्रह्मलोकं बलो गत्वा, च्युत्वा मर्त्यो भविष्यति ॥ २५० ॥
देवीभूतस्ततश्च्युत्वा, पुनरत्रैव भारते। भूत्वा ते तीर्थनाथस्य, शासने मोक्षमाप्स्यति ॥ २५१ ॥
श्रुत्वेति नत्वा तीर्थेशं, कृष्णोऽगान्नगरीं निजाम्। भगवान् नेमिनाथोऽपि, विजह्रारान्यतस्ततः ॥ २५२ ॥
पुनः कृष्णाज्ञया पौरा, बाढं धर्मपराः स्थिताः। द्वैपायनोऽपि मृत्वाऽभूदथ वह्निकुमारकः ॥ २५३ ॥
पूर्ववैरस्मृतेरेत्य[6], द्वारकां दग्धुमुद्धुरः। नालम्भूष्णुरसौ पौरतपःप्रतिहतः परम् ॥ २५४ ॥
वर्षाण्येकादशालब्धच्छिद्रोऽस्थादेष रोषणः। द्वादशेऽब्दे प्रवृत्ते च, लोकश्चिन्तमिति व्यधात् ॥ २५५ ॥
भ्रष्टम्रपोभिरस्माकं, सोऽपि द्वैपायनो ध्रुवम्। रमामहे ततः स्वैरं, प्रवर्तितमहोत्सवाः ॥ २५६ ॥

---

१ °दुर्मदैः खंता०। दुर्दमैः सं० ॥ २ °न पिष्टि° खंता० सं० ॥ ३ °क्षोऽथ, मु° खंता० सं० ॥
४ °रमानमेकं मुदु° खंता० ॥ ५ तदधो° सं० ॥ ६ °स्मृतेः प्राप्तो, द्वार° खंता० सं० ॥

अथ सिंहादयोऽप्यस्मिन्, बलदेशनया वने । निवृत्तपिशिताहाराः, श्रावकत्वं प्रपेदिरे ॥ ३१६ ॥
प्राक्सम्बन्धी मुनेरस्य, कोऽपि जातिस्मरो मृगः । वनेऽशंसज्जनं सात्रमागतं मौलिसंज्ञया ॥ ३१७ ॥
रथकारोऽन्यदा कोऽपि, दारुभ्यस्तद् वनं गतः । तत्रानयन्मृगो रामं, भिक्षाहेतोः पुरःसरः ॥ ३१८ ॥
तदा भोक्तुं निविष्टोऽसौ, रथकृद् वीक्ष्य सीरिणम् । धन्योऽहं यदिहायातः, साधुरित्युत्थितो मुदा ॥३१९॥
सर्वाङ्गस्पृष्टभूर्नत्वा, स मुनिं प्रत्यलाभयत् । भाग्यभागी भवत्वेष, भिक्षामित्यग्रहीन्मुनिः ॥ ३२० ॥
स मृगोऽपि तदाऽध्यायद्, धिग् मे तिर्यक्त्वमागतम् । न शक्तोऽस्मि तपः कर्तुं, दानं दातुं च न क्षमः ॥३२१॥
इति त्रयोऽपि सद्ध्याना, रथकारेण-सीरिणः । वातेरितद्रुघातेन, ब्रह्मलोके ययुः समम् ॥ ३२२ ॥
इतश्च पाण्डवा मत्वा, जरापुत्रात् कथामिमाम् । आक्रन्दमुखराश्चक्रुः, मुरारेरौर्ध्वदेहिकम् ॥३२३॥
जरासूनुमथ न्यस्य, राज्ये मार्तण्डतेजसम् । ते नेमिप्रेपिताद्धर्मघोषाचार्याद् व्रतं दधुः ॥ ३२४ ॥
आर्या-ऽनार्येषु देशेषु, लोकं नेमिरबोधयत् । निर्वाणसमये चायं, ययौ रैवतकाचलम् ॥ ३२५ ॥
कृते समवसरणे, देवैः कृत्वाऽन्तदेशनाम् । तत्र प्राबोधयन्नेमिस्वामी लोकाननेकशः ॥ ३२६ ॥
सहितः पञ्चभिः साधुशतैः षट्त्रिंशताऽधिकैः । मासिकानशनी स्वामी, पादपोपगमं व्यधात् ॥ ३२७ ॥
अथ त्वाष्ट्रे शुचिश्वेताष्टम्यां सद्ध्यानमाश्रितः । सार्द्धं तैः साधुभिः सायं, विभुर्निर्वाणमासदत् ॥ ३२८ ॥
कौमारे त्रिशती जज्ञे, छद्म-केवलयोः पुनः । शतानि सप्त वर्षाणां, सहस्रायुरिति प्रभुः ॥ ३२९ ॥

निर्वाणपर्वणि सुपर्वपतिर्विधाय, कृत्यानि तत्र सफलीकृतनाकिलक्ष्मीः ।
नन्दीश्वरे प्रशमिताखिललोककष्टमष्टाह्निकोत्सवमतुच्छमतिस्ततान ॥ ३३० ॥

तस्यां निर्वाणभूमौ मणिमयमतुलं मन्दिरं नेमिभर्तु-
श्चक्रे शक्रेण शृङ्गप्रकरकवलितव्योमदेशावकाशम् ।
तत् पूर्वं रैवताद्रिः प्रथितमिह महातीर्थमेतत् पृथिव्यां,
देवी यत्राऽम्बिकाऽसौ किशलयति सतां सन्ततं क्षेमलक्ष्मीम् ॥ ३३१ ॥

॥ इत्याचार्यश्रीविजयसेनसूरिशिष्यश्रीमदुदयप्रभसूरिविरचिते श्रीधर्माभ्युदय-नाम्नि श्रीसङ्घपतिचरिते लक्ष्म्यङ्के महाकाव्ये श्रीनेमिनिर्वाणवर्णनो नाम चतुर्दशः सर्गः ॥

यात्रायां चन्द्रसान्द्रं लसदहितयशः कोटिशः कुट्टयित्वा,
क्षिप्तं सद्यप्रतापानलमहसि मुदा यत् त्वया लीलयैव ।
अद्याप्युद्दामपूरप्रसरसुरभिताशेषदिक्चक्रवाल-
स्तेन श्रीवस्तुपाल ! स्फुरति परिमलः कोऽपि सौभाग्यभूमिः ॥ १ ॥

[3]क्रुद्धस्त्वं ननु दीनमण्डलपतिर्दारिद्र्य ! तत् किं पुनः,
खिन्नः साम्प्रतमीक्ष्यसे गतमहा धातः ! समाकर्ण्यताम् ।
त्वद्दत्तामपि पत्तलां मम हठाद् दुःस्थालिभालाक्षर-
श्रेणिं सम्प्रति लुम्पति प्रतिमुहुः श्रीवस्तुपालः क्षितौ ॥ २ ॥

॥ ग्रन्थाग्रम् ३४० । उभयम् ४९१९ ॥

---

१ इति श्रीवि° खंता० ॥ २ °मिस्वामिनिर्वा° खंता० ॥ ३ अयं श्लोकः वता० प्रतौ नास्ति ॥
४ ग्रन्थाग्रम्-३४५ । उभयम्-४९२४ । वता० ॥

कृष्णाङ्ग्रीर्वाणमुद्धृत्य, प्रयातोऽथ जरासुतः। रामान्वेषभयात् किञ्चिद्, विपरीतैः पदैश्चलन् ॥ २८६ ॥
उत्तराभिमुखीभूय, कृष्णोऽपि प्राञ्जलिस्तदा। पञ्चभ्यः परमेष्ठिभ्यो, नमश्चक्रे यथाविधि ॥ २८७ ॥
प्रशशंस कुटुम्बं स्वं, पुरा प्रव्रजितं तदा। हृदा निनिन्द चात्मानमीदृशव्यसनातुरम् ॥ २८८ ॥
प्रहारपीडयाऽथाऽयं, निर्विवेकीभवन्मनाः। ध्यातद्वैपायनद्वेषस्तृतीयां पृथिवीं ययौ ॥ २८९ ॥
कृत्वाऽम्मः पद्मपत्रेऽथ, वलः कृष्णाग्रमागतः। असौ सुखेन विश्रान्तः, सुप्तोऽस्तीति क्षणं स्थितः ॥२९०॥
वीक्ष्य रक्तं चिराचीरं, मृतं मत्वाऽथ बान्धवम्। सोऽपतन्मूर्च्छितो लब्धसञ्ज्ञः सद्यो रुरोद च ॥ २९१ ॥
विष्णोर्मुखाग्रमागत्य, जगाद च शुचाऽर्दितः। भ्रातर्न किं वदस्यद्य?, कोऽपराधः कृतो मया? ॥२९२॥
लग्नः कालो ममाद्येति, क्रुद्धश्चेत् तत् त्यज क्रुधम्। पयोमध्याङ्कुलीरेखोपमः कोपो महात्मनाम् ॥२९३॥
रामस्तमित्यजल्पन्तं, बन्धुं वात्सल्यमोहितः। स्कन्धेऽधिरोप्य बभ्राम, पूजयामास चान्वहम् ॥ २९४ ॥
षण्मासान्ते कदाऽप्येष, कश्चित् पप्रच्छ पूरुषम्। मेलयन्तं रथं शैलोत्तीर्णं भग्नं पुनः समे ॥ २९५ ॥
उत्तीर्य विषमाद् भग्नः, समे योऽयं रथः पथि। कथं सहस्रखण्डोऽयं, मूढ! मेलकमेष्यति? ॥ २९६ ॥
सोऽप्याह जित्वा युद्धानि, सुखसुप्तोऽप्ययं मृतः।
चेत् ते जीविष्यति भ्राता, मिलिष्यति रथोऽपि तत् ॥ २९७ ॥
रामोऽन्यतः कमप्याह, वपन्तं ग्राव्णि पद्मिनीः। लगिष्यन्ति महामूढ!, कथमेत्राप्यमूरिति ॥२९८॥
सोऽप्युवाच यदि भ्राता, जीविष्यति मृतस्तव। तदेताः कमलिन्योऽपि, गमिष्यन्त्यत्र वैभवम् ॥२९९॥
अन्यतोऽपि हली प्राह, नरं प्लुष्टद्रुसेचिनम्। रोक्ष्यत्येष कथं नाम, दग्धकीलोपमो द्रुमः? ॥ ३०० ॥
सहासमाह सोऽप्येनमहो! महदिहाद्भुतम्। शवं स्कन्धे वहन् प्लुष्टद्रुसेके यद्वदस्यदः ॥ ३०१ ॥
गोशवास्ये तृणं कश्चित्, क्षिपन् रामेण भाषितः। रचयन्ति मृताः कापि, गावः कवलनक्रियाम्? ॥३०२॥
स जगाद यदा स्कन्धे, जीविष्यति शवस्तव। करिष्यति तदा सद्यो, गौरियं कवलग्रहम् ॥ ३०३ ॥
किं मृतो मेऽनुजः सीरी?, ध्यायन्निति तदुक्तिभिः। दिव्यरूपं पुरोऽपश्यत्, तं सिद्धार्थं स्वबान्धवम् ॥३०४॥
स जगाद व्रताकाङ्क्षी, त्वयाऽहं प्रार्थितोऽभवम्। तेनाऽऽयातोऽस्मि मूढं त्वामद्य बोधयितुं बलात् ॥३०५॥
रथादि मत्कृतं सर्वं, मोहं मुञ्च मृतो हरिः। इदं वदन् जरासूनुकथामपि जगाद सः ॥ ३०६ ॥
अथाऽऽह सीरभृद् बन्धो!, साधु साध्वस्मि बोधितः। किं करोम्यधुनाऽहं तु, स्वबान्धववियोजितः? ॥३०७॥
अथाभाषिष्ट सिद्धार्थो, जिनदीक्षां विनाऽधुना। बन्धो! न युज्यते किञ्चित्, तव कर्तुं विवेकिनः ॥३०८॥
मत्वेति तद्वचस्तेन, देवेन सह सीरभृत्। चकार हरिसंस्कारं, सिन्धुसंभेदसीमनि ॥ ३०९ ॥
चारणर्षेरथो नेमिनियुक्तात् प्राव्रजद् बलः। तुङ्गिकाशिखरस्थायी, सिद्धार्थोऽभूच्च रक्षकः ॥ ३१० ॥
अन्यदा तं पुरे कापि, पश्यन्ती काऽपि कूपगा। कुम्भस्थाने स्वपुत्रस्य, ग्रीवायां रज्जुमक्षिपत् ॥३११॥
आलोक्येदं बलो निन्दन्, निजरूपातिशायिताम्। तदादि नगरग्रामगत्यभिग्रहमग्रहीत् ॥ ३१२ ॥
सदा मासोपवासी स, वन एव स्थितः कृती। तृणकाष्ठादिहारिभ्यो, भिक्षया पारणं व्यधात् ॥ ३१३ ॥
अस्मद्राज्येच्छया धीरः, कोऽप्ययं तप्यते तपः। ध्यात्वेति भूरयो भूपास्तं हन्तुं सद् वनं ययुः ॥ ३१४ ॥
सिद्धार्थः सन्निधानेऽथ, तस्य सिंहान् विचक्रिवान्। भीतास्ततो बलं नत्वा, ययुर्निजपुरं नृपाः ॥ ३१५ ॥

१ "लीलेखो" खंता० सं० ॥ २ ततस्त" खंता० ॥ ३ यन्मुषा" खंता० ॥ ४ "मस्मिग्रहम्" खंता० सं० ॥
५ "न पारितः। खंता० ॥ ६ मुग्धं त्वां" सं० ॥ ७ "सङ्गमसीम" खंता० सं० ॥

मन्त्री मौलौ किल जिनपतेश्चित्रचारित्रपात्रं,
स्नात्रं कृत्वा कलशलुलितैः[1] स्मेरकाश्मीरनीरैः ।
चक्रे चञ्चन्मृगमदमयालेपन-स्वर्णभूषा,
वर्ण्यैः पूजाकुसुम-वसनैस्तं स कल्पद्रुकल्पम् ॥ ९ ॥

मन्त्रीशेन जिनेश्वरस्य पुरतः कर्पूरपूरा-ऽगुरु-
क्षोपत्प्रेङ्खितधूपधूमपटली सा काऽपि तेने मुदा ।
या तद्वद्धमहाध्वजप्रणयिनी स्वर्लोककल्लोलिनी-
मिश्रेयं रविकन्यकेति वियति प्रत्यक्षमुत्प्रेक्ष्यते ॥ १० ॥

इत्थं तत्र विधाय निर्मलमनाः सम्मान-दानक्रिया-
सानन्दप्रमदाकुलां कुलनभोमाणिक्यमष्टाह्निकाम् ।
विघ्नोन्मर्दिकपर्दियक्षविहितप्रत्यक्षसान्निध्यतः,
श्रद्धावर्धितसम्मदादुदतरन्मन्त्रीश्वरो भूधरात् ॥ ११ ॥

अजाहराख्ये नगरे च पार्श्वपादानजापालनृपालपूज्यान् ।
अभ्यर्चयन्नेप पुरे च कोडीनारे स्फुरत्कीर्तिकदम्बमम्बाम् ॥ १२ ॥

देवपत्तनपुरे पुरन्दरस्तूयमानममृतांशुलाञ्छनम् ।
अर्चयन्नुचितचातुरीचितः, कामनिर्मथननिर्मलद्युतिम् ॥ १३ ॥

पीतस्फीतरुचिश्चिराय नयनैर्वामभ्रुवां वामन-
स्थल्यामेप मनोविनोदजननं कृत्वा प्रवेशं पुरि ।
धीमान् निर्मलधर्मनिर्मितिसमुल्लासेन विस्मापयन्,
दैवं रैवतकाधिरोहमकरोत् सङ्घेन सङ्घेश्वरः ॥ १४ ॥ विशेषकम् ॥

गजेन्द्रपदकुण्डस्य, तत्र पीयूषहारिभिः ।
चकार मज्जनं मन्त्री, वारिभिः पापवारिभिः ॥ १५ ॥

जिनमज्जनसज्जसज्जनं, कलशन्यस्ततदम्बुकुङ्कुमम् ।
अथ सङ्घमवेक्ष्य सङ्कटे, विदधे वासवमण्डपोद्यमम् ॥ १६ ॥

संरम्भसङ्घटितसङ्घजनौघदृष्टामष्टाह्निकामयमिहापि कृती वितेने ।
सद्भूतभावभरभासुरचित्तवृत्तिरुद्वृत्तकीर्तियशचुम्बितदिक्कदम्बः ॥ १७ ॥

लुम्पन् रजो विजयसेनमुनीशपाणिवासप्रवासितकुवासनभासमानः ।
सम्यक्त्वरोपणकृते विततान नन्दिमानन्दमेदुरमये रमयन् मनांसि ॥ १८ ॥

दानैरानन्द्य वन्दिव्रजमसृजदनिर्वारमाहारदानं,
मानी सम्मान्य साधूनपुपदपि मुखोद्घाटकर्मादिकानि ।
मन्त्री सत्कृत्य देवार्चनरचनपरानर्चयित्वाऽपमुच्चे-
रम्या-प्रद्युम्न-साम्बानिति कृतसुकृतः पर्वतादुत्ततार ॥ १९ ॥

---

१ 'लुठितैः खंता० ॥

पञ्चदशः सर्गः ।

अयं क्षुभ्यत्क्षीरार्णवनवसुधासन्निभमिमा-
नुमाकर्ण्याकर्ण्यानुपदमुपदेशानिति गुरोः ।
समस्तं व्यस्तैना जनितजिनयात्रापरिकरो-
ऽकरोत् सुस्थं प्रास्थानिकविधिमधीशो मतिमताम् ॥ १ ॥

श्लाघ्येऽह्नि सङ्घसहितः स हितः प्रजानां, श्रीमानथ प्रथमतीर्थकृदेकचित्तः ।
सम्भाषणाद्भुतसुधामयवाग्व्यचाल, वाचालवारिदपथो रथचक्रनादैः ॥ २ ॥

सान्द्रैरपर्युपरिवाहपदाग्रजाग्रद्धूलीपटैर्झटिति कुट्टिमतामटद्भिः ।
मार्गे निरुद्धखरदीधितिधामसङ्घे, सङ्घस्तदा भवनगर्भमिवाययासे ॥ ३ ॥

नाभेयप्रभुभक्तिभासुरमनाः कीर्तिप्रभाशुभ्रिता-
काशः काशहृदाभिधेऽथ विदधे तीर्थे निवासानसौ ।
चक्रे चारुमना जिनार्चनविधिं तद् ब्रह्मचर्यव्रता-
रम्भस्तम्भितविष्टपत्रयजयश्रीधामकामस्मयः ॥ ४ ॥

पुष्टभक्तिभरतुष्टया रयादम्बया हततमःकदम्बया ।
पथ्य इत्यथमथ प्रतिश्रुतं, सन्निधिं समधिगम्य सोऽचलत् ॥ ५ ॥

ग्रामे ग्रामे पुरि पुरि पुरोवर्तिभिर्मर्त्यमुख्यैः,
क्लृप्तप्रावेशिकविधितता व्योम्नि पश्यन् पताकाः ।
मूर्ताः कीर्तीरयममनुत प्रौढनृत्तप्रपञ्च-
भ्राम्यद्धेलाद्भुतभुजलतावर्णनीयाः स्वकीयाः ॥ ६ ॥

अध्यावास्य नमस्यकीर्तिविभवः श्रीसङ्घमंहस्तमः-
स्तोमादित्यमुपत्यकापरिसरे श्रीमल्लदेवानुजः ।
श्रीनाभेयजिनेशदर्शनसमुत्कण्ठोल्लसन्मानस-
स्त्रस्यन्मोहमथारुरोह विमलक्षोणीधरं धीरधीः ॥ ७ ॥

तत्र स्नात्रमहोत्सवव्यसनिनं मार्तण्डचण्डद्युति-
क्लान्तं सङ्घजनं निरीक्ष्य निखिलं सार्द्रीभवन्मानसः ।
सद्यो माद्यदमन्दमेदुरतरश्रद्धानिधिः शुद्धधी-
र्मन्त्रीन्द्रः स्वयमिन्द्रमण्डपमयं प्रारम्भयामासिवान् ॥ ८ ॥

पृष्ठपट्टं च सौवर्णं, श्रीयुगादिजिनेशितुः ।
स्वकीयतेजःसर्वस्वकोशन्यासमिवाऽऽर्पयत् ॥ ३३ ॥

प्रासादे निदधे चास्य, काञ्चनं कलशत्रयम् ।
ज्ञान-दर्शन-चारित्रमहारत्ननिधानवत् ॥ ३४ ॥

किञ्चैतन्मन्दिरद्वारि[1], तोरणं नेत्रपारणम् ।
शिलाभिर्विदधे ज्योत्स्नागर्वसर्वस्वदस्युभिः ॥ ३५ ॥

लोकैः पाञ्चालिकानृत्तसंरम्भस्तम्भितेक्षणैः ।
इहाभिनीयते दिव्यनाट्यप्रेक्षाक्षणः क्षणम् ॥ ३६ ॥

[**प्रासादः स्फुटमच्युतैकमहिमा श्रीनाभिसूनुप्रभो-
स्तस्याग्रे स्थितिरेककुण्डलतुलां धत्तेतरां तोरणम् ।
श्रीमन्त्रीश्वर! वस्तुपाल! कलयन्नीलाम्बरालम्बिता-
मप्युच्चैर्जगतोऽपि कौतुकमसौ नन्दी तथा(था)ऽस्तु श्रिये ॥३७॥**]

अत्र यात्रिकलोकानां[2], विशतां व्रजतामपि ।
सर्वथा सम्मुखैवास्ति, लक्ष्मीरुपरिवर्तिनी ॥ ३८ ॥

[**यत् पूर्वैर्न निराकृतं सुकृतिभिः साम्मुख्य-वैमुख्ययो-
र्द्वैतं तन्मम वस्तुपालसचिवेनोन्मूलितं दुर्यशः ।
आशास्तेऽद्भुततोरणोभयमुखी लक्ष्मीस्तदस्मै मुदा,
श्रीनाभेयविभुप्रसादवशतः साम्मुख्यमेवाधुना ॥ ३९ ॥

तस्यानुजश्च जगति प्रथितः पृथिव्यामव्याजपौरुषगुणप्रगुणीकृतश्रीः ।
श्रीतेजपाल इति पालयति क्षितीन्द्रमुद्रां समुद्ररसनावधिगीतकीर्तिः ॥ ४० ॥

समुद्रत्वं श्लाघे महिमहिमधाम्नोऽस्य बहुधा,
यतो भीष्मग्रीष्मोपमविषमकालेऽप्यजनि यः ।
क्षणेन क्षीणायामितरजनदानोदकततौ,
क्षयावेला हेलाद्विगुणितगुणत्यागलहरी ॥ ४१ ॥

वस्त्रापथस्य पन्थास्तपस्विनां ग्रामशासनोद्धारात् ।
येनापनीय नवकरमनवकरः कारयाञ्चक्रे ॥ ४२ ॥

पुण्योल्लासविलासलालसधिया येनात्र शत्रुञ्जये,
श्रीनन्दीश्वरतीर्थमर्पितजगत्पावित्र्यमासूत्रितम् ।
एतच्चानुपमासरःपरिसरोद्देशे शिलासञ्चये,
व्यानद्धोद्धतबन्धबन्धुरपयःकल्लोलमुक्तभ्रमम् ॥ ४३ ॥

स्फुटस्फटिकदर्पणप्रतिमतामिदं गाहते,
सुधाकृतसुधाकरच्छविपवित्रनीरं सरः ।

---

[1] 'द्वारतो' संता० ॥ [2] 'नां, प्रजतां विशतामपि संता० ॥

असाधि साधर्मिकमानदानैरनेन नानाविधधर्मकर्म ।
अबाधि सा धिक्करणेन माया, निर्माय निर्मायमनःसु पूजाम् ॥ २० ॥

पुरः पुरः पूरयता पयांसि, घनेन सान्निध्यकृता छतीन्दुः ।
स्वकीर्तिवद्यव्यनदीर्ददर्शी, श्रीष्मेऽतिभीष्मेऽपि पदे पदेऽसौ ॥ २१ ॥

इति प्रतिज्ञामिव नव्यकीर्तिप्रियः प्रयाणैरतिवाह्य वीथीम् ।
आनन्दनिःस्यन्दविधिर्विधिज्ञः, पुरं प्रपेदे धवलक्ककं सः ॥ २२ ॥

समं तेजःपालान्वितपुरजनैर्वीरधवल-
प्रभुः प्रत्युद्यातस्तदनु सदनं प्राप्य सुकृती ।
युतः सङ्घेनासौ जिनपतिमथोत्तार्य रथत-
स्ततः सङ्घस्यार्चामशन-वसनाद्यैर्व्यरचयत् ॥ २३ ॥

अथ प्रसादाद् भूभर्तुः, प्राप्य वैभवमद्भुतम् ।
मन्त्रीशः सफलीचक्रे, स्वमनोरथपादपम् ॥ २४ ॥

भक्त्याऽऽखण्डलमण्डपं नवनवश्रीकेलिपर्यङ्किका-
वर्यं कारयति स्म विस्मयमयं मन्त्री स शत्रुञ्जये ।
यत्र स्तम्भन-रैवतप्रभुजिनौ शाम्बा-ऽम्बिकालोकन-
प्रद्युम्नप्रभृतीनि किञ्च शिखराण्यारोपयामासिवान् ॥ २५ ॥

गुरु-पूर्वज-सम्बन्धि-मित्रमूर्तिकदम्बकम् ।
तुरङ्गसङ्गतं मूर्तिद्वयं स्वस्यानुजस्य च ॥ २६ ॥

शातकुम्भमयान् कुम्भान्, पञ्च तत्र न्यवेशयत् ।
पञ्चधाभोगसौख्यश्रीनिधानकलशानिव ॥ २७ ॥

सौवर्णदण्डयुग्मं च, प्रासादद्वितये न्यधात् ।
श्रीकीर्तिकन्दयोरुद्यन्नूतनाङ्कुरसोदरम् । ॥ २८ ॥

कुन्देन्दुसुन्दरग्रावपावनं तोरणद्वयम् ।
इहैव श्री-सरस्वत्योः, प्रवेशायेव निर्ममे ॥ २९ ॥

अर्कपालितकं ग्राममिह पूजाकृते कृती ।
श्रीवीरधवलक्ष्मापाद्, दापयामास शासने ॥ ३० ॥

[[1]**श्रीपालिताख्ये नगरे गरीयस्तरङ्गलीलाद्‌लिता(तो)प्रतापम् ।
तडागमागःक्षयहेतुरेतच्चकार मन्त्री ललिताभिधानम् ॥ ३१ ॥

हर्षोत्कर्षं न केषां मधुरयति सुधासाधुमाधुर्यगर्ज-
त्तोयः सोऽयं तडागः पथि मथितमिलत्पान्थसन्तापपापः ? ।
साक्षादम्भोजदम्भोदितमुदितमुखैर्लोलरोलम्बशब्दै-
रब्देभ्यो दुग्धमुग्धां त्रिजगति जगदुर्यत्र मन्त्रीशकीर्तिम् ॥३२॥**]

१ [** **] एतच्चिह्नान्तर्गतौ ३१-३२ श्लोकौ वता० पुस्तके न स्तः । एवमग्रेऽपि एतादृक्चिह्नान्तर्वर्त्तीनि पद्यानि वता० पुस्तकादर्शे न विद्यन्ते इति ज्ञेयम् ॥

[**पश्चासराह्वनराजविहारतीर्थे,
प्रालेयभूमिधरभूतिधुरन्धरेऽस्मिन् ।
साक्षादधःकृतभवा तटिनीव यस्य,
व्याख्येयमच्युतगुरुक्रमजा विभाति ॥ ७ ॥
भवोद्भटवनावनीविकटकर्मवंशावलि-
च्छिदोच्छलितमौक्तिकप्रतिमकीर्तिकीर्णाम्बरम् ।
असिश्रियमशिश्रियद् विततती्व्रतं यद्व्रतं,
क्षितौ विजयतामयं विजयसेनसूरिर्गुरुः ॥ ८ ॥**]
शिष्यं तस्य प्रशस्यप्रशमगुणनिधेरन्यदाऽरण्यदाव-
ज्वालाजिह्वालदीप्तिर्भविकजनविपद्वह्निवार्दः कपर्दी ।
देवी चाम्बा निशीथे समसमयमुपागत्य हर्षाश्रुवर्षा-
मेयश्रेयःसुभिक्षाविति निजगदतुर्गद्गदोद्दामनादम् ॥ ९ ॥
नाभूवन् कति नाम? सन्ति कति नो? नो वा भविष्यन्ति के?,
किन्तु क्वापि न कोऽपि सत्पुरुषः श्रीवस्तुपालोपमः ।
पश्येत्थं प्रहरन्नहर्निशमहो ! सर्वाभिसारोद्धरो,
येनायं विजितः कलिः कलयता तीर्थेशयात्रोत्सवम् ॥ १० ॥
तस्मादस्य यशस्विनः सुचरितं श्रीवस्तुपालस्य तद्,
वाचाऽस्माकममोघया किल यथाऽध्यक्षीकृतं सर्वथा ।
त्वं श्रीमन्नुदयप्रभ ! प्रथय तत् पीयूषसर्वङ्कषैः,
श्लोकैर्यत्तव भारती समभवत् साक्षादिति श्रूयते ॥ ११ ॥
इत्युक्त्वा गतयोस्तयोरथ पयो दृष्टेः प्रभातक्षणे,
विज्ञप्य स्वगुरोः पुरः सविनयं नम्रीभवन्मौलिना ।
प्राप्याऽऽदेशममुं प्रभोर्विरचयामासे समासेदुषा,
प्रागल्भीमुदयप्रभेण चरितं निस्यन्दरूपं गिराम् ॥ १२ ॥
किञ्च श्रीमलधारिगच्छजलधिप्रोल्लासशीतद्युते-
स्तस्य श्रीनरचन्द्रसूरिसुगुरोर्माहात्म्यमाशास्महे ।
यत्पाणिस्मितपद्मवासविकसत्किञ्जल्कसंवासिताः,
सन्तः सन्ततमाश्रिताः कमलया भृङ्ग्येव भान्ति क्षितौ ॥ १३ ॥
श्रीधर्माभ्युदयाह्वयेऽत्र चरिते श्रीसङ्घभर्तुर्मया,
दध्रे काव्यदलानि सङ्घटयितुं कर्मान्तिकत्वं परम् ।

१ यत्रेत्थं सं० ॥ २ कलिरिदयता तीं संता० सं० ॥ ३ यद् सं० ॥

विकस्वरसरोरुहप्रकरलक्षलोलद्दते,
यदत्र हरिदङ्गनावदनबिम्बनाडम्बरः ॥ ४४ ॥

शत्रुञ्जये यः सरसी निवेश्य, श्रीरैवताद्रौ च जटाधराणाम् ।
ग्रामस्य दानेन करं निवार्य, सङ्घस्य सन्तापमपाचकार ॥ ४५ ॥

क्षोणीपीठमियद्रजःकणमियत्पानीयबिन्दुः पतिः,
सिन्धूनामियदङ्गुलं वियदियत्ताला च कालस्थितिः ।
इत्थं तथ्यमवैति यस्त्रिभुवने श्रीवस्तुपालस्य तां,
धर्मस्थानपरम्परां गणयितुं शक्ते न सोऽपि क्षमः ॥ ४६ ॥*]

एतत् सुवर्णरचितं, विश्वालङ्करणमनणुगुणरत्नम् ।
सङ्घाधीश्वरचरितं, हृतदुरितं कुरुत हृदि सन्तः ! ॥ ४७ ॥

[अथ प्रशस्तिः]

॥ स्वस्ति ॥

श्रीनागेन्द्रमुनीन्द्रगच्छतरणिः श्रीमान् महेन्द्रः प्रभु-
र्जज्ञे क्षान्तिसुधानिधानकलशः सौख्याब्धिचन्द्रोदयः ।
सम्मोहोपनिपातकातरतरे विश्वेऽत्र तीर्थेशितुः,
सिद्धान्तोऽप्यविभेदतर्कविषमं यं दुर्गमाशिश्रिये ॥ १ ॥

तस्सिंहासनपूर्वपर्वतशिरःप्राप्तोदयः कोऽप्यभूद्,
भास्वानस्तसमस्तदुस्तमतमाः श्रीशान्तिसूरिः प्रभुः ।
मत्युज्जीवितदर्शनैर्नवविकसद्भव्यौघपद्माकरं,
तेजश्छन्नदिगम्बरं विजयते तद् यस्य लोकोत्तरम् ॥ २ ॥

आनन्दसूरिरिति तस्य बभूव शिष्यः, पूर्वोऽपरः शमधरोऽमरचन्द्रसूरिः ।
धर्मद्विपस्य दशनाविव पापवृक्षक्षोदक्षमौ जगति यौ विशदौ विभातः ॥ ३ ॥

अम्भोधिवाप्यपयोनिधिमन्दराद्रिमुद्राजुषोः किमनयोः स्तुमहे महिम्नः ! ।
बाल्येऽपि निर्दलितवादिगजौ जगाद, यौ व्याघ्र-सिंहशिशुकाविति सिद्धराजः ॥ ४ ॥

सिद्धान्तोपनिषन्निषण्णहृदयो धीजन्मभूमिस्तयोः,
पट्टे श्रीहरिभद्रसूरिरभवद्वारित्रिणामग्रणीः ।
भ्रान्त्वा धन्यमनाश्रयैर्निचिराद् यस्मिन्नरस्थानतः,
सन्तुष्टैः कलिकालगौतम इति ख्यातिर्वितेने गुणैः ॥ ५ ॥

श्रीविजयसेनसूरिस्तत्पट्टे जयति जलधरध्वानः ।
यस्य गिरो धारा इव, भवदवभरदवथुविभवभिदः ॥ ६ ॥

---

१ 'शः पुष्पाणिपयमृद्वी' संग० सं० ॥ २ 'धिपत् संग० ७ ३ 'मधुतिलसक्रम्यौ' संग० सं० ॥ ४ 'यशोऽम्ब' संग० सं० ॥ ५ 'मृम्नारदे, पृम्यर्थादरि' संग० सं० ॥ ६ 'वैरिच वि' सं० ॥

अथ परिशिष्टानि

किन्तु श्रीनरचन्द्रसूरिभिरिदं संशोध्य चक्रे जग-
त्पावित्र्यक्षमपादपङ्कजरजःपुञ्जैः प्रतिष्ठास्पदम् ॥ १४ ॥
नित्यं व्योमनि नीलनीरजरुचौ यावत् त्विषामीश्वरो,
दिक्पत्रावलिबन्धुरे कुवलये यावच्च हेमाचलः ।
हृत्पद्मे विदुषामिदं सुचरितं तावन्नवाविर्भव-
त्सौरभ्यप्रसरं चिरं कलयतात् किञ्जल्कलक्ष्मीपदम् ॥ १५ ॥

॥ इति श्रीविजयसेनसूरिशिष्यश्रीमदुदयप्रभसूरिविरचिते श्रीधर्माभ्युदयनाम्नि श्रीसङ्घपतिचरिते लक्ष्म्यङ्के महाकाव्ये श्रीवस्तुपालसङ्घयात्रावर्णनो नाम पञ्चदशः सर्गः ॥ छ ॥ १५ ॥

मुक्तेर्मार्गे यदेतद् विरचितमुचितं सङ्घभर्तुश्चरित्रं,
सत्रं पावित्र्यपात्रं पथिकजनमनःखेदविच्छेदहेतुः ।
अस्मिन् सौरभ्यगर्भामसमरसवतीं सत्कथां पान्थसार्थाः,
प्राप्य श्रीवस्तुपालप्रवरनवरसास्वादमासादयन्ति[2] ॥ १ ॥
श्रीशारदैकसदनं हृदयालवः के,
नो सन्ति हन्त ! सकलासु कलासु निष्ठाः ? ।
तादृक् परस्य ददृशे सुकवित्वतत्त्व-
बोधाय बुद्धिविभवस्तु न वस्तुपालात् ॥ २ ॥
नैव व्यापारिणः के विदधति करणग्राममात्मैकवश्यं ?,
लेभे सद्योगसिद्धेः फलममलमलं केवलं वस्तुपालः ।
आकल्पस्थायि धर्माभ्युदयनवमहाकाव्यनाम्ना यदीयं,
विश्वस्याऽऽनन्दलक्ष्मीमिति दिशति यशो-धर्मरूपं शरीरम् ॥ ३ ॥
॥ ग्रन्थाग्रम् १२१ । उभयम् ५०४१[3] ॥
प्रत्येकमत्र[4] ग्रन्थाग्रं, विगणय्य विनिश्चितम् ।
द्वात्रिंशदक्षरश्लोकद्विपञ्चाशच्छतीमितम् ॥ १ ॥

[5] सं० १२९० वर्षे चैत्रशु ११ रवौ स्तम्भतीर्थवेलाकूलमनुपालयता महं० श्रीवस्तुपालेन श्रीधर्माभ्युदयमहाकाव्यपुस्तकमिदमलेखि ॥ छ ॥ छ ॥ शुभमस्तु श्रोतृव्याख्यातॄणाम् ॥

---

१ °लतीर्थयात्रोत्सववर्ण° सता॰ सं॰ ॥ २ °मास्वाद° संता॰ ॥ ३ उभयम्—५२०० संता॰ ॥
४ ग्रन्थाग्रसूचकमिदं पद्यं वता॰ पुस्तके केनचित् पश्चाल्लिखितम् ॥ ५ पुष्पिकैषा वता॰ पुस्तकान्तर्गता ॥

प्रथमं परिशिष्टम् ।

धर्माभ्युदयमहाकाव्यान्तर्गतानामितिहासविदुपयोगिनां पद्यानामनुक्रमणिका ।

द्वितीयं परिशिष्टम् ।

धर्माभ्युदयान्तर्गतानामितिहासविदुपयोगिनां विशेषनाम्नामनुक्रमणिका ।

तृतीयं परिशिष्टम् ।

धर्माभ्युदयमहाकाव्यान्तर्गतानां विशेषनाम्नामनुक्रमणिका ।